जीवाजीवाभिगम सूत्र

भाग-२

(प्रतिपत्ति ३-१)

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन
संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
शाखा - नेहरू गेट बाहर, ब्यावर-३०५ ९०१
फोन नं० : (०१४६२) २५१२१६, २५७६९९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का १०७ वाँ रत्न

जीवाजीवाभिगम सूत्र

भाग-२

(प्रतिपत्ति ३-९)

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

सम्पादक

नेमीचन्द बांठिया

पारसमल चण्डालिया

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन

संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

शाखा-नेहरू गेट के बाहर, ब्यावर-३०५९०१

✆ : (०१४६२) २५१२१६, २५७६९९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य सहायक

सुश्राविका श्रीमती मंगलाबहन जशवंतलाल शाह, बम्बई

प्राप्ति स्थान

१. श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ सिटी पुलिस, **जोधपुर** ✆ : २६२६१४५
२. **शाखा** - श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ,नेहरू गेट बाहर, **ब्यावर**
३. **महाराष्ट्र शाखा** - माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल
आंबेडकर पुतले के बाजू में, **मनमाड़** (नासिक) ✆ : २५२५१
४. **कर्नाटक शाखा** - नं० ९६/१ जुम्मामस्जिद रोड़, देवंगा मार्केट के सामने,
बैंगलोर- २ ✆ : २२१७५५०
५. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो. बॉ. नं. २२१७, **बम्बई-२**
६. श्रीमान् हस्तीमलजी किशनलालजी जैन ६७ बालाजीपेठ, **जलगांव-१**
७. श्री एच. आर. डोशी जी-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, **दिल्ली-६**
८. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, **अहमदाबाद** ✆ : ५४६१२३४
९. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, **बुलडाणा (महा.)**
१०. श्री श्रुतज्ञान स्वाध्याय समिति सांगानेरी गेट, **भीलवाड़ा (राज.)**
११. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, **इन्दौर**
१२. श्री विद्या प्रकाशन मंदिर, विद्या लोक ट्रांसपोर्ट नगर, **मेरठ** (उ. प्र.) ✆ : ५१०८३०
१२. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, २३३ वाल टेक्स रोड़, **चैन्नई** ✆ : ५३५७७५

मूल्य : ४५-००

प्रथम आवृत्ति
१०००

वीर संवत् २५२९
विक्रम संवत् २०५९
जनवरी २००३

मुद्रक : स्वास्तिक ऑफसेट प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर ✆ : २४२३२९५, २४२७९३७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

जैन दर्शन एवं इसकी संस्कृति का मूल आधार सर्वज्ञ-सर्वदर्शी वीतराग प्रभु द्वारा कथित वाणी है। सर्वज्ञ अर्थात् पूर्णरूपेण आत्मद्रष्टा। सम्पूर्ण रूप से आत्म दर्शन करने वाले ही विश्व का समग्र दर्शन कर सकते हैं, जो समग्र जानते हैं वे ही तत्त्वज्ञान का यथार्थ निरूपण कर सकते हैं। अन्य दर्शनों की अपेक्षा जैन दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता यही तो है कि इस दर्शन के प्रणेता सामान्य व्यक्ति न होकर सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग प्रभु हैं, जो अट्ठारह दोष रहित एवं बारह गुण सहित होते हैं। यानी सम्पूर्णता प्राप्त करने के पश्चात ही वाणी की वागरणा करते हैं, अतएव उनके द्वारा फरमाई गई वाणी न तो पूर्वापर विरोध होती है, नहीं युक्ति बाधक। उनके द्वारा कथित वाणी जिसे सिद्धान्त कहने में आता है, वे सिद्धान्त अटल, ध्रुव, नित्य, सत्य शाश्वत एवं त्रिकाल अबाधित एवं जगत के समस्त जीवों के लिए हितकर, सुखकर, उपकारक, रक्षक रूप होते हैं, जैन दर्शन का हार्द निम्न आगम वाक्य में निहित है -

सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं। पेच्चाभावियं आगमेसिभद्द सुद्धं णेयाउयं अकुडिलं अनुत्तरं सव्वदुक्खपावाण विउसमणं॥

भावार्थ - समस्त जगत के जीवों की रक्षा रूप दया के लिए भगवान् ने यह प्रवचन फरमाया है। भगवान् का यह प्रवचन अपनी आत्मा के लिए तथा समस्त जीवों के लिए हितकारी है। जन्मान्तर के शुभ फल का दाता है, भविष्य में कल्याण का हेतु है। इतना ही नहीं वरन् यह प्रवचन शुद्ध न्याय युक्त मोक्ष के प्रति सरल प्रधान और समस्त दुःखों तथा पापों को शान्त करने वाला है।

सर्वज्ञों द्वारा कथित तत्त्व ज्ञान, आत्म ज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध आगम, शास्त्र अथवा सूत्र के रूप में प्रसिद्ध है। जिसे तीर्थंकर भगवन्त अर्थ रूप में फरमाते हैं। उस अर्थ रूप में फरमाई गई वाणी को महान् प्रज्ञावान गणधर भगवन्त सूत्र रूप में गुन्थित करके व्यवस्थित आगम का रूप देते हैं। इसीलिए कहा गया है **"अत्थं भासाइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं।"** आगम साहित्य की प्रमाणिकता केवल गणधर कृत होने से ही नहीं, किन्तु अर्थ के प्ररूपक तीर्थंकर प्रभु की वीतरागता और सर्वज्ञता के कारण है। गणधर केवल द्वादशांगी की रचना करते हैं। अंग बाह्य आगमों की रचना स्थविर भगवन्त करते हैं। स्थविर भगवन्त जो सूत्र की रचना करते हैं, वे दश पूर्वी अथवा उससे अधिक पूर्व के ज्ञाता होते हैं। इसलिए वे सूत्र और अर्थ की दृष्टि से अंग साहित्य के पारंगत होते हैं। अतएव वे जो भी रचना करते हैं, उसमें किंचित् मात्र भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विरोध नहीं होता है। जो बात तीर्थंकर भगवंत फरमाते हैं, उसको श्रुतकेवली (स्थविर भगवन्त) भी उसी रूप में कह सकते हैं। दोनों में अन्तर इतना ही है कि केवली सम्पूर्ण तत्त्व को प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं, तो श्रुतकेवली, श्रुतज्ञान के द्वारा परोक्ष रूप में जानते हैं। उनके वचन इसलिए भी प्रामाणिक होते हैं, क्योंकि वे नियमतः सम्यग्दृष्टि होते हैं। वे हमेशा निर्ग्रन्थ प्रवचन को आगे रखकर ही चलते है। उनका उद्घोष होता है **"णिग्गंथं पावयणं अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे"** निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ रूप, परमार्थ रूप है शेष सभी अनर्थ रूप है। अतएव उनके द्वारा रचित आगम ग्रन्थ भी उतने ही प्रमाणिक माने जा रहे हैं जितने गणधर कृत अंग्र-सूत्र।

जैनागमों का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया गया है। समवायांग सूत्र में इनका वर्गीकरण पूर्व और अंग के रूप में मिलता है, दूसरा वर्गीकरण अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य के रूप में किया गया है, तीसरा और सबसे अर्वाचीन वर्गीकरण अंग, उपांग, मूल और छेद रूप में है, जो वर्तमान में प्रचलित है।

११ अंग :- आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्म कथांग, उपासक दशांग, अन्तकतदशा, अनुत्तरौपपातिक, प्रश्नव्याकरण एवं विपाक सूत्र।

१२ उपांग :- औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, निरियावलिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा सूत्र।

४ छेद :- दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार और निशीथ सूत्र।

४ मूल :- उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी और अनुयोग द्वार सूत्र।

१ आवश्यक :-

कुल ३२

प्रस्तुत जीवाजीवाभिगम जो उपांग का तीसरा सूत्र है, इसके रचयिता स्थविर भगवन्त हैं, इसके लिए सूत्र के प्रारम्भ में स्थविर भगवन्तों का उल्लेख करते हुए कहा गया है -

"इह खलु जिणमयं जिणाणुमयं जिणाणुलोमं जिणप्पणीतं जिणपरूवियं जिणक्खाय जिणाणुचिण्णं जिणपण्णत्तं जिणदेसियं जिणपसत्थ अणुव्वीइय तं सद्दहमाणा तं पत्तियमाणा तं रोयमाणा थेरा भगवंतो जीवाजीवाभिगम णामज्झयणं पण्णवइंसु।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवार्थ - जैन प्रवचन में तीर्थंकर परमात्मा के सिद्धान्त रूप द्वादशांग गणिपिटक का, जो अन्य सब तीर्थकरों द्वारा अनुमत है, जिनानुकूल है, जिन प्रणीत है, जिन प्ररूपित है, जिनाख्यात है, जिनानुचीर्ण है, जिन प्रज्ञप्त है, जिन देशित है, जिन प्रशस्त है, पर्यालोचन कर उस पर श्रद्धा करते हुए, उस पर प्रतीति करते हुए, उस पर रुचि रखते हुए स्थविर भगवन्तों ने जीवाजीवाभिगम नामक अध्ययन प्ररूपित किया है।

प्रस्तुत सूत्र का नाम जीवाजीवाभिगम है, इससे स्पष्ट ध्वनित है कि इसमें जीव और अजीव का वर्णन है। परन्तु अजीव का तो बहुत ही संक्षेप में वर्णन है, विस्तृत रूप से तो इसमें जीव का ही वर्णन है। इसमें नौ प्रतिपत्तियाँ (प्रकरण) हैं। प्रथम प्रतिपत्ति में जीवाभिगम और अजीवाभिगम का निरूपण किया गया है। जबकि शेष आठ प्रतिपत्तियों में जीवों का ही निरूपण किया गया है।

इस समस्त लोक में जो भी चराचर या दृश्य अदृश्य पदार्थ या सद्रूप वस्तु विशेष है वह सब जीव या अजीव इस दो पदों में समाविष्ट है। मूलभूत तत्त्व जीव और अजीव हैं, शेष पुण्य पाप आस्रव संवर बंध और मोक्ष-ये सब इन दो तत्त्वों के सम्मिलन और वियोग परिणति मात्र है। जैन दर्शन में आत्मतत्त्व का बहुत ही सूक्ष्मता के साथ विस्तृत विवेचन किया है। जैन चिंतन की धारा का उद्‌गम आत्मा से होता है और अन्त मोक्ष प्राप्ति से। आचारांग सूत्र का आरम्भ ही आत्म जिज्ञासा से हुआ है, उनके आदि वाक्य में ही कहा गया है-इस संसार में कई जीवों को यह ज्ञान और भान नहीं होता कि उनकी आत्मा किस दिशा से आयी है और कहाँ जावेगी? वे यह भी नहीं जानते कि उनकी आत्मा जन्मान्तर में संचरण करने वाली है या नहीं? मैं पूर्व जन्म में कौन था और यहाँ से मरकर दूसरे जन्म में क्या होऊँगा-? यह भी वे नहीं जानते। किन्तु विशेष ज्ञान (जातिस्मरण ज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यव ज्ञान, केवल ज्ञान) से जब जीव यह जान लेता है कि इन विभिन्न दिशा-विदिशाओं में जन्म मरण करने वाली मेरी आत्मा ही है। जो पुरुष आत्मा के इस स्वरूप को जानता है, ज्ञानियों ने उसे आत्मवादी कहा है। जो आत्मवादी है, वही लोकवादी अर्थात् लोक का यथार्थ स्वरूप जानने वाला है। जो आत्मवादी और लोकवादी है, वही कर्मवादी अर्थात् कर्मों का यथार्थ स्वरूप जानने वाला होता है और वही क्रियावादी है। यानी कर्मबंध के कारण भूत क्रिया को जानने वाला होता है।

जीवात्मा जब तक विभावदशा में रहता है, तब तक अजीव पुद्‌गलात्मक कर्मवर्गणाओं से आबद्ध होता है। फलस्वरूप उसे शरीर के बंधन से बंधना पड़ता है। एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना पड़ता है। इस प्रकार शरीर धारण करने और छोड़ने की परम्परा चलती रहती है। यह परम्परा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही जन्म मरण है इस जन्म-मरण के चक्र में परिभ्रमण आत्मा का विभावदशापन करता है। यही संसार है। इस जन्म-मरण की परम्परा को तोड़ने के लिए ही भव्यात्माओं के सारे धार्मिक और आध्यात्मिक प्रयास होते हैं।

संसारी जीवों के विभिन्न भेद प्रभेद, विभिन्न अवस्थाएं, गति जाति, इन्द्रिय, काय, योग, उपयोग आदि की अपेक्षा से प्रस्तुत सूत्र में नौ प्रतिपत्तियों के माध्यम से स्वरूप बतलाया गया है।

प्रथम प्रतिपत्ति - इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों के त्रस और स्थावर दो भेद कर उनका कथन किया गया है। स्थावर के तीन भेद किए हैं, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक। त्रस के भी तीन भेद बतलाएं हैं - तेजस्कायिक, वायुकायिक और उदारत्रस। यद्यपि स्थावर के रूप में पृथ्वी, पानी, अग्नि वायु और वनस्पति पांच माने गए हैं। आचारांगादि सूत्रों में पांच ही स्थावर का कथन है। किन्तु यहाँ गति को लक्ष्य में रख कर तेजस और वायु को भी त्रस कहा गया है। क्योंकि अग्नि का ऊर्ध्व गमन और वायु का तिर्यक् गमन प्रसिद्ध है। दोनों कथनों का सामजस्य स्थापित करते हुए त्रस जीव दो प्रकार के कहे गये हैं, गति त्रस और लब्धि त्रस। तेजस और वायु, केवल गति त्रस है, लब्धि त्रस नहीं जिसके त्रस नामकर्म रूपी लब्धि का उदय है, वे ही लब्धि त्रस है। यानी बेइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक।

इन पांच स्थावर काय की संचेतना जो तीर्थंकर भगवन्तों ने अपने विमल एवं निर्मल केवल ज्ञान में देखी, उसी के अनुसार उनका निरूपण किया। जैन दर्शन के अतिरिक्त अन्य किसी भी दर्शन में स्थावर काय में जीवों का निरूपण नहीं मिलता है। एक मात्र जैन दर्शन ही ऐसा दर्शन है जो स्थावर काय का निरूपण कर उन्हें सजीव बतलाता है तथा इस के सर्व विरति अहिंसक साधक को इन स्थावर जीवों की भी वैसी ही रक्षा करने की आज्ञा प्रदान की है जैसी की अन्य चलते-फिरते जीवों की। प्रश्न हो सकता है कि पांच स्थावर काय जीवों के कान, नेत्र, नाक, जीभ, वाणी और मन तो होता नहीं तो फिर वे दुःख का अनुभव कैसे करते हैं? इसका समाधान आगमकार उदाहरण देकर फरमाते हैं कि जैसे कोई व्यक्ति जो जन्म से अंधा, लूला, लगंड़ा, बहरा, अवयवहीन है, कोई व्यक्ति यदि शस्त्र से उसके अंगों का छेदन भेदन करे तो उसे वेदना होती है। किन्तु वह अवयवहीन होने से वेदना को व्यक्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक आदि जीवों के कान, नेत्र, जीभ, वाणी और मन न होते हुए भी उन को अव्यक्त वेदना होती है।

स्थावर और त्रस का स्वरूप बताकर आगे इस प्रतिपत्ति में चौबीस ही दण्डकों के जीवों के शरीर, अवगाहना, संहनन, संस्थान, कषाय, संज्ञा, लेश्या, इन्द्रियां, समुद्घात, संज्ञी, असंज्ञी, वेद, पर्याप्ति अपर्याप्ति, दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, योग, उपयोग, आहार, उत्पात, स्थिति, मरण, च्यवन गति-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगति आदि २३ द्वारों का निरूपण कर उनका स्वरूप बतलाया गया है। यानी लघुदण्डक के लगभग समस्त द्वारों का निरूपण इसी प्रतिपत्ति में किया गया है।

द्वितीय प्रतिपत्ति – द्वितीय प्रतिपत्ति में समस्त संसारी जीवों को वेद की अपेक्षा से तीन विभागों में विभक्त किया-स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद। इसके पश्चात् तिर्यंच योनिक स्त्रियों मनुष्य योनिक, देवयोनिक, स्त्रियों के भेद, उनकी स्थिति, संचिट्ठणकाल, अन्तर द्वार,अल्पबहुत्व, स्थिति, बंध आदि का विस्तार से निरूपण किया गया है। स्त्रीवेद के कथन के अनन्तर पुरुष वेद का निरूपण किया है। पुरुष के भेद प्रभेदो का वर्णन करके उनकी स्थिति, संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व का प्रतिपादन किया गया है। तदनन्तर पुरुष वेद की बंध स्थिति, अबाधाकाल और कर्मनिषेक बताकर पुरुषवेद को दावाग्नि ज्वाला के समान निरूपित किया है।

तत्पश्चात् नपुंसक वेद का निरूपण हुआ है जिसके अन्तर्गत नैरयिक नपुंसक, तिर्यक् योनिक, नपुसंक और मनुष्य योनिक नपुंसक का वर्णन है। देवयोनिक नपुंसक नहीं होते हैं। अतएव उनका वर्णन नहीं है। नपुंसक योन्निक के भेद-प्रभेद का निरूपण के पश्चात् स्त्री वेद और पुरुष वेद की भांति नपुंसक योनिक की भी स्थिति संचिट्ठणा, अन्तर, अल्पबहुत्व, बंध स्थिति अबाधाकाल आदि का प्रतिपादन दिया है। नपुंसक वेद को महानगरदाह के समान बताया है। तीनों वेदों के बाद आठ प्रकार के वेदों के अल्प बहुत्व का निरूपण इस प्रतिपत्ति में किया गया है।

तृतीय प्रतिपत्ति – इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों को चार भागों में, नैरयिक, तिर्यक् योनिक, मनुष्य और देव में विभाजित कर उनका विस्तार से निरूपण किया गया है। सर्व प्रथम सातों नरक की पृथ्वियाँ की मोटाई, उनके पाथड़े, आतंरे नरकावासों की संख्या, रत्न प्रभा पृथ्वी के एक हजार योजन के ऊपर के क्षेत्र में भवनवासी देवों के भवनों का वर्णन, इसके अलावा नरकावासों के संस्थान, आयाम-विष्कंभ, वर्ण, गंध रस स्पर्श उनकी अशुभना का चित्रण किया गया है।

चारों गतियों की अपेक्षा नरक गति के जीवों के वेदना, लेश्या, नाम गोत्र, अरति, भय, शोक, भूख, प्यास, व्याधि, उच्छ्वास, क्रोध, मान, माया, लोभ, आहार भय मैथुन-परिग्रहादि संज्ञा आदि अशुभ एवं अनिष्ट होते, इसका दिग्दर्शन इस प्रतिपत्ति में कराया है। नारकी जीवों को वहाँ क्षण मात्र भी सुख नहीं, हमेशा अति शीत, अग्नि, उष्ण, अतितृष्णा, अतिक्षुधा और अति भय से संतप्त रहते हैं। इन सब का अति विस्तार से इसमें वर्णन किया गया है।

तिर्यक् योनिक जीवों के अन्तर्गत एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों के विभिन्न भेद-प्रभेदों, इन जीवों के लेश्या दृष्टि, ज्ञान-अज्ञान, योग उपयोग, आगति, गति, स्थिति, समुद्घात, कुलकोड़ी का कथन किया गया है। तदनन्तर मनुष्याधिकार में कर्मभूमि, अकर्मभूमि, अन्तद्वीपक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य का बहुत ही विस्तार से इसमें वर्णन किया गया है। मनुष्यों के वर्णन के पश्चात् चार प्रकार के देवों भवनपति, व्याणव्यंतर, ज्योतिषक और वैमानिक का कथन किया गया है, उनके आवास, परिषद, इन्द्र, सामानिक आदि का उल्लेख किया गया।

देवों के वर्णन के पश्चात द्वीप-समुद्रों का वर्णन किया गया है, जिसके अन्तर्गत जम्बूद्वीप, लवण समुद्र, धातकी खण्ड, कालोद समुद्र, पुष्करवरद्वीप, मानुषोत्तर पर्वत, के अतिरिक्त वरुणवरद्वीप, वरुणवर समुद्र, क्षीरवर द्वीप, क्षीरोदसागर, घृतवर द्वीप, घृतवर समुद्र, क्षोदवर द्वीप, क्षोदवर समुद्र, नंदीश्वर द्वीप, नंदीश्व समुद्र आदि का नामोल्लेख पूर्वक वर्णन कर आगे असंख्यात द्वीप समुद्र के पश्चात् अन्त में असंख्यात योजन विस्तृत वाला स्वयंभूरमण समुद्र है ऐसा कथन किया है। सभी प्रतिपत्तियों में यह तीसरी प्रतिपत्ति सबसे बड़ी एवं विस्तृत है।

चतुर्थ प्रतिपत्ति - इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों को पांच भागों एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय में विभक्त कर उनके जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति संस्थित काल और अल्पबहुत्व बतलाये गए हैं।

पंचम प्रतिपत्ति - इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों को पृथ्वीकाय, अपकाय, तेऊकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय इन छह भावों में विभक्त कर उनके स्थिति, संचिट्ठण, अन्तर और अल्पबहुत्व बतलाया गया है। तदनन्तर इसमें निगोद का वर्णन, स्थिति, संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व का भी कथन है।

षष्ठ प्रतिपत्ति - इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों को सात भागों में नैरियक, तिर्यंच, तिर्यंचनी, मनुष्य-मनुष्यनी, देव-देवी में विभक्त कर। इनकी स्थिति, संस्थिति, अन्तर और अल्प बहुत्व बतलाये गये हैं।

सप्तम प्रतिपत्ति - इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों को आठ भागों में प्रथम समय नैरियक, अप्रथम समय नैरियक, प्रथम समय तिर्यंच, अप्रथम समय तिर्यंच, प्रथम समय मनुष्य, अप्रथम समय मनुष्य, प्रथम समय देव, अप्रथम समय देव कर इनकी स्थिति, संस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व का कथन किया गया है।

अष्टम प्रतिपत्ति - इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों को पृथ्वीकायिक आदि पांच स्थावर एवं बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय नौ भागों में विभक्त कर उनकी स्थिति संस्थिति अन्तर और अल्पबहुत्व का कथन किया है।

नौवीं प्रतिपत्ति - इस प्रतिपत्ति में संसारी जीवों को प्रथम समय एकेन्द्रिय से लेकर प्रथम पंचेन्द्रिय तक पांच और अप्रथम समय एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक पांच इस प्रकार दस भागों में विभक्त कर, इनकी स्थिति संस्थिति, अन्तर और अल्प बहुत्व का कथन किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार प्रस्तुत आगम को चौबीस ही दण्डकों के जीवों के भेद-प्रभेद के साथ उनकी विभिन्न स्थितियों का कोष कहा जा सकता है। क्योंकि चौबीस दण्डकों के जीवों का विशद् वर्णन जैसा इस आगम है, वैसा अन्य किसी आगम में नहीं है। इसके अध्ययन से जीव को सम्पूर्ण संसार के संस्थिति का पूर्णरूपेण अनुभव हो जाता है। फलस्वरूप वह अपनी भूत कालीन चारों गतियों की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन कर अपने वर्तमान जीवन को आध्यात्मिक मार्ग में जो पुनः उन गतियों के परिभ्रमण से बच सकता है उसमें जो सकता है। इस आगम की महत्ता बताते हुए आचार्य भगवन्त फरमाते हैं कि जीवाजीवाभिगम नामक उपांग राग रूपी विष को उतारने के लिए श्रेष्ठ मंत्र के समान है। द्वेष रूपी आग को शान्त करने हेतु जलपूर के समान है। अज्ञान तिमिर को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान है। संसारी रूपी समुद्र को तिरने के लिए सेतु के समान है। बहुत प्रयत्न द्वारा ज्ञेय है एवं मोक्ष को प्राप्त कराने की अबोध शक्ति युक्त है। आचार्य भगवन्तों के उक्त विशेषणों से प्रस्तुत आगम का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ की आगम बत्तीसी प्रकाशन योगना के अन्तर्गत इस सूत्रराज का प्रथम प्रकाशन किया जा रहा है। इसके हिन्दी अनुवाद एवं विवेचन का आधार प्राचीन टीकाओं के अलावा आचार्य मलयगिरि की वृत्ति प्रमुख रही है एवं मूल पाठ के लिए संघ द्वारा प्रकाशित सुत्तागमे का सहारा लिया गया है। टीका का हिन्दी अनुवाद श्रीमान् पारसमल जी चण्डालिया ने किया। इसके बाद उस अनुवाद को मैंने देखा। तत्पश्चात् हमारे अनुनय विनय पूर्वक निवेदन पर ध्यान देकर पूज्य गुरुदेव श्री श्रुतधर जी म. सा. ने पूज्य पण्डित रत्न श्री लक्ष्मीमुनि जी म. सा. को इसे सुनने की आज्ञा फरमाई। तदनुसार सेवाभावी तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्री बस्तीमल जी सा. सालेचा बालोतरा वालों ने पूज्य लक्ष्मीमुनि जी म. सा. को सुनाया। पूज्य गुरुभगवन्तों ने जहाँ भी आवश्यकता समझी संशोधन कराने की महती कृपा की। अतएव संघ पूज्य गुरु भगवन्तों एवं सुश्रावक श्री बस्तीमल जी सा. सालेचा का हृदय से आभार व्यक्त करता है।

अवलोकित प्रति का प्रेस काफी तैयार होने से पूर्व हमारे द्वारा पुनः अवलोकन किया गया। इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र के प्रकाशन से पूर्व हमारे द्वारा पूर्ण सर्तकता एवं सावधानी बरती गई है। बावजूद हमारी अल्पज्ञता के कारण कही भी त्रुटि रह सकती है। अतएव तत्त्वज्ञ मनीषियों से निवेदन है कि इस प्रकाशन में कही कोई गलती दृष्टिगोचर हो तो कृपा करके हमें सूचित करने की कृपा करावें। हम उनके अनुगृहित होंगे। वस्तुतः वही सत्य एवं प्रमाणिक है जो सर्वज्ञ कथित आशय को उद्घाटित करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

प्रस्तुत सूत्र पर विवेचन एवं व्याख्या बहुत विस्तृत होने से इस सूत्रराज का कलेवर काफी बढ़ गया। इसकी सामग्री लगभग आठ सौ पेज हो गई। पाठक बंधु इसका सुगमता से अध्ययन, अनुशीलन कर सके, इसके लिए इसका प्रकाशन दो भागों में किया जा रहा है। पहले भाग में प्रथम तीसरी प्रतिपत्ति का तक का विवेचन लिया गया है। शेष तीसरी एवं छह प्रतिपत्तियों का विवेचन दूसरे भाग में लिया गया है।

संघ का आगम प्रकाशन का काम प्रगति पर है। इस आगम प्रकाशन के कार्य में **धर्म प्राण समाज रत्न तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्री जशवंतलाल भाई शाह एवं श्राविका रत्न श्रीमती मंगला बहन शाह, बम्बई** की गहन रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा जितने भी आगम प्रकाशन हों वे अर्द्ध मूल्य में ही बिक्री के लिए पाठकों को उपलब्ध हो। इसके लिए उन्होंने सम्पूर्ण आर्थिक सहयोग प्रदान करने की आज्ञा प्रदान की है। तदनुसार प्रस्तुत आगम पाठकों को उपलब्ध कराया जा रहा है, संघ एवं पाठक वर्ग आपके इस सहयोग के लिए आभारी है।

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, पर आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपकी धर्म सहायिका **श्रीमती मंगलाबहन शाह** एवं पुत्र रत्न **मयंकभाई** शाह एवं **श्रेयांसभाई शाह** भी आपके पद चिन्हों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हों एवं शासन की प्रभावना करते रहें, इसी शुभ भावना के साथ!

आए दिन कागज एवं मुद्रण सामग्री के मूल्यों में निरंतर वृद्धि हो रही है। इस प्रकाशन में जो कागज काम में लिया गया वह उत्तम किस्म का मेपलिथो है। बाईडिंग पक्की तथा सेक्शन है। बावजूद इसके आदरणीय शाह परिवार के आर्थिक सहयोग के कारण इसके प्रत्येक भाग का मूल्य मात्र ४०) ही रखा गया है, जो अन्यत्र से प्रकाशित आगमों से बहुत अल्प है। सुज्ञ पाठक बंधु संघ के इस नूतन प्रकाशन का अधिक से अधिक लाभ उठावें। इसी शुभ भावना के साथ!

संघ सेवक

ब्यावर (राज.) — **नेमीचन्द बांठिया**

दिनांक: १०-१-२००३ — **अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्वाध्याय

निम्नलिखित चौंतीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये ।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	**काल मर्यादा**
१. बड़ा तारा टूटे तो-	एक प्रहर
२. दिशा-दाह ✿	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो-	एक प्रहर
५. अकाल में बिजली कड़के तो-	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-	जब तक दिखाई दे
८-९. काली और सफेद धूंअर-	जब तक रहे
१०. आकाश मण्डल धूलि से आच्छादि हो-	जब तक रहे

औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

११-१३ हड्डी, रक्त और मांस,	ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।
१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-	तब तक
१५. श्मशान भूमि-	सौ हाथ से कम दूर हो, तो।
१६. चन्द्र ग्रहण-	खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर
१७. सूर्य ग्रहण-	खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर
१८. राजा का अवसान होने पर,	जब तक नया राजा घोषित न हो

✿ आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

१९. युद्ध स्थान के निकट	जब तक युद्ध चले
२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो,	जब तक पड़ा रहे
२१-२५. आषाढ़, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा	दिन रात
२६-३०. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा-	दिन रात
३१-३४. प्रात: मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि- इन चार सन्धिकालों में-	१-१ मुहूर्त्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए । खुले मुँह नहीं बोलना तथा दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए ।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनसे होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अत: इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग २

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
	चतुर्विधाख्या तृतीय प्रतिपत्ति	
	मंदर उद्देशक	
१.	देवों का वर्णन	१
२.	वाणव्यंतर देवों का वर्णन	१४
३.	ज्योतिषी देवों का वर्णन	१७
४.	द्वीप समुद्रों का कथन	१८
५.	जंबूद्वीप का वर्णन	२०
६.	पद्मवरवेदिका का वर्णन	२२
७.	वनखण्ड का वर्णन	२६
८.	जंबूद्वीप के द्वारों का वर्णन	४४
९.	विजय द्वार, विजय द्वार क्यों कहलाता है	६२
१०.	विजया राजधानी का वर्णन	६३
११.	सुधर्मा सभा का वर्णन	७१
१२.	सिद्धायतन का वर्णन	८२
१३.	उपपात सभा का वर्णन	८५
१४.	विजयदेव का उपपात और उसका अभिषेक	८८
१५.	वैजयंत आदि द्वारों का वर्णन	११७
१६.	जंबूद्वीप, जंबूद्वीप क्यों कहलाता है	१२०
१७.	कंचन पर्वत का वर्णन	१२९
१८.	जम्बूवृक्ष का वर्णन	१३१
१९.	जम्बू सुदर्शना के बारह नाम	१३९
२०.	जम्बू द्वीप में चन्द्र आदि की संख्या	१४१
२१.	लवण समुद्र का वर्णन	१४२
२२.	लवण समुद्र का चक्रवाल विष्कम्भ और परिधि	१४३
२३.	लवण समुद्र के द्वार	१४३
२४.	द्वारों का अंतर	१४४
२५.	लवण समुद्र, लवण समुद्र क्यों कहलाता है ?	१४५
२६.	लवण समुद्र में चन्द्र आदि	१४६
२७.	लवण समुद्र में जल हानि वृद्धि का कारण	१४७
२८.	लवण शिखा वर्णन	१५१
२९.	वेलंधर नागराज का वर्णन	१५३
३०.	अनुवेलंधर नागराज देवों का वर्णन	१५८
३१.	गौतम द्वीप का वर्णन	१६०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
३२.	जंबूद्वीप के चन्द्रद्वीपों का वर्णन	१६२
३३.	जंबूद्वीप के सूर्यद्वीपों का वर्णन	१६५
३४.	लवण समुद्र के चन्द्रद्वीप आदि	१६६
३५.	धातकीखण्ड के चन्द्र द्वीपों आदि का वर्णन	१६७
३६.	कालोदधि समुद्र के चन्द्र द्वीपों आदि का वर्णन	१६८
३७.	देव द्वीप आदि में चन्द्रद्वीप आदि	१७०
३८.	स्वयंभूरमण द्वीप के चन्द्र सूर्य द्वीप	१७२
३९.	लवण समुद्र की उद्वेध परिवृद्धि आदि	१७५
४०.	लवण समुद्र का गोतीर्थ	१७८
४१.	लवण समुद्र का संस्थान आदि	१७८
४२.	लवण समुद्र, जम्बूद्वीप को जलमग्न क्यों नहीं करता?	१८१
	द्वीप समुद्र	
४३.	धातकीखण्ड द्वीप का वर्णन	१८४
४४.	कालोदधि समुद्र का वर्णन	१८७
४५.	पुष्करवर द्वीप का वर्णन	१९१
४६.	मानुषोत्तर पर्वत का वर्णन	१९३
४७.	समय क्षेत्र का वर्णन	१९५
४८.	पुष्करोद समुद्र का वर्णन	२१२
४९.	वरुणवर द्वीप वर्णन	२१३
५०.	क्षीरवर द्वीप और क्षीरोद समुद्र	२१६
५१.	घृतवर आदि द्वीप समुद्रों का वर्णन	२१७
५२.	नंदीश्वर द्वीप का वर्णन	२२१
५३.	अरुणद्वीप, अरुणोदक समुद्र वर्णन	२२७
५४.	जंबूद्वीप आदि नाम वाले द्वीपों की संख्या	२३२
५५.	समुद्रों के पानी का स्वाद	२३३
५६.	समुद्रों में मच्छ कच्छ आदि	२३६
५७.	द्वीप समुद्रों की संख्या	२३७
५८.	द्वीप समुद्र के परिणाम	२३८
	ज्योतिषी उद्देशक	
५९.	इन्द्रिय पुद्गल परिणाम	२३९
६०.	देव शक्ति विषयक वर्णन	२४०
६१.	चन्द्र सूर्य वर्णन	२४२
६२.	**प्रथम वैमानिक उद्देशक**	**२६१**
६३.	**द्वितीय वैमानिक उद्देशक**	**२६९-२९२**
	१. विमानों की मोटाई और ऊँचाई	**२७१**
	२. विमानों का संस्थान	**२७२**
	३. विमानों की लम्बाई चौड़ाई	**२७२**
	४. विमानों के वर्ण	**२७३**
	५. विमानों की प्रभा	**२७४**
	६. विमानों की गंध	**२७४**
	७. विमानों का स्पर्श	**२७४**
	८. विमानों का स्वरूप	**२७४**
	९. वैमानिक देवों में उत्पाद	**२७५**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
१०.	एक समय में देवोत्पत्ति	२७६
११.	वैमानिक देवों में से अपहार	२७६
१२.	वैमानिक देवों की शरीरावगाहना	२७७
१३.	वैमानिक देवों में संहनन	२७८
१४.	वैमानिक देवों में संस्थान	२७८
१५.	वैमानिक देवों के शरीर का वर्ण	२७९
१६.	वैमानिक देवों के शरीर की गंध	२७९
१७.	वैमानिक देवों के शरीर का स्पर्श	२७९
१८.	वैमानिक देवों में श्वासोच्छ्वास	२८०
१९.	वैमानिक देवों में लेश्या	२८०
२०.	वैमानिक देवों में दृष्टि	२८०
२१.	वैमानिक देवों में ज्ञान-अज्ञान आदि	२८१
२२.	वैमानिक देवों का अवधि क्षेत्र	२८१
२३.	वैमानिक देवों में समुद्घात	२८२
२४.	वैमानिक देवों में क्षुधा-पिपासा	२८३
२५.	वैमानिक देवों में विकुर्वणा	२८३
२६.	वैमानिक देवों में साता सौख्य	२८४
२७.	वैमानिक देवों की ऋद्धि	२८५
२८.	वैमानिक देवों की विभूषा	२८५
२९.	वैमानिक देवियों की विभूषा	२८६
३०.	वैमानिक देवों में कामभोग	२८७
३१.	वैमानिक देवों की स्थिति और उद्वर्त्तना	२८७
३२.	समुच्चय रूप में भव स्थिति आदि	२९०

पंचविधाख्या चतुर्थ प्रतिपत्ति

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
६४.	पांच प्रकार के संसारी जीव	२९३
६५.	पांच प्रकार के संसारी जीवों की कायस्थिति	२९४
६६.	पांच प्रकार के संसारी जीवों का अंतर	२९६
६७.	पांच प्रकार के संसारी जीवों का अल्पबहुत्व	२९७

षड्विधाख्या पंचम प्रतिपत्ति

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
६८.	छह प्रकार के संसारी जीव	३००
६९.	छह प्रकार के संसारी जीवों की कायस्थिति और अन्तर	३०१
७०.	छह प्रकार के संसारी जीवों का अल्पबहुत्व	३०३
७१.	सूक्ष्म जीवों का स्वरूप	३०५
७२.	सूक्ष्म जीवों की काय स्थिति	३०६
७३.	सूक्ष्म जीवों का अन्तर	३०६
७४.	सूक्ष्म जीवों का अल्पबहुत्व	३०७
७५.	बादर जीवों का स्वरूप	३०९
७६.	बादर जीवों की कायस्थिति	३०९
७७.	बादर जीवों का अन्तर	३११

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
७८.	बादर जीवों का अल्प बहुत्व	३११
७९.	सूक्ष्म बादर जीवों का शामिल अल्पबहुत्व	३१४
८०.	निगोद वर्णन	३१८
८१.	निगोदों का अल्प बहुत्व	३२१

सप्तविधाख्या षष्ठ प्रतिपत्ति

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
८२.	सात प्रकार के संसारी जीव	३२६
८३.	सात प्रकार के संसारी जीवों की काय स्थिति, अंतर और अल्पबहुत्व	३२७

अष्टविधाख्या सप्तम प्रतिपत्ति

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
८४.	आठ प्रकार के संसारी जीव	३२९
८५.	आठ प्रकार के संसारी जीवों की स्थिति, अंतर और अल्प बहुत्व	३३०

नवविधाख्या अष्टम प्रतिपत्ति

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
८६.	नौ प्रकार के संसारी जीव	३३६
८७.	नौ प्रकार के संसारी जीवों की काय स्थिति, अन्तर और अल्प बहुत्व	३३६

दशविधाख्या नवम प्रतिपत्ति

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
८८.	दस प्रकार के संसारी जीव	३३८
८९.	दस प्रकार के संसारी जीवों की काय स्थिति, अंतर और अल्प बहुत्व	३३९

सर्व जीवाभिगम

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
९०.	सर्व जीव द्विविध वक्तव्यता	३४३-३५८
९१.	सर्व जीव त्रिविध वक्तव्यता	३५८-३६८
९२.	सर्व जीव चतुर्विध वक्तव्यता	३६८-३७५
९३.	सर्व जीव पंचविध वक्तव्यता	३७५-३७७
९४.	सर्व जीव षड्विध वक्तव्यता	३७८-३८३
९५.	सर्व जीव सप्तविध वक्तव्यता	३८३-३८७
९६.	सर्व जीव अष्टविध वक्तव्यता	३८७-३९०
९७.	सर्व जीव नवविध वक्तव्यता	३९१-३९६
९८.	सर्व जीव दसविध वक्तव्यता	३९६-४०३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

卐 णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स 卐

जीवाजीवाभिगम सूत्र

भाग-२

(मूलपाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ और विवेचन सहित)

मंदरोद्देसो - मंदर उद्देशक

तृतीय-प्रतिपत्ति-देवों का वर्णन

से किं तं देवा?

देवा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा - भवणवासी वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया ॥ ११४॥

भावार्थ - देव कितने प्रकार के कहे गये हैं?

देव चार प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - १. भवनवासी २. वाणव्यंतर ३. ज्योतिषी और ४. वैमानिक।

से किं तं भवणवासी?

भवणवासी दसविहा पण्णत्ता, तं जहा - असुरकुमारा जहा पण्णवणापए देवाणं भेओ तहा भाणियव्वो जाव अणुत्तरोववाइया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा - विजयवेजयंत जाव सव्वट्ठसिद्धगा, से तं अणुत्तरोववाइया॥ ११५॥

भावार्थ - भवनवासी देव कितने प्रकार के कहे गये हैं?

भवनवासी देव दस प्रकार के कहे गये हैं। यथा - असुरकुमार आदि प्रज्ञापना पद में कहे हुए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवों के भेद का कथन कर देना चाहिये यावत् अनुत्तरोपपातिक देव पांच प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १. विजय २. वैजयंत ३. जयंत ४. अपराजित और ५. सर्वार्थसिद्ध। यह अनुत्तरोपपातिक देवों का वर्णन हुआ।

विवेचन - भवनवासी, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक, देवों के ये चार भेद बताने के बाद इनके अवान्तर भेदों के लिये सूत्रकार ने प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद की भलामण दी है। प्रज्ञापना सूत्र में देवों के अवान्तर भेद इस प्रकार कहे गये हैं -

भवनवासी देवों के १० भेद - भवनवासी देवों के दस भेद इस प्रकार हैं - १. असुरकुमार २. नागकुमार ३. सुपर्णकुमार ४. विद्युत्कुमार ५. अग्निकुमार ६. द्वीप कुमार ७. उदधिकुमार ८. दिशाकुमार ९. पवनकुमार १०. स्तनितकुमार। इन दस के पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से भवनवासी देवों के २० भेद होते हैं।

वाणव्यंतर देवों के ८ भेद - १. किन्नर २. किंपुरुष ३. महोरग ४. गंधर्व ५. यक्ष ६. राक्षस ७. भूत ८. पिशाच। इन आठ के पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से वाणव्यंतर देवों के १६ भेद हुए।

ज्योतिषी देवों के ५ भेद - १. चन्द्र २. सूर्य ३. ग्रह ४. नक्षत्र और ५. तारा। इन पांच के पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से ज्योतिषी देवों के दस भेद हुए।

वैमानिक देवों के भेद - वैमानिक देव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. कल्पोपपन्न और २. कल्पातीत। कल्पोपपन्न देवों के १२ भेद इस प्रकार हैं - १. सौधर्म २. ईशान ३. सनत्कुमार ४. माहेन्द्र ५. ब्रह्मलोक ६. लान्तक ७. महाशुक्र ८. सहस्रार ९. आनत १०. प्राणत ११. आरण और १२. अच्युत। कल्पातीत देव दो प्रकार के कहे गये हैं - १. ग्रैवेयक २. अनुत्तरोपपातिक। ग्रैवेयक के ९ भेद इस प्रकार हैं - १. अधस्तनाधस्तन २. अधस्तन मध्यम ३. अधस्तन उपरितन ४. मध्यम अधस्तन ५. मध्यम-मध्यम ६. मध्यम-उपरितन ७. उपरिम-अधस्तन ८. उपरिम-मध्यम और ९. उपरितन-उपरितन। अनुत्तरोपपातिक देव पांच प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. विजय २. वैजयंत ३. जयंत ४. अपराजित और ५. सर्वार्थसिद्ध। इन सभी के पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो भेद होते हैं।

कहि णं भंते! भवणवासि देवाणं भवणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! भवणवासी देवा परिवसंति?

गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए, एवं जहा पण्णवणाए जाव भवणवासाइया, त(ए)त्थ णं भवणवासीणं देवाणं सत्त भवणकोडीओ बावत्तरि भवणावाससयसहस्सा भवंतित्तिमक्खाया, तत्थ णं बहवे भवणवासी देवा परिवसंति-असुरा णाग सुवण्णा य जहा पण्णवणाए जाव विहरंति॥ ११६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे भगवन्! भवनवासी देवों के भवन कहां कहे गये हैं? हे भगवन्! वे भवनवासी देव कहां रहते हैं?

हे गौतम! इस एक लाख अस्सी हजार योजन की मोटाई वाली रत्नप्रभा पृथ्वी के एक हजार योजन ऊपर और एक हजार योजन नीचे के भाग को छोड़ कर शेष एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रमाण क्षेत्र में भवनावास कहे गये हैं इत्यादि वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार समझना चाहिये। वहां भवनवासी देवों के सात करोड़ बहत्तर लाख भवनावास कहे गये हैं। उनमें बहुत से भवनवासी देव रहते हैं वे इस प्रकार हैं - असुरकुमार,नागकुमार, सुपर्णकुमार इत्यादि प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार कह देना चाहिये यावत् दिव्य भोगों को भोगते हुए विचरते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भवनवासी देवों के भवनों और उनके निवास स्थान के विषय में कथन किया गया है। एक लाख अस्सी हजार योजन की मोटाई वाली रत्नप्रभा पृथ्वी के एक हजार योजन ऊपर और एक हजार योजन नीचे का भाग छोड़ने पर शेष एक लाख अठहत्तर हजार योजन में भवनवासी देवों के कुल ७ करोड़ ७२ लाख भवनावास इस प्रकार हैं - १. असुरकुमार देवों के ६४ लाख २. नागकुमार देवों के ८४ लाख ३. सुपर्णकुमार देवों के ७२ लाख ४. विद्युत्कुमार देवों के ७६ लाख ५. अग्निकुमार देवों के ७६ लाख ६. द्वीपकुमार देवों के ७६ लाख ७. उदधिकुमार देवों के ७६ लाख ८. दिक्कुमार देवों के ७६ लाख ९. पवनकुमार देवों के ९६ लाख और १०. स्तनितकुमार देवों के ७६ लाख, इस प्रकार भवनपति देवों के कुल सात करोड़ बहत्तर लाख भवनावास कहे गये हैं।

असुरकुमार आदि देव प्रायः भवनों में रहते हैं इसलिए इन्हें भवनपति या भवनवासी देव कहते हैं।

कहि णं भंते! असुरकुमाराणं देवाणं भवणा प०? पुच्छा, एवं जहा पण्णवणाठाणपए जाव विहरंति॥

कहिं णं भंते! दाहिणिल्लाणं असुरकुमारदेवाणं भवणा पुच्छा, एवं जहा ठाणपए जाव चमरे तत्थ असुरकुमारिंदे असुरकुमारराया परिवसइ जाव विहरइ॥ ११७॥

भावार्थ - हे भगवन्! असुरकुमार देवों के भवन कहां कहे गये हैं?

हे गौतम! जिस प्रकार प्रज्ञापना सूत्र के स्थान पद में कहा गया है उसी प्रकार यहां भी समझ लेना चाहिये यावत् वे दिव्य भोगों को भोगते हुए विचरते हैं।

हे भगवन्! दक्षिण दिशा के असुरकुमार देवों के भवनों के विषय में पृच्छा।

हे गौतम! जैसा स्थान पद में कहा गया है उसी प्रकार यहां भी कह देना चाहिये यावत् असुरकुमारों का इन्द्र चमर दिव्य भोगों को भोगता हुआ विचरता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भवनवासी देवों के प्रथम भेद असुरकुमार देवों की वक्तव्यता कही है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर व नीचे के एक एक हजार योजन छोड़ कर शेष एक लाख अठहत्तर हजार योजन के देशभाग में असुरकुमार देवों के चौसठ लाख भवनावास हैं। वे भवन बाहर से गोल, अन्दर से चौरस, नीचे से कमल की कर्णिका के आकार के हैं उन भवनावासों में बहुत से असुरकुमार देव दिव्यभोगों को भोगते हुए विचरते हैं।

असुरकुमार देव दो प्रकार के होते हैं - १. दक्षिण दिशा वाले असुरकुमार देव और २. उत्तरदिशा वाले असुरकुमार देव। दक्षिण दिशा के असुरकुमार देवों के चौतीस लाख भवनावास हैं। दक्षिण दिशा के देव देवियों पर आधिपत्य करता हुआ असुरकुमारेन्द्र असुरकुमार राजा चमर वहां निवास करता है। उत्तरदिशा के असुरकुमारों के तीस लाख भवनावास हैं। उत्तरदिशा के असुरकुमार देव देवियों का आधिपत्य करता हुआ वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलीन्द्र वहां निवास करता है।

चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुररण्णो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा - समिया चंडा जाया, अब्भिंतरिया समिया मज्झे चंडा बाहिं च जाया।

चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुररण्णो अब्भिंतरपरिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ? मज्झिमपरिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ? बाहिरियाए परिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो अब्भिंतरपरिसाए चउवीसं देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमियाए परिसाए अट्ठावीसं देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरियाए परिसाए बत्तीसं देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता? बाहिरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता?

गोयमा! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए अद्धुट्ठा देविसया पण्णत्ता मज्झिमियाए परिसाए तिण्णि देविसया बाहिरियाए अड्ढाइज्जा देविसया पण्णत्ता॥१

कठिन शब्दार्थ - **परिसाओ** - परिषद्, **अब्भिंतरिया** - आभ्यन्तर, **मज्झिमिया** - मध्यम, **बाहिरियाए** - बाह्य।

भावार्थ - हे भगवन्! असुरेन्द्र असुरराज चमर की कितनी परिषदाएं कही गई हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे गौतम! असुरेन्द्र असुरराज की तीन परिषदाएं कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - समिता, चंडा और जाता। आभ्यंतर परिषद् समिता, मध्यम परिषद् चंडा और बाह्य परिषद् जाता कहलाती है।

हे भगवन्! असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यंतर परिषद् में कितने हजार देव हैं? मध्यम परिषद् में कितने हजार देव हैं? और बाह्य परिषद् में कितने हजार देव हैं?

हे गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यंतर परिषद् में चौबीस हजार, मध्यम परिषद् में अट्ठावीस हजार और बाह्य परिषद् में बत्तीस हजार देव हैं।

हे भगवन्! असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यंतर परिषद् में कितनी देवियाँ हैं? मध्यम परिषद् में कितनी देवियाँ हैं? बाह्य पषिद् में कितनी देवियाँ हैं?

हे गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यंतर परिषद् में साढे तीन सौ देवियाँ, मध्यम परिषद् में तीन सौ देवियां और बाह्य परिषद् में ढाई सौ देवियां हैं।

चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए० बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णों अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं अड्डाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता मज्झिमाए परिसाए देवाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता बाहिरियाए परिसाए देवाणं दिवड्ढं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं दिवड्ढं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता मज्झिमियाए परिसाए देवीणं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता बाहिरियाए परिसाए देवीणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

भावार्थ - हे भगवन्! असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है? मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति कितने काल की है? बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति कितने काल की है? आभ्यंतर परिषद् की देवियों की स्थिति कितने काल की है? मध्यम परिषद् की देवियों की स्थिति कितने काल की है और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

हे गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति ढाई पल्योपम, मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति दो पल्योपम और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति डेढ पल्योपम की है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभ्यंतर परिषद् की देवियों की स्थिति डेढ पल्योपम, मध्यम परिषद् की देवियों की स्थिति एक पल्योपम की और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति आधे पल्योपम की है।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-चमरस्स असुरिंदस्स तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा - समिया चंडा जाया, अब्भिंतरिया समिया मज्झिमिया चंडा बाहिरिया जाया?

गोयमा! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो अब्भिंतरपरिसाए देवा वाहिया हव्वमागच्छंति णो अव्वाहिया, मज्झिमपरिसाए देवा वाहिया हव्वमागच्छंति अव्वाहियावि, बाहिरपरिसाए देवा अव्वाहिया हव्वमागच्छंति, अदुत्तरं च णं गोयमा! चमरे असुरिंदे असुरराया अण्णयरेसु उच्चावएसु कज्जकोडुंबेसु समुप्पण्णेसु अब्भिंतरियाए परिसाए सद्धिं संमइसंपुच्छणाबहुले विहरइ मज्झिमपरिसाए सद्धिं पयं एवं पवंचेमाणे पवंचेमाणे विहरइ बाहिरियाए परिसाए सद्धिं पयंडेमाणे पयंडेमाणे विहरइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ समिया चंडा जाया, अब्भिंतरिया समिया मज्झिमिया चंडा बाहिरिया जाया॥ ११८॥

कठिन शब्दार्थ - **अव्वाहिया** - अव्याहृताः-बिना बुलाये, **वाहिया** - व्याहृताः-बुलाये जाने पर **उच्चावएसु** - ऊंचे-नीचे, शोभन-अशोभन, **सम्मइ** - सम्मति लेता है, **संपुच्छणा** - संपृच्छना-पूछताछ करता है, **पवंचेमाणे** - प्रपञ्चयन-समझाता हुआ, **पयंडेमाणे** - आज्ञा देता हुआ।

भावार्थ - हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि असुरेन्द्र असुरराज चमर की तीन परिषदाएं हैं। यथा - समिता, चंडा और जाता। आभ्यंतर परिषद् समिता, मध्यम परिषद् चंडा और बाह्य परिषद् जाता कहलाती है।

हे गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यंतर परिषद् के देव बुलाये जाने पर आते हैं, बिना बुलाये नहीं आते। मध्यम परिषद् के देव बिना बुलाये भी आते हैं और बुलाने पर भी आते हैं बाह्य परिषद् के देव बिना बुलाये आते हैं।

हे गौतम! दूसरा कारण यह है कि असुरेन्द्र असुरराज चमर किसी प्रकार के ऊंचे-नीचे, शोभन-अशोभन कौटुम्बिक कार्य के आ पड़ने पर आभ्यंतर परिषद् के साथ विचारणा करता है, उनकी सम्मति लेता है। मध्यम परिषद् को अपने निश्चित किये कार्य की सूचना देकर उन्हें स्पष्टता के साथ कारण आदि समझाता है और बाह्य परिषद् को आज्ञा देता हुआ विचरता है। इस कारण हे गौतम! ऐसा कहा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाता है कि असुरेन्द्र असुरराज चमर की तीन परिषदाएं हैं। यथा - समिता, चंडा और जाता। आभ्यंतर परिषद् समिता, मध्यम परिषद् चंडा और बाह्य परिषद् जाता कही गई है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चमरेन्द्र की परिषद् का वर्णन किया गया है। यहाँ पर इन्द्रों की आभ्यंतर परिषद् में देवों की संख्या कम बताई है क्योंकि इस परिषद् के देव उच्च स्थानीय होने से सामान्य देवों के लिए आदरणीय होते हैं। आगे की दोनों परिषदाओं में देवों की संख्या क्रमशः अधिक-अधिक बताई है। वे देव प्रथम परिषद् से क्रमशः निम्न स्तरीय होते हैं। देवियों में तो आभ्यंतर परिषद् की देवियों की संख्या सबसे ज्यादा बताई है। वे देवियां परिचारिकाओं के समान होती है। वे आभ्यंतर परिषद् के देवों की सुविधा (नाच, गान आदि से मन को बहलाने) के लिए होती है। शेष दोनों परिषदाओं की देवियां क्रमशः कम-कम होती है। क्योंकि दूसरी तीसरी परिषद् के देव ज्यादा होने पर भी उनके सुविधा कम होने से देवियों की संख्या कम-कम बताई है। प्रथम परिषद् के देव गजधर की तरह कार्य का निर्णय करते हैं। दूसरी परिषद् के देव कार्य को कार्यान्वित करने का नक्शा तैयार करते हैं। तीसरी परिषद् के देव कार्य को कार्यान्वित करते हैं। परिषदा के देव देवियां कर्मचारी वर्ग की तरह होते हैं वे कार्य करने में होशियार होते हैं। अतः उनसे सलाह लेने आदि का कार्य किया जाता है। सामानिक आदि देव तो जागीरदार की तरह अधिकारी के समान होते हैं, उनको कोई कार्य नहीं करना पड़ता है। तीनों परिषदाओं की देवियां अपरिगृहीता देवियां समझी जाती है।

कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं भवणा पण्णत्ता? जहा ठाणपए जाव बली, एत्थ वइरोयणिंदे वइरोयणराया परिवसइ जाव विहरइ॥

भावार्थ - हे भगवन्! उत्तर दिशा के असुरकुमारों के भवन कहां कहे गये हैं?

हे गौतम! जिस प्रकार स्थान पद में कहा गया है उसी प्रकार यहां भी कह देना चाहिये यावत् वहां वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि निवास करता है यावत् दिव्य भोगों का उपभोग करता हुआ विचरता है।

बलिस्स णं भंते! वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! तिण्णि परिसाओ प०, तं जहा - समिया चंडा जाया, अब्भिंतरिया समिया मज्झिमिया चंडा बाहिरिया जाया। बलिस्स णं भंते! वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए कइ देवसहस्सा? मज्झिमियाए परिसाए कइ देवसहस्सा जाव बाहिरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता?

गोयमा! बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स २ अब्भिंतरियाए परिसाए वीसं देवसहस्सा पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए चउवीसं देवसहस्सा पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए अट्ठावीसं देवसहस्सा पण्णत्ता, अब्भिंतरियाए परिसाए अद्धपंचमा देविसया पण्णत्ता,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मज्झिमियाए परिसाए चत्तारि देविसया पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए अद्धुट्ठा देविसया पण्णत्ता॥

भावार्थ - हे भगवन्! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि की कितनी परिषदाएं कही गई है?

हे गौतम! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि की तीन परिषदाएं कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - समिता, चण्डा और जाता। आभ्यंतर परिषद् समिता, मध्यम परिषद् चण्डा और बाह्य परिषद् जाता कहलाती है।

हे भगवन्! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि की आभ्यंतर परिषद् में कितने हजार देव हैं? मध्यम परिषद् में कितने हजार देव हैं यावत् बाह्य परिषद् में कितनी देवियाँ कही गई है?

हे गौतम! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि की आभ्यंतर परिषद् में बीस हजार देव हैं, मध्यम परिषद् में चौबीस हजार देव हैं और बाह्य परिषद् में अट्ठावीस हजार देव हैं। आभ्यंतर परिषद् में साढे चार सौ देवियां हैं, मध्यम परिषद् में चार सौ देवियाँ हैं और बाह्य परिषद् में साढे तीन सौ देवियाँ हैं।

बलिस्स....ठिईए पुच्छा जाव बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स २ अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं अद्धुट्ठपलिओवमा ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाणं अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवीणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवीणं दिवड्ढं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, सेसं जहा चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो॥ ११९॥

भावार्थ - हे भगवन्! बलि की परिषद् के देवों की स्थिति विषयक पृच्छा यावत् बाह्य परिषद् की देवियों की कितनी स्थिति है?

हे गौतम! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि की आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति साढे तीन पल्योपम की, मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति तीन पल्योपम की और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति ढाई पल्योपम की है। आभ्यंतर परिषद् की देवियों की स्थिति ढाई पल्योपम की, मध्यम परिषद् की देवियों की स्थिति दो पल्योपम की और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति डेढ़ पल्योपम की है। शेष सारा वर्णन असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर की तरह कह देना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में उत्तरदिशा के स्वामी वैराचनेन्द्र वैरोचनराज बलि की परिषद् का वर्णन किया गया है। अब सूत्रकार नागकुमार जाति के देवों की वक्तव्यता कहते हैं -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहि णं भंते! णागकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता? जहा ठाणपए जाव दाहिणिल्लाणि पुच्छियव्वा जाव धरणे इत्थ णागकुमारिंदे णागकुमारराया परिवसइ जाव विहरइ॥

भावार्थ - हे भगवन्! नागकुमार देवों के भवन कहां कहे गये हैं?

हे गौतम! जिस प्रकार प्रज्ञापना सूत्र के दूसरे स्थान पद में कहा गया है यावत् दक्षिण दिशा वाले नागकुमारों के आवास का भी प्रश्न पूछना चाहिये यावत् वहां नागकुमारेन्द्र और नागकुमारराज धरण रहता है यावत् दिव्य भोगों को भोगता हुआ विचरता है।

धरणस्स णं भंते! णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो कइ परिसाओ प०?

गोयमा! तिण्णि परिसाओ, ताओ चेव जहा चमरस्स।

धरणस्स णं भंते! णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए कइ देवसहस्सा पण्णत्ता जाव बाहिरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता?

गोयमा! धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए सट्ठिं देवसहस्साइं मज्झिमियाए परिसाए सत्तरिं देवसहस्साइं बाहिरियाए परिसाए असीइदेवसहस्साइं अब्भिंतरपरिसाए पण्णत्तरं देविसयं पण्णत्तं, मज्झिमियाए परिसाए पण्णासं देविसयं पण्णत्तं, बाहिरियाए परिसाए पणवीसं देविसयं पण्णत्तं।

भावार्थ - हे भगवन्! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की कितनी परिषदाएं कही गई है?

हे गौतम! धरण की तीन परिषदाएं कही गई हैं जिनके नाम वे ही हैं जो चमरेन्द्र की परिषद् के कहे गये हैं।

हे भगवन्! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की आभ्यन्तर परिषद में कितने हजार देव हैं? यावत् बाह्य परिषद् में कितनी देवियाँ हैं?

हे गौतम! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की आभ्यंतर परिषद् में साठ हजार देव हैं, मध्यम परिषद् में सत्तर हजार देव हैं और बाह्य परिषद् में अस्सी हजार देव हैं। आभ्यंतर परिषद् में १७५ देवियां हैं, मध्यम परिषद् में १५० देवियां हैं और बाह्य परिषद् में १२५ देवियाँ हैं।

धरणस्स णं भंते! रण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! धरणस्स० रण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं साइरेगं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवाणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवीणं साइरेगं चउब्भागपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवीणं देसूणं चउब्भागपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, अट्ठो जहा चमरस्स।

भावार्थ - हे भगवन्! धरणेन्द्र नागकुमारराज की आभ्यंतर परिषद् के देवों की कितने काल की स्थिति कही गई है? मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है? आभ्यंतर परिषद् की देवियों की स्थिति कितने काल की है? मध्यम परिषद् और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

हे गौतम! धरणेन्द्र नागकुमारराज की आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति कुछ अधिक आधे पल्योपम की, मध्यम परिषद् के देवों की आधे पल्योपम की और बाह्य परिषद् के देवों की कुछ कम आधे पल्योपम की स्थिति कही गई है। आभ्यंतर परिषद् की देवियों की स्थिति कुछ कम आधे पल्योपम की, मध्यम परिषद् की देवियों की कुछ अधिक पाव पल्योपम की और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति पाव पल्योपम की है। तीन परिषदाओं का अर्थ आदि कथन चमरेन्द्र की तरह समझना चाहिये।

कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं णागकुमाराणं जहा ठाणपए जाव विहरइ॥ भूयाणंदस्स णं भंते! णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ? मज्झिमियाए परिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ? बाहिरियाए परिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ? अब्भिंतरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता? बाहिरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता?

गोयमा! भूयाणंदस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए पण्णासं देवसहस्सा पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए सट्ठिं देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरियाए परिसाए सत्तरि देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, अब्भिंतरियाए परिसाए दो पणवीसं देविसयाणं पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए दो देविसया पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए पण्णत्तरं देविसयं पण्णत्तं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे भगवन्! उत्तरदिशा के नागकुमार देवों के भवन कहां कहे गये हैं? इत्यादि वर्णन स्थान पद के अनुसार समझना चाहिये यावत् वहां भूतानंद नामक नागकुमारेन्द्र नागकुमार राज रहता है यावत् वह दिव्य भोगों को भोगता हुआ विचरता है।

हे भगवन्! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द की आभ्यंतर परिषद् में कितने हजार देव हैं? मध्यम परिषद् में और बाह्य परिषद् में कितने हजार देव हैं? आभ्यंतर परिषद् में कितनी सौ देवियां हैं? मध्यम परिषद् और बाह्य परिषद् में कितनी सौ देवियां हैं?

हे गौतम! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द की आभ्यंतर परिषद् में पचास हजार देव हैं मध्यम परिषद् में साठ हजार देव हैं और बाह्य परिषद् में सत्तर हजार देव हैं। आभ्यंतर परिषद् में २२५ देवियां हैं, मध्यम परिषद् में २०० देवियां और बाह्य परिषद् में १७५ देवियां हैं।

भूयाणंदस्स णं भंते! णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता जाव बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! भूयाणंदस्स णं० अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं देसूणं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवाणं साइरेगं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवीणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवीणं साइरेगं चउब्भागपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, अट्ठो जहा चमरस्स, अवसेसाणं वेणुदेवाईणं महाघोसपज्जवसाणाणं ठाणपयवत्तव्वया णिरवयवा भाणियव्वा, परिसाओ जहा धरणभूयाणंदाणं (सेसाणं भवणवईणं) दाहिणिल्लाणं जहा धरणस्स उत्तरिल्लाणं जहा भूयाणंदस्स, परिमाणंपि ठिई वि॥ १२०॥

भावार्थ - हे भगवन्! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द की आभ्यंतर परिषद् के देवों की कितनी स्थिति है? यावत् बाह्य परिषद् की देवियों की कितनी स्थिति कही गई है?

हे गौतम! भूतानन्द की आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति देशोन (कुछ कम) पल्योपम है, मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति कुछ अधिक आधे पल्योपम की और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति आधे पल्योपम की है। आभ्यंतर परिषद् की देवियों की स्थिति आधे पल्योपम की, मध्यम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिषद् की देवियों की स्थिति देशोन आधे पल्योपम की और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति कुछ अधिक पाव पल्योपम की है। तीन प्रकार की परिषदों का अर्थ आदि कथन चमरेन्द्र की तरह समझ लेना चाहिये।

शेष वेणुदेव से लगाकर महाघोष तक का वर्णन स्थान पद के अनुसार कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि दक्षिण दिशा के भवनपति इन्द्रों की परिषद् धरणेन्द्र की तरह और उत्तर दिशा के भवनपति इन्द्रों की परिषद् भूतानन्द की तरह कहनी चाहिये। देव देवियों की संख्या तथा स्थिति भी उसी तरह समझ लेनी चाहिये

विवेचन -- प्रस्तुत सूत्र में वर्णित असुरकुमार और नागकुमार भवनवासी देवों की तरह शेष सुपर्णकुमार आदि देवों का वर्णन भी समझ लेना चाहिये। इनके भवनों की संख्या, इन्द्रों के नाम आदि में जो भिन्नता है उसके लिए टीकाकार ने निम्न संग्रहणी गाथाएं दी है जिनका अर्थ इस प्रकार है –

१. भवनों की संख्या – दस भवनपतियों के कुल भवनों की संख्या –

चउसट्ठी असुराणं चुलसीइ चेव होइ नागाणं।
बावत्तरिं सुवण्णे वायुकुमाराण छन्नउइ॥ १॥
दीव दिसा उदहीणं विज्जुकुमारिंद थणियमग्गीणं।
छण्हं पि जुयलयाणं छावत्तरिओ सयसहस्सा॥ २॥

– असुरकुमार देवों के ६४ लाख भवन हैं, नागकुमारों के ८४ लाख भवन हैं, सुपर्णकुमारों के ७२ लाख, वायुकुमारों के ९६ लाख, द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार देवों के प्रत्येक के ७६-७६ लाख भवन हैं।

दक्षिण दिशा एवं उत्तरदिशा के देवों की अलग अलग भवन संख्या –

चोत्तीसा चोयाला अट्ठतीसं च सयसहस्साइं।
पण्णा चत्तालीसा दाहिणओ होंति भवणाइं॥ ३॥
तीसा चत्तालीसा चोत्तीसं चेव सयसहस्साइं।
छायाला छत्तीसा उत्तरओ होंति भवणाइं॥ ४॥

– दक्षिण दिशा के असुरकुमारों के ३४ लाख भवन, नागकुमारों के ४४ लाख, सुपर्णकुमारों के ३८ लाख, वायुकुमारों के ५० लाख शेष ६ देवों-द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार-के प्रत्येक के ४०-४० लाख भवन हैं।

– उत्तर दिशा के असुरकुमारों के ३० लाख भवन, नागकुमारों के ४० लाख, सुपर्णकुमारों के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३४ लाख, वायुकुमारों के ४६ लाख, शेष ६ द्वीप-दिशा-उदधि-विद्युत्-स्तनित-अग्निकुमारों के प्रत्येक के ३६-३६ लाख भवन हैं।

२. इन्द्रों के नाम - दक्षिण दिशा के भवनपति इन्द्रों के नाम -

चमरे धरणे तह वेणुदेवे हरिकंत अग्गिसिहे य।
पुण्णे जलकंते, अमिए लंबे य घोसे य॥ ५॥

- दक्षिण दिशा के असुरकुमार देवों का इन्द्र चमर है। नागकुमार देवों का इन्द्र धरण, सुपर्णकुमार देवों का इन्द्र वेणुदेव, विद्युत्कुमार देवों का इन्द्र हरिकांत, अग्निकुमार देवों का इन्द्र अग्निशिख, द्वीपकुमार देवों का इन्द्र पूर्ण, उदधिकुमार देवों का इन्द्र जलकांत, दिशाकुमार देवों का इन्द्र अमितगति, वायुकुमार देवों का इन्द्र वेलम्ब और स्तनितकुमार देवों का इन्द्र घोष है।

उत्तरदिशा के भवनपति देवों के इन्द्रों के नाम -

बलि भूयाणंदे वेणुदालि हरिस्सह अग्गिमाणव विसिट्ठे।
जलप्पभ अमियवाहण पभंजणे चेव महघोसे॥ ६॥

- उत्तर दिशा के असुरकुमारों का इन्द्र बलि, नागकुमारों का भूतानन्द, सुपर्णकुमारों का वेणुदाली, विद्युत्कुमारों का हरिस्सह, अग्निकुमारों का अग्निमाणव, द्वीपकुमारों का विशिष्ट, उदधिकुमारों का जलप्रभ, दिशाकुमारों का अमितवाहन, वायुकुमारों का प्रभंजन और स्तनितकुमारों का इन्द्र महाघोष है।

३. सामानिक और आत्मरक्षक देवों की संख्या - दश भवनपति देवों के इन्द्रों के प्रत्येक के सामानिक और आत्मरक्षक देवों की संख्या -

चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च सहस्सा उ असुरवज्जाणं।
सामाणिया उ एए चउग्गुणा आयरक्खा उ॥ ७॥

- दक्षिण दिशा के असुरकुमारों के इन्द्र चमर के ६४ हजार सामानिक देव हैं, उत्तरदिशा के असुरकुमारों के इन्द्र धरण के ६० हजार सामानिक देव हैं। शेष दक्षिण और उत्तर दिशा के भवनपति देवों के जो धरण और भूतानंद आदि इन्द्र हैं उन सभी के छह छह हजार सामानिक देव हैं। सभी इन्द्रों के सामानिक देवों से चौगुने आत्मरक्षक देव होते हैं। जैसे - चमरेन्द्र के ६४ हजार सामानिक देव हैं तो इनसे चौगुने दो सौ छप्पन हजार-दो लाख छप्पन हजार (२,५६,०००) उनके आत्मरक्षक देव होते हैं। इसी प्रकार बलीन्द्र के ६० हजार सामानिक देव हैं तो इनसे चार गुने अर्थात् दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देव हैं। शेष दक्षिण और उत्तर दिशाओं के इन्द्रों के प्रत्येक के छह-छह हजार सामानिक देव हैं तो इनसे चौगुना अर्थात् चौबीस चौबीस हजार आत्मरक्षक देव सभी इन्द्रों के होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाणव्यंतर देवों का वर्णन

कहि णं भंते! वाणमंतराणं देवाणं भोमेज्जा णगरा पण्णत्ता? जहा ठाणपए जाव विहरंति। कहि णं भंते! पिसायाणं देवाणं भोमेज्जा णगरा पण्णत्ता? जहा ठाणपए जाव विहरंति कालमहाकाला य तत्थ दुवे पिसायकुमाररायाणो परिवसंति जाव विहरंति, कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं पिसायकुमाराणं जाव विहरंति काले य एत्थ पिसायकुमारिंदे पिसायकुमारराया परिवसइ महड्डिए जाव विहरइ॥ कालस्स णं भंते! पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! तिण्णि परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा - ईसा तुडिया दढरहा, अब्भिंतरिया ईसा मज्झिमिया तुडिया बाहिरिया दढरहा।

कालस्स णं भंते! पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो अब्भिंतरपरिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ जाव बाहिरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता?

गोयमा! कालस्स णं पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररायस्स अब्भिंतरियपरिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ मज्झिमपरिसाए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ बाहिरियपरिसाए बारस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ अब्भिंतरियाए परिसाए एगं देविसयं पण्णत्तं मज्झिमियाए परिसाए एगं देविसयं पण्णत्तं बाहिरियाए परिसाए एगं देविसयं पण्णत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वाणव्यंतर देवों के भवन कहां कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसा प्रज्ञापना सूत्र के स्थान पद में कहा गया है वैसा कह देना चाहिये यावत् दिव्य भोगों को भोगते हुए विचरते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! पिशाच देवों के भवन कहां कहे गये हैं?

उत्तर - जैसा स्थान पद में कहा है वैसा कह देना चाहिये यावत् दिव्य भोगों को भोगते हुए विचरते हैं। वहां काल और महाकाल नाम के दो पिशाचकुमारराज रहते हैं यावत् विचरते हैं।

हे भगवन्! दक्षिण दिशा के पिशाचकुमारों के भवन कहां कहे गये हैं? इत्यादि कथन कर लेना चाहिये यावत् भोग भोगते हुए विचरते हैं। वहां महर्द्धिक पिशाचकुमार इन्द्र पिशाचकुमारराज रहते हैं यावत् भोग भोगते हुए विचरते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! पिशाचकुमार इन्द्र पिशाचकुमारराज काल की कितनी परिषदाएं कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचकुमारराज काल की तीन परिषदाएं हैं। वे इस प्रकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं-ईशा, त्रुटिता और दृढरथा। आभ्यंतर परिषद् ईशा, मध्यम परिषद् त्रुटिता और बाह्य परिषद् दृढरथा कहलाती है।

प्रश्न - हे भगवन्! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचकुमारराज काल की आभ्यंतर परिषद् में कितने हजार देव हैं यावत् बाह्य परिषद् में कितनी सौ देवियाँ हैं?

उत्तर - हे गौतम! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचकुमारराज काल की आभ्यंतर परिषद् में आठ हजार देव हैं, मध्यम परिषद् में दस हजार देव हैं और बाह्य परिषद् में बारह हजार देव हैं। आभ्यंतर परिषद् में एक सौ देवियां हैं, मध्यम परिषद् में एक सौ और बाह्य परिषद् में एक सौ देवियाँ हैं।

विवेचन - **"वनानामन्तरेषु भवाः वानमन्तराः"** - जो देव वनों के अन्तर में रहते हैं उन्हें वाणमन्तर अथवा वाणव्यंतर कहते हैं। अथवा वि अर्थात् आकाश जिनका अन्तर-अवकाश अर्थात् आश्रय है उन्हें व्यन्तर कहते हैं। अथवा विविध प्रकार के भवन, नगर और आवास रूप जिनका आश्रय हैं उन्हें व्यन्तर कहते हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर के सौ योजन और नीचे के सौ योजन छोड़कर मध्य के आठ सौ योजन तिर्च्छालोक में असंख्यात भूमिगृह समान लाखों नगरावास हैं। वे भौमेयनगर बाहर से गोल, अन्दर से समचौरस तथा नीचे कमल की कर्णिका के आकार वाले हैं यावत् वे भवन (नगरावास) प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं। उन नगरावासों में बहुत से पिशाच आदि वाणव्यंतर देव दिव्य भोगों को भोगते हुए विचरते हैं।

पिशाचों के दो इन्द्र हैं - काल और महाकाल। काल इन्द्र दक्षिण दिशा का है और महाकाल इन्द्र उत्तर दिशा का है। पिशाचेन्द्र पिशाचराज काल की तीन परिषदाएं हैं - ईशा, त्रुटिता और दृढरथा। आभ्यंतर परिषद् को ईशा, मध्यम परिषद् को त्रुटिता और बाह्य परिषद् को दृढरथा कहते हैं। इन परिषदों के देव और देवियों की संख्या भावार्थ में दिये अनुसार समझने चाहिये। वाणव्यंतर देवों के विशेष वर्णन के लिये जिज्ञासुओं को प्रज्ञापना सूत्र का द्वितीय स्थान पद देखना चाहिये।

कालस्स णं भंते! पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता जाव बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! कालस्स णं पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो अब्भिंतरपरिसाए देवाणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवाणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाणं साइरेगं चउब्भागपलिओवमं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ठिई पण्णत्ता, अब्भंतरपरिसाए देवीणं साइरेगं चउब्भागपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमपरिसाए देवीणं चउब्भागपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, बाहिरपरिसाए देवीणं देसूणं चउब्भागपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, अट्ठो जो चेव चमरस्स, एवं उत्तरस्सवि, एवं णिरंतरं जाव गीयजसस्स ॥ १२१ ॥

भावार्थ - हे भगवन्! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचराज काल की आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है? मध्यम परिषद् और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति कितनी है? यावत् बाह्य परिषद् की देवियों की कितनी स्थिति कही गई है?

हे गौतम! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचराज काल की आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति आधा पल्योपम की, मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति देशोन-कुछ कम आधा पल्योपम की और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति कुछ अधिक पाव पल्योपम की है। आभ्यंतर परिषद् की देवियों की स्थिति कुछ अधिक पाव पल्योपम की, मध्यम परिषद् की देवियों की स्थिति पाव पल्योपम की और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति कुछ कम पाव पल्योपम की है। परिषदों का अर्थ आदि कथन चमरेन्द्र की तरह कह देना चाहिये। इसी प्रकार उत्तरदिशा के वाणव्यंतर देवों के विषय में भी समझना चाहिये यावत् गीतयश गंधर्व इन्द्र तक सारी वक्तव्यता कह देनी चाहिये।

विवेचन - दक्षिण दिशा के पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचराज काल के वर्णन के अनुसार उत्तरदिशा के पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचराज महाकाल का वर्णन समझना चाहिये। पिशाचकुमार देवों की तरह ही शेष सात वाणव्यंतर देवों का वर्णन कहना चाहिये। वाणव्यंतर देवों के इन्द्रों के नाम निम्न दो संग्रहणी गाथा में दिये गये हैं -

काले य महाकाले सुरूव पडिरूव पुण्णभद्दे य।
अमरवइ माणिभद्दे भीमे य तहा महाभीमे॥ १॥
किन्नर किंपुरिसे खलु सप्पुरिसे खलु तहा महापुरिसे।
अइकाय महाकाए गीयरई चेव गीतजसे॥ २॥

- पिशाचों के दो इन्द्र - काल और महाकाल। भूतों के दो इन्द्र - सुरूप और प्रतिरूप। यक्षों के दो इन्द्र - पूर्णभद्र और माणिभद्र। राक्षसों के दो इन्द्र - भीम और महाभीम। किन्नरों के दो इन्द्र - किन्नर और किंपुरुष। किम्पुरुषों के दो इन्द्र - सत्पुरुष और महापुरुष। महोरगों के दो इन्द्र - अतिकाय और महाकाय। गंधर्वों के दो इन्द्र - गीतरति और गीतयश। इन दो-दो इन्द्रों में से प्रथम इन्द्र दक्षिण दिशा वाले देवों का एवं द्वितीय इन्द्र उत्तरदिशा वाले देवों का है। इस प्रकार वाणव्यंतर देवों का वर्णन कहा गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्योतिषी देवों का वर्णन

कहि णं भंते! जोइसियाणं देवाणं विमाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! जोइसिया देवा परिवसंति?

गोयमा! उप्पिं दीवसमुद्दाणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्तणउए जोयणसए उड्ढं उप्पइत्ता दसुत्तरसया जोयणबाहल्लेणं, तत्थ णं जोइसियाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा जोइसियविमाणावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, ते णं विमाणा अद्धकविट्ठगसंठाणसंठिया एवं जहा ठाणपए जाव चंदिमसूरिया य तत्थ णं जोइसिंदा जोइसरायाणो परिवसंति महिड्ढिया जाव विहरंति।

कठिन शब्दार्थ - अद्धकविट्ठगसंठाणसंठिया - अर्द्धकपित्थ संस्थान संस्थित-आधे कबीठ के आकार के।

भावार्थ - हे भगवन्! ज्योतिषी देवों के विमान कहां कहे गये हैं? हे भगवन्! ज्योतिषी देव कहां रहते हैं?

हे गौतम! द्वीप समुद्रों के ऊपर और इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग से सात सौ नब्बे (७९०) योजन ऊपर जाने पर एक सौ दस (११०) योजन प्रमाण ऊंचाई रूप क्षेत्र में तिरछे ज्योतिषी देवों के असंख्यात लाख विमानावास कहे गये हैं। वे विमान आधे कबीठ के आकार के हैं इत्यादि जैसा वर्णन स्थान पद में कहा गया है वैसा ही यहां पर भी कह देना चाहिये यावत् वहां ज्योतिषी इन्द्र ज्योतिषीराज चन्द्र और सूर्य दो देव रहते हैं जो महर्द्धिक यावत् दिव्य भोगों को भोगते हुए विचरते हैं।

विवेचन - वाणव्यंतर देवों का कथन करने के बाद सूत्रकार प्रस्तुत सूत्र में ज्योतिषी देवों का कथन करते हुए फरमाते हैं कि - इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अत्यंत सम एवं रमणीय भूमिभाग से ७९० योजन की ऊंचाई पर ११० योजन क्षेत्र में तिरछे ज्योतिषी देवों के असंख्यात लाख ज्योतिषी विमान हैं। वे विमान आधे कबीठ के आकार के हैं और पूर्ण स्फटिकमय है यावत् सुखद स्पर्श वाले श्री से संपन्न, सुरूप, प्रसन्नता पैदा करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं। इन विमानों में बहुत से ज्योतिषी देव निवास करते हैं। ज्योतिषी देवों के पांच भेद हैं - १. चन्द्र २. सूर्य ३. ग्रह ४. नक्षत्र और ५. तारा। इनमें चन्द्र और सूर्य दो इन्द्र हैं जो महर्द्धिक यावत् दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हैं। वे अपने लाखों विमानवासों का, चार हजार सामानिक देवों का, चार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेना और सेनाधिपतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत से ज्योतिषी देव देवियों का आधिपत्य करते हुए विचरते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूरस्स णं भंते! जोइसिंदस्स जोइसरण्णो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! तिण्णि परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा - तुंबा तुडिया पेच्चा अब्भिंतरया तुंबा मज्झिमिया तुडिया बाहिरिया पेच्चा, सेसं जहा कालस्स परिमाणं, ठिईवि। अट्ठो जहा चमरस्स। चंदस्सवि एवं चेव॥ १२२॥

भावार्थ - हे भगवन्! ज्योतिषी इन्द्र ज्योतिषराज सूर्य की कितनी परिषदाएं कही गई हैं?

हे गौतम! सूर्य की तीन परिषदाएं कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - तुम्बा, त्रुटिता और प्रेत्या। आभ्यंतर परिषद् को तुम्बा कहते हैं मध्यम परिषद् को त्रुटिता और बाह्य परिषद् को प्रेत्या कहा जाता है। शेष सारा वर्णन, उनका परिमाण (देव देवियों की संख्या) और स्थिति काल इन्द्र की तरह समझना चाहिये। परिषद् का अर्थ चमरेन्द्र की तरह जानना चाहिये। सूर्य के वर्णन के अनुसार ही चन्द्रमा का वर्णन भी समझ लेना चाहिये।

विवेचन - ज्योतिषी देवों के इन्द्र, चन्द्र और सूर्य का वर्णन प्रस्तुत सूत्र में किया गया है उनके तुम्बा, त्रुटिता और प्रेत्या नाम की तीन परिषदाएं होती हैं। परिषदाओं में देव देवियों की संख्या और उनकी स्थिति का कथन काल के इन्द्र के अनुसार समझना चाहिये। परिषद् आदि का अर्थ चमरेन्द्र के अनुसार ही जान लेना चाहिये। इस प्रकार ज्योतिषी देवों का वर्णन समाप्त हुआ।

द्वीप समुद्रों का कथन

कहि णं भंते! दीवसमुद्दा? केवइया णं भंते! दीवसमुद्दा? केमहालया णं भंते! दीवसमुद्दा? किं संठिया णं भंते! दीवसमुद्दा? किमागारभावपडोयारा णं भंते! दीवसमुद्दा पण्णत्ता?

गोयमा! जंबुद्दीवाइया दीवा लवणाइया समुद्दा संठाणओ एगविहविहाणा वित्थारओ अणेगविहविहाणा दुगुणादुगुणे पडुप्पाएमाणा २ पवित्थरमाणा २ ओभासमाणवीईया बहुउप्पल-पउमकुमुय-णलिणसुभग-सोगंधिय-पोंडरीय-महापोंडरीय-सयपत्त-सहस्सपत्त-पप्फुल्ल-केसरोवचिया पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खित्ता पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता अस्सिं तिरियलोए असंखेज्जा दीवसमुद्दा सयंभुरमणपज्जवसाणा पण्णत्ता समणाउसो॥ १२३॥

कठिन शब्दार्थ - **संठाणओ** - संस्थान से, **एगविहविहाणा** - एक-विध विधाना:-एक ही प्रकार के आकार वाले, **वित्थारओ** - विस्तार से, **अणेगविहविहाणा** - अनेकविध विधाना:-नाना प्रकार के,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पडुप्पाएमाणा - प्रत्युत्पद्यमानाः, **पवित्थरमाणा** - प्रविस्तरन्तः, **ओभासमाणा** - अवभासमानः-हश्यमान **वीचिया** - वीचयः-कल्लोलो-तरंगो वाले, **बहुउप्पलपउमकुमुयणलिणसुभगसोगंधिय पोंडरीय महापोंडरीय सयपत्त सहस्सपत्तं पप्फुल्ल केसरोवचिया** - बहुत्पल पद्म कुमुदनलिन सुभग सौगंधिक पुण्डरीक महापुण्डरीक शतपत्र सहस्रपत्र प्रफुल्ल केसरोपचिताः-प्रफुल्लित एवं केसर से युक्त अनेकों उत्पलों से-कमलों से, पद्मों से-सूर्यविकासी कमलों से, चन्द्रविकासी कुमुदों से कुछ-कुछ लाल वर्ण वाले नलिनों से, पत्रों से, सुभगों से-पद्मविशेषों से, सौगंधिकों से, विशेष प्रकार के कमलों से, पौण्डरीकों से-सफेद कमलों से, बड़े-बड़े पुण्डरीकों से, शतपत्र वाले कमलों से, सहस्रपत्र वाले कमलों से द्वीप और समुद्र सदा उपचित-शोभा वाले, **परिक्खित्ता** - परिक्षिप्ताः-घिरे हुए।

भावार्थ - हे भगवन्! द्वीप समुद्र कहां है? हे भगवन्! द्वीप समुद्र कितने हैं? हे भगवन्! द्वीप समुद्र कितने बड़े हैं? हे भगवन्! द्वीप समुद्र किस आकार वाले हैं? हे भगवन्! उनका आकार भाव प्रत्यवतार-स्वरूप कैसा है?

हे गौतम! जम्बूद्वीप से प्रारंभ होने वाले द्वीप और लवण समुद्र से आरंभ होने वाले समुद्र हैं। वे द्वीप और समुद्र वृत्ताकार होने से एक रूप हैं। विस्तार की अपेक्षा से नाना प्रकार के हैं अर्थात् दुगुने दुगुने विस्तार वाले हैं, दृश्यमान तरंगों वाले हैं। प्रफुल्लित और केसरयुक्त बहुत सारे उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, कमलों से वे द्वीप समुद्र शोभायमान हैं। प्रत्येक पद्मवरवेदिका से घिरे हुए हैं। प्रत्येक के चारों ओर वनखण्ड हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! इस तिर्यंकलोक में स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत असंख्यात द्वीप समुद्र कहे गये हैं।

विवेचन - प्रस्तु सूत्र में द्वीप और समुद्र के विषय में पृच्छा की गयी है। प्रभु फरमाते हैं कि सब द्वीपों की आदि (प्रारंभ) में जंबूद्वीप है और सब समुद्रों के प्रारंभ में लवण समुद्र हैं। सब द्वीप और समुद्र गोलाकार होने से एक ही संस्थान वाले हैं। किंतु विस्तार की अपेक्षा नाना प्रकार के हैं। एक लाख योजन का जंबूद्वीप है उसके चारों ओर दो लाख योजन का लवण समुद्र है। लवण समुद्र को घेरे हुए चार लाख योजन का धातकीखण्ड द्वीप है। इस तरह आगे आगे द्वीप और समुद्र दूने दूने विस्तार वाले हैं। इन द्वीप और समुद्रों के लिये '**ओभासमाणा वीचिया**' विशेषण दिया है अर्थात् ये द्वीप और समुद्र दृश्यमान तरंगों से तरंगित हैं। यह समुद्रों के लिये तो संगत ही है किंतु द्वीपों पर भी संगत है क्योंकि द्वीपों में स्थित नदी, तालाब तथा जलाशयों में तरंगें होती ही है। ये द्वीप और समुद्र विविध जातियों के कमलों से अत्यंत शोभायमान हैं। प्रत्येक द्वीप और समुद्र एक पद्मवरवेदिका से और एक वनखंड से घिरे हुए हैं। इस तरह इस तिर्यंक लोक में एक द्वीप और एक समुद्र के क्रम से असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। सबसे अंत में स्वयंभूरमण नामक समुद्र है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीप का वर्णन

तत्थ णं अयं जंबूद्दीवे णामं दीवे दीवसमुद्दाणं अब्भिंतरिए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्लापूयसंठाणसंठिए वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिए वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिए वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलयं च किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?

कठिन शब्दार्थ - **सव्वखुड्डाए** - सर्वक्षुल्लकः-सबसे छोटा, **तेलापूय संठाणसंठिए** - तैलापूप संस्थान संस्थितः-तेल में तले पूए के आकार का, **रहचक्कवाल संठाणसंठिए** - रथचक्र वाल संस्थान संस्थितः-रथ के पहिये के आकार का, **पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिए** - पुष्करकर्णिका संस्थान संस्थितः-कमल की कर्णिका के आकार का, **पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए** - परिपूर्णचन्द्रसंस्थानसंस्थितः-परिपूर्ण-पूर्णिमा के चांद के आकार का।

भावार्थ - उन द्वीप समुद्रों में यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप सबसे आभ्यंतर है, सबसे छोटा है, गोलाकार है, तैल में तले पूए के आकार का गोल है, रथ के पहिये के समान गोल है, कमल की कर्णिका के आकार का गोल है, पूनम के चांद के समान गोलाकार है। यह लाख योजन का लम्बा चौड़ा है। तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तावीस (३,१६,२२७) योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष साढे तेरह अंगुल से कुछ अधिक परिधि वाला है।

विवेचन - सभी द्वीप समुद्रों में जम्बूद्वीप सर्वप्रथम है अतः जंबूद्वीप सभी द्वीप समुद्रों में सबसे आभ्यंतर (भीतर का) है। सबसे छोटा है क्योंकि इससे आगे के द्वीप समुद्र दुगुने दुगुने विस्तार वाले हैं। यह जंबूद्वीप गोलाकार संस्थान से संस्थित है। यह तेल में तले पूए के समान, रथ के पहिये के समान, कमल की कर्णिका के समान और पूनम के चांद के समान गोल है। इस तरह जंबूद्वीप की गोलाई बताने के लिए चार उपमाएं दी है। यह जंबूद्वीप एक लाख योजन की लम्बाई चौड़ाई वाला और तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तावीस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष और साढे तेरह अंगुल से कुछ अधिक परिधि वाला है।

से णं एक्काए जगईए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। सा णं जगई अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं मूले बारस जोयणाइं विक्खंभेणं मज्झे अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं उप्पिं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोपुच्छसंठाणसंठिया सव्ववइरामई अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंकाणिक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया (सस्सिरीया) सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा। सा णं जगई एक्केणं जालकडएणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। से णं जालकडए अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं सव्वरयणामए अच्छे सण्हे लण्हे घट्ठे मट्ठे णीरए णिम्मले णिप्पंके णिक्कंकडच्छाए सप्पभे (सस्सिरीए) समरीए सउज्जोए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे॥१२४॥

कठिन शब्दार्थ - गोपुच्छसंठाणसंठिया - गोपुच्छ संस्थान संस्थित:-गाय की पूंछ के आकार की, **सव्ववइरामई** - सर्व वज्रमयी-सर्वात्मना वज्ररत्नमय, **अच्छा** - स्वच्छ, **सण्हा** - श्लक्ष्णा-कोमल, **लण्हा** - मसृणा-स्निग्ध, **घट्ठा** - घृष्टा-घिसी हुई, **मट्ठा** - मृष्टा-साफ की हुई, **णीरया** - नीरजा-रज रहित **णिम्मला** - निर्मल, **णिप्पंका** - निष्पंक, **णिक्कंकडच्छाया** - निष्कंकटच्छाया-बिना आवरण की दीप्ति वाली, **सप्पभा** - प्रभा सहित, **समिरीया** - शोभा सहित, **सउज्जोया** - उद्योत सहित, **पासाईया** - प्रसन्नता देने वाली, **दरिसणिज्जा** - दर्शनीय, **अभिरूवा** - अभिरूप, **पडिरूवा** - प्रतिरूप, **जालकडएणं**- जाल कटक-जालियों का समूह।

भावार्थ - यह जंबूद्वीप एक जगती से चारों ओर से घिरा हुआ है। वह जगती आठ योजन से ऊंची है। उसका विस्तार मूल में बारह योजन, मध्य में आठ योजन और ऊपर चार योजन है। मूल में विस्तीर्ण मध्य में संक्षिप्त और ऊपर से पतली है। वह गाय पूंछ के आकार की है। वह पूरी तरह वज्ररत्न की बनी हुई है। वह स्फटिक की तरह स्वच्छ है, मृदु है, चिकनी है, घिसी हुई, रज रहित, निर्मल, निष्पंक-पंक रहित, निरुपघात दीप्ति वाली, प्रभावाली, किरणों वाली, उद्योत वाली, प्रसन्नता पैदा करने वाली, दर्शनीय, सुंदर और प्रतिरूप-अतिसुंदर है। वह जगती एक जालियों के समूह से सब दिशाओं से घिरी हुई है। वह जाल समूह आधा योजन ऊंचा पांच सौ धनुष विस्तार वाला है, सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है, मृदु है, चिकना है यावत् अभिरूप और प्रतिरूप है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जम्बूद्वीप के चारों ओर नगर के प्राकार-परकोटे की तरह स्थित जगती का वर्णन किया गया है। वह जगती ऊंचाई में आठ योजन, मूल में बारह योजन, मध्य में आठ योजन, ऊपर चार योजन गोपुच्छ के आकर की है। वह जगती शाश्वत होने से **अच्छा सण्हा.....पडिरूवा** आदि सोलह विशेषणों वाली है। यह जगती एक जाल कटक से घिरी हुई है। जैसे भवन की दिवारों में झरोखे और रोशनदान होते हैं वैसी जालियां जगह जगह सब ओर बनी हुई है। यह जाल समूह दो कोस ऊंचा, ५०० धनुष का विस्तार वाला है। यह जाल समूह सर्वात्मना रत्नमय है और स्वच्छ यावत् प्रतिरूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पद्मवरवेदिका का वर्णन

तीसे णं जगईए उप्पिं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महई पउमवरवेइयापण्णत्ता, सा णं पउमवरवेइया अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं सव्वरयणामए जगईसमिया परिक्खेवेणं सव्वरयणामई० ॥

भावार्थ - उस जगती के ऊपर ठीक मध्य भाग में एक विशाल पद्मवर वेदिका कही गई है। वह पद्मवरवेदिका आधा योजन ऊंची और पांच सौ धनुष विस्तार वाली है। वह सर्वरत्नमय है। उसकी परिधि जगती के मध्य भाग की परिधि के समान है। वह पद्मवरवेदिका सर्व रत्नमय स्वच्छ यावत् अभिरूप प्रतिरूप है।

तीसे णं पउमवरवेइयाए अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा - वइरामया णेमा रिट्ठामया पइट्ठाणा वेरुलियामया खंभा सुवण्णरुप्पमया फलगा वइरामया संधी लोहियक्खमईओ सूईओ णाणामणिमया कलेवरा कलेवरसंघाडा णाणामणिमया रूवा णाणामणिमया रूवसंघाडा अंकामया पक्खा पक्खबाहाओ जोइरसामया वंसा वंसकवेल्लुया य रययामईओ पट्टियाओ जायरूवमईओ ओहाडणीओ वइरामईओ उवरि पुञ्छणीओ सव्वसेए रययामए छायणे ॥

कठिन शब्दार्थ - **वइरामया** - वज्ररत्नमय, **णेमा** - नेम-भूमि भाग के ऊपर निकले हुए प्रदेश, **पइट्ठाणा** - प्रतिष्ठान-मूलपाद **खंभा** - स्तम्भ, **वेरुलियामया** - वैडूर्य रत्न के बने हुए **सूईओ** - सूचियां, **कलेवरा** - कलेवर-मनुष्य आदि शरीर के चित्र, **रूवसंघाडा** - रूप संघाटा:-रूप युग्म **ओहाडणीओ** - ओहाडणियां-आच्छादन हेतु बनी किमडियां, **पुञ्छणीओ** - पुंछनियां-निबिड आच्छादन के लिए मुलायम तृण विशेष तुल्य छोटी किमडियां।

भावार्थ - उस पद्मवर वेदिका का वर्णन इस प्रकार कहा गया है - उसके नेम वज्र रत्न के बने हुए हैं, उसके मूलपाद (प्रतिष्ठान) रिष्टरत्न के बने हुए हैं। उसके स्तंभ वैडूर्य रत्न के, फलक सोने चांदी के, संधियां वज्रमय हैं। लोहिताक्ष रत्न की बनी उसकी सूचियां हैं। नाना प्रकार की मणियों से बने हुए मनुष्यादि शरीर के चित्र हैं तथा स्त्री पुरुष युगल के जो चित्र बने हुए हैं वे भी अनेक प्रकार की मणियों से बने हुए हैं। मनुष्य चित्रों के अलावा अनेक जीवों के जो चित्र बने हुए हैं वे भी विविध मणियों के बने हुए हैं। उसके पक्ष-आजू बाजू के भाग-अंक रत्नों के बने हुए हैं। ज्योति रत्न से बने हुए बड़े बड़े पृष्ठ वंश हैं। पृष्ठवंशों को स्थिर रखने के लिए तिरछे रूप में लगाये गये बांस भी ज्योति रत्न के हैं। बांसों के ऊपर छप्पर पर दी जाने वाली लम्बी लकड़ी की पट्टिकाएं चांदी की बनी हुई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आच्छादन हेतु बड़ी किमडियां जो हैं वे सोने की हैं और पुंछनियां वज्ररत्न की हैं पुञ्छनी के ऊपर और कवेलू के नीचे का आच्छादन श्वेत चांदी का बना हुआ है।

सा णं पउमवरवेइया एगमेगेणं हेमजालेणं एगमेगेणं गवक्खजालेणं एगमेगेणं खिंखिणिजालेणं जाव मणिजालेणं (कणयजालेणं रयणजालेणं) एगमेगेणं पउमवरजालेणं सव्वरयणामएणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता॥

भावार्थ - वह पद्मवरवेदिका कहीं सोने से लटकते हुए मालासमूह से, कहीं गवाक्ष की आकृति के रत्नों के लटकते मालासमूह से, कहीं किंकणी-छोटी घंटियां और कहीं बड़ी घंटियों के आकार की मालाओं से, कहीं मोतियों की लटकती मालाओं से, कहीं मणियों की मालाओं से, कहीं सोने की मालाओं से कहीं रत्नमय पद्म की आकृति वाली मालाओं से चारों ओर सब दिशा विदिशाओं में व्याप्त है।

ते णं जाला तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमंडिया णाणामणिरयण-विविहहारद्धहारउवसोभियसमुदया ईसिं अण्णमण्णमसंपत्ता पुव्वावरदाहिणउत्तरागएहिं वाएहिं मंदागं २ एज्जमाणा २ कंपिज्जमाणा २ लंबमाणा २ पंझझमाणा २ सद्दायमाणा २ तेणं ओरालेणं मणुण्णेणं कण्णमणणिव्वुइकरेणं सद्देणं सव्वओ समंता आपूरेमाणा सिरीए अईव २ उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति॥

भावार्थ - वे मालाएं तपे हुए स्वर्ण के लम्बूसग-पैंडल वाली हैं, सोने के पतरे से मंडित हैं, नाना प्रकार के मणिरत्नों के, विविधहारों-अद्धहारों से सुशोभित हैं, ये एक दूसरे से पास पास हैं, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा से आई वायु से मंद मंद हिल रही है, कंपित हो रही है, लम्बी लम्बी फैल रही है, परस्पर टकराने से शब्दायमान हो रही है। उन मालाओं से निकला हुआ शब्द मनोज्ञ, मनोहर, श्रोताओं के कान एवं मन को सुख देने वाला होता है। वे मालाएं मनोज्ञ शब्दों से सब दिशाओं और विदिशाओं को आपूरित करती हुई शोभायमान हो रही है।

तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे २ तहिं तहिं बहवे हयसंघाडा गयसंघाडा णरसंघाडा किण्णरसंघाडा किंपुरिससंघाडा महोरगसंघाडा गंधव्वसंघाडा वसहसंघाडा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पभा समरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

भावार्थ - उस पद्मवरवेदिका के अलग अलग स्थानों पर कहीं कहीं पर अनेक घोड़ों की जोड़ (युग्म), हाथी की जोड़, नर की जोड़, किन्नर की जोड़, किम्पुरुष की जोड़, महोरग, गंधर्व और बैलों की जोड़ उत्कीर्ण है जो सर्व रत्नमय है स्वच्छ है यावत् अभिरूप प्रतिरूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे २ तहिं तहिं बहवे हयपंतीओ तहेव जाव पडिरूवाओ। एवं हयवीहीओ जाव पडिरूवाओ। एवं हयमिहुणाइं जाव पडिरूवाइं॥

भावार्थ - उस पद्मवरवेदिका के अलग अलग स्थानों पर कहीं घोड़ों की पंक्तियां-एक दिशावर्ती श्रेणियां यावत् कहीं बैलों की पंक्तियां आदि उत्कीर्ण हैं जो सर्वरत्नमय हैं स्वच्छ हैं यावत् अभिरूप प्रतिरूप हैं। उस पद्मवरवेदिका के अलग अलग स्थानों पर कहीं घोड़ों की वीथियां (दो श्रेणी रूप) यावत् कहीं बैलों की वीथियां उत्कीर्ण हैं जो सर्वरत्नमय हैं स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे २ तहिं तहिं बहवे पउमलयाओ णागलयाओ, एवं असोग० चंपग० चूयवण० वासंति० अइमुत्तग० कुंद० सामलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ जाव सुविहत्तपिंडमंजरिवडिंसगधरीओ सव्वरयणामईओ अच्छाओ सण्हाओ लण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ णीरयाओ णिम्मलाओ णिप्पंकाओ णिक्कंकडच्छायाओ सप्पभाओ समरीयाओ सउज्जोयाओ पासाईयाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ।

भावार्थ - उस पद्मवरवेदिका में स्थान-स्थान पर बहुत सी पद्मलता, नागलता, अशोकलता, चम्पकलता, चूतवनलता (आम्रवन लता), वासंतीलता, अतिमुक्तकलता, कुंदलता, श्यालता नित्य कुसुमित रहती है यावत् सुविभक्त एवं विशिष्ट मंजरी रूप मुकुट को धारण करने वाली हैं। ये लताएं सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, मृदु हैं, चिकनी हैं, घिसी हुई हैं, मंजी हुई हैं, रज रहित है, निर्मल है, पंक रहित है निष्कलंक छवि वाली है, प्रभामय है, किरणमय है, उद्योतमय है। प्रसन्नता पैदा करने वाली, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

(तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे २ तहिं तहिं बहवे अक्खयसोत्थिया पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा)॥

भावार्थ - उस पद्मवरवेदिका में स्थान स्थान पर बहुत से अक्षय स्वस्तिक कहे गये हैं जो सर्वरत्नमय और स्वच्छ हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-पउमवरवेइया पउमवरवेइया?

गोयमा! पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे २ तहिं तहिं वेइयासु वेइयाबाहासु वेइयासीसफलएसु वेइयापुडंतरेसु खंभेसु खंभबाहासु खंभसीसेसु खंभपुडंतरेसु सूईसु सूईमुहेसु सूईफलएसु सूईपुडंतरेसु पक्खेसु पक्खबाहासु पक्खपेरंतेसु बहूइं उप्पलाइं पउमाइं जाव सयसहस्सपत्ताइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं सण्हाइं लण्हाइं घट्ठाइं मट्ठाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णीरयाइं णिम्मलाइं णिप्पंकाइं णिक्कंकडच्छायाइं सप्पभाइं समरीयाइं सउज्जोयाइं पासाइयाइं दरिसणिज्जाइं अभिरूवाइं पडिरूवाइं महया महया वासिक्कच्छत्तसमयाइं पण्णत्ताइं समणाउसो! से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-पउमवरवेइया पउमवरवेइया॥

भावार्थ - हे भगवन्! पद्मवरवेदिका को पद्मवरवेदिका क्यों कहा जाता है?

हे गौतम! पद्मवरवेदिका में स्थान स्थान पर वेदिकाओं में, वेदिकाओं के आसपास में, वेदिकाओं के शीर्ष भाग में, दो वेदिकाओं के बीच के स्थानों में, स्तंभों में, स्तंभों के आसपास, स्तंभों के ऊपरी भाग पर, दो स्तंभों के बीच के अन्तरों में, सूचियों में, सूचियों के मुखों में, सूचियों के फलकों में, दो सूचियों के अंतरों में, पक्षों में, पक्ष के एक देश में, दो पक्षों के अंतराल में बहुत से उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र आदि विविधकमल हैं। वे कमल सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् अभिरूप हैं प्रतिरूप हैं। ये सब कमल वर्षाकाल के समय लगाये गये छत्रों के आकार के हैं। (जैसे खाली कागज पर हाथी आदि के चिन्ह होते हैं। वैसे आये हुए बड़े बड़े आकार के वर्षा ऋतु के समय के छाते के समान चित्र। छोटे स्थानों में छोटे छाते होते हुए भी बड़े जैसे दिखते हैं। जैसे चित्र में बड़े व्यक्ति का फोटू छोटे आकार में होते हुए भी बड़ा जैसा तथा छोटे बच्चे का बड़ा चित्र भी छोटे जैसा प्रतीत होता है।) हे आयुष्मन् श्रमण! इस कारण से पद्मवरवेदिका को पद्मवरवेदिका कहा जाता है।

पउमवरवेइया णं भंते! किं सासया असासया?

गोयमा! सिय सासया सिय असासया॥

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-सिय सासया सिय असासया?

गोयमा! दव्वट्ठयाए सासया वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-सिय सासया सिय असासया॥

भावार्थ - हे भगवन्! पद्मवरवेदिका शाश्वत है या अशाश्वत?

हे गौतम! पद्मवरवेदिका कथंचित् शाश्वत है और कथंचित् अशाश्वत है।

हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि पद्मवरवेदिका कथंचित् शाश्वत है और कथंचित् अशाश्वत है?

हे गौतम! पद्मवरवेदिका द्रव्य की अपेक्षा शाश्वत है और वर्ण, गंध, रस और स्पर्श पर्यायों से अशाश्वत है इसलिये हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि पद्मवरवेदिका कथंचित् शाश्वत है और कथंचित् अशाश्वत है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पउमवरवेइया णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! ण कयावि णासि ण कयावि णत्थि ण कयावि ण भविस्सइ भुविं च भवइ य भविस्सइ य धुवा णियया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा पउमवरवेइया॥ १२५॥

भावार्थ - हे भगवन्! पद्मवरवेदिका काल की अपेक्षा कब तक रहने वाली है?

हे गौतम! पद्मवरवेदिका 'कभी नहीं थी' ऐसा नहीं है 'कभी नहीं है' ऐसा नहीं है, 'कभी नहीं रहेगी' ऐसा भी नहीं है। वह थी, है और रहेगी। वह ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है। यह पद्मवरवेदिका का वर्णन हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जंबूद्वीप की जगती पर स्थित पद्मवरवेदिका का विस्तृत वर्णन किया गया है। जीवाभिगम टीका के वर्णन से तो पद्मवरवेदिका ठोस जैसी लगती है। किन्तु प्राचीन परम्परा से इसे अन्दर से पोलार जैसी समझी गई है। कहीं कहीं पर टीका में वेदिका का 'पाली' (तालाब की पाल) जैसा अर्थ भी किया गया है। वास्तविकता तो ज्ञानीगम्य है।

वनखण्ड का वर्णन

तीसे णं जगईए उप्पिं बाहिं पउमवरवेइयाए एत्थ णं एगे महं वणसंडे पण्णत्ते देसूणाइं दो जायणाइं चक्कवालविक्खंभेणं जगईसमए परिक्खेवेणं, किण्हे किण्होभासे जाव अणेगसगडरहजाणजुग्गपरिमोयणे सुरम्मे पासाईए सण्हे लण्हे घट्ठे मट्ठे णीरए णिप्पंके णिम्मले णिक्कंकडच्छाए सप्पभे समिरीए सउज्जोए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे॥

कठिन शब्दार्थ - वणसंडे - वनखण्ड, **अणेगसगडरहजाणजुग्गपरिमोयणे** - अनेक गाडियां, रथ, यान, युग्य उनके नीचे छोड़ी जाती है

भावार्थ - उस जगती के ऊपर और पद्मवरवेदिका के बाहर एक बड़ा विशाल वनखण्ड कहा गया है। वह वनखण्ड कुछ कम दो योजन गोल विस्तार वाला है और उसकी परिधि जगती की परिधि के समान है। वह वनखण्ड अत्यंत हराभरा होने से तथा छाया प्रधान होने से काला है और काला दिखाई देता है यावत् अनेक गाड़ियां, रथ, यान, युग्य छाया अधिक होने से उसके नीचे छोड़ी जाती हैं। वह वनखण्ड सुरम्य है, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला है, स्वच्छ है, मृदु है, चिकना है, घिसा हुआ है, मंजा हुआ है, नीरज है, निष्पंक है, निर्मल है, निरुपहत कांति वाला है, प्रभावाला है, किरणों वाला है और उद्योत करने वाला है, वह प्रसन्नता पैदा करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वनखण्ड का वर्णन किया गया है। जहां अनेक जाति के उत्तम वृक्ष होते हैं, वह वनखण्ड कहलाता है। कहा भी है - **"एग जाइएहिं रुक्खेहिं वणं अणेगजाइएहिं उत्तमेहिं रुक्खेहिं वणसंडे"**। अर्थात् जहां एक सरीखे वृक्ष हों वह वन और अनेक जाति के उत्तम वृक्ष जहां हो वह वनखण्ड कहलाता है।

जंबूद्वीप की जगती के ऊपर पद्मवरवेदिका है और उसके बाहर कुछ कम दो योजन का जगती के चक्रवाल विष्कंभ के समान एक विशाल वनखण्ड है जहां अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम वृक्षों का समुदाय है। वह वनखण्ड अत्यंत हराभरा तथा छाया प्रधान होने से काला है और काला दिखाई देता है। इसके आगे **'जाव'** (यावत्) शब्द दिया है जिससे निम्न पाठ का ग्रहण समझना चाहिये -

"ते णं पायवा मूलवंता कंदवंता खंधवंता तयावंता सालवंता पवालवंता पत्तपुप्फफल बीयवंता अणुपुव्वसुजाय रुइलवट्टभावपरिणया एगखंधी अणेगसाहप्पसाहविडिमा, अणेगणर-व्वामसुपसारिय-गेज्झ-घणविउलवट्टखंधा अच्छिद्दपत्ता अविरलपत्ता अवाईणपत्ता अणईइपत्ता णिद्धूयजरढपंडुरपत्ता णवहरियभिसंतपत्तंधयार गंभीरदरिसणिज्जा उवविणिग्गयणवतरुणपत्तपल्लव-कोमलुज्जल चलंतकिसलयसुकुमाल सोहियवरंकुरग्गसिहरा, णिच्चं कुसुमिया णिच्चं मउलिया णिच्चं लवइया णिच्चं थवइया णिच्चं गोच्छिया णिच्चं जमलिया णिच्चं जुयलिया णिच्चं विणमिया णिच्चं पणमिया णिच्चं कुसुमिय-मउलिय-लवइय-थवइय-गुलइय-गोच्छिय-जमलिय-जुगलिय विणमिय पणमिय सुविभत्त पडिमंजरिवडंसगधरा सुयबरहिण-मयणसलागा-कोइल-कोरग-भिंगारग-कोंडलग जीवंजीवग णंदिमुह-कविल-पिंगलक्ख-कारंडव-चक्कवाग-कलहंस-सारसाणेग सउणगणमिहुण विचारिय सद्दुण्णइय महुरसणाइयसुरम्मा संपिंडियदप्पिय-भमर-महुयरीपहकरा परिलीयमाणमत्तछप्पय कुसुमासवलोल महुरगुमगुमायंत-गुंजंतदेसभागा अब्भिंतरपुप्फफला बाहिरपत्तछण्णा णीरोगा अकंटगा साउफला णिद्धफला णाणाविहगुच्छगुम्ममंडवग सोहिया विचित्तसुहकेउबहुला वावी-पुक्खरिणी-दीहियासुणिवेसिय रम्मजालघरगा पिंडिमं सुहसुरहिमणोहरं महया गंधद्धणिं णिच्चं मुंचमाणा सुहसेउकेउ बहुला......"

अर्थ - उस वनखण्ड के वृक्षों के मूल बहुत दूर तक जमीन के भीतर गहरे गये हुए हैं, वे प्रशस्त कंद वाले, प्रशस्त स्कंध वाले, प्रशस्त छाल वाले, प्रशस्त शाखा वाले, प्रशस्त किशलय वाले, प्रशस्त पत्र वाले और प्रशस्त फूल, फल और बीज वाले हैं। वे सब पादप समस्त दिशाओं में और विदिशाओं में अपनी-अपनी शाखा प्रशाखाओं द्वारा इस ढंग से फैले हुए हैं कि वे गोल-गोल प्रतीत होते हैं। वे मूलादि क्रम से सुंदर, सुजात और रुचिर (सुहावने) प्रतीत होते हैं। ये वृक्ष एक एक स्कंध वाले हैं। इनका गोल स्कंध इतना विशाल है कि अनेक पुरुष भी अपनी फैलाई हुई बाहुओं में उसे ग्रहण नहीं कर सकते। इन वृक्षों के पत्ते छिद्र रहित हैं, अविरल हैं-इस तरह सटे हुए हैं कि अन्तराल में छेद नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिखाई देता, इनके पत्ते वायु से नीचे नहीं गिरते हैं, इनके पत्तों में ईति-रोग नहीं होता। इन वृक्षों के जो पत्ते पुराने पड़ जाते हैं या सफेद हो जाते हैं वे हवा से गिरा दिये जाते हैं और अन्यत्र डाल दिये जाते हैं। नये और हरे दीप्तिमान पत्तों के झुरमुट से होने वाले अंधकार के कारण इनका मध्यभाग दिखाई न पड़ने से ये दर्शनीय-रमणीय लगते हैं। इनके अग्रशिखर निरन्तर निकलने वाले पल्लवों और कोमल उज्ज्वल तथा कम्पित किशलयों से सुशोभित हैं। ये वृक्ष सदा कुसुमित रहते हैं, नित्य मुकुलित रहते हैं, नित्य पल्लवित रहते हैं, नित्य स्तबकित रहते हैं, नित्य गुल्मित रहते हैं, नित्य गुच्छित रहते हैं, नित्य यमलित रहते हैं, नित्य युगलित रहते हैं, नित्य विनमित रहते हैं एवं नित्य प्रणमित रहते हैं। इस प्रकार नित्य कुसुमित यावत् नित्य प्रणमित बने हुए ये वृक्ष सुविभक्त प्रतिमंजरी रूप अवतंसक को धारण किये रहते हैं। इन वृक्षों के ऊपर शुक्र के जोड़े, मयूरों के जोड़े, मैना के जोड़े, कोकिल के जोड़े, चक्रवाक के जोड़े, कलहंस के जोड़े, सारस के जोड़े इत्यादि अनेक पक्षियों के जोड़े बैठे बैठे बहुत दूर तक सुने जाने वाले उन्नत शब्दों को करते रहते हैं-चहचहाते रहते हैं, इससे इन वृक्षों की सुंदरता में विशेषता आ जाती है। मधु का संचय करने वाले उन्मत्त भ्रमरों और भमरियों का समुदाय उन पर मंडराता रहता है। अन्य स्थानों से आ आकर मधुपान से उन्मत्त भंवरे पुष्पपराग के पान में मस्त बन कर मधुर मधुर गुंजारव से इन वृक्षों को गुंजाते रहते हैं। इन वृक्षों के पुष्प और फल इन्हीं के भीतर छिपे रहते हैं। ये वृक्ष बाहर से पत्रों और पुष्पों से आच्छादित रहते हैं। ये वृक्ष सब प्रकार के रोगों से रहित हैं, कांटों से रहित हैं। इनके फल स्वादिष्ट होते हैं और स्निग्ध स्पर्श वाले होते हैं। ये वृक्ष प्रत्यासन्न नाना प्रकार के गुच्छों से, गुल्मों से, लता मण्डपों से सुशोभित हैं। इन पर अनेक प्रकार की ध्वजाएं फहराती रहती हैं। इन वृक्षों को सींचने के लिये चौकोर बावड़ियों में गोल पुष्करिणियों में लम्बी दीर्घिकाओं में सुंदर जालगृह बने हुए हैं। ये वृक्ष ऐसी विशिष्ट मनोहर सुगंध को छोड़ते रहते हैं कि उससे तृप्ति ही नहीं होती। इन वृक्षों की क्यारियां शुभ है और उन पर जो ध्वजाएं हैं, वे भी अनेक रूप वाली हैं।

तस्स णं वणसंडस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहाणामए-आलिंगपुक्खरेइ वा मुइंगपुक्खरेइ वा सरतलेइ वा करयलेइ वा आयंसमंडलेइ वा चंदमंडलेइ वा सूरमंडलेइ वा उरब्भचम्मेइ वा उसभचम्मेइ वा वराहचम्मेइ वा सीहचम्मेइ वा वग्घचम्मेइ वा विगचम्मेइ वा दीवियचम्मेइ वा अणेगसंकुकीलगसहस्सवियए आवडपच्चावडसेढीपसेढीसोत्थिय-सोवत्थियपूसमाणवद्धमाणमच्छंडग-मगरंडग-जारमार-फुल्लावलि-पउमपत्तसागरतरंग-वासंतिलय-पउमलयभत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं समिरीएहिं सउज्जोएहिं णाणाविहपंचवण्णेहिं तणेहि य मणीहि य उवसोहिए तंजहा-किण्हेहिं जाव सुक्किल्लेहिं॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस वनखण्ड के अंदर अत्यंत सम और रमणीय भूमिभाग है। वह भूमिभाग मुरुज (वाद्य विशेष) के मढे हुए चमड़े के समान समतल है, मृदंग के मढे हुए चमड़े के समान, पानी से भरे सरोवर के तल के समान, हथेली के समान, दर्पण तल के समान, चन्द्रमंडल के समान, सूर्यमंडल के समान, घेंटे के चमड़े के समान, बैल के चमड़े के समान, सूअर के चमड़े के समान, सिंह के चमड़े के समान, व्याघ्र चर्म के समान, भेडिये के चर्म के समान और चीते के चर्म के समान समतल है। इन सब पशुओं का चमड़ा जब शंकु प्रमाण हजारों कीलों से खींचा जाता है तह यह बिल्कुल समतल हो जाता है। वह वनखंड आवर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणी, प्रश्रेणी, स्वस्तिक सौवस्तिक, पुष्यमाणव, वर्धमानक, मत्स्यंडक, मकरंडक, जारमार लक्षण वाली मणियों, नानाविध पंच वर्ण वाली मणियों, पुष्पावली, पद्म पत्र, सागरतरंग, वासंतीलता, पद्मलता आदि विविध चित्रों से युक्त मणियों और तृणों से सुशोभित है। वे मणियां कांति वाली, किरणों वाली, उद्योत करने वाली और काले यावत् सफेद रूप पांच वर्णों वाली है। इस प्रकार पांच रंग की मणियों और तृणों से यह वनखंड सुशोभित है।

विवेचन - उस वनखंड का भूमिभाग अत्यंत रमणीय और समतल है। उस भूमिभाग की समतलता बताने के लिये सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र में विविध उपमाएं दी है। अब उन पांच वर्ण वाली तृणों और मणियों की उपमाओं का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं -

तत्थ णं जे ते किण्हा तणा य मणी य तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहाणामए-जीमूएइ वा अंजणेइ वा खंजणेइ वा कज्जलेइ वा मसीइ वा गुलियाइ वा गवलेइ वा गवलगुलियाइ वा भमरेइ वा भमरावलियाइ वा भमरपत्तगयसारेइ वा जंबुफलेइ वा अद्दारिट्ठेइ वा परपुट्ठएइ वा गएइ वा गयकलभेइ वा कण्हसप्पेइ वा कण्हकेसरेइ वा आगासथिग्गलेइ वा कण्हासोएइ वा किण्हकणवीरेइ वा कण्हबंधुजीवएइ वा, भवे एयारूवे सिया?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, तेसि णं कण्हाणं तणाणं मणीण य इत्तो इट्ठतराए चेव कंततराए चेव पियतराए चेव मणुण्णतराए चेव मणामतराए चेव वण्णेणं पण्णत्ते।

भावार्थ - उन तृणों और मणियों में जो काले वर्ण के तृण और मणियां हैं उनका वर्णन इस प्रकार कहा गया है - जैसे वर्षाकाल के प्रारंभ में जल भरा बादल हो, सौवीर अंजन अथवा अंजन रत्न हो, खञ्जन हो, काजल हो, काली स्याही हो, धुले हुए काजल की गोली हो, भैंसे का सींग हो, भैंसे के सींग से बनी गोली हो, भंवरा हो, भौरों की पंक्ति हो, भंवरों के पंखों के बीच का स्थान हो, जम्बू का फल हो, गीला अरीठा हो, कोयल हो, हाथी हो, हाथी का बच्चा हो, काला सांप हो, काला बकुल हो, बादलों से मुक्त आकाश खण्ड हो, काला अशोक, काला कनेर और काला बंधुजीव वृक्ष हो। हे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवन्! क्या ऐसा काला रंग उन तृणों और मणियों का होता है? हे गौतम! ऐसा अर्थ समर्थ नहीं है। इनसे अधिक इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर उनका वर्ण होता है।

तत्थ णं जे ते णीलगा तणा य मणी य तेसि णं इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहाणामए-भिंगेइ वा भिंगपत्तेइ वा चासेइ वा चासपिच्छेइ वा सुएइ वा सुयपिच्छेइ वा णीलीइ वा णीलीभेएइ वा णीलीगुलियाइ वा सामाएइ वा उच्चंतएइ वा वणराईइ वा हलहरवसणेइ वा मोरग्गीवाइ वा पारेवयगीवाइ वा अयसिकुसुमेइ वा अंजणकेसिगाकुसुमेइ वा णीलुप्पलेइ वा णीलासोएइ वा णीलकणवीरेइ वा णीलबंधुजीवएइ वा, भवे एयारूवे सिया?

णो इणट्ठे समट्ठे, तेसि णं णीलगाणं तणाणं मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव कंततराए चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ते।

भावार्थ - उन तृणों और मणियों में जो नीली मणियां और तृण हैं उनका वर्ण इस प्रकार कहा गया है - जैसे नीला भ्रंग-भिंगोडी-पंखवाला छोटा जंतु-नीला भंवरा हो, नीले भ्रंग का पंख हो, चास (पक्षी विशेष) हो, चास का पंख हो, नीले वर्ण का तोता हो, तोते का पंख हो, नील हो, नील खण्ड हो, नील की गुटिका हो, श्यामक (धान्य विशेष) हो, नीला दंतराग हो, नीली वन राजि हो, बलदेव का नीला वस्त्र हो, मयूर की ग्रीवा हो, कबूतर की ग्रीवा हो, अलसी का फूल हो, अंजन केशिका वनस्पति का फूल हो, नील कमल हो, नीला अशोक हो, नीला कनेर हो, नीला बंधु जीवक हो। हे भगवन्! क्या ऐसा नीला वर्ण उन तृण और मणियों का होता है? हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। इनसे भी अधिक इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर उनका वर्ण होता है।

तत्थ णं जे ते लोहियगा तणा य मणी य तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहाणामए-ससगरुहिरेइ वा उरब्भरुहिरेइ वा णररुहिरेइ वा वराहरुहिरेइ वा महिसरुहिरेइ वा बालिंदगोवएइ वा बालदिवागरेइ वा संझब्भरागेइ वा गुंजद्धराएइ वा जाइहिंगुलुएइ वा सिलप्पवालेइ वा पवालंकुरेइ वा लोहियक्खमणीइ वा लक्खारसएइ वा किमिरागेइ वा रत्तकंबलेइ वा चीणपिट्ठरासीइ वा जासुमणकुसुमेइ वा किंसुयकुसुमेइ वा पालियायकुसुमेइ वा रत्तुप्पलेइ वा रत्तासोगेइ वा रत्तकणवीरेइ वा रत्तबंधुजीवेइ वा, भवे एयारूवे सिया?

णो इणट्ठे समट्ठे, तेसि णं लोहियगाणं तणाण य मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उन तृणों और मणियों में जो लाल वर्ण के तृण और मणियां हैं उनका वर्णन इस प्रकार कहा गया है - जैसे खरगोश का रुधिर हो, भेड का रुधिर हो, मनुष्य का रक्त हो, सूअर का रक्त हो, भैंस का रक्त हो, सद्यजात इन्द्रगोप (लाल रंग का कीडा) हो, उदीयमान सूर्य हो, संध्या राग हो, गुंजा का अर्धभाग हो, उत्तम जाति का हिंगुलु हो, शिला प्रवाल (मूंगा) हो, प्रवालांकुर (नवीन प्रवाल का किशलय) हो, लोहिताक्ष मणि हो, लाख का रस हो, कृमिराग (किरमची रंग) हो, लाल कंबल हो, चीन धान्य का पीसा हुआ आटा हो, जपा का फूल हो, किंशुक का फूल हो, पारिजात का फूल हो, लाल कमल हो, लाल अशोक हो, लाल कनेर हो, लाल बंधुजीवक हो। हे भगवन्! क्या ऐसा उन तृणों और मणियों का वर्ण है? हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। उनका वर्ण इनसे भी अधिक इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर कहा गया है।

तत्थ णं जे ते हालिद्दगा तणा य मणी य तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहाणामए-चंपएइ वा चंपगच्छल्लीइ वा चंपयभेएइ वा हालिद्दाइ वा हालिद्दभेएइ वा हालिद्दगुलियाइ वा हरियालेइ वा हरियालभेएइ वा हरियालगुलियाइ वा चिउरेइ वा चिउरंगरागेइ वा वरकणएइ वा वरकणगणिघसेइ वा सुवण्णसिप्पिएइ वा वरपुरिसवसणेइ वा सल्लइकुसुमेइ वा चंपगकुसुमेइ वा कुहुंडियाकुसुमेइ वा (कोरंटगदामेइ वा) तडउडाकुसुमेइ वा घोसाडियाकुसुमेइ वा सुवण्णजूहियाकुसुमेइ वा सुहरिण्णयाकुसुमेइ वा (कोरिंटवरमल्लदामेइ वा) बीयगकुसुमेइ वा पीयासोएइ वा पीयकणवीरेइ वा पीयबंधुजीएइ वा, भवे एयारूवे सिया?

णो इणट्ठे समट्ठे, ते णं हालिद्दा तणा य मणी य एत्तो इट्ठतरा चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ता।

भावार्थ - उन तृणों और मणियों में जो पीले वर्ण के तृण और मणियां हैं, उनका वर्ण इस प्रकार कहा गया है जैसे - सुवर्ण चम्पक का वृक्ष हो, सुवर्ण चम्पक की छाल हो, सुवर्ण चम्पक का खण्ड हो, हल्दी हो, हल्दी का टुकड़ा हो, हल्दी के सार की गुटिका हो, हरिताल हो, हरिताल का टुकड़ा हो, हरिताल की गुटिका हो, चिकुर (राग द्रव्य विशेष) हो, चिकुर से बना हुआ वस्त्रादि पर रंग हो, श्रेष्ठ स्वर्ण हो, कसौटी पर घिसे हुए स्वर्ण की रेखा हो, स्वर्ण की सीप हो, वासुदेव का वस्त्र हो, सल्लकी का फूल हो, स्वर्ण चम्पक का फूल हो, कुष्माण्ड का फूल हो, कोरंट पुष्प की माला हो, तडवडा (आवली) का फूल हो, घोषातकी का फूल हो, सुवर्ण यूथिका का फूल हो, सुहरण्यिका का फूल हो, बीजक वृक्ष का फूल हो, पीला अशोक हो, पीला कनेर हो, पीला बंधुजीवक हो। हे भगवन्! क्या उन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तृणों और मणियों का वर्ण ऐसा है? हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। उन पीले तृणों और मणियों का वर्ण इनसे भी अधिक इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर है।

तत्थ णं जे ते सुक्किल्लगा तणा य मणी य तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहाणामए-अंकेइ वा संखेइ वा चंदेइ वा कुंदेइ वा कुसुमे(मुए)इ वा दयरएइ वा (दहिघणेइ वा खीरेइ वा खीरपूरेइ वा) हंसावलीइ वा कोंचावलीइ वा हारावलीइ वा बलायावलीइ वा चंदावलीइ वा सारइयबलाहएइ वा धंतधोयरुप्पपट्टेइ वा सालिपिट्ठरासीइ वा कुंदपुप्फरासीइ वा कुमुयरासीइ वा सुक्कछिवाडीइ वा पेहुणमिंजाइ वा बिसेइ वा मिणालियाइ वा गयदंतेइ वा लवंगदलेइ वा पोंडरीयदलेइ वा सिंदुवारमल्लदामेइ वा सेयासोएइ वा सेयकणवीरेइ वा सेयबंधुजीएइ वा, भवे एयारूवे सिया?

णो इणट्ठे समट्ठे, तेसि णं सुक्किल्लाणं तणाणं मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ते।

भावार्थ - उन तृणों और मणियों में जो श्वेत वर्ण वाले तृण और मणियां हैं उनका वर्ण इस प्रकार कहा गया है। जैसे - अंक रत्न हो, शंख हो, चन्द्र हो, कुंद का फूल हो, कुमुद हो, पानी का बिंदु हो (जमा हुआ दही हो, दूध हो, दूध का प्रवाह हो) हंसों की पंक्ति हो, क्रौंच पक्षियों की पंक्ति हो, मुक्ताहारों की पंक्ति हो, चांदी से बने कंकणों की पंक्ति हो, सरोवर की तरंगों में प्रतिबिम्बित चंद्रों की पंक्ति हो, शरदऋतु के बादल हो, अग्नि में तपा कर धोया हुआ चांदी का पाट हो, चावलों का पिसा हुआ आटा हो, कुंद के फूलों की राशि (समुदाय) हो, कुमुदों की राशि हो, सूखी हुई सेम की फली हो, मयूर पिच्छ की मध्यवर्ती मिंजा हो, मृणाल हो, मृणालिका हो, हाथी का दांत हो, लवंग का पत्ता हो, पुण्डरीक की पंखुडियां हो, सिन्दुवार के फूलों की माला हो, सफेद अशोक हो, सफेद कनेर हो, सफेद बंधुजीवक हो। हे भगवन्! क्या उन श्वेत तृणों और मणियों का वर्ण ऐसा है? हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। उन तृणों और मणियों का वर्ण इनसे भी इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर कहा गया है।

तेसि णं भंते! तणाण य मणीण य केरिसए गंधे पण्णत्ते? से जहाणामए-कोट्ठपुडाण वा पत्तपुडाण वा चोयपुडाण वा तगरपुडाण वा एलापुडाण वा (किरिमेरिपुडाण वा) चंदणपुडाण वा कुंकुमपुडाण वा उसीरपुडाण वा चंपगपुडाण वा मरुयगपुडाण वा दमणगपुडाण वा जाइपुडाण वा जूहियापुडाण वा मल्लियपुडाण वा णोमालियपुडाण वा वासंतियपुडाण वा केयइपुडाण वा कप्पूरपुडाण वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(पाडलपुडाण वा) अणुवायंसि उब्भिज्जमाणाण वा णिब्भिज्जमाणाण वा कुट्टिज्जमाणाण वा रुविज्जमाणाण वा उक्किरिज्जमाणाण वा विकिरिज्जमाणाण वा परिभुज्जमाणाण वा भंडाओ वा भंडं साहरिज्जमाणाणं ओराला मणुण्णा घाणमणणिव्वुइकरा सव्वओ समंता गंधा अभिणिस्सवंति, भवे एयारूवे सिया?

णो इणट्ठे समट्ठे, तेसि णं तणाणं मणीण य एत्तो उ इट्ठतराए चेव जाव मणामतराए चेव गंधे पण्णत्ते।

कठिन शब्दार्थ - **कोट्ठपुडाण** - कोष्ट (गंध द्रव्य विशेष) पुटों, **एलापुडाण** - इलाइची के पुटों की, **उब्भिज्जमाणाण** - उघाड़े जाने पर, **णिब्भिज्जमाणाण** - भेदे जाने पर, **कुट्टिज्जमाणाण** - कूटे जाने पर, **रुविज्जमाणाण** - छोटे छोटे टुकड़े (खण्ड) किये जाने पर, **उक्किरिज्जमाणाण** - ऊपर उछाले जाने पर, **विकिरिज्जमाणाण** - बिखेरे जाने पर, **परिभुज्जमाणाण** - उपभोग परिभोग किये जाने पर, **साहरिज्जमाणाण** - डाले जाने पर, **घाणमणणिव्वुइकरा** - नाक और मन को तृप्त करने वाली, **अभिणिस्सवंति** - फैल जाती है

भावार्थ - हे भगवन्! उन तृणों और मणियों की गंध कैसी कही गई है? जिस प्रकार कोष्टपुटों, पत्रपुटों, चोयपुटों, तगरपुटों, इलायचीपुटों, चंदनपुटों, कुंकुमपुटों, उशीर(खस)पुटों, चंपकपुटों, मरवापुटों, दमनकपुटों, जाति(चमेली)पुटों, जूहीपुटों, मल्लिकापुटों, नवमल्लिकापुटों, वासंतीलतापुटों, केवडापुटों और कपूर के पुटों को अनुकूल वायु होने पर उघाड़े जाने पर, भेदे जाने पर, कूटे जाने पर, छोटे छोटे खण्ड किये जाने पर, ऊपर उछाले जाने पर, बिखेरे जाने पर, उपभोग परिभोग किये जाने पर और एक बर्तन से दूसरे बर्तन में डाले जाने पर जैसी व्यापक, मनोज्ञ तथा नाक और मन को तृप्त करने वाली गंध निकल कर चारों ओर फैल जाती है। हे भगवन्! क्या उन तृणों और मणियों की गंध ऐसी है? हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। उन तृणों और मणियों की गंध इससे भी इष्टतर, कांततर, प्रियतर, मनोज्ञतर और मनामतर कही गई है।

तेसि णं भंते! तणाण य मणीण य केरिसए फासे पण्णत्ते? से जहाणामए- आईणेइ वा रूएइ वा बूरेइ वा णवणीएइ वा हंसगब्भतूलीइ वा सिरीसकुसुमणिचएइ वा बालकुमुयपत्तरासीइ वा, भवे एयारूवे सिया?

णो इणट्ठे समट्ठे, तेसि णं तणाण य मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव जाव फासेणं पण्णत्ते।

भावार्थ - हे भगवन्! उन तृणों और मणियों का स्पर्श कैसा कहा गया है? जिस प्रकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आजीनक (मृदुचर्ममयवस्त्र) रुई, बूर वनस्पति, मक्खन, हंस गर्भ तूलिका, शिरीष पुष्प राशि और नवजात कुमुद के पत्रों की राशि का कोमल स्पर्श होता है, क्या उनका स्पर्श ऐसा है? हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। उन तृणों और मणियों का स्पर्श इनसे भी इष्टतर, कांततर, प्रियतर, मनोज्ञतर और मनामतर कहा गया है।

तेसि णं भंते! तणाणं पुव्वावरदाहिणउत्तरागएहिं वाएहिं मंदायं मंदायं एइयाणं वेइयाणं कंपियाणं खोभियाणं चालियाणं फंदियाणं घट्टियाणं उदीरियाणं केरिसए सद्दे पण्णत्ते? से जहाणामए-सिवियाए वा संदमाणियाए वा रहवरस्स वा सछत्तस्स सज्झयस्स सघंटयस्स सतोरणवरस्स सणंदिघोसस्स सखिंखिणिहेमजालपेरंतपरिखित्तस्स हेमवय(खेत्त)चित्तविचित्ततिणिसकणगणिज्जुत्तदारुयागस्स सुपिणिद्धारयमंडल-धुरागस्स कालायससुकयणेमिजंतकम्मस्स आइण्णवरतुरगसुसंपउत्तस्स कुसलणरछेय-सारहिसुसंपरिगहियस्स सरसयबत्तीसतोरण(परि)मंडियस्स सकंकडवडिंसगस्स सचावसरपहरणावरणभरियस्स जोहजुद्धसज्जस्स रायंगणंसि वा अंतेउरंसि वा रम्मंसि वा मणिकोट्टिमतलंसि अभिक्खणं २ अभिघट्टिज्जमाणस्स वा णियट्टिज्जमाणस्स वा (परूढवरतुरंगस्स चंडवेगाइट्ठस्स) ओराला मणुण्णा कण्णमणणिव्वुइकरा सव्वओ समंता सद्दा अभिणिस्सवंति, भवे एयारूवे सिया?

णो इणट्ठे समट्ठे, से जहाणामए-वेयालियाए वीणाए उत्तरमंदामुच्छियाए अंके सुपइट्ठियाए चंदणसारकोणपरिघट्टियाए कुसलणरणारिसंपगहियाए पओसपच्चूस-कालसमयंसि मंदं मंदं एइयाए वेइयाए खोभियाए उदीरियाए ओराला मणुण्णा कण्णमणणिव्वुइकरा सव्वओ समंता सद्दा अभिणिस्सवंति भवे एयारूवे सिया?

णो इणट्ठे समट्ठे, से जहाणामए-किण्णराण वा किंपुरिसाण वा महोरगाण वा गंधव्वाण वा भद्दसालवणगयाण वा णंदणवणगयाण वा सोमणसवणगयाण वा पंडगवणगयाण वा हिमवंतमलयमंदरगिरिगुहसमण्णागयाण वा एगओ सहियाणं संमुहागयाणं समुविट्ठाणं संणिविट्ठाणं पमुइयपक्कीलियाणं गीयरइगंधव्वहरिसियमणाणं गेज्जं पज्जं कत्थं गेयं पयविद्धं पायविद्धं उक्खित्तयं पवत्तयं मंदायं रोइयावसाणं सत्तसरसमण्णागयं अट्ठरससुसंपउत्तं छद्दोसविप्पमुक्कं एकारसगुणालंकारं अट्ठगुणोववेयं गुंजंतवंसकुहरोवगूढं रत्तं तिट्ठाणकरणसुद्धं महुरं समं सुललियं सकुहरगुंजंतवंसतंती-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तलताललयग्गहसुसंपउत्तं मणोहरं मउयरिभियपयसंचारं सुरइं सुणइं वरचारुरुवं दिव्वं णट्टं सज्जं गेयं पगीयाणं, भवे एयारूवे सिया?

हंता गोयमा! एवंभूए सिया॥ १२६॥

कठिन शब्दार्थ - **एइयाणं** - कंपित होने से, **वेइयाणं** - विशेष कंपित होने से, **कंपियाणं** - बार बार कंपित होने से, **खोभियाणं** - क्षोभित होने से, **चालियाणं** - चलित होने से, **फंदियाणं** - स्पंदित होने से, **घट्टियाणं** - संघर्षित होने से, **उदीरियाणं** - प्रेरित किये जाने से, **संखिंखिणिहेमजालपेरंतपरिखित्तस्स** - छोटी छोटी घंटियों (घुंघुरुओं) से युक्त, स्वर्ण की माला समूहों से सब ओर से व्याप्त, **आइण्णवरतुरगसुसंपउत्तस्स** - आकीर्ण-गुणों से युक्त श्रेष्ठ घोड़े, जिसमें जुते हुए हों, **कुसलणरछेयसारहि सुसंपरिग्गहियस्स** - अश्व संचालन रूप कार्य में कुशल एवं दक्ष सारथी से युक्त, **सकंकडवडिंसगस्स** - बकतर सहित मुकुट जिसका हो, **जोहजुद्धसज्जस्स** - योद्धाओं के युद्ध के निमित्त जो सजाया गया हो, **अभिघट्टिज्जमाणस्स** - वेग से चलता हो, **णियट्टिज्जमाणस्स** - आता जाता हो, **वेयालियाए वीणाए** - वैतालिका वीणा-विताल में बजाई जाने वाली वीणा, **पओसपच्चूसकालसमयंसि** - प्रातःकाल और संध्याकाल के समय में, **सहियाणं** - एक स्थान पर एकत्रित, **संमुहागयाणं** - एक दूसरे के सन्मुख, **पमुइयपक्कीलियाणं** - प्रमुदित और क्रीड़ा में मग्न, **गीयरइगंधव्वहरिसियमणाणं** - गीत में जिनकी रति हो और गंधर्व नाट्य आदि से जिनका मन हर्षित हो रहा हो, **गेज्जं** - गद्य, **पज्जं** - पद्य, **कत्थं** - कथ्य, **गेयं** - गेय, **पयविद्धं** - पदबद्ध-एकाक्षरादि रूप, **पायविद्धं** - पादबद्ध-श्लोक का चौथा भाग, **उक्खित्तयं** - उत्क्षिप्त-प्रथम आरंभ किया हुआ, **पवत्तयं** - प्रवर्तक, **मंदायं** - मंदाक, **रोइयावसाणं** - रोचितावसान-जिस गीत का अंत रुचिकर ढंग से शनैः शनैः होता हो, **अट्ठरससुसंपउत्तं** - अष्टरस-संप्रयुक्त-आठ रसों से युक्त, **छद्दोसविप्पमुक्कं**-षड्दोष-विप्रमुक्त-छह दोषों से रहित, **एकारसगुणालंकारं** - एकादशगुणालंकार-ग्यारह गुणों से युक्त, **अट्ठगुणोववेयं** - अष्टगुणोपेत-आठ गुणों वाला, **गुंजंतवंसकुहरोवगूढं** - जो बांसुरी में तीन सुरीली आवाज से गाया गया हो, **रत्तं** - राग से अनुरक्त, **तिट्ठाणकरणसुद्धं** - त्रिस्थानकरणशुद्ध-जो उर, कंठ और सिर इन तीन स्थानों से शुद्ध हो, **सकुहरगुंजंतवंसतंतीतलताललयग्गहसुसंपउत्तं** - बांसुरी, वीणा, ताल, लय के स्वर से मेल खाता हुआ, गाया जाने वाला गेय, **मणोहरं** - मन को हरने वाला, **मउयरिभियपयसंचारं** - मृदुरिभितपदसंचार-मृदु स्वर से युक्त, तंत्री (वीणा) आदि से ग्रहण किये गये स्वर से युक्त पद संचार वाला, **सुरइं** - श्रोताओं को आनंद देने वाला, **सुणइं** - अंगों के सुंदर हावभाव से युक्त, **वरचारुरुवं** - विशिष्ट सुंदर रूप वाला।

भावार्थ - हे भगवन्! उन तृणों और मणियों के पूर्व-पश्चिम-दक्षिण-उत्तर दिशा से आने वाली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वायु द्वारा मंद-मंद कम्पित होने से, विशेष रूप से कम्पित होने से, बार-बार कंपित होने से, क्षोभित होने से, चलित होने से, स्पंदित होने से, संघर्षित होने से तथा प्रेरित किये जाने पर कैसा शब्द होता है?

जैसे शिविका (पालखी विशेष), स्यंदमानिका (बड़ी पालखी) और संग्राम रथ जो छत्र सहित है, ध्वजा सहित है, दोनों तरफ लटकते हुए बड़े बड़े घंटों से युक्त है, श्रेष्ठ तोरण से युक्त है, नंदि घोष से युक्त है, छोटी-छोटी घंटियों-घुंघुरुओं से युक्त स्वर्ण की माला समूहों से जो सब ओर से व्याप्त है, जो हिमवान् पर्वत के चित्र विचित्र मनोहर चित्रों से युक्त, तिनिश की लकड़ी (यह हेमवंत पर्वत की सबसे ऊंची जाति की व अत्यन्त कठोर लकड़ी होती है। रथ में तो लकड़ी का ही प्रयोग होता है जैसे चक्रवर्ती का असि रत्न लोहे का होता है सोने का नहीं। किन्तु वह मूल्य में हीरों से भी ज्यादा कीमती हो जाता है। इसी प्रकार लोहे में कठोरता होती है सोने में नहीं) से बना हुआ, सोने से खचित-मढा हुआ है, जिसके आरे बहुत ही अच्छी तरह लगे हुए हों, जिसकी धुरा मजबूत हो, जिसके पहियों पर लोह की पट्टी चढाई गई हो, आकीर्ण-गुणों से युक्त श्रेष्ठ घोड़े जिसमें जुते हुए हों, जो कुशल एवं दक्ष सारथी से युक्त हो, प्रत्येक में सौ-सौ बाण वाले बत्तीस तूणीर जिसमें चारों ओर लगे हुए हों, कवच जिसका मुकुट हो, धनुष सहित बाण और भाले आदि विविध शस्त्रों तथा उनके आवरणों से जो परिपूर्ण हो तथा जो योद्धाओं के युद्ध निमित्त से सजाया गया हो, ऐसा संग्राम रथ जब राजांगण में या अन्तःपुर में या मणियों से जड़े हुए भूमितल में बार बार वेग पूर्वक चलता हो, आता जाता हो तब जो उदार, मनोज्ञ तथा कान एवं मन को तृप्त करने वाले चौतरफा शब्द निकलते हैं, क्या उन तृणों और मणियों का ऐसा शब्द होता है?

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

हे भगवन्! जैसे ताल के अभाव में भी बजायी जाने वाली वैतालिका-मंगलपाठिका वीणा जब गांधार स्वर के अंतर्गत उत्तरामंदा नामक मूर्छना से युक्त होती है, बजाने वाले व्यक्ति की गोद में भली भांति विधिपूर्वक रखी हुई होती है, चन्दन के सार से निर्मित कोण (वादन दण्ड) से घर्षित की जाती है, बजाने में कुशल नरनारी द्वारा ग्रहण की गई हो ऐसी वीणा को प्रातःकाल और संध्याकाल के समय मंद-मंद और विशेष रूप से कम्पित करने पर, बजाने पर क्षोभित, चलित, स्पंदित, घर्षित और प्रेरित किये जाने पर जैसा उदार मनोज्ञ कान और मन को तृप्ति करने वाला शब्द चौतरफा निकलता है, क्या उन तृणों और मणियों का ऐसा शब्द है?

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

हे भगवन्! जैसे किंनर, किंपुरुष, महोरग और गंधर्व जो भद्रशाल वन, नन्दन वन, सोमनस वन और पंडक वन में स्थित हों, जो हिमवान पर्वत, मलय पर्वत या मेरु पर्वत की गुफा में बैठे हों, एक स्थान पर एकत्रित हुए हों, एक दूसरे के सन्मुख बैठे हों, परस्पर रगड़ से रहित सुखपूर्वक आसीन हों,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समस्थान पर स्थित हों, जो प्रमुदित और क्रीड़ा में मग्न हों, गीत में जिनकी रति हो और गंधर्व नाट्य आदि करने से जिनका मन हर्षित हो रहा हो, उन गंधर्वादि के गद्य, पद्य, कथ्य, पदबद्ध, पादबद्ध, उत्क्षिप्त-प्रथम आरंभ किया हुआ, प्रवर्तक-प्रथम आरंभ से ऊपर आक्षेप पूर्वक होने वाला, मंदाक (मध्य भाग में मंद मंद रूप से स्वरित) इन आठ प्रकार के गेय को, रुचि कर अंत वाले गेय को, सात स्वरों से युक्त गेय को, आठ रसों से युक्त गेय को, छह दोषों से रहित, ग्यारह अलंकारों से युक्त, आठ गुणों से युक्त बांसुरी की सुरीली आवाज से गाये गये गेय को, राग से अनुरक्त, उर-कंठ-शिर ऐसे त्रिस्थान शुद्ध गेय को, मधुर, सम, सुललित, एक तरफ बांसुरी और दूसरी तरफ वीणा बजाने पर दोनों में मेल के साथ गाया गया गेय, ताल संप्रयुक्त, लयसंप्रयुक्त, ग्रहसंप्रयुक्त-बांसुरी तंत्री आदि के पूर्व गृहीत स्वर के अनुसार गाया जाने वाला मनोहर, मृदु और रिभित-तंत्री आदि के स्वर से मेल खाते हुए पद संचार वाले, श्रोताओं को आनंद देने वाले, अंगों के सुंदर झुकाव वाले, श्रेष्ठ सुंदर ऐसे दिव्य गीतों के गाने वाले उन किन्नर आदि के मुख से जो शब्द निकलते हैं, क्या वैसे उन तृणों और मणियों के शब्द होते हैं ?

हाँ, गौतम! उन तृणों और मणियों के कम्पन से होने वाला शब्द इस प्रकार का होता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वनखण्ड के भूमिभाग में जो तृण और मणियाँ हैं उन का स्वर कैसा होता है इसके लिये सूत्रकार ने तीन उपमाओं का उल्लेख किया है।

प्रस्तुत सूत्र में गेय आठ प्रकार का कहा है, वह इस प्रकार है -

१. **गद्य** - जो स्वर संचार से गाया जाता है।

२. **पद्य** - जो छन्द आदि रूप हो।

३. **कथ्य** - कथात्मक गीत।

४. **पदबद्ध** - जो एकाक्षर आदि रूप हो।

५. **पाद बद्ध** - श्लोक का चतुर्थ भाग रूप हो।

६. **उत्क्षिप्त** - जो पहले आरंभ किया हुआ हो।

७. **प्रवर्तक** - प्रथम आरंभ से ऊपर आक्षेपपूर्वक होने वाला।

८. **मंदाक** - मध्य भाग में सकल मूर्च्छनादि गुणोपेत तथा मंद मंद स्वर से संचरित हो।

गेय सात स्वरों, आठ रसों और छह दोषों से रहित तथा आठ गुणों से युक्त होना चाहिये। उनमें सात स्वर ये हैं - षड्ज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत और नैषाद। ये सात स्वर पुरुष के या स्त्री के नाभि देश से निकलते हैं। श्रृंगार आदि आठ रस होते हैं। छह दोष इस प्रकार हैं - भीत, द्रुत, उप्पिच्छ (आकुलता युक्त), उत्ताल, काकस्वर और अनुनास-नाक से गाना, ये गेय के छह दोष हैं। गेय के आठ गुण इस प्रकार हैं - १. **पूर्ण** - जो स्वर कलाओं से परिपूर्ण हो २. **रक्त** - राग से अनुरक्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होकर जो गाया जाय ३. **अलंकृत** - परस्पर विशेष रूप से जो गाया जाय ४. **व्यक्त** - जिसमें अक्षर और स्वर स्पष्ट रूप से गाये जायं ५. **अविघुष्ट** - जो विस्वर और आक्रोश युक्त न हो ६. **मधुर** - जो मधुर स्वर से गाया जाय ७. **सम** - जो ताल, वंश, स्वर आदि से मेल खाता हुआ गाया जाय ८. **सुललित** - जो श्रेष्ठ घोलना प्रकार से श्रोत्रेन्द्रिय को सुखद लगे इस प्रकार गाया जाय। ये गेय के आठ गुण हैं।

तस्स णं वणसंडस्स तत्थ २ देसे २ तहिं २ बहवे खुड्डा खुड्डियाओ वावीओ पुक्खरिणीओ गुंजालियाओ दीहियाओ सराओ सरपंतियाओ सरसरपंतीओ बिलपंतीओ अच्छाओ सण्हाओ रययामयकूलाओ वइरामयपासाणाओ तवणिज्जमयतलाओ वेरुलियमणिफालियपडलपच्चोयडाओ समतीराओ णवणीयतलाओ सुवण्ण-सुब्भ(ज्झ)रययमणिवालुयाओ सुहोयारासुउत्ताराओ णाणामणितित्थसुबद्धाओ चाउ(चउ)क्कोणाओ समतीराओ आणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीयलजलाओ संछण्णपत्तभिसमुणालाओ बहुउप्पलकुमुयणलिणसुभगसोगंधियपोंडरीयसय-पत्तसहस्सपत्तफुल्लकेसरोवइयाओ छप्पयपरिभुज्जमाणकमलाओ अच्छविमलसलिल-पुण्णाओ परिहत्थभमंतमच्छकच्छभअणेगसउणमिहुणपरिचरियाओ पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खित्ताओ पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ताओ अप्पेगइयाओ आसवोदाओ अप्पेगइयाओ वारुणोदाओ अप्पेगइयाओ खीरोदाओ अप्पेगइयाओ घओदाओ अप्पेगइयाओ (इक्खु)खोदोदाओ (अमयरससमरसोदाओ) अप्पेगइयाओ पगईए उदग (अमय) रसेणं पण्णत्ताओ पासाईयाओ ४, तासि णं खुड्डियाणं वावीणं जाव बिलपंतियाणं तत्थ २ देसे २ तहिं २ जाव बहवे तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता।

कठिन शब्दार्थ - सरसरपंतीओ - सरसरपंक्तियां-जिन तालाबों में कुएं का पानी नालियों द्वारा लाया जाता है, **रययामयकुलाओ** - चांदी के बने हुए किनारे, **वइरामयपासाणाओ** - वज्रमय पाषाण, **सुवण्णसुज्झरययमणिवालुयाओ** - स्वर्ण और शुद्ध चांदी (रजत विशेष) की रेत, **सुहोयारासुउत्ताराओ**- सुखपूर्वक प्रवेश और निष्क्रमण योग्य, **आणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीयजलाओ** - जिनका जलस्थान क्रमशः गहरा और जिनका जल अगाध और शीतल है, **संछण्णपत्तभिसमुणालाओ** - ढंके हुए पद्मिनी के पत्र, कंद और पद्मनाल, **परिहत्थभमंतमच्छकच्छभ अणेगसउणमिहुणपरिचरियाओ** - बहुत सारे मत्स्य और कच्छप तथा पक्षियों के जोड़े इधर उधर घूमते रहते हैं, **आसवोदाओ** - आसव जैसे स्वाद वाला पानी, **वारुणोदाओ** - वारुणसमुद्र जैसा जल, **खीरोदाओ** - दूध के स्वाद वाला जल, **उदगरसेणं** - उदक रस जैसा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस वनखण्ड के मध्य उस उस भाग में उस उस स्थान पर बहुत सी छोटी छोटी चौकोनी बावडियां हैं, गोल गोल अथवा कमल वाली पुष्करिणियां हैं, जगह जगह नहरों वाली दीर्घिकाएं हैं, टेढीमेढी गुंजालिकाएं हैं, जगह जगह सरोवर है, सरोवरों की पंक्तियां है, अनेक सरसर पंक्तियां हैं, बहुत से कुओं की पंक्तियां हैं। वे स्वच्छ और मृदुपुद्गलों से बनी हुई हैं। इनके तीर सम और चांदी के बने हैं, किनारे पर लगे पाषाण वज्रमय हैं, तलभाग तपनीय-स्वर्ण का बना हुआ है। इनके तटवर्ती अति उन्नत प्रदेश वैडूर्यमणि एवं स्फटिक के बने हैं। मक्खन के समान सुकोमल इनके तल हैं। स्वर्ण और शुद्ध चांदी (रजत विशेष) की रेत (बालु) है। ये सब जलाशय सुखपूर्वक प्रवेश और निष्क्रमण के योग्य है। इनके घाट नानाप्रकार की मणियों से मजबूत बने हुए हैं। कुएं और बावड़ियां चौकोन है। इनके जलस्थान क्रमशः नीचे नीचे गहरे हैं उनका जल अगाध और शीतल है। इनमें जल से ढंके हुए पद्मिनी के पत्र, कंद और पद्मनाल हैं। उनमें बहुत से उत्पल, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक, पुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र खिले रहते हैं, पराग से संपन्न हैं। जिनका भंवरे रसपान करते रहते हैं। ये सब जलाशय स्वच्छ और निर्मल जल से परिपूर्ण हैं जिनमें बहुत से मच्छ (मत्स्य), कच्छप और पक्षियों के जोड़े इधर उधर घूमते रहते हैं। प्रत्येक जलाशय वनखण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ है और प्रत्येक जलाशय पद्मवरवेदिका से युक्त है। इन जलाशयों में से कितनेक का पानी आसव जैसे स्वाद वाला, कितनेक का वारुण समुद्र के जल जैसा, किन्हीं का जल दूध जैसा, किन्हीं का घी जैसा, किन्हीं का इक्षुरस जैसा, किन्हीं के जल का स्वाद अमृतरस जैसा और किन्हीं का जल स्वभाव से ही उदक रस जैसा है। ये सब जलाशय प्रसन्नता पैदा करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं। उन छोटी बावड़ियों यावत् कूपों में उस उस भाग उस उस स्थान में बहुत से विशिष्ट त्रिसोपान कहे गये हैं।

तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा - वइरामया णेमा रिट्ठामया पइट्ठाणा वेरुलियामया खंभा सुवण्णरुप्पामया फलगा वइरामया संधी लोहियक्खमईओ सूईओ णाणामणिमया अवलंबणा अवलंबणबाहाओ पासाइयाओ ४। तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ पत्तेयं २ तोरणा प०॥

कठिन शब्दार्थ - **लोहियक्खमईओ** - लोहिताक्ष रत्नों की, **अवलंबणा** - अवलंबन-उतरने चढने के लिये आजू बाजू में लगे हुए दण्ड समान आधार, **अवलंबणबाहाओ** - अवलम्बन बाहा-जिनके सहारे अवलम्बन रहता है।

भावार्थ - उन विशिष्ट त्रिसोपानों का वर्णन इस प्रकार है - वज्रमय उसकी नींव है, रिष्ट रत्नों के उसके पाये (प्रतिष्ठान) हैं, वैडूर्यरत्न के स्तंभ हैं, सोने और चांदी के पटिये (फलक) हैं, वज्रमय उनकी संधियां हैं, लोहिताक्ष रत्नों की सूइयां (कीलें) हैं, नाना मणियों के अवलम्बन हैं और नाना मणियों की बनी हुई अवलम्बन बाहा हैं। उन विशिष्ट सोपानों के आगे प्रत्येक के तोरण कहे गये हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ते णं तोरणा णाणामणिमयखंभेसु उवणिविट्ठसण्णिविट्ठा विविहमुत्तंतरोवचिया विविहतारारूवोवचिया ईहामियउसभतुरगणरमगरविहगवालगकिण्णररुरुसरभचमर-कुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्ता खंभुग्गयवइरवेइयापरिगयाभिरामा विज्जाहरजमल-जुयलजंतजुत्ताविव अच्चिसहस्समालणीया रूवगसहस्सकलिया भिसमाणा भिब्भिसमाणा चक्खुल्लोयणलेसा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाईया ४।

भावार्थ - वे तोरण नाना प्रकार की मणियों के बने हुए हैं, नाना मणियों के बने हुए स्तंभों पर स्थापित हैं, निश्चल रूप से रखे हुए हैं, अनेक प्रकार की रचनाओं से युक्त मोती उनके बीच में लगे हुए हैं। वे तोरण विविध ताराओं से सुशोभित हैं। उन तोरणों में ईहामृग (मृग विशेष), बैल, घोड़ा, मनुष्य, मगर, पक्षी, व्याल, किन्नर, मृग, सरभ, हाथी, वनलता और पद्मलता के चित्र बने हुए हैं। इन तोरणों के स्तंभों पर वज्रमयी वेदिकाएं होने से वे बहुत ही सुंदर लगते हैं। समश्रेणी विद्याधरों के युगलों की विशिष्ट शक्ति के प्रभाव से ये तोरण हजारों किरणों से प्रभासित हो रहे हैं, हजारों रूपकों से युक्त हैं, दीप्यमान हैं, विशेष दीप्यमान हैं, देखने वालों के नेत्र उन तोरणों पर टिक जाते हैं। उनका स्पर्श बहुत ही शुभ तथा उनका रूप बहुत ही शोभायुक्त लगता है। वे तोरण प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता, तं०-सोत्थिय-सिरिवच्छणंदियावत्तवद्धमाणभद्दासणकलसमच्छदप्पणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा। तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे किण्हचामरज्झया णीलचामरज्झया लोहियचामरज्झया हालिद्दचामरज्झया सुक्किल्लचामरज्झया अच्छा सण्हा रुप्पपट्टा वइरदंडा जलयामलगंधिया सुरूवा पासाईया ४। तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे छत्ताइछत्ता पडागाइपडागा घंटाजुयला चामरजुयला उप्पलहत्थगा जाव सयसहस्स-वत्तहत्थगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

कठिन शब्दार्थ - किण्हचामरज्झया - काले वर्ण वाले चामरों से युक्त ध्वजाएं, **उप्पलहत्थगा** - उत्पल हस्तक-कमलों के समूह।

भावार्थ - उन तोरणों के ऊपर बहुत से आठ आठ मंगल कहे गये हैं - १. स्वस्तिक २. श्रीवत्स ३. नंदिकावर्त ४. वर्द्धमान ५. भद्रासन ६. कलश ७. मत्स्य और ८. दर्पण। ये आठ मंगल सर्वरत्नमय, सूक्ष्म पुद्गलों के बने हुए प्रासादिक यावत् प्रतिरूप हैं।

उन तोरणों के ऊर्ध्वभाग में अनेकों कृष्ण वर्ण वाले चामरों से युक्त ध्वजाएं हैं, नीले वर्ण वाले

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

चामरों से युक्त ध्वजाएं हैं, लाल वर्ण वाले चामरों से युक्त ध्वजाएं हैं, पीले वर्ण के चामरों से युक्त ध्वजाएं हैं और श्वेत वर्ण वाले चामरों से युक्त ध्वजाएं हैं। ये ध्वजाएं स्वच्छ हैं, मृदु हैं। इन ध्वजाओं के ऊपर का पट्ट चांदी का है, दण्ड वज्ररत्न के हैं, गंध कमल के समान है, ये सुरम्य सुंदर प्रासादिक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

इन तोरणों के ऊपर छत्रातिछत्र-एक के ऊपर दूसरा, दूसरे के ऊपर तीसरा छत्र-इस तरह अनेक छत्र हैं, एक के ऊपर एक, इस तरह अनेक पताकाएं हैं। इन तोरणों पर अनेक घंटायुगल हैं, चामर युगल हैं और अनेक उत्पलहस्तक यावत् शतपत्र-सहस्रपत्र हस्तक-कमलों के समूह हैं। ये सर्व रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

तासि णं खुड्डियाणं वावीणं जाव बिलपंतियाणं तत्थ तत्थ देसे २ तहिं तहिं बहवे उप्पायपव्वया णियइपव्वया जगइपव्वया दारुपव्वयगा दगमंडवगा दगमंचगा दगमालगा दगपासायगा ऊसडा खुल्ला खडहडगा अंदोलगा पक्खंदोलगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा। तेसु णं उप्पायपव्वएसु जाव पक्खंदोलएसु बहवे हंसासणाइं कोंचासणाइं गरुलासणाइं उण्णयासणाइं पणयासणाइं दीहासणाइं भद्दासणाइं पक्खासणाइं मगरासणाइं उसभासणाइं सीहासणाइं पउमासणाइं दिसासोवत्थियासणाइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं सण्हाइं लण्हाइं घट्ठाइं मट्ठाइं णीरयाइं णिम्मलाइं णिप्पंकाइं णिक्कंकडच्छायाइं सप्पभाइं समिरीयाइं सउज्जोयाइं पासाइयाइं दरिसणिज्जाइं अभिरूवाइं पडिरूवाइं॥

कठिन शब्दार्थ - **उप्पायपव्वया** - उत्पात पर्वत-जहां देव देवियां क्रीड़ा निमित उत्तरवैक्रिय शरीर की रचना करते हैं, **णियइपव्वया** - नियति पर्वत-जो वाणव्यंतर देवदेवियों के नियत रूप से भोगने में आते हैं, **दगमंडवगा** - स्फटिक के मंडप, **ऊसडा** - ऊंचे, **खुल्ला** - छोटे, **आंदोलगा** - आंदोलक (झूले), **पक्खंदोलगा** - पक्षियों के झूले, **हंसासणाइं** - जिस आसन के नीचे भाग में हंस का चित्र हो।

भावार्थ - उन छोटी बावड़ियों यावत् कूप पंक्तियों में उन उन स्थानों में उन उन भागों में बहुत से उत्पात पर्वत हैं, नियति पर्वत हैं, जगती पर्वत हैं, दारु पर्वत हैं, स्फटिक के मण्डप हैं, स्फटिक रत्न के मंच हैं, स्फटिक के माले हैं, महल हैं जो कोई तो ऊंचे हैं, कोई छोटे हैं कई छोटे किंतु लंबे हैं वहां बहुत से आंदोलक (झूले) हैं, पक्षियों के आंदोलक हैं। ये सर्व रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

उन उत्पात पर्वतों में यावत् पक्षियों के झूलों में बहुत से हंसासन, क्रौंचासन, गरुडासन, उन्नतासन, प्रणतासन, दीर्घासन, भद्रासन, पक्ष्यासन, मकरासन, वृषभासन, सिंहासन, पद्मासन और दिशा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वस्तिक आसन हैं। ये सब सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, मृदु हैं, स्निग्ध हैं, घिसे हुए हैं, मंजे हुए हैं, नीरज है, निर्मल हैं, निष्पंक हैं निरुपहतकांति वाले हैं, प्रभामय हैं, किरणों वाले हैं, उद्योत वाले हैं, प्रसन्नता पैदा करने वाले हैं, दर्शनीय हैं, अभिरूप हैं और प्रतिरूप हैं।

तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे २ तहिं तहिं बहवे आलिघरा मालिघरा कयलिघरा लयाघरा अच्छणघरा पेच्छणघरा मज्जणघरगा पसाहणघरगा गब्भघरगा मोहणघरगा सालघरगा जालघरगा कुसुमघरगा चित्तघरगा गंधव्वघरगा आयंसघरगा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा॥ तेसु णं आलिघरएसु जाव आयंसघरएसु बहूइं हंसासणाइं जाव दिसासोवत्थियासणाइं सव्वरयणामयाइं जाव पडिरूवाइं।

कठिन शब्दार्थ - **आलिघरा** - आलिगृह-जिन घरों में आलि नामक वनस्पति की प्रधानता है, **मालिघरा** - मालिगृह-जिन घरों में मालि नामक वनस्पति की प्रचुरता है वे मालिगृह हैं, **अच्छणघरा** - अवस्थानगृह-धर्मशाला के समान ऐसे स्थान जहां व्यंतर देव देवियां आकर अपनी इच्छानुसार आनंद से ठहरते हैं, **पेच्छणघरा** - प्रेक्षणगृह-नाटकघर, **मज्जणघरगा** - स्नानघर, **पसाहणघरगा** - प्रसाधन गृह, **गब्भघरगा** - गर्भ गृह, **मोहणघरगा** - मोहनघर-वासभवन-रतिक्रीडार्थ घर, **सालघरगा** - शालागृह-पट्टशाला प्रधान घर, **गंधव्वघरगा** - गंधर्वगृह-गीत नृत्य के अभ्यास योग्य घर, **आयंसघरगा** - आदर्शगृह-दर्पणमय गृह।

भावार्थ - उस वनखण्ड के उन उन स्थानों और उन उन भागों में बहुत से आलि घर, मालि घर, कदली घर, लता घर, अवस्थान घर, प्रेक्षण गृह-नाटक घर, स्नान घर, प्रसाधन घर, मोहन घर, शाला घर, जालि घर (जालि प्रधान गृह) पुष्प घर, चित्र घर, गंधर्व घर और आदर्श घर हैं। ये सर्व रत्नमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

उन आलि घरों यावत् आदर्श घरों में बहुत से हंसासन यावत् दिशा स्वस्तिक आसन रखे हुए हैं। ये सर्व रत्नमय हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे २ तहिं तहिं बहवे जाइमंडवगा जूहियामंडवगा मल्लियामंडवगा णवमालियामंडवगा वासंतीमंडवगा दधिवासुयामंडवगा सूरिल्लिमंडवगा तंबोलीमंडवगा मुद्दियामंडवगा णागलयामंडवगा अइमुत्तमंडवगा अप्फोयामंडवगा मालुयामंडवगा सामलयामंडवगा (सव्वरयणामया) णिच्चं कुसुमिया णिच्चं जाव पडिरूवा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - जाइमंडवगा - जाई मण्डप-चमेली के फूलों से लदे हुए मण्डप (कुंज), **मालुयामंडवगा** - मालुका (एक गुठली वाले फलों के वृक्षों) का मंडप।

भावार्थ - उस वनखण्ड के उन उन स्थानों और उन उन भागों में बहुत से जाई मण्डप हैं, जूही मण्डप हैं, मल्लिका मण्डप हैं, नवमालिका मण्डप हैं, वासन्तीलता मण्डप हैं, दधिवासुका (वनस्पति विशेष) का मण्डप हैं, सूरिल्ली मण्डप, तांबूली (नागवल्ली) मण्डप, मुद्रिका (द्राक्षा) मण्डप, नागलता मण्डप, अतिमुक्तक मण्डप, अप्फोया (वनस्पति विशेष) मण्डप, मालुका मण्डप और श्यामलता मण्डप हैं। ये नित्य कुसुमित, नित्य पल्लवित रहते हैं यावत् ये सर्वरत्नमय हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

तेसु णं जाइमंडवएसु जाव सामलयामंडवएसु बहवे पुढविसिलापट्टगा पण्णत्ता, तंजहा - अप्पेगइया हंसासणसंठिया अप्पेगइया कोंचासणसंठिया अप्पेगइया गरुलासणसंठिया अप्पेगइया उण्णयासणसंठिया अप्पेगइया पणयासणसंठिया अप्पेगइया दीहासणसंठिया अप्पेगइया भद्दासणसंठिया अप्पेगइया पक्खासणसंठिया अप्पेगइया मगरासणसंठिया अप्पेगइया उसभासणसंठिया अप्पेगइया सीहासणसंठिया अप्पेगइया पउमासणसंठिया अप्पेगइया दिसासोत्थियासणसंठिया० प० तत्थ बहवे वरसयणासणविसिट्ठसंठाणसंठिया पण्णत्ता समणाउसो! आइण्णगरूयबूरणवणीय-तूलफासा मउया सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा॥

भावार्थ - उन जाति मण्डपों में यावत् श्यामलता मण्डपों में बहुत से पृथ्वी शिलापट्टक कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - जिनमें से कोई हंसासन की आकृति वाले हैं, कोई क्रौंचासन के समान स्थित है, कोई गरुडासन की आकृति के हैं, कोई उन्नतासन की आकृति के हैं, कोई प्रणतासन की आकृति के हैं, कोई भद्रासन की आकृति के हैं, कोई दीर्घासन की आकृति के हैं, कितनेक पक्ष्यासन के समान, कितनेक मकरासन, कितनेक वृषभासन, कितनेक सिंहासन, कितनेक पद्मासन और कितनेक दिशा स्वस्तिक आसन की आकृति वाले हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! वहां पर अनेक पृथ्वी शिलापट्टक, जितने विशिष्ट चिह्न, जितने विशिष्ट नाम और जितने प्रधान शयन एवं आसन हैं उनके समान आकृति के हैं। उनका स्पर्श आजिनक (मृग चर्म), रुई, बूर वनस्पति, मक्खन तथा हंस तूल के समान मुलायम हैं, मृदु हैं। वे सर्व रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा देवीओ य आसयंति सयंति चिट्ठंति णिसीयंति तुयट्टंति रमंति ललंति किलंति मोहंति पुरापोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरिक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाणं फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **पुरापोराणाणं** - पूर्वभव में किये हुए, **सुचिण्णाणं** - शुभ आचरणों-धर्मानुष्ठानों से, **सुपरिक्कंताणं** - शुभ पराक्रमों का, **कल्लाणं** - कल्याण रूप, **फलवित्तिविसेसं** - फल विपाक को

भावार्थ - वहां बहुत से वाणव्यंतर देव और देवियां सुखपूर्वक विश्राम करती हैं, लेटती हैं, खड़ी रहती हैं, बैठती हैं, करवट बदलती हैं, रमण करती हैं, इच्छानुसार आचरण करती हैं, क्रीड़ा करती हैं, रति क्रीड़ा करती हैं इस प्रकार वे देव देवियां पूर्वभव में किये हुए धर्मानुष्ठानों का तपस्या आदि शुभ पराक्रमों का शुभ और कल्याणकारी कर्मों के फल विपाक का अनुभव करते हुए विचरते हैं।

तीसे णं जगईए उप्पिं अंतो पउमवरवेइयाए एत्थ णं एगे महं वणसंडे पण्णत्ते देसूणाइं दो जोयणाइं विक्खंभेणं वेइयासमएणं परिक्खेवेणं किण्हे किण्होभासे वणसंडवण्णओ मणितणसद्दविहूणो णेयव्वो, तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा देवीओ य आसयंति सयंति चिट्ठंति णिसीयंति तुयट्टंति रमंति ललंति कीडंति मोहंति पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरिक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाणं फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति॥ १२७॥

भावार्थ - उस जगती के ऊपर और पद्मवरवेदिका के अंदर के भाग में एक बड़ा वनखण्ड कहा गया है जो कुछ कम दो योजन विस्तार वाला वेदिका के समान परिधि वाला है। जो काला और काली प्रभा वाला है इत्यादि वनखण्ड का सारा वर्णन कह देना चाहिए। विशेषता यह है कि यहां तृणों और मणियों के शब्द का वर्णन नहीं कहना चाहिये।

यहां बहुत से वाणव्यंतर देव देवियां सुखपूर्वक विश्राम करते हैं, लेटते हैं, खड़े रहते हैं, बैठते हैं, करवट बदलते हैं, रमण करते हैं, इच्छानुसार क्रियाएं करते हैं, क्रीड़ा करते हैं, रतिक्रीड़ा करते हैं और अपने पूर्वभव में किये हुए अच्छे धर्माचरणों का, तपस्या आदि शुभ पराक्रमों का, किये गये शुभ कर्मों का कल्याणकारी फल विपाक का अनुभव करते हुए विचरते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पद्मवरवेदिका के पहले और जगती के ऊपर जो वनखण्ड है उसका वर्णन किया गया है

जंबूद्वीप के द्वारों का वर्णन

जंबुद्दीवस्स णं भंते! दीवस्स कइ दारा पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तंजहा - विजए वेजयंते जयंते अपराजिए॥ १२८॥

भावार्थ - हे भगवन्! जंबूद्वीप नामक द्वीप के कितने द्वार हैं?

हे गौतम! जंबूद्वीप के चार द्वार हैं। वे इस प्रकार हैं - १. विजय २. वैजयंत ३. जयन्त और ४. अपराजित।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहि णं भंते! जंबुद्दीवस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए जंबुद्दीवे दीवे पुरच्छिमपेरंते लवणसमुद्दपुरच्छिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीयाए महाणईए उप्पिं एत्थ णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि जोयणाइं *विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं सेए वरकणगथूभियागे ईहामियउसभतुरगणरमगरविहगवालगकिण्णररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्ते* खंभुग्गयवरवइरवेइयापरिगयाभिरामे विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्तेइव अच्चीसहस्स-मालिणीए रूवगसहस्सकलिए भिसमाणे भिब्भिसमाणे चक्खुल्लोयणलेसे सुहफासे सस्सिरीयरूवे वण्णो दारस्स तस्सिमो होइ तं०-वइरामया णिम्मा रिट्ठामया पइट्ठाणा वेरुलियामया खंभा जायरूवोवचियपवरपंचवण्णमणिरयणकोट्टिमतले हंसगब्भमए एलुए गोमेज्जमए इंदक्खीले लोहियक्खमईओ दारचेडीओ जोइरसामए उत्तरंगे वेरुलियामया कवाडा वइरामया संधी लोहियक्खमईओ सूईओ णाणामणिमया समुग्गगा वइरामई अग्गलाओ अग्गलपासाया वइरामई आवत्तणपेढिया अंकुत्तरपासए णिरंतरियघणकवाडे भित्तीसु चेव भित्तीगुलिया छप्पण्णा तिण्णि होंति गोमाणसी तत्तिया णाणामणिरयणवालरूवगलीलट्ठियसालिभंजियागे वइरामए कूडे रययामए उस्सेहे सव्वतवणिज्जमए उल्लोए णाणामणिरयणजालपंजरमणिवंसगलोहियक्ख-पडिवंसगरययभोम्मे अंकामया पक्खबाहाओ जोइरसामया वंसा वंसकवेल्लुगा य रययामई पट्टियाओ जायरूवमई ओहाडणी वइरामई उवरि पुञ्छणी सव्वसेयरययामए च्छायणे अंकमयकणगकूडतवणिज्जथूभियाए सेए संखतलविमलणिम्मलदहिघण-गोखीरफेणरययणिगरप्पगासे तिलगरयणद्धचंदचित्ते णाणामणिमयदामालंकिए अंतो य बहिं च सण्हे तवणिज्जरुइलवालुयापत्थडे सुहप्फासे सस्सिरीयरूवे पासाईए ४।।

भावार्थ - हे भगवन्! जम्बूद्वीप नामक द्वीप का विजय द्वार कहां कहा गया है?

हे गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व में पैतालीस हजार योजन आगे जाने पर तथा जंबूद्वीप के पूर्वान्त में, लवणसमुद्र के पूर्वार्ध के पश्चिम भाग में सीता महानदी के ऊपर जंबूद्वीप का विजयद्वार कहा गया है। यह द्वार आठ योजन का ऊंचा, चार योजन का चौड़ा और चार योजन का इसका प्रवेश है। अंक रत्न का बना हुआ होने से इसका वर्ण सफेद है। इसका शिखर श्रेष्ठ सोने का है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस द्वार पर ईहामृग, वृषभ, घोड़ा, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु (मृग), सरभ (अष्टापद) चमर, हाथी, वनलता और पद्मलता के विचित्र चित्र बने हुए हैं। खंभों पर वज्रवेदिकाओं के कारण यह द्वार अत्यंत आकर्षक है। यह द्वार ऐसा लगता है मानो विशिष्ट विद्याशक्ति के धारक समश्रेणी के विद्याधरों के युगलों की शक्ति विशेष से प्रभासित हो रहा हो। यह द्वार हजार रूपकों से युक्त है। यह दीप्तिमान है, विशिष्ट दीप्तिमान है देखने वालों के नेत्र इसी पर टिक जाते हैं। इसका स्पर्श बहुत ही शुभ है या सुखरूप है। इसका रूप बहुत ही शोभा युक्त है। यह द्वार प्रसन्नता पैदा करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है। इस द्वार का विशेष वर्णन इस प्रकार हैं - इसकी नींव वज्रमय है। इसके पाये रिष्ट रत्न के बने हुए हैं। इसके स्तंभ वैडूर्य रत्न के हैं। इसका भूमितल स्वर्ण से उपचित और प्रधान पांच वर्णों की मणियों और रत्नों से जटित है। इसकी देहली हंसगर्भ रत्न की, इन्द्रकील गोमेयक रत्न की और द्वार शाखाएं लोहिताक्ष रत्नों की बनी हुई है। इसका उत्तरंग-द्वार पर तिर्यक् रखा हुआ काष्ठ ज्योतिरस रत्न का और किवाड़ वैडूर्य मणि के हैं। दो पटियों को जोड़ने वाली कीले लोहिताक्ष रत्न की हैं, संधियां वज्रमय हैं। इनके समुद्गक-सूतिकागृह नाना मणियों के हैं। इसकी अर्गला और अर्गला रखने का स्थान वज्ररत्नों का है। इसकी आवर्तनपीठिका वज्ररत्न की है। किवाड़ों का भीतरी भाग अंक रत्न का है। इसके दोनों किवाड़ अंतररहित और सघन है। उस द्वार के दोनों तरफ की भित्तियों में १६८ भित्तिगुलिकापीठक तुल्य आलिया है-और १६८ ही गोमानसी-शय्याएं (पलंग विशेष) हैं। इस द्वार पर नाना मणिरत्नों के सर्पों के चित्र बने हैं तथा लीला करती हुई पुतलियां भी नाना मणियों की बनी हुई है। इस द्वार का कूट वज्ररत्नमय है और कूटभाग का शिखर चांदी का है। उस द्वार की छत के नीचे का भाग तपनीय स्वर्ण का है। इस द्वार के झरोखे मणिमय बांस वाले और लोहिताक्षमय प्रतिबांस वाले तथा रजतमय भूमि वाले हैं। इसके पक्ष और पक्ष बाहु अंक रत्न के बने हुए हैं। ज्योतिरस रत्न के बांस और बांसकवेलु (छप्पर) हैं, रजतमयी पट्टिकाएं हैं, जातरूप स्वर्ण की ओहाडणी हैं, वज्ररत्नमय ऊपर की पुंछणी हैं और सर्व श्वेत रजतमय आच्छादन है। बाहुल्य से अंकरत्नमय, कनकमय कूट तथा स्वर्णमय स्तूपिका-लघु शिखर वाला यह विजयद्वार है। उस द्वार की सफेदी शंख तल, निर्मल जमे हुए दही, गाय के दूध के फेन और चांदी के समुदाय के समान है। तिलक रत्नों और अर्द्धचन्द्रों से वह नाना रूप वाला है। नाना प्रकार की मणियों की माला से वह अलंकृत है, अन्दर और बाहर से मृदु पुद्गल स्कंधों से बना हुआ है। तपनीय स्वर्ण की रेत का जिसमें प्रस्तार है। ऐसा वह विजयद्वार सुखद, शुभ स्पर्श वाला, प्रासादीक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है।

विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो चंदणकलस-परिवाडीओ पण्णत्ताओ, ते णं चंदणकलसा वरकमलपइट्ठाणा सुरभिवरवारिपडिपुण्णा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चंदणकयचच्चागा आबद्धकंठेगुणा पउमुप्पलपिहाणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा महया महया महिंदकुंभसमाणा पण्णत्ता समणाउसो!

कठिन शब्दार्थ - णिसीहियाए - नैषेधिकाएं-बैठने के स्थान, **वरकमलपइट्ठाणा** - श्रेष्ठ कमलों पर प्रतिष्ठित, **सुरभिवरवारिपडिपुण्णा** - सुगंधित और श्रेष्ठ जल से परिपूर्ण, **आबद्धकंठेगुणा** - कंठों में मौली (लच्छा) बंधी हुई है, **पउमुप्पलणिहाणा** - पद्म कमलों का ढक्कन, **महिंदकुंभ** - महेन्द्र कुम्भ (महाकलश)।

भावार्थ - उस विजय द्वार के दोनों तरफ दो नैषेधिकाएं हैं। उन दो नैषेधिकाओं में दो दो चंदन के कलशों की पंक्तियां कही गई हैं। वे चंदन के कलश श्रेष्ठ कमलों पर प्रतिष्ठित हैं। सुगंधित और श्रेष्ठ जल से भरे हुए हैं, उन पर चंदन का लेप किया हुआ है, उनके कंठों में मौली बंधी हुई है, उन पर पद्मकमलों का ढक्कन है, वे सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, मृदुपुद्गलों से निर्मित हैं यावत् प्रतिरूप हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! वे कलश बड़े बड़े महाकुम्भ के समान कहे गये हैं।

विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो णागदंतपरिवाडीओ, ते णं णागदंतगा मुत्ताजालंतरूसियहेमजालगवक्खजालखिंखिणीघंटाजालपरिक्खित्ता अब्भुग्गया अभिणिसिट्ठा तिरियं सुसंपगहिया अहेपण्णगद्धरूवा पण्णगद्धसंठाणसंठिया सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा महया महया गयदंत समाणा प० समणाउसो!

कठिन शब्दार्थ - मुत्ताजालंतरूसियहेमजालगवक्खजालखिंखिणीघंटाजालपरिक्खित्ता - मुक्ताजालाओं के अंदर लटकती हुई स्वर्णमालाओं, गवाक्ष की आकृति की रत्नमालाओं और छोटी छोटी घण्टिकाओं (घुंघुरुओं) से युक्त, **पण्णगद्धसंठाणसंठिया** - सर्प के नीचले आधे भाग की आकृति वाले।

भावार्थ - उस विजयद्वार के दोनों तरफ दो नैषेधिकाओं में दो दो नागदंतों (खूंटियों) की पंक्तियां हैं। वे नागदंत मुक्ता जालों के अंदर लटकती हुई स्वर्णमालाओं गवाक्ष की आकृति की रत्नमालाओं और छोटी छोटी घंटिकाओं से युक्त हैं। आगे के भाग में ये कुछ ऊंचाई लिये हुए हैं। ये खूंटियां ऊपर के भाग में आगे निकली हुई और अच्छी तरह ढकी हुई है, सर्प के निचले आधे भाग की तरह उनका रूप है अर्थात् अति सरल और दीर्घ हैं। इसलिए सर्प के निचले आधे भाग की तरह उनकी आकृति हैं। वे सर्वरत्नों की बनी हुई हैं, स्वच्छ हैं, मृदु हैं यावत् बहुत सुंदर हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! वे नागदंत बड़े बड़े हाथी के दांत के समान कहे गये हैं।

तेसु णं णागदंतएसु बहवे किण्हसुत्तबद्धवग्घारियमल्लदामकलावा जाव सुक्किल्लसुत्तबद्धवग्घारियमल्लदामकलावा। ते णं दामा तवणिज्जंलबूसगा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुवण्णपयरगमंडिया णाणामणिरयणविविहहारद्धहार (उवसोभियसमुदया) जाव सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति॥

तेसि णं णागदंतगाणं उवरिं अण्णाओ दो दो णागदंतपरिवाडीओ पण्णत्ताओ, तेसि णं णागदंतगाणं मुत्ताजालंतरूसिया तहेव जाव समणाउसो!

कठिन शब्दार्थ - किण्हसुत्तवद्धवग्घारियमल्लदामकलावा - काले डोरे में पिरोई हुई पुष्पमालाएं लटक रही है

भावार्थ - उन नागदंतों में बहुत सी काले डोरे में पिरोई हुई पुष्पमालाएं लटक रही है यावत् सफेद वर्ण के डोरे में पिरोई हुई पुष्पमालाएं लटक रही है। उन मालाओं में सोने का लंबूक (पेन्डल) है जो सुवर्ण प्रतर से मंडित है, नाना प्रकार के मणि रत्नों के हारों अर्द्धहारों से वे मालाओं के समुदाय सुशोभित हैं यावत् वे अतीव अतीव शोभायमान हैं।

उन नागदंतों के ऊपर अन्य दो नागदंतों की पंक्तियां हैं वे नागदंत मुक्ताजालों के अंदर लटकती हुई स्वर्ण मालाओं, गवाक्ष की आकृति की रत्नमालाओं और छोटी छोटी घंटिकाओं से युक्त है यावत् हे आयुष्मन् श्रमण! वे नागदंतक बड़े बड़े गजदंत के आकार के कहे गये हैं।

तेसु णं णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कया पण्णत्ता, तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वेरुलियामईओ धूवघडीओ पण्णत्ताओ, तंजहा - ताओ णं धूवघडीओ कालागुरुपवरकुंदरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामाओ सुगंधवरगंधगंधियाओ गंधवट्टिभूयाओ ओरालेणं मणुण्णेणं घाणमणणिव्वुइकरेणं गंधेणं तप्पएसु सव्वओ समंता आपूरेमाणीओ आपूरेमाणीओ अईव अईव सिरीए जाव चिट्ठंति।

कठिन शब्दार्थ - सिक्कया - छींके, **धूवघडीओ** - धूपघटिकाएं (धूपनियां), **कालागुरु-पवरकुंदरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामाओ** - काले अगर, श्रेष्ठ चीड और लोबान के धूप की मघमघाती सुगंध से मनोरम।

भावार्थ - उन नागदंतकों में बहुत से रजतमय छींके कहे गये हैं। उन रजतमय छींकों में बहुत-सी धूपघटिकाएं हैं। वे धूपघटिकाएं काले अगर, श्रेष्ठ चीड़ और लोबान की धूप की मघमघती सुगंध के फैलाव से मनोरम है, सुगंधित पदार्थों की गंध जैसी सुगंध उनसे निकल रही है वे सुगंध की गुटिका (बट्टी) जैसी प्रतीत होती है। वे अपनी उदार, मनोज्ञ तथा नाक एवं मन को तृप्ति देने वाली सुगंध से आसपास के चारों ओर के प्रदेशों को पूरित करती हुई अतीव अतीव सुशोभित हो रही है।

विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो सालिभंजिया-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिवाडीओ पण्णत्ताओ, ताओ णं सालभंजियाओ लीलट्ठियाओ सुपयट्ठियाओ सुअलंकियाओ णाणागारवसणाओ णाणामल्लपिणद्धाओ मुट्ठीगेज्झमज्झाओ आमेलग-जमलजुयलवट्टिअब्भुण्णयपीणरइयसंठियपओहराओ रत्तावंगाओ असियकेसीओ मिउविसयपसत्थलक्खणसंवेल्लियग्गसिरयाओ ईसिं असोगवरपायवसमुट्ठियाओ वामहत्थगहियग्गसालाओ ईसिं अद्धच्छिकडक्खचिट्ठिएहिं लूसेमाणीओ इव चक्खुल्लोयणलेसाहिं अण्णमण्णं खिज्जमाणीओ इव पुढविपरिणामाओ सासय-भावमुवगयाओ चंदाणणाओ चंदविलासिणीओ चंदद्धसमणिडालाओ चंदाहिय-सोमदंसणाओ उक्का इव उज्जोएमाणीओ विज्जुघणमरीइसूरदिप्पंतसेयअहिययरसंणि-गासाओ सिंगारागारचारुवेसाओ पासाइयाओ ४ तेयसा अईव अईव सोभेमाणीओ *सोभेमाणीओ चिट्ठंति॥*

विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो जालकडगा पण्णत्ता, ते णं जालकडगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा॥

कठिन शब्दार्थ-सालभंजियापरिवाडीओ - सालभंजिका (पुतलियों की पंक्तियां), **लीलट्ठियाओ**-लीला करती हुई-सुंदर अंगचेष्टाएं करती हुई, **सुपइट्ठियाओ** - सुप्रतिष्ठित, **णाणागारवसणाओ** - नाना प्रकार के वस्त्रों से सज्जित, **णाणामल्लपिणद्धिओ** - नानामल्यपिनद्धाः-अनेक मालाएं पहनाई हुई है, **मुट्ठिगेज्झमज्झाओ** - मुष्टि गाह्यमध्याः-मुट्ठि में आएं जितनी पतली कमर, **आमेलगजमल-जुयलवट्टिअब्भुण्णयपीणरइयसंठियपओहराओ** - आमेलक यमल युगल वर्त्त्यभ्युन्नत पीन रतिदसंस्थित पयोधराः-समश्रेणिक चुचुकयुगल से युक्त गोलाकार उठे हुए पुष्ट एवं रति उत्पन्न करने वाले पयोधर (स्तन), **मिउविसयपसत्थलक्खणसंवेल्लियग्गसिरयाओ** - मृदुविशदप्रशस्त लक्षण संवेल्लिताग्रशिरोजाः - उनके बाल मृदु, विशद-स्वच्छ, प्रशस्त लक्षण वाले और मुकुट से आवृत्त अग्रभाग वाले हैं।

भावार्थ - उस विजय द्वार के दोनों ओर नैषेधिकाओं में दो दो सालभंजिका (पुतलियों) की पंक्तियां कही गई हैं। वे पुतलियां लीला करती हुई चित्रित की गई हैं, सुंदर ढंग से स्थित हैं, सुंदर वेशभूषा से अलंकृत हैं, रंगबिरंगे कपड़ों से सज्जित हैं, उन्हें अनेक मालाएं पहनाई गई हैं उनकी कमर इतनी पतली है कि मुट्ठी में आ सकती है। उनते स्तन समश्रेणिक चुचुक युगल से युक्त, कठिन होने से गोलाकार, उठे हुए, पुष्ट और रति पैदा करने वाले हैं। इन पुतलियों के नेत्रों के कोने लाल हैं। उनके बाल काले, कोमल विशद-स्वच्छ हैं, प्रशस्त लक्षण वाले हैं और उनका अग्रभाग मुकुट से आवृत्त है। ये सालभंजिकाएं अशोक वृक्ष का सहारा लिये हुए खड़ी हैं। बाएं हाथ से इन्होंने अशोक वृक्ष की शाखा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के अग्रभाग को पकड़ रखा है। ये अपने तिरछे कटाक्षों से दर्शकों के मन को मानों चुरा ही हैं। तिरछे अवलोकन से ऐसा लग रहा है मानो ये एक दूसरे के सौभाग्य को सहन न करती हुई परस्पर खिन्न कर रही हों। ये पुतलियां पृथ्वीकाय की परिणाम रूप और शाश्वत भाव को प्राप्त है। इनका मुख चन्द्रमा जैसा है। ये चन्द्रमा के समान शोभायमान है। आधे चन्द्रमा की तरह उनका ललाट है, चन्द्रमा से भी अधिक उनका दर्शन सौम्य है उल्का के समान ये चमकीली हैं। इनका प्रकाश बिजली की प्रगाढ़ किरणों और अनावृत्त सूर्य के तेज से भी अधिक है उनकी आकृति श्रृंगार प्रधान और वेशभूषा बहुत ही सुहावनी है ये प्रसन्नता पैदा करने वाली, दर्शनीय, अभिरूपा और प्रतिरूपा-बहुत ही सुदंर है। ये अपने तेज से अतीव अतीव सुशोभित हो रही है।

विजयद्वार के दोनों ओर दो नैषेधिकाओं में दो जालकटक-जालियों वाले रम्य स्थान कहे गये हैं। ये सर्वरत्नमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो घंटापरिवाडीओ पण्णत्ताओ, तासि णं घंटाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा - जंबूणयमईओ घंटाओ वइरामईओ लालाओ णाणामणिमया घंटापासगा तवणिज्जमईओ संकलाओ रययामईओ रज्जूओ॥

ताओ णं घंटाओ ओहस्सराओ मेहस्सराओ हंसस्सराओ कोंचस्सराओ णंदिस्सराओ णंदिघोसाओ सीहस्सराओ सीहघोसाओ मंजुस्सराओ मंजुघोसाओ सुस्सराओ सुस्सरणिग्घोसाओ ते पएसे ओरालेणं मणुण्णेणं कण्णमणणिव्वुइकरेणं सद्देणं जाव चिट्ठंति॥

विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो वणमालापरिवाडीओ पण्णत्ताओ, ताओ णं वणमालाओ णाणादुमलयाकिसलयपल्लवसमाउलाओ छप्पयपरिभुज्जमाणकमलसोभंतसस्सिरीयाओ पासाइयाओ० ते पएसे उरालेणं जाव गंधेणं आपूरेमाणीओ जाव चिट्ठंति॥ १२९॥

कठिन शब्दार्थ - घंटापरिवाडीओ - घंटाओं की पंक्तियां, **सुस्सरणिग्घोसाओ** - स्वर और निर्घोष सुहावना, **वणमालापरिवाडीओ** - वनमालाओं की पंक्तियां, **णाणादुमलयाकिसलयपल्लवसमाउलाओ**- नानाद्रुमलता किसलय पल्लव समाकुलाः-अनेक वृक्षों, लताओं किसलय रूप पल्लवों-कोमल पत्तों से युक्त, **छप्पयपरिभुज्जमाणकमल सोभंतसस्सिरीयाओ** - षट्पदपरिभुज्यमान कमल शोभमान सश्रीका-भ्रमरों से भुज्यमान कमलों से सुशोभित और अतीव शोभा से युक्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस विजय द्वार के दोनों ओर दो नैषेधिकाओं में दो घंटाओं की कतारे कही गई हैं। उन घंटाओं का वर्णन इस प्रकार है - वे घंटाएं सोने की बनी हुई और वज्रमय लालाओं-लटकन वाली हैं, उन घंटाओं के पार्श्व भाग अनेक मणियों के बने हुए हैं, तपे हुए सोने की उनकी सांकले हैं, घंटा बजाने के लिए खींची जाने वाली रज्जु चांदी की बनी हुई है। उन घंटाओं का ओघस्वर है (एक बार बजाने पर बहुत देर तक उनकी ध्वनि सुनाई पड़ती है) मेघ के समान गंभीर स्वर हैं, हंस के स्वर के समान मधुर है, क्रोंच पक्षी के स्वर के समान कोमल है, उनका नंदिस्वर है, नंदिघोष है, सिंह स्वर है, मंजु स्वर है, मंजुघोष है। उन घंटाओं का स्वर अत्यंत श्रेष्ठ है उनका स्वर और निर्घोष अत्यंत सुहावना है। वे घंटाएं अपने उदार, मनोज्ञ, कान और मन को तृप्त करने वाले शब्दों से आसपास के प्रदेशों को पूरित करती हुई अतीत अतीव शोभा से शोभायमान हैं।

उस विजयद्वार की दोनों ओर स्थित नैषेधिकाओं में दो दो वनमालाओं की पंक्तियां हैं। वे वनमालाएं अनेक वृक्षों, लताओं के किसलय रूप पल्लवों-कोमल कोमल पत्तों से युक्त हैं, भ्रमरों से भुज्यमान कमलों से सुशोभित हैं। ये वनमालाएं प्रसन्नता पैदा करने वाली, दर्शनीय, सुखरूप और बहुत सुखरूप हैं तथा अपनी उदार, मनोज्ञ, नाक और मन को तृप्त करने वाली गंध से आसपास के प्रदेशों को पूरित करती हुई अतीव अतीव शोभा से शोभायमान है।

विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो पगंठगा पण्णत्ता, ते णं पगंठगा चत्तारि जोयणाइं आयामविक्खंभेणं दो जोयणाइं बाहल्लेणं सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा॥

तेसि णं पगंठगाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं पासायवडिंसगा पण्णत्ता, ते णं पासायवडिंसगा चत्तारि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसियपहसियाविव विविहमणिरयणभत्तिचित्ता वाउद्धुयविजयवेजयंती-पडागच्छत्ताइच्छत्तकलिया तुंगा गगणतलमभिलंघमाणा(णुलिहंत)सिहरा जालंतर-रयणपंजरुम्मिलियव्व मणिकणगथूभियागा वियसियसयवत्तपोंडरीय-तिलयरयणद्ध-चंदचित्ता णाणामणिमयदामालंकिया अंतो य बाहिं च सण्हा तवणिज्जरुइलवालुया-पत्थडा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाईया ४॥

तेसि णं पासायवडिंसगाणं उल्लोया पउमलया जाव सामलयाभत्तिचित्ता सव्वतवणिज्जमया अच्छा जाव पडिरूवा॥ तेसि णं पासायवडिंसगाणं पत्तेयं पत्तेयं अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव मणीहिं उवसोभिए, मणीण गंधो वण्णो फासो य णेयव्वो॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **पगंठगा** - प्रकण्ठक-पीठ विशेष, **पासायवडिंसगा** - प्रासादावतंसक-प्रासादों के बीच में मुकुट रूप प्रासाद।

भावार्थ - उस विजयद्वार के दोनों ओर स्थित दोनों नैषेधिकाओं में दो प्रकण्ठक-पीठ विशेष कहे गये हैं। ये प्रकण्ठक चार योजन के लम्बे चौड़े और दो योजन की मोटाई वाले हैं। ये सर्व रत्नमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

इन प्रकण्ठगों के ऊपर अलग अलग प्रासादावतंसक कहे गये हैं। ये चार योजन ऊंचे और दो योजन के लम्बे चौड़े हैं। ये प्रासादावतंसक चारों तरफ से निकलती हुई और सब दिशाओं में फैलती हुई प्रभा से बंधे हुए हों और चारों तरफ से निकलती हुई श्वेतप्रभा से हंसते हुए हों-ऐसे प्रतीत होते हैं। ये विविध प्रकार की मणियों और रत्नों की रचनाओं से विविध रूप वाले और आश्चर्य पैदा करने वाले हैं। वे वायु से कम्पित विजय की सूचक वैजयंती पताका, सामान्य पताका और छत्रों पर छत्र से सुशोभित हैं, ऊंचे हैं, उनके शिखर आकाश को छू रहे हैं। उनकी जालियों में रत्न जड़े हुए हैं वे आवरण से बाहर निकली हुई वस्तु की तरह नये नये लगते हैं, उनके शिखर मणियों और सोने के हैं। विकसित शतपत्र, पुण्डरीक, तिलक रत्न और अर्द्धचन्द्रों के चित्रों से चित्रित है, नाना प्रकार की मणियों की मालाओं से अलंकृत हैं, अंदर और बाहर से चिकने हैं, तपनीय स्वर्ण की बालुका इनके आंगन में बिछी हुई है। इनका स्पर्श अत्यंत सुखदायक है। इनका रूप लुभावना है। ये प्रासादावतंसक प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

उन प्रासादावतंसको का ऊपरी भाग पद्मलता, अशोकलता यावत् श्यामलता के चित्रों से चित्रित हैं और सर्वस्वर्णमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

उन प्रासादावतंसकों में अलग अलग बहुत सम और रमणीय भूमिभाग है। वह भूमिभाग मृदंग पर चढ़े हुए चर्म के समान समतल है यावत् मणियों से सुशोभित है। यहां मणियों की गंध, वर्ण और स्पर्श का वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये।

तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं मणिपेढियाओ जोयणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वरयणामईओ जाव पडिरूवाओ, तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं सीहासणे पण्णत्ते, तेसि णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा - रययामया सीहा तवणिज्जमया चक्कवाला सोवण्णिया पाया णाणामणिमयाइं पायसीसगाइं जंबूणयमयाइं गत्ताइं वइरामया संधी णाणामणिमए वेच्चे, ते णं सीहासणा ईहामियउसभ जाव पउमलयभत्तिचित्ता ससारसारोवइयविविह-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मणिरयणपायपीढा अच्छरगमिउमसूरगणवतयकुसंतलिच्चसीहकेसरपच्चुत्थयाभिरामा उवचियखोमदुगुल्लयपडिच्छायणा सुविरइयरयत्ताणा रत्तंसुयसंवुया सुरम्मा आईणगरूय-बूरणवणीयतूलमउयफासा मउया पासाईया ४॥

कठिन शब्दार्थ - मणिपेढियाओ - मणिपीठिकाएं, **ससारसारोवइयविविहमणिरयणपायपीढा**-ससार सारोपचित विविध मणिरत्न पादपीठाः-प्रधान प्रधान विविध मणि रत्नों से शोभित, पादपीठ **अच्छरमउयमसूरगणवतयकुसंतलित्तकेसरपच्चत्थुयाभिरामा**-आस्तरक मृदुमसूरक नवत्वक् कुशान्तलिच्च सिंहकेसर प्रत्यवस्तृताभिरामाणि-मृदु स्पर्श वाले आस्तरक (आच्छादन, अस्तर) युक्त गद्दे जिनमें नवीन छाल वाले मुलायम दूब और अतिकोमल केसर भरे हुए हैं बिछे होने से सुंदर प्रतीत हो रहे हैं

भावार्थ - उन समतल और रमणीय भूमिभागों के एकदम मध्य भाग में अलग अलग मणिपीठिकाएं कही गई हैं। वे मणिपीठिकाएं एक योजन की लम्बी चौड़ी और आधे योजन की मोटी हैं। वे सर्वरत्नमय यावत् प्रतिरूप हैं।

उन मणिपीठिकाओं के ऊपर अलग अलग सिंहासन कहे गये हैं। उन सिंहासनों का वर्णन इस प्रकार हैं - उन सिंहासनों के सिंह रजतमय हैं, उनके पाये स्वर्ण के हैं, उन पायों के अधःप्रदेश-नीचे के भाग तपनीय स्वर्ण के हैं, ऊपरी भाग नाना मणियों के पायों के हैं, जंबूनद स्वर्ण के उनके गात्र (ईसें) हैं, वज्रमय उनकी संधियां हैं, उनका मध्यभाग नाना मणियों से बुना गया है। वे सिंहासन ईहामृग वृषभ यावत् पद्मलता आदि चित्रों से चित्रित हैं, प्रधान प्रधान विविध मणिरत्नों से उनके पादपीठ शोभित हैं। उन सिंहासनों पर मृदु स्पर्श वाले आस्तरक (आच्छादन, अस्तर) युक्त गद्दे जिनमें नवीन छाल वाले मुलायम मुलायम दर्भ और अतिकोमल केसर भरे हैं बिछे होने के कारण अतीव सुंदर लग रहे हैं। उन गद्दों पर बेलबूटों से युक्त सूती वस्त्र की चादर-पलंगपोस बिछी हुई है, उनके ऊपर धूल न लगे इसलिये रजस्त्राण लगाया हुआ है वे रमणीय लाल वस्त्र से आच्छादित हैं, सुरम्य हैं। आजिनक (मृगचर्म) रूई, बूर वनस्पति, मक्खन और अर्कतुल के समान मुलायम स्पर्श वाले हैं। वे सिंहासन प्रसन्नता पैदा करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

तेसि णं सीहासणाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं विजयदूसे पण्णत्ते, ते णं विजयदूसा सेया संखकुंददगरयअमयमहियफेणपुंजसण्णिगासा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा॥ तेसि णं विजयदूसाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं वइरामया अंकुसा पण्णत्ता, तेसु णं वइरामएसु अंकुसेसु पत्तेयं पत्तेयं कुंभिक्का मुत्तादामा पण्णत्ता, ते णं कुंभिक्का मुत्तादामा अण्णेहिं चउहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं अद्धकुंभिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा सुवण्ण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पयरगमंडिया जाव चिट्ठंति, तेसि णं पासायवडिंसगाणं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता सोत्थिय तहेव जाव छत्ता॥ १३०॥

कठिन शब्दार्थ - विजयदूसे - विजयदूष्य (वस्त्र विशेष), **संखकुंददगरयअमयमहियफेण-पुंजसण्णिगासा** - शंख, कुंद (मोगरे का फूल) जलबिंदू, क्षीरोदधि के जल को मथित करने से उठने वाले फेन-पुंज के समान सफेद, **कुंभिका** - कुम्भिका (मगध देश प्रसिद्ध प्रमाण विशेष), **मुत्तादामा** - मोतियों की माला, **अट्ठट्ठमंगलगा** - आठ आठ मंगल।

भावार्थ - उन सिंहासनों के ऊपर अलग-अलग विजयदूष्य कहे गये हैं वे विजयदूष्य शंख, कुंद, जलबिंदू, अमृत को मथित करने से उठने वाले फेन-पुंज समान श्वेत हैं,-सर्वरत्नमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

उन विजयदूष्यों के ठीक मध्य भाग में अलग अलग वज्रमय अंकुश (हुक तुल्य) कहे गये हैं। उन वज्रमय अंकुशों में अलग-अलग कुंभिका प्रमाण मोतियों की मालाएं लटक रही हैं। वे कुंभिका प्रमाण मोतियों की मालाएं अन्य उनसे आधी ऊंचाई वाली अर्द्धकुंभिका प्रमाण चार-चार मोतियों की मालाओं से चारों ओर से वेष्ठित हैं। उन मुक्तामालाओं में तपनीय स्वर्ण के लंबूसक हैं वे आसपास स्वर्ण प्रतरक से मंडित हैं यावत् अतीव-अतीव शोभा से शोभायमान हैं।

उन प्रासादावतंसकों के ऊपर आठ-आठ मंगल कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं-स्वस्तिक यावत् छत्र।

विवेचन - उपर्युक्त सूत्र में कुंभ प्रमाण मुक्ता का वर्णन है। वे कितने बड़े हैं इसका उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु यह भी मगधदेश प्रसिद्ध एक माप विशेष है। जैसे आज भी कलशी होती है। अनुयोगद्वार सूत्र में जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट कुंभ बताया है इसमें से किसी एक कुंभ प्रमाण ये मुक्ता (मोती) हो सकते हैं।

अर्थ वाली किसी प्रति में कुंभिका को ४० मन प्रमाण एवं अर्ध कुंभिका को २० मन प्रमाण बताया गया है। परन्तु इस सम्बन्ध में पूज्य गुरुदेव इस प्रकार फरमाया करते थे कि यहां पर जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट कुंभ में से कौनसा कुंभ विवक्षित है, यह मालूम नहीं होने से चालीस मन का प्रमाण निश्चित नहीं कहा जा सकता है। सभी देवों के मुक्ता कुंभ प्रमाण होते हुए भी व्यंतर आदि देवों के बड़े व वैमानिक देवों के छोटे भी हों तो भी बहुमूल्य होने से बाधा नहीं है। अतः सभी के कुंभिका मुक्ता दाम (कुंभिका प्रमाण मोतियों की माला) बताये हैं।

विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो तोरणा पण्णत्ता, ते णं तोरणा णाणामणिमया तहेव जाव अट्ठट्ठमंगलया य छत्ताइछत्ता॥ तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो सालभंजियाओ पण्णत्ताओ, जहेव णं हेट्ठा तहेव॥ तेसि णं तोरणाणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरओ दो दो णागदंतगा पण्णत्ता, ते णं णागदंतगा मुत्ताजालंतरूसिया तहेव, तेसु णं णागदंतएसु बहवे किण्हा सुत्तवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा जाव चिट्ठति॥

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो हयसंघाडगा जाव उसभसंघाडगा पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा, एवं पंतिओ वीहीओ मिहुणगा, दो दो पउमलयाओ जाव पडिरूवाओ, तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो अक्खयसोवत्थिया पण्णत्ता ते णं अक्खयसोवत्थिया सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा, तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चंदणकलसा पण्णत्ता, ते णं चंदणकलसा वरकमलपइट्ठाणा तहेव सव्वरयणामया जाव पडिरूवा समणाउसो!॥

भावार्थ - उस विजयद्वार के दोनों ओर दोनों नैषेधिकाओं में दो दो तोरण कहे गये हैं वे तोरण नाना मणियों के बने हुए हैं इत्यादि सारा वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये यावत् उन पर आठ आठ मंगल और छत्रातिछत्र हैं। उन तोरणों के आगे दो दो साल भंजिकाएं (पुतलियां) कही गई है। जिस प्रकार पूर्व में साल भंजिकाओं का वर्णन किया गया है उसी प्रकार यहां भी समझ लेना चाहिये। उन तोरणों के आगे दो दो नागदंतक कहे गये हैं, वे नागदंतक मुक्ताजाल के अंदर लटकती हुई मालाओं से युक्त है इत्यादि सारा वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये। उन नागदंतकों में बहुत सी काले सूत में गूंथी हुई पुष्पमालाओं के समुदाय हैं यावत् वे अतीव अतीव शोभा से शोभायमान हैं।

उन तोरणों के आगे दो दो घोड़ों के संघाटक (जोड़े) कहे गये हैं यावत् वृषभों के संघाटक कहे गये हैं ये सर्वरत्नमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। इसी प्रकार घोड़ों की पंक्तियां, घोड़ों की वीथियां और घोड़ों के मिथुनक (स्त्री, पुरुष युगल) भी हैं। उन तोरणों के आगे दो दो पद्मलताएं चित्रित हैं यावत् वे प्रतिरूप हैं। उन तोरणों के आगे दो दो अक्षत के स्वस्तिक कहे गये हैं वे अक्षत के स्वस्तिक सर्वरत्नमय स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप हैं। उन तोरणों के आगे दो दो चंदन कलश कहे गये हैं। वे चंदन कलश श्रेष्ठ कमलों पर प्रतिष्ठित हैं इत्यादि सारा वर्णन कह देना चाहिए यावत् हे आयुष्मन् श्रमण! वे सर्वरत्नमय हैं स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

विवेचन - उपर्युक्त वर्णन में आये हुए **संघाडगा, पंतिओ, वीहीओ** और **मिहुणगा** शब्दों का अर्थ इस प्रकार समझना चाहिये -

'संघाटक' का अर्थ दो दो घोड़ों आदि के जोडे।

'पंक्तियों' का अर्थ घोड़ों आदि की एक दिशा में जो कतारें होती है।

'वीथियां' का अर्थ घोड़ों आदि की आजू-बाजू की कतारें।

'मिथुनक' का अर्थ घोड़े आदि के स्त्री पुरुष के जोड़े।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो भिंगारगा पण्णत्ता वरकमलपइट्ठाणा जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा महया महया मत्तगयमुहागिइसमाणा पण्णत्ता समणाउसो॥

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो आयंसगा पण्णत्ता, तेसि णं आयंसगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा-तवणिज्जमया पगंठगा वेरुलियमया छरुहा (थंभया) वइरामया वरंगा णाणामणिमया वलक्खा अंकमया मंडला अणोघसियणिम्मलासाए छायाए सव्वओ चेव समणुबद्धा चंदमंडलपडिणिगासा महया महया अद्धकायसमाणा पण्णत्ता समणाउसो!॥

कठिन शब्दार्थ - भिंगारगा - भृंगारक (झारी), **मत्तगयमुहागिइसमाणा** - मदोन्मत्त हाथी के मुख की आकृति वाले, **आयंसगा** - आदर्शक (दर्पण), **छरुहा (थंभया)** - स्तंभ-जहा से दर्पण मुट्ठी में पकड़ा जाता है, **वरंगा** - वरांग (गण्ड-फ्रेम), **वलक्खा** - वलक्ष-सांकल रूप अवलम्बन, **मंडला** - मंडल-जहां प्रतिबिम्ब पड़ता है, **अणोघसियणिम्मलासाए छायाए** - अनवघर्षित-बिना मांजे ही स्वाभाविक और निर्मल छाया, **चंदमंडलपडिणिगासा**-चन्द्र मंडल की तरह गोलाकार, **अद्धकायसमाणा**-आधी काया के समान।

भावार्थ - उन तोरणों के आगे दो दो भृंगारक कहे गये हैं। वे भृंगारक श्रेष्ठ कमलों पर प्रतिष्ठित हैं यावत् सर्वरत्नमय स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! वे भृंगारक बड़े बड़े और मस्त हाथी के मुख की आकृति वाले हैं।

उन तोरणों के आगे दो दो आदर्शक (दर्पण) कहे गये हैं। उन आदर्शकों का वर्णन इस प्रकार हैं-उन आदर्शकों के प्रकण्ठक तपनीय स्वर्ण के बने हुए, इनके स्तंभ वैडूर्य रत्न के, इनके वरांग वज्ररत्न के बने हुए हैं। इनके वलक्ष नानामणियों के हैं और इनके मण्डल अंक रत्न के हैं। ये दर्पण बिना मांजे ही स्वाभाविक और निर्मल कांति से युक्त चन्द्रमण्डल की तरह गोलाकार हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! ये दर्पण बड़े बड़े और दर्शक की आधी काया के प्रमाण वाले कहे गये हैं।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो वइरणाभे थाले पण्णत्ते, ते णं थाला अच्छतिच्छडियसालितंदुलणहसंदट्ठबहुपडिपुण्णा चेव चिट्ठति सव्वजंबूणयामया अच्छा जाव पडिरूवा महया महया रहचक्कसमाणा पण्णत्ता समणाउसो!॥

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो पाईओ पण्णत्ताओ, ताओ णं पाईओ अच्छोदयपडिहत्थाओ णाणाविहपंचवण्णस्स फलहरियगस्स बहुपडिपुण्णाओ विव चिट्ठति सव्वरयणामईओ जाव पडिरूवाओ महया महया गोकलिंजगचक्कसमाणाओ पण्णत्ताओ समणाउसो!॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - वइरणाभे - वज्रनाभ, **थाले** - स्थाल, **अच्छ-तिच्छडिय-सालितंदुल-णहसंदट्ठ-बहुपडिपुण्णा** - स्वच्छ तीन बार सूप से फटकार कर साफ किये हुए एवं मूसल आदि द्वारा खंडे हुए शुद्ध स्फटिक जैसे चावलों से परिपूर्ण, **पाइओ** - पात्रियां, **गोकलिंजगचक्कसमाणाओ** - गोकलिंजर-बांस का टोपला, चक्र के समान।

भावार्थ - उन तोरणों के आगे दो दो वज्रनाभ स्थाल कहे गये हैं। वे स्थाल स्वच्छ, तीन बार सूप आदि से फटकार कर साफ किये हुए और मूसल आदि के द्वारा खंडे हुए शुद्ध स्फटिक जैसे चावलों से भरे हुए हों ऐसे प्रतीत होते हैं। वे सर्व स्वर्णमय हैं स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! वे स्थाल बड़े बड़े रथ चक्र के समान कहे गये हैं। उन तोरणों के आगे दो दो पात्रियां कही गई है। ये पात्रियां स्वच्छ जल से भरी हुई हैं। नानाविध पांच रंग के हरे फलों से भरी हुई हों-ऐसी प्रतीत होती है। वे सर्वरत्नमय यावत् प्रतिरूप हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! वे बड़े बड़े गोकलिंजर अथवा चक्र के समान कहे गये हैं।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो सुपइट्ठगा पण्णत्ता, ते णं सुपइट्ठगा णाणाविहपंचवण्णपसाहणगभंडविरइया सव्वोसहिपडिपुण्णा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा॥ तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो मणोगुलियाओ पण्णत्ताओ॥ तासु णं मणोगुलियासु बहवे सुवण्णरुप्पामया फलगा पण्णत्ता, तेसु णं सुवण्णरुप्पामएसु फलएसु बहवे वइरामया णागदंतगा मुत्ताजालंतरुसिया हेम जाव गयदंतसमाणा पण्णत्ता, तेसु णं वइरामएसु णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कया पण्णत्ता, तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वायकरगा पण्णत्ता। ते णं वायकरगा किण्हसुत्त-सिक्कगवत्थिया जाव सुक्किल्लसुत्तसिक्कगवत्थिया सव्वे वेरुलियामया अच्छा जाव पडिरूवा। तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चित्ता रयणकरंडगा पण्णत्ता, से जहाणामए-रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चित्ते रयणकरंडे वेरुलियमणिफालियपडल-पच्चोयडे साए पभाए ते पएसे सव्वओ समंता ओभासइ उज्जोवेइ तावेइ पभासेइ, एवामेव ते चित्तरयणकरंडगा पण्णत्ता वेरुलियपडलपच्चोयडा साए पभाए ते पएसे सव्वओ समंता ओभासेंति (जाव पभासेंति)॥

कठिन शब्दार्थ - सुपइट्ठगा - सुप्रतिष्ठक-श्रृंगारदान, **णाणाविहपंचवण्णपसाहणगभंडविरइया**- नाना प्रकार के पांच वर्णों की प्रसाधन सामग्री से परिपूर्ण, **मणोगुलियाओ** - मनोगुलिका-पीठिका, **वायकरगा** - वातकरक-जलशून्य घड़े (मात्र हवा से भरे हुए-खाली सकोरें), **रयणकरंडगा** - रत्नकरण्डक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उन तोरणों के आगे दो दो सुप्रतिष्ठक-श्रृंगारदान कहे गये हैं। वे सुप्रतिष्ठक नाना प्रकार की पांच वर्णों की प्रसाधन सामग्री और सर्व औषधियों से भरे हुए लगते हैं। वे सर्व रत्नमय स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

उन तोरणों के आगे दो दो मनोगुलिकाएं-पीठिकाएं कही गई हैं। उन मनोगुलिकाओं में बहुत से सोने चांदी के फलक-पटिये हैं। उन सोने चांदी के फलकों में बहुत से वज्रमय नागदंतक हैं। ये नागदंतक मुक्ताजाल के अंदर लटकती हुई मालाओं से युक्त हैं यावत् हाथी के दांत के समान कही गई हैं। उन वज्रमय नागदंतकों में बहुत से चांदी के सींके (छींके) कहे गये हैं। उन चांदी के छींकों में बहुत से वातकरक-जलशून्य घड़े हैं। ये वातकरक काले सूत्र के बने हुए ढक्कन से यावत् सफेद सूत्र के बने हुए ढक्कन से आच्छादित हैं। ये सब वैडूर्यमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

उन तोरणों के आगे दो दो चित्रवर्ण के रत्नकरंडक कहे गये हैं। जैसे किसी चाउरन्त चक्रवर्ती का नाना मणिमय नानावर्ण का अथवा आश्चर्यभूत रत्नकरंडक जिस पर वैडूर्यमणि और स्फटिक मणियों का ढक्कन लगा हुआ है, अपनी प्रभा से उस प्रदेश को सब ओर से अवभासित करता है, उद्योतित करता है, प्रदीप्त करता है प्रकाशित करता है उसी प्रकार वे विचित्र रत्नकरंडक वैडूर्य रत्न के ढक्कन से युक्त होकर अपनी प्रभा से उस प्रदेश को सब ओर से अवभासित करते हैं, प्रकाशित करते हैं।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो हयकंठगा जाव दो दो उसभकंठगा पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा॥ तेसु णं हयकंठएसु जाव उसभकंठएसु दो दो पुप्फचंगेरीओ, एवं मल्लगंधवण्णचुण्णवत्थाभरणचंगेरीओ सिद्धत्थचंगेरीओ लोमहत्थचंगेरीओ सव्वरयणामईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ॥

तासु णं पुप्फचंगेरीसु जाव लोमहत्थचंगेरीसु दो दो पुप्फपडलाइं जाव लो० सव्वरयणामयाइं जाव पडिरूवाइं॥ तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो सीहासणाइं पण्णत्ताइं, तेसि णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते तहेव जाव पासाईया ४॥

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो रुप्पछदाछत्ता पण्णत्ता, ते णं छत्ता वेरुलियभिसंतविमलदंडा जंबूणयकण्णियावइरसंधी मुत्ताजालपरिगया अट्ठसहस्सवरकंचणसलागा दद्दरमलयसुगंधी सव्वोउयसुरभि-सीयलच्छाया मंगलभत्तिचित्ता चंदागारोवमा वट्टा॥ तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चामराओ पण्णत्ताओ, ताओ णं चामराओ (चंदप्पभवइरवेरुलियणाणा-मणिरयणखचियदंडा) णाणामणिकणगरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्त-दंडाओ चिल्लियाओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संखंककुंददगरयअमयमहियफेणपुंजसण्णिगासाओ सुहुमरयय-दीहवालाओ सव्वरयणामयाओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो तिल्लसमुग्गा कोट्ठसमुग्गा पत्तसमुग्गा चोयसमुग्गा तयरसमुग्गा एलासमुग्गा हरियालसमुग्गा हिंगुलुयसमुग्गा मणोसिलासमुग्गा अंजणसमुग्गा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा॥ १३१ ॥

कठिन शब्दार्थ - हयकंठगा - हयकंठक-घोड़े के कंठ के प्रमाण जितने (रत्न विशेष), **पुप्फचंगेरिओ** - फूलों की चंगेरियां-छाबडियाँ, **रुप्पछदाछत्ता** - चांदी के आच्छादन वाले छत्र, **तिलसमुग्गा** - तैल समुद्गक-आधार विशेष जिसमें तैल रखा जाता है।

भावार्थ - उन तोरणों के आगे दो दो हयकंठक-रत्न विशेष यावत् दो-दो वृषभकंठक कहे गये हैं। वे सर्वरत्नमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। उन हयकंठकों यावत् वृषभकंठकों में दो-दो फूलों की चंगेरियां कही गई हैं। इसी तरह मालाओं, गंध, चूर्ण वस्त्र एवं आभरणों की दो दो चंगेरियां कही गई हैं। इसी तरह सरसों और लोमहस्तक-मयूरपिच्छ की भी दो-दो चंगेरियां हैं। ये सर्वरत्नमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

उन तोरणों के आगे दो दो पुष्पपटल यावत् दो-दो लोमहस्तपटल कहे गये हैं जो सर्व रत्नमय यावत् प्रतिरूप हैं। उन तोरणों के आगे दो-दो सिंहासन हैं उन सिंहासनों का वर्णन पूर्वानुसार समझना चाहिए यावत् वे प्रसन्नता पैदा करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

उन तोरणों के आगे चांदी के आच्छादन वाले छत्र कहे गये हैं। उन छत्रों के दण्ड वैडूर्यमणि के हैं, चमकीले और निर्मल हैं, उनकी कर्णिका-जहां शलाकाएं तार में पिरोई रहती है-स्वर्ण की है, उनकी संधियां, वज्ररत्न से पूरित है, वे छत्र मोतियों की मालाओं से युक्त हैं। एक हजार आठ शलाकाओं से युक्त हैं जो श्रेष्ठ सोने की बनी हुई है। कपड़े से छने हुए चंदन की गंध के समान सुगंधित और सर्व ऋतुओं में सुगंधित रहने वाली उनकी शीतल छाया है। उन छत्रों पर नाना प्रकार के मंगल चित्रित हैं और वे चन्द्रमा के समान गोल हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो चामर कहे गये हैं। वे चामर चन्द्रकांतमणि, वज्रमणि, वैडूर्यमणि आदि नाना मणि रत्नों से जटित दण्ड वाले हैं। वे चामर शंख, अंक रत्न, कुंद, जलकण, अमृत के मथित फेन पुंज के समान सफेद हैं। सूक्ष्म और रजत के लम्बे-लम्बे बाल वाले हैं। सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

उन तोरणों के आगे दो-दो तैल समुद्गक, कोष्ट समुद्गक, पत्र समुद्गक, चोय समुद्गक, तगरस समुद्गक, इलायची समुद्गक, हरिताल समुद्गक, हिंगलु समुद्गक, मनःशिला समुद्गक और अंजन समुद्गक हैं। ये सर्व रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विजए णं दारे अट्ठसयं चक्कज्झयाणं अट्ठसयं मिगज्झयाणं अट्ठसयं गरुडज्झयाणं अट्ठसयं विगज्झयाणं (अट्ठसयं रुरुयज्झयाणं) अट्ठसयं छत्तज्झयाणं अट्ठसयं पिच्छज्झयाणं अट्ठसयं सउणिज्झयाणं अट्ठसयं सीहज्झयाणं अट्ठसयं उसभज्झयाणं अट्ठसयं सेयाणं चउविसाणाणं णागवरकेऊणं एवामेव सपुव्वावरेणं विजयदारे आसीयं केउसहस्सं भवइत्ति मक्खायं॥

कठिन शब्दार्थ - चक्कज्झयाणं - चक्र से अंकित ध्वजाएं।

भावार्थ - उस विजय द्वार पर एक सौ आठ चक्र से अंकित ध्वजाएं, एक सौ आठ मृग से अंकित ध्वजाएं, एक सौ आठ गरुड से अंकित ध्वजाएं, एक सौ आठ वृक (भेडिया) से अंकित ध्वजाएं, (एक सौ आठ रुरु-मृगविशेष से अंकित ध्वजाएं) एक सौ आठ छत्रांकित ध्वजाएं, एक सौ आठ पिच्छ से अंकित ध्वजाएं, एक सौ आठ शकुनि से अंकित ध्वजाएं, एक सौ आठ सिंह से अंकित ध्वजाएं, एक सौ आठ वृषभ से अंकित ध्वजाएं और एक सौ आठ सफेद चार दांत वाले हाथी से अंकित ध्वजाएं-इस प्रकार आगे पीछे सब मिला कर एक हजार अस्सी ध्वजाएं विजयद्वार पर कही गई है। ऐसा मैंने और अन्य तीर्थंकरों ने कहा है।

विजए णं दारे णव भोमा पण्णत्ता, तेसि णं भोमाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता जाव मणीणं फासो, तेसि णं भोमाणं उप्पिं उल्लोया पउमलया जाव सामलयाभत्तिचित्ता जाव सव्वतवणिज्जमया अच्छा जाव पडिरूवा, तेसि णं भोमाणं बहुमज्झदेसभाए जे से पंचमे भोमे तस्स णं भोमस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं सीहासणे पण्णत्ते, सीहासणवण्णओ विजयदूसे जाव अंकुसे जाव दामा चिट्ठंति, तस्स णं सीहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स चउण्हं सामाणियसहस्साणं चत्तारि भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तस्स णं सीहासणस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं चत्तारि भद्दासणा पण्णत्ता, तस्स णं सीहासणस्स दाहिणपुरत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स अब्भिंतरियाए परिसाए अट्ठण्हं देवसाहस्सीणं अट्ठ भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तस्स णं सीहासणस्स दाहिणेणं विजयस्स देवस्स मज्झिमियाए परिसाए दसण्हं देवसाहस्सीणं दस भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तस्स णं सीहासणस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स बाहिरियाए परिसाए बारसण्हं देवसाहस्सीणं बारस भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ॥

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - भोमा - भौम-मंजिल (मकान का खण्ड विशेष), **भद्दासणा** - भद्रासन।

भावार्थ - उस विजयद्वार के आगे नौ भौम कहे गये हैं। उन भौमों के अंदर एकदम समतल और रमणीय भूमिभाग कहे गये हैं इत्यादि सारा वर्णन पूर्वानुसार यावत् मणियों के स्पर्श तक कह देना चाहिये। उन भौमों की भीतरी छत पर पद्मलता यावत् श्यामलताओं के विविध चित्र बने हुए हैं यावत् वे स्वर्णमय हैं, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

उन भौमों के एकदम मध्यभाग में जो पांचवां भौम है उस भौम के ठीक मध्य भाग में एक बड़ा सिंहासन कहा गया है, उस सिंहासन का वर्णन, देवदूष्य का वर्णन यावत् वहां अंकुशों में मालाएं लटक रही हैं, यह सब पूर्वानुसार कह देना चाहिए। उस सिंहासन के पश्चिम-उत्तर (वायव्य कोण) में, उत्तर में, उत्तरपूर्व (ईशान कोण) में विजय देव के चार हजार सामानिक देवों के चार हजार भद्रासन कहे गये हैं। उस सिंहासन के पूर्व में विजयदेव की चार सपरिवार अग्रमहिषियों के चार भद्रासन कहे गये हैं। उस सिंहासन के दक्षिण-पूर्व (आग्नेय कोण) में विजयदेव की आभ्यंतर परिषद् के आठ हजार देवों के आठ हजार भद्रासन कहे गये हैं। उस सिंहासन के दक्षिण में विजयदेव की मध्यम परिषद् के दस हजार देवों के दस हजार भद्रासन कहे गये हैं। उस सिंहासन के दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य कोण) में विजयदेव की बाह्य परिषद् के बारह हजार देवों के बारह हजार भद्रासन कहे गये हैं।

विवेचन - जम्बूद्वीप के अंदर की तरफ विजय दरवाजे के दोनों तरफ नौ-नौ खण्ड वाले दो प्रासादावतंसक हैं। दरवाजों के अति निकट दोनों तरफ सामने होने से यहां पर इनके लिए '**पुरओ**' शब्द कहा है। तथा समवायांग सूत्र में दोनों तरफ होने से **बाहा** पर कह दिया है। भौम-मकान के खण्ड (मंजिल) को कहते हैं। इनकी ऊंचाई ८ योजन की एवं लम्बाई चौड़ाई तदनुरूप अर्थात् दरवाजे की अपेक्षा आधी या आधी से कुछ अधिक (दो योजन लगभग) समझना चाहिये। दोनों तरफ पांचवें भौम में उसका दरबार लगता है उसमें विजयदेव भी रहता है। अन्य भौमों में दोनों तरफ में भद्रासन आदि समझना चाहिये।

तस्स णं सीहासणस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स सत्तण्हं अणियाहिवईणं सत्त भद्दासणा पण्णत्ता, तस्स णं सीहासणस्स पुरत्थिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीणं सोलस भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-पुरत्थिमेणं चत्तारि साहस्सीओ, एवं चउसुवि जाव उत्तरेणं चत्तारि साहस्सीओ, अवसेसेसु भोमेसु पत्तेयं पत्तेयं भद्दासणा पण्णत्ता॥ १३२॥

भावार्थ - उस सिंहासन के पश्चिम में विजय देव के सात अनीकाधिपतियों-सेनापतियों के सात

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भद्रासन कहे गये हैं। उस सिंहासन के पूर्व में, दक्षिण में, पश्चिम में और उत्तर में विजयदेव के सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के सोलह हजार सिंहासन हैं। पूर्व में चार हजार, इसी तरह चारों दिशाओं में चार-चार हजार यावत् उत्तर में चार हजार सिंहासन कहे गये हैं। शेष भौमों में प्रत्येक में भद्रासन कहे गये हैं।

विवेचन - भद्रासन-आराम कुर्सी की तरह होते हैं, सिंहासन इनसे भी विशिष्ट होते हैं। इन्द्र के अभाव में उसका कार्य सम्भालने वाले क्रम से एक से पांच तक के पांच सामानिक देव निश्चित ही होते हैं। अग्रमहिषियों के चार मुख्य भद्रासन होते हैं। उनके परिवार के चार हजार छोटे-छोटे भद्रासन होते हैं। मूल पाठ में चार भद्रासन ही कहे हैं। परिवार सहित कहने पर चार हजार भी समझ लेना चाहिये।

विजयस्स णं दारस्स उवरिमागारा सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोभिया, तंजहा - रयणेहिं वयरेहिं वेरुलिएहिं जाव रिट्ठेहिं॥ विजयस्स णं दारस्स उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता, तंजहा - सोत्थियसिरिवच्छ जाव दप्पणा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा। विजयस्स णं दारस्स उप्पिं बहवे कण्हचामरज्झया जाव सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा। विजयस्स णं दारस्स उप्पिं बहवे छत्ताइच्छत्ता तहेव॥ १३३॥

कठिन शब्दार्थ - उवरिमागारा - ऊपरी आकार।

भावार्थ - उस विजयद्वार का ऊपरी आकार सोलह प्रकार के रत्नों से उपशोभित हैं। यथा - रत्न, वज्र यावत् रिष्ट रत्न। उस विजयद्वार पर बहुत से आठ आठ मंगल कहे गये हैं। यथा - स्वस्तिक, श्रीवत्स यावत् दर्पण। ये सर्वरत्नमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। उस विजयद्वार के ऊपर बहुत से काले चामर के चिह्न से अंकित ध्वजाएं हैं यावत् वे ध्वजाएं सर्वरत्नमय स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। उस विजयद्वार के ऊपर बहुत से छत्रातिछत्र कहे गये हैं। इन सब का वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये।

विवेचन - जिन सोलह प्रकार के रत्नों से विजयद्वार का ऊपरी आकार सुशोभित हैं, वे इस प्रकार हैं - १. रत्न-सामान्य कर्केतनादि २. वज्र ३. वैडूर्य ४. लोहिताक्ष ५. मसारगल्ल ६. हंसगर्भ ७. पुलक ८. सौगंधिक ९. ज्योतिरस १०. अंक ११. अंजन १२. रजत १३. जातरूप १४. अंजनपुलक १५. स्फटिक और १६. रिष्ट।

विजय द्वार, विजय द्वार क्यों कहलाता है?

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-विजए दारे विजए दारे?

गोयमा! विजए णं दारे विजए णामं देवे महिड्ढिए महज्जुईए जाव महाणुभावे पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं सोलसण्हं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आयरक्खदेवसाहस्सीणं विजयस्स णं दारस्स विजयाए रायहाणीए अण्णेसिं च बहूणं विजयाए रायहाणीए वत्थव्वगाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-विजए दारे विजए दारे, अदुत्तरं च णं गोयमा! विजयस्स णं दारस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते जण्ण कयाइ (णासी ण कयाइ) णत्थि ण कयाइ ण भविस्सइ जाव अवट्ठिए णिच्चे विजए दारे।। १३४॥

भावार्थ - हे भगवन्! विजयद्वार को विजयद्वार क्यों कहा जाता है?

हे गौतम! विजयद्वार में विजय नामक महर्द्धिक, महाद्युति वाला यावत् महान् प्रभाव वाला और एक पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है। वह चार हजार सामानिक देवों, चार सपरिवार अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सात अनीकों, सात अनीकाधिपतियों और सोलह हजार आत्मरक्षक देवों का, विजयद्वार का, विजय राजधानी का और अन्य बहुत सारे विजय राजधानी के निवासी देव-देवियों का आधिपत्य करता हुआ यावत् दिव्य भोगों को भोगता हुआ विचरता है। इसलिये हे गौतम! विजयद्वार को विजयद्वार कहा जाता है।

हे गौतम! विजयद्वार का यह नाम शाश्वत है। यह पहले नहीं था ऐसा नहीं, वर्तमान में नहीं, ऐसा नहीं और भविष्य में कभी नहीं होगा, ऐसा भी नहीं यावत् यह अवस्थित और नित्य है।

विवेचन - उपर्युक्त मूल पाठ में सामानिक देवों से आत्मरक्षक देवों को चार गुणा बताया है। इसका कारण यह है कि आत्म रक्षक देव चारों दिशाओं को घेरे हुए होते हैं, अतः वे चारों दिशाओं में पूरा क्षेत्र भर देते हैं। जिससे कि किसी भी दिशा से कोई भी अशुभ घटना घटित न हो।

विजया राजधानी का वर्णन

कहि णं भंते! विजयस्स देवस्स विजया णाम रायहाणी पण्णत्ता?

गोयमा! विजयस्स णं दारस्स पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीइवइत्ता अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं विजयस्स देवस्स विजया णाम रायहाणी पण्णत्ता, बारस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं सत्ततीसजोयणसहस्साइं णव य अडयाले जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ता॥ सा णं एगेणं पागारेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता॥ से णं पागारे सत्ततीसं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं मूले अद्धतेरस जोयणाइं विक्खंभेणं मज्झेत्थ सक्कोसाइं छजोयणाइं विक्खंभेणं उप्पिं तिण्णि सद्धकोसाइं जोयणाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विक्खंभेणं मूले विच्छिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए बाहिं वट्टे अंतो चउरंसे गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वकणगामए अच्छे जाव पडिरूवे॥ से णं पागारे णाणाविहपंचवण्णेहिं कविसीसएहिं उवसोभिए, तंजहा - किण्हेहिं जाव सुक्किल्लेहिं॥ ते णं कविसीसगा अद्धकोसं आयामेणं पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं देसूणमद्धकोसं उड्ढं उच्चत्तेणं सव्वमणिमया अच्छा जाव पडिरूवा॥

भावार्थ - हे भगवन्! विजय देव की विजया नामक राजधानी कहां कही गई है?

हे गौतम! विजयद्वार के पूर्व में तिरछे असंख्यद्वीप समुद्रों को पार करने के बाद अन्य जंबूद्वीप नाम के द्वीप में बारह हजार योजन जाने पर विजय देव की विजया नामक राजधानी है जो बारह हजार योजन की लम्बी चौड़ी है तथा सैंतीस हजार नौ सौ अडतालीस योजन से कुछ अधिक उसकी परिधि है।

वह विजया राजधानी चारों ओर से एक परकोटे से घिरी हुई है। वह परकोटा साढे सैंतीस योजन ऊंचा है उसकी चौड़ाई मूल में साढे बारह योजन, मध्य में छह योजन एक कोस और ऊपर तीन योजन आधा कोस है, इस तरह वह मूल में विस्तृत है, मध्य में संक्षिप्त है और ऊपर कम है। वह बाहर से गोल, अंदर से चौकौन, गाय की पूंछ के आकार का है। वह सर्व स्वर्णमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

वह परकोटा नाना प्रकार के पांच वर्णों के कपिशीर्षकों-कंगूरों से सुशोभित है। वे इस प्रकार हैं - काले यावत् सफेद कंगूरों से। वे कंगूरे लम्बाई में आधा कोस, चौड़ाई में पांच सौ धनुष, ऊंचाई में कुछ कम आधा कोस हैं। वे कंगूरे सर्व मणिमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

विजयाए णं रायहाणीए एगमेगाए बाहाए पणुवीसं पणुवीसं दारसयं भवतीति मक्खायं॥ ते णं दारा बावट्ठि जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं सेया वरकणगथूभियागा ईहामिय० तहेव जहा विजए दारे जाव तवणिज्जवालुयपत्थडा सुहफासा सस्सि(म)रीया सुरूवा पासाईया ४।

तेसि णं दाराणं उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो चंदणकलस-परिवाडीओ पण्णत्ताओ तहेव भाणियव्वं जाव वणमालाओ।। तेसि णं दाराणं उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो पगंठगा पण्णत्ता, ते णं पगंठगा एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च आयामविक्खंभेणं पण्णरस जोयणाइं अड्ढाइज्जे कोसे बाहल्लेणं पण्णत्ता सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेसि णं पगंठगाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं पासायवडिंसगा पण्णत्ता॥ ते णं पासायवडिंसगा एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णरस जोयणाइं अड्ढाइज्जे य कोसे आयामविक्खंभेणं सेसं तं चेव जाव समुग्गया णवरं बहुवयणं भाणियव्वं। विजयाए णं रायहाणीए एगमेगे दारे अट्ठसयं चक्कज्झयाणं जाव अट्ठसयं सेयाणं चउविसाणाणं णागवरकेऊणं, एवामेव सपुव्वावरेणं विजयाए रायहाणीए एगमेगे दारे आसीयं आसीयं केउसहस्सं भवतीति मक्खायं। विजयाए णं रायहाणीए एगमेगे दारे (तेसि णं दाराणं पुरओ) सत्तरस भोमा पण्णत्ता, तेसि णं भोमाणं (भूमिभागा) उल्लोया (य) पउमलया० भत्तिचित्ता॥

भावार्थ - विजया राजधानी की एक एक बाहा-दिशा में एक सौ पच्चीस एक सौ पच्चीस द्वार कहे गये हैं। ऐसा मैंने और अन्य तीर्थंकरों ने कहा है। ये द्वार साढे बासठ योजन के ऊंचे हैं इनकी चौड़ाई इकतीस योजन और एक कोस है, इतना ही इनका प्रवेश है। ये द्वार सफेद वर्ण के हैं। श्रेष्ठ सोने की स्तूपिका-शिखर है उन पर ईहामृग आदि के चित्र बने हुए हैं, इत्यादि सारा वर्णन विजय द्वार की तरह कह देना चाहिये यावत् उनके प्रस्तर-आंगन में सोने की बालुका-रेत बिछी हुई है। उनका स्पर्श शुभ और सुखद है वे शोभा युक्त, सुंदर, प्रासादीय-प्रसन्नता पैदा करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

उन द्वारों के दोनों ओर दोनों नैषेधिकाओं में दो दो चंदन कलश की पंक्तियां कही गई हैं इत्यादि विजयद्वार के समान सारा वर्णन वनमालाओं तक का कह देना चाहिये। उन द्वारों के दोनों तरफ दोनों नैषेधिकाओं में दो दो प्रकण्ठक-पीठ विशेष कहे गये हैं। वे प्रकंठक इकतीस योजन और एक कोस की लम्बाई- चौड़ाई वाले हैं, उनकी मोटाई पन्द्रह योजन और ढाई कोस है। वे सर्व वज्रमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

उन प्रकण्ठकों के ऊपर प्रत्येक पर अलग-अलग प्रासादावतंसक कहे गये हैं। वे प्रासादावतंसक इकतीस योजन एक कोस ऊंचे हैं, पन्द्रह योजन ढाई कोस लम्बे चौड़े हैं। शेष सारा वर्णन समुद्गक तक विजय द्वार के समान कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि वे सब बहुवचन रूप कहने चाहिये।

उस विजया राजधानी के एक एक द्वार पर एक सौ आठ चक्र से चिह्नित ध्वजाएं यावत् एक सौ आठ सफेद और चार दांत वाले हाथी से अंकित ध्वजाएं कही गई हैं। ये सब आगे पीछे की ध्वजाएं मिला कर विजया राजधानी के एक-एक द्वार पर एक हजार अस्सी ध्वजाएं कही गई हैं।

विजया राजधानी के एक एक द्वार पर उन द्वारों के आगे सतरह भौम (मंजिल जैसे विशिष्ट स्थान) कहे गये हैं। उन भौमों के भूमिभाग और अंदर की छतें पद्मलता आदि विविध चित्रों से चित्रित हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - उपर्युक्त मूल पाठ में विजया राजधानी के ५०० द्वार बताये हैं। उनका आशय यह है कि-विजया राजधानी के गोलाई ली हुई परिधि के चार बराबर विभाग करना। वह एक-एक विभाग एक-एक बाहा कहलाता है। इस प्रकार एक-एक बाहा पर एक सौ पच्चीस-एक सौ पच्चीस द्वार होने से चारों बाहों को मिलाकर कुल ५०० द्वार हो जाते हैं।

तेसि णं भोमाणं बहुमज्झदेसभाए जे ते णवमणवमा भोमा तेसि णं भोमाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं सीहासणा पण्णत्ता, सीहासणवण्णओ जाव दामा जहा हेट्ठा, एत्थ णं अवसेसेसु भोमेसु पत्तेयं पत्तेयं भद्दासणा पण्णत्ता। तेसि णं दाराणं उत्तिमंगा(उवरिमा)गारा सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोहिया तं चेव जाव छत्ताइछत्ता, एवामेव पुव्वावरेण विजयाए रायहाणीए पंच दारसया भवंतीति मक्खाया॥ १३५॥

भावार्थ - उन भौमों के बहुमध्य भाग में जो नौवें भौम हैं उनके ठीक मध्य भाग में अलग अलग सिंहासन कहे गये हैं। सिंहासनों का वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये यावत् सिंहासनों में मालाएं लटक रही हैं। शेष भौमों में अलग अलग भद्रासन कहे गये हैं। उन द्वारों के ऊपरी भाग सोलह प्रकार के रत्नों से सुशोभित हैं आदि सारा वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये यावत् उन पर छत्रातिछत्र लगे हुए हैं। इस प्रकार सब मिला कर विजया राजधानी के पांच सौ द्वार होते हैं। ऐसा मैंने और अन्य तीर्थंकरों ने कहा है।

विजयाए णं रायहाणीए चउद्दिसिं पंचजोयणसयाइं अबाहाए एत्थ णं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तंजहा - असोगवणे सत्तवण्णवणे चंपगवणे चूयवणे, पुरत्थिमेणं असोगवणे दाहिणेणं सत्तवण्णवणे पच्चत्थिमेणं चंपगवणे उत्तरेणं चूयवणे॥ ते णं वणसंडा साइरेगाइं दुवालस जोयणसहस्साइं आयामेणं पंच जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता पत्तेयं पत्तेयं पागारपरिक्खित्ता किण्हा किण्होभासा वणसंडवण्णओ भाणियव्वो जाव बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति सयंति चिट्ठंति णिसीयंति तुयट्टंति रमंति ललंति कीलंति मोहंति पुरापोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरिक्कंताणं सुभाणं कम्माणं कडाणं कल्लाणं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा विहरंति॥

भावार्थ - उस विजया राजधानी की चारों दिशाओं में पांच सौ पांच सौ योजन के अन्तराल को छोड़ने के बाद चार वन खंड कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. अशोकवन २. सप्तपर्णवन ३. चंपकवन ४. आम्रवन। पूर्व दिशा में अशोकवन है। दक्षिण दिशा में सप्तपर्णवन है। पश्चिम दिशा में चंपकवन है और उत्तरदिशा में आम्रवन है। वे वनखण्ड कुछ अधिक बारह हजार योजन के लम्बे और पांच सौ योजन के चौड़े हैं। वे प्रत्येक एक एक प्राकार-परकोटे से घिरे हुए हैं। काले हैं, काले ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिखाई देते हैं इत्यादि वनखण्ड का सारा वर्णन कह देना चाहिए यावत् वहां बहुत से वाणव्यंतर देव और देवियां स्थित होती हैं, लेटती हैं, ठहरती हैं, बैठती हैं, करवट बदलती हैं, रमण करती हैं, लीला करती हैं, क्रीड़ा करती हैं, कामक्रीड़ा करती हैं और अपने पूर्वजन्म के सद्अनुष्ठानों का, तप आदि का और किये हुए शुभ कर्मों का कल्याणकारी फल विपाक का अनुभव करती हुई विचरती हैं।

विवेचन - वनखण्डों का परकोटा बगीचे की बाउन्ड्री (सीमा) की तरह समझना चाहिये।

तेसि णं वणसंडाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं पासायवडिंसगा पण्णत्ता, ते णं पासायवडिंसगा बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसिया तहेव जाव अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता उल्लोया पउमलया, भत्तिचित्ता भाणियव्वा, तेसि णं पासायवडिंसगाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं सीहासणा पण्णत्ता वण्णावासो सपरिवारा, तेसि णं पासायवडिंसगाणं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलया झया छत्ताइछत्ता।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, तंजहा-असोए सत्तवण्णे चंपए चूए॥ तत्थ णं ते साणं साणं वणसंडाणं साणं साणं पासायवडिंसयाणं साणं साणं सामाणियाणं साणं साणं अग्गमहिसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं आयरक्खदेवाणं आहेवच्चं जाव विहरंति॥

भावार्थ - उन वनखण्डों के ठीक मध्य भाग में अलग अलग प्रासादावतंसक कहे गये हैं। वे प्रासादावतंसक साढे बासठ योजन ऊंचे, इकतीस योजन और एक कोस के लम्बे चौड़े हैं। ये प्रासादावतंसक चारों तरफ से निकलती हुई प्रभा से बंधे हुए हों अथवा श्वेत प्रभा पटल से हंसते हुए प्रतीत होते हैं इत्यादि सारा वर्णन कह देना चाहिये यावत् उनके अंदर बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग हैं भीतरों छतों पर पद्मलता आदि के विविध चित्र बने हुए हैं। उन प्रासादावतंसकों के ठीक मध्य भाग में अलग अलग सिंहासन कहे गये हैं। उनका वर्णन पूर्वानुसार समझना चाहिये यावत् सपरिवार सिंहासन तक कह देना चाहिए। उन प्रासादावतंसकों के ऊपर बहुत से आठ आठ मंगल हैं ध्वजाएं हैं और छत्रातिछत्र-छत्रों पर छत्र हैं।

वहां चार देव रहते हैं जो महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाले हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं- अशोक, सप्तपर्ण, चंपक और आम्र। वे अपने अपने वनखण्ड का, अपने अपने प्रासादावतंसक का, अपने अपने सामानिक देवों का, अपनी अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी अपनी परिषदाओं का और अपने अपने आत्मरक्षक देवों का आधिपत्य करते हुए यावत् विचरते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - चारों वनखण्डों के चार देव क्रमशः चारों दिशाओं में राजधानी से ५००-५०० योजन दूर रहते हैं। जैसे चक्रवर्तियों के चार दिशाओं के चार अंतपाल (मागध, वरदाम, प्रवास एवं चूलहिम पर्वत पर रहे हुए) की तरह ये चार देव भी होते हैं। ये देव जागीरदार की तरह विजय देव के मातेत (अधीनस्थ) देव होते हैं।

विजयाए णं रायहाणीए अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव पंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोहिए तणसद्दविहूणे जाव देवा य देवीओ य आसयंति जाव विहरंति। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं उवयारियालयणे पण्णत्ते बारस जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसहस्साइं सत्त य पंचाणउए जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं अद्धकोसं बाहल्लेणं सव्वजंबूणयामएणं अच्छे जाव पडिरूवे।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते पउमवरवेइयाए वण्णओ वणसंडवण्णओ जाव विहरंति, से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं उवयारियालयणसम-परिक्खेवेणं। तस्स णं उवयारियालयणस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णओ, तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं तोरणा पण्णत्ता-छत्ताइछत्ता।

तस्स णं उवयारियालयणस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीहिं उवसोभिए मणिवण्णओ, गंधरसफासो, तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं मूलपासायवडिंसए पण्णत्ते, से णं पासायवडिंसए बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसियप्पहसिए तहेव, तस्स णं पासायवडिंसगस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणिफासे उल्लोए॥

भावार्थ - विजय राजधानी के अंदर बहुसमरणीय भूमिभाग कहा गया है यावत् वह पांच रंगों की मणियों से सुशोभित है। तृण शब्द रहित मणियों का स्पर्श यावत् देवदेवियां वहां उठते बैठते हैं यावत् पुराने कर्मों का फल भोगते हुए विचरते हैं। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के मध्य में एक बड़ा उपकारिकालयन-विश्राम स्थल कहा गया है जो बारह सौ योजन का लम्बा चौड़ा और तीन हजार सात सौ पिच्यानवै योजन से कुछ अधिक की उसकी परिधि है। आधा कोस की उसकी मोटाई है। वह स्वर्णमय है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह उपकारिकालयन एक पद्मवरवेदिका और एक वनखंड से चारों ओर से घिरा हुआ है। पद्मवरवेदिका और वनखंड का वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये यावत् वहां वाणव्यंतर देव देवियां अपने पूर्वकृत शुभ कर्मों का कल्याणकारी फल भोगते हुए विचरते हैं। वह वनखण्ड कुछ कम दो योजन चक्रवाल विष्कंभ (घेरे) वाला और उपकारिकालयन की परिधि के समान (३७९५ योजन से कुछ अधिक) परिधि वाला है। उस उपकारिकालयन के चारों दिशाओं में चार त्रिसोपानप्रतिरूपक कहे गये हैं उनका वर्णन पूर्ववत् कह देना चाहिये। उन त्रिसोपानप्रतिरूपकों के आगे अलग-अलग तोरण कहे गये हैं यावत् छत्रातिछत्र-छत्रों पर छत्र हैं।

उस उपकारिकालयन के ऊपर बहुसमरमणीय भूमिभाग कहा गया है यावत् वह मणियों से सुशोभित हैं। मणियों का वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिये। मणियों के गंध, रस और स्पर्श का कथन कर देना चाहिये। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्य भाग में एक बड़ा मूल प्रासादावतंसक कहा गया है। वह प्रासादावतंसक साढे बासठ योजन का ऊंचा और इकतीस योजन एक कोस की लंबाई चौड़ाई वाला है। वह सब ओर से निकलती हुई प्रभा किरणों से हंसता हुआ सा लगता है आदि वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये। उस प्रासादावतंसक के अंदर बहुसमरमणीय भूमिभाग कहा गया है यावत् मणियों का स्पर्श और भींतों पर विविध चित्र लगे हुए हैं।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता, सा य एगं जोयणमायामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा॥ तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एगे महं सीहासणे पण्णत्ते, एवं सीहासणवण्णओ सपरिवारो, तस्स णं पासायवडिंसगस्स उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलया झया छत्ताइछत्ता। से णं पासायवडिंसए अण्णेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं पासायवडिंसएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, ते णं पासायवडिंसगा एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धसोलसजोयणाइं अद्धकोसं च आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गय० तहेव, तेसि णं पासायवडिंसयाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा उल्लोया॥

भावार्थ - उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्यभाग में एक बड़ी मणिपीठिका कही गई है। वह एक योजन की लम्बी चौड़ी और आधा योजन की मोटाई वाली है। वह सर्वमणिमय, स्वच्छ, मृदु यावत् प्रतिरूप हैं। उस मणिपीठिका के ऊपर एक बड़ा सिंहासन है, सपरिवार सिंहासन का वर्णन कह देना चाहिये। उस प्रासादावतंसक के ऊपर बहुत से आठ आठ मंगल और छत्रातिछत्र कहे गये हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वे प्रासादावतंसक अन्य उनसे आधी ऊंचाई वाले चार प्रासादावतंसकों से चारों ओर से घिरे हुए हैं। वे प्रासादावतंसक इकतीस योजन एक कोस की ऊंचाई वाले साढे पन्द्रह योजन और आधा कोस के लम्बे चौड़े किरणों से युक्त आदि वैसा ही वर्णन कर लेना चाहिये। उन प्रासादावतंसकों के अंदर बहुसमरमणीय भूमिभाग यावत् चित्रित भीतरी छत है।

तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं सीहासणं पण्णत्तं, वण्णओ, तेसिं परिवारभूया बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं भद्दासणा पण्णत्ता, तेसि णं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता। ते णं पासायवडिंसगा अण्णेहिं चउहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं पासायवडेंसएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। ते णं पासायवडेंसगा अद्धसोलसजोयणाइं अद्धकोसं च उड्ढं उच्चत्तेणं देसूणाइं अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गय०तहेव, तेसि णं पासायवडेंसगाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा उल्लोया, तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं पउमासणा पण्णत्ता, तेसि णं पासायाणं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता। ते णं पासायवडेंसगा अण्णेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं पासायवडेंसएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। ते णं पासायवडेंसगा देसूणाइं अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं देसूणाइं चत्तारि जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गय० भूमिभागा उल्लोया, भद्दासणाइं उवरिं मंगलगा झया छत्ताइछत्ता। ते णं पासायवडिंसगा अण्णेहिं चउहिं तद्दधुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं पासायवडिंसएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। ते णं पासायवडिंसगा देसूणाइं चत्तारि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं देसूणाइं दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गयमुस्सिय० भूमिभागा उल्लोया। पउमासणाइं उवरिं मंगलगा झया छत्ताइछत्ता।। १३६ ॥

भावार्थ - उन बहुसमरमणीय भूमिभाग के बहुमध्य देशभाग में प्रत्येक में अलग अलग सिंहासन है। सिंहासन का वर्णन कह देना चाहिये। उन सिंहासनों के परिवार के तुल्य वहां भद्रासन कहे गये हैं। इन प्रासादावतंसकों के ऊपर आठ आठ मंगल, ध्वजाएं और छत्रातिछत्र-छत्र के ऊपर छत्र हैं।

वे प्रासादावतंसक उनसे आधी ऊंचाई वाले अन्य चार प्रासादावतंसकों से चारों ओर से घिरे हुए हैं। वे प्रासादावतंसक साढे पन्द्रह योजन और आधे कोस के ऊंचे और कुछ कम आठ योजन की लम्बाई चौड़ाई वाले हैं किरणों से युक्त इत्यादि वर्णन कह देना चाहिये। उन प्रासादावतंसकों के अंदर

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

बहुसमरमणीय भूमिभाग हैं और छतों की भीतरी भाग चित्रित हैं। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्य में अलग अलग पद्मासन कहे गये हैं। उन प्रासादावतंसकों के ऊपर आठ आठ मंगल, ध्वजाएं और छत्रातिछत्र हैं।

वे प्रासादावतंसक उनसे आधी ऊंचाई वाले अन्य चार प्रासादावतंसकों से चारों ओर से घिरे हुए हैं। वे प्रासादावतंसक कुछ कम आठ योजन की ऊंचाई वाले और कुछ कम चार योजन की लंबाई चौड़ाई वाले हैं किरणों से युक्त हैं। भूमिभाग, उल्लोक (छत) और भद्रासन का वर्णन समझना चाहिये। उन प्रासादावतंसकों पर आठ आठ मंगल, ध्वजा और छत्रातिछत्र हैं।

वे प्रासादावतंसक उनसे आधी ऊंचाई वाले अन्य चार प्रासादावतंसकों से चारों ओर से घिरे हुए हैं। वे प्रासादावतंसक कुछ कम चार योजन के ऊंचे और कुछ कम दो योजन के लंबे चौड़े हैं किरणों से युक्त हैं आदि वर्णन कर लेना चाहिये। उन प्रासादावतंसकों के ऊपर आठ आठ मंगल ध्वजाएं और छत्रातिछत्र हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में विजया राजधानी का विस्तृत वर्णन कहा गया है। अब सूत्रकार सुधर्मा सभा का वर्णन करते हैं -

सुधर्मा सभा का वर्णन

तस्स णं मूलपासायवडेंसगस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स सभा सुहम्मा पण्णत्ता अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं छ सक्कोसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं णव जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसयसंणिविट्ठा अब्भुग्गयसुकयवइरवेइया तोरणवररइयसालभंजिया सुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठसंठियपसत्थवेरुलियविमलखंभा णाणामणिकणगरयणखइयउज्जलबहुसमसुविभत्तचित्त (णिचिय) रमणिज्जकुट्टिमतला ईहामियउसभतुरगणरमगरविहगवालगकिण्णररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्ता थंभुग्गयवइरवेइयापरिगयाभिरामा विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्ताविव अच्चिसहस्स-मालणीया रूवगसहस्सकलिया भिसमाणी भिब्भिसमाणी चक्खुल्लोयणलेसा सुहफासा सस्सिरीयरूवा कंचणमणिरयणथूभियागा णाणाविहपंचवण्णघंटापडाग-परिमंडियग्गसिहरा धवला मिरीइकवयं विणिम्मुयंती लाउल्लोइयमहिया गोसीस-सरसरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितला उवचियचंदणकलसा चंदणघडसुकयतोरण-पडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरस-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धु-याभिरामा सुगंधवरगंधिया गंधवट्टिभूया अच्छरगणसंघसंविकिण्णा दिव्वतुडियमहुरसद्द-संपणाइया सुरम्मा सव्वरयणामई अच्छा जाव पडिरूवा। तीसे णं सुहम्माए सभाए तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता तंजहा पुरत्थिमेणं दाहिणेणं उत्तरेणं। ते णं दारा पत्तेयं पत्तेयं दो दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं एगं जोयणं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं सेया वरकणगथूभियागा जाव वणमालादारवण्णओ॥

भावार्थ - उस मूल प्रासादावतंसक के उत्तरपूर्व-ईशानकोण में विजयदेव की सुधर्मा सभा है जो साढे बारह योजन लम्बी,छह योजन और एक कोस की चौड़ी तथा नौ योजन की ऊंची है। वह सैकड़ों खंभों पर स्थित है, दर्शकों की नजरों पर चढ़ी हुई मनोहर और भलीभांति बनाई हुई उसकी वज्रवेदिका है, श्रेष्ठ तोरण पर रति पैदा करने वाली शालभंजिकाएं-पुतलियां लगी हुई है, सुसंबद्ध, प्रधान और मनोज्ञ आकृति वाले प्रशस्त वैडूर्य रत्न के निर्मल उसके स्तंभ हैं। उसका भूमिभाग नाना प्रकार के मणि, कनक और रत्नों का बना हुआ है, निर्मल है, समतल है, सुविभक्त, निबिड़ और रमणीय है। उस सभा में ईहामृग, वृषभ, घोड़ा, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु (मृग), सरभ (अष्टापद), चमर, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि चित्र बने हुए हैं अतएव वह बहुत आकर्षक है। उसके स्तंभों पर वज्रवेदिका बनी हुई होने से वह बहुत सुंदर लगती है। समश्रेणी के विद्याधरों के युगलों की शक्ति विशेष के प्रभाव से यह सभा हजारों किरणों से प्रभासित हो रही है। यह हजारों रूपकों से युक्त है, दीप्यमान है, विशेष दीप्यमान है, देखने वालों के नेत्र उसी पर टिक जाते हैं, उसका स्पर्श बहुत ही शुभ और सुखद है, वह बहुत शोभा युक्त है। उसके स्तूप का अग्रभाग सोने से, मणियों से और रत्नों से बना हुआ है। उसके शिखर का अग्रभाग नाना प्रकार की पांच रंगों की घंटाओं और पताकाओं से परिमंडित है, वह सभा सफेद वर्ण की है, वह किरणों के समूह को छोड़ती हुई प्रतीत होती है, वह लिपी हुई और पुती हुई है। गोशीर्ष चंदन और सरस लाल चंदन से बड़े बड़े हाथ के छापे लगाये हुए हैं, उसमें चंदन कलश अथवा वंदन (मंगल) कलश स्थापित किये हुए हैं। उसके द्वारभाग पर चंदन के कलशों से तोरण सुशोभित किये गये हैं, ऊपर से लेकर नीचे तक विस्तृत, गोलाकार और लटकती हुई पुष्पमालाओं से वह युक्त है। पांच वर्ण के सरस-सुगंधित फूलों के पुंज से वह सुशोभित है। काला अगर, श्रेष्ठ कुंदुरुक और तुरुष्क-लोभान के धूप की गंध से वह महक रही है, श्रेष्ठ सुगंधित द्रव्यों की गंध से वह सुगंधित है, सुगंध की गुटिका के समान सुगंध फैला रही है। वह सुधर्मा सभा अप्सराओं के समुदाय से व्याप्त है, दिव्य वाद्यों के शब्दों से गूंज रही है। वह सुरम्य है, सर्वरत्नमयी है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है।

उस सुधर्मा सभा की तीन दिशाओं (पूर्व, दक्षिण और उत्तर) में तीन द्वार कहे गये हैं। वे प्रत्येक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वार दो दो योजन के ऊंचे, एक योजन विस्तार वाले और इतने ही प्रवेश वाले हैं। वे श्वेत हैं, श्रेष्ठ स्वर्ण की स्तूपिका वाले हैं इत्यादि पूर्वोक्त द्वार वर्णन वनमाला तक कह देना चाहिये।

तेसि णं दाराणं पुरओ मुहमंडवा पण्णत्ता, ते णं मुहमंडवा अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं छजोयणाइं सक्कोसाइं विक्खंभेणं साइरेगाइं दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं मुहमंडवा अणेगखंभसयसंणिविट्ठा जाव उल्लोया भूमिभागवण्णओ॥ तेसि णं मुहमंडवाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता सोत्थिय जाव दप्पणा॥ तेसि णं मुहमंडवाणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं पेच्छाघरमंडवा पण्णत्ता, ते णं पेच्छाघरमंडवा अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं जाव दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं जाव मणिफासो॥ तेसि णं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं वइरामयअक्खाडगा पण्णत्ता, तेसि णं वइरामयाणं अक्खाडगाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं मणिपीढिया पण्णत्ता, ताओ णं मणिपीढियाओ जोयणमेगं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ॥ तासि णं मणिपीढियाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं सीहासणा पण्णत्ता, सीहासणवण्णओ जाव दामा परिवारो। तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता॥ तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ तिदिसिं तओ मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं मणिपेढियाओ दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, जोयणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईओ, अच्छाओ जाव पडिरूवाओ॥

कठिन शब्दार्थ - मुहमंडवा - मुखमण्डप-सुधर्मा सभा आदि के बाहर बरंडे (ओसरी) की तरह आया हुआ भाग। यह प्रतीक्षालय की तरह होता है, **पेच्छाघरमंडवा** - प्रेक्षाघर मण्डप-मुख मण्डप के पास में बरण्डे की तरह आया हुआ भाग, यह चित्र शाला (नाट्यशाला) जैसा होता है, **वइरामय अक्खाडगा** - वज्रमय अक्षपाटकं (चौक, अखाडा)।

भावार्थ - उन द्वारों के आगे मुखमंडप कहे गये हैं। वे मुखमंडप साढे बारह योजन लम्बे, छह योजन और एक कोस चौड़े, कुछ अधिक दो योजन ऊंचे, अनेक सैकड़ों खंभों पर स्थित है यावत् छत और भूमिभाग का वर्णन कह देना चाहिये। उन मुखमण्डपों के ऊपर प्रत्येक पर आठ-आठ मंगल-स्वस्तिक यावत् दर्पण कहे गये हैं। उन मुखमण्डपों के आगे अलग-अलग प्रेक्षाघरमण्डप कहे गये हैं। वे प्रेक्षाघरमण्डप साढे बारह योजन लंबे छह योजन एक कोस चौड़े और कुछ अधिक दो योजन ऊंचे हैं, मणियों के स्पर्श, प्रेक्षाघर मण्डपों और भूमिभाग का वर्णन कह देना चाहिये। उनके ठीक मध्य भाग में अलग अलग वज्रमय अखाड़ा कहे गये हैं। उन वज्रमय अखाड़ों के बहुमध्य भाग में अलग अलग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मणिपीठिकाएं कही गई हैं। वे मणिपीठिकाएं एक योजन लम्बी चौड़ी तथा आधा योजन मोटी है, सर्वमणिमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं। उन मणिपीठिकाओं के ऊपर अलग-अलग सिंहासन हैं। सिंहासन, मालाओं और परिवार का वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये। उन प्रेक्षाघर मण्डपों के ऊपर आठ आठ मंगल, ध्वजाएं और छत्रातिछत्र हैं।

उन प्रेक्षाघर मण्डपों के आगे तीन दिशाओं में तीन मणिपीठिकाएं (गोल चबूतरे के आकार की मणियों की बनी हुई पीठिका, यह जमीन से ऊंची होती है जिस पर विजयदेव का सपरिवार सिंहासन आया हुआ है।) वे मणिपीठिकाएं दो योजन लम्बी चौड़ी और एक योजन मोटी हैं। सर्व मणिमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

तासि णं मणिपेढियाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं चेइयथूभा पण्णत्ता, तेणं चेइयथूभा दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, साइरेगाइं दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं सेया संखंककुंददगरयामयमहियफेणपुंजसण्णिकासा, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा॥ तेसि णं चेइयथूभाणं उप्पिं अट्ठट्ठमगंलगा बहुकिण्हचामरज्झया पण्णत्ता छत्ताइछत्ता॥ तेसि णं चेइय थूभाणं चउद्दिसिं पत्तेयं पत्तेयं चत्तारि मणिपेढियाओ प०, ताओ णं मणिपेढियाओ जोयणं आयामविक्खंभेणं अद्धयोजणं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ॥ तासि णं मणिपेढियाओ उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं चत्तारि जिणपडिमाओ जिणुस्सेह पमाणमेत्ताओ पलियंकणिसण्णाओ थूयाभिमूहीओ सण्णिविट्ठाओ चिट्ठंति, तंजहा - उसभा वद्धमाणा चंदाणणा वारिसेणा॥

कठिन शब्दार्थ - चेइयथूभा - चैत्य स्तूप, **जिणपडिमाओ** - जिन प्रतिमाएं, **जिणुस्सेह पमाणमेत्ताओ** - जिनोत्सेध प्रमाण (जघन्य सात हाथ उत्कृष्ट पांच सौ धनुष), **पलियंकणिसण्णाओ**- पर्यंकासन से बैठी हुई, **थूयाभिमुहीओ** - स्तूप की ओर मुख

भावार्थ - उन मणिपीठिकाओं के ऊपर अलग अलग चैत्यस्तूप कहे गये हैं। वे चैत्यस्तूप दो योजन लम्बे चौड़े और कुछ अधिक दो योजन ऊंचे हैं। वे शंख, अंकरत्न, कुंद, जलबिंदु, अमृत के मथित फेन पुंज के समान सफेद हैं, सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

उन चैत्यस्तूपों के ऊपर आठ-आठ मंगल बहुत-सी काले चामर से अंकित ध्वजाएं आदि और छत्रातिछत्र कहे गये हैं।

उन चैत्य स्तूपों के चारों दिशाओं में अलग अलग चार मणिपीठिकाएं कही गई हैं। वे मणिपीठिकाएं एक योजन की लंबी-चौड़ी, आधा योजन मोटी और सर्व मणिमय हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उन मणिपीठिकाओं के ऊपर अलग अलग चार जिनप्रतिमाएं कही गई हैं जो जिनोत्सेध प्रमाण-पांच सौ धनुष प्रमाण हैं, पालथी आसन से बैठी हुई हैं, उनके मुख स्तूप की ओर हैं। इन प्रतिमाओं के नाम इस प्रकार हैं - ऋषभ, वर्द्धमान, चन्द्रानन और वारिषेण।

विवेचन - यहां पर जो जिनपडिमाएं कही गई हैं उसका अर्थ - 'पर्यंकासन से बैठी हुई शाश्वत प्रतिमाएं' होता है। सरागी जीवों के वर्णन के समान इनके शरीर का वर्णन भी नख से शिख पर्यंत होने से एवं स्तनों का वर्णन होने से इन्हें तीर्थंकरों की प्रतिमा नहीं समझा जाता है।

तेसि णं चेइयथूभाणं पुरओ तिदिसिं पत्तेयं पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं मणिपेढियाओ दो दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ अच्छाओ लण्हाओ सण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ णिप्पंकाओ णिरयाओ जाव पडिरूवाओ॥

तासि णं मणिपेढियाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं चेइयरुक्खा पण्णत्ता, ते णं चेइयरुक्खा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धजोयणं उव्वेहेणं दो जोयणाइं खंधी अद्धजोयणं विक्खंभेणं छजोयणाइं विडिमा बहुमज्झदेसभाए अट्ठजोयणाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं अट्ठजोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ताइं॥

भावार्थ - उन चैत्य स्तूपों के आगे तीन दिशाओं में अलग-अलग मणिपीठिकाएं कही गई हैं। वे मणिपीठिकाएं दो-दो योजन की लम्बी चौड़ी और एक योजन मोटी है। सर्व मणिमय हैं, स्वच्छ, मृदु, चिकनी, घिसी हुई, मंजी हुई, पंकरहित, रजरहित यावत् प्रतिरूप हैं।

उन मणिपीठिकाओं के ऊपर अलग-अलग चैत्यवृक्ष (चबूतरे पर आये हुए वृक्ष) कहे गये हैं। वे चैत्यवृक्ष आठ योजन ऊंचे हैं, आधा योजन जमीन मे हैं, दो योजन ऊंचा उनका स्कन्ध (तना) है, आधा योजन उस स्कंध का विस्तार है, मध्यभाग में ऊर्ध्व विनिर्गत शाखा (विडिमा) छह योजन ऊंची है। उस विडिमा का विस्तार आधे योजन का है। सब मिला कर वे चैत्यवृक्ष आठ योजन से कुछ अधिक ऊंचे हैं।

तेसि णं चेइयरुक्खाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा - वइरामया मूला रययसुपइट्ठिया विडिमा रिट्ठामयविपुल-कंदवेरुलियरुइलखंधा, सुजाय रूव-पढमग-विसालसाला, णाणामणिरयण-विविह-साहप्पसाहवेरुलिय-पत्ततवणिज्ज-पत्तवेंटा जंबूणयरत्तमउय-सुकुमाल-पवाल-पल्लव-सोभंतवरंकुरग्गसिहरा विचित्त-मणिरयण-सुरभिकुसुमफलभरणमियसाला सच्छाया सप्पभा समिरिया सउज्जोया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अमयरससमरसफला अहियं, णयणमणणिव्वुइकरा, पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा॥

भावार्थ - उन चैत्यवृक्षों का वर्णन इस प्रकार हैं - उनके मूल वज्ररत्न के हैं, उनकी ऊर्ध्व विनिर्गत शाखाएं रजत की हैं और सुप्रतिष्ठित हैं, उनका कंद रिष्टरत्नमय है, उनका स्कंध वैडूर्य रत्न का है और रुचिर है, उनकी मूलभूत विशाल शाखाएं शुद्ध और श्रेष्ठ स्वर्ण की हैं उनकी विविध शाखा-प्रशाखाएं नाना मणिरत्नों की हैं, उनके पत्ते वैडूर्य रत्न के हैं, उनके पत्तों के वृन्त तपनीय स्वर्ण के हैं। जम्बूनद जाति के स्वर्ण के समान लाल, मृदु, सुकुमार प्रवाल और पल्लव तथा प्रथम उगने वाले अंकुरों को धारण करने वाले हैं अथवा उनके शिखर तथाविध प्रवाल, पल्लव अंकुरों से सुशोभित हैं, उन चैत्यवृक्षों की शाखाएं विचित्र मणिरत्नों के सुगंधित फूल और फलों के भार से झुकी हुई हैं। वे चैत्यवृक्ष सुंदर छाया वाले, सुंदर कांति वाले, किरणों से युक्त और उद्योत करने वाले हैं। अमृत रस के फलों के समान उनके फलों का रस है। वे नेत्र और मन को अत्यंत तृप्ति देने वाले हैं, प्रसन्नता देने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

ते णं चेइयरुक्खा अण्णेहिं बहूहिं तिलय-लवय-छत्तोवग-सिरीस-सत्तवण्ण-दहिवण्ण-लोद्ध-धव-चंदण-णीव-कुडय-कयंब-पणस-तालतमाल-पियाल-पियंगु-पारावयरायरुक्ख-णंदिरुक्खेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता॥ ते णं तिलया जाव णंदिरुक्खा, मूलवंतो कंदमंतो जाव सुरम्मा॥ ते णं तिलया जाय णंदिरुक्खा अण्णेहिं बहूहिं पउमलयाहिं जाव सामलयाहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, ताओ णं पउमलयाओ जाव सामलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ जाव पडिरूवाओ। तेसि णं चेइयरुक्खाणं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता।

भावार्थ - वे चैत्यवृक्ष अन्य बहुत से तिलक, लवंग, छत्रोपक, शिरीष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोध्र, धव, चन्दन, नीप, कुटज, कदम्ब, पनस, ताल, तमाल, प्रियाल, प्रियंगु, पारापत, राजवृक्ष और नन्दिवृक्षों से सब ओर से घिरे हुए हैं। वे तिलक यावत् नन्दिवृक्ष मूल वाले हैं, कन्दवाले हैं, इत्यादि वृक्षों का वर्णन करना चाहिये यावत् वे सुरम्य हैं। वे तिलकवृक्ष यावत् नन्दिवृक्ष अन्य बहुत सी पद्मलताओं यावत् श्यामलताओं से घिरे हुए हैं। वे पद्मलताएं यावत् श्यामलताएं नित्य कुसुमित रहती हैं यावत् वे प्रतिरूप हैं। उन चैत्य वृक्षों के ऊपर बहुत से आठ-आठ मंगल, ध्वजाएं और छत्रों पर छत्र हैं।

तेसि णं चेइयरुक्खाणं पुरओ तिदिसिं तओ मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं मणिपेढियाओ जोयणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अच्छाओ जाव पडिरूवाओ॥ तासि णं मणिपेढियाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं महिंदज्झया अद्धट्ठमाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धकोसं उव्वेहेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं वइरामय-वट्टलट्ठसंठियसुसिलिट्ठपरिघट्ठमट्ठसुपइट्ठिया विसिट्ठा अणेगवरपंचवण्णकुडभीसहस्स-परिमंडियाभिरामा वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागा छत्ताइछत्तकलिया तुंगा गगणतलम-भिलंघमाणसिहरा पासाईया जाव पडिरूवा॥

भावार्थ - उन चैत्य वृक्षों के आगे तीन दिशाओं में तीन मणिपीठिकाएं कही गई हैं। वे मणिपीठिकाएं एक-एक योजन लम्बी-चौड़ी और आधे योजन की मोटी हैं। वे सर्वमणिमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

उन मणिपीठिकाओं के ऊपर अलग अलग महेन्द्र ध्वज हैं जो साढे सात योजन ऊंचे, आधा कोस ऊंडे, आधा कोस विस्तार वाले, वज्रमय, गोल सुंदर आकार वाले, सुसंबद्ध, घृष्ट, मृष्ट और सुस्थिर हैं, अनेक श्रेष्ठ पांच वर्णों की लघुपताकाओं से परिमंडित होने से सुंदर हैं, वायु से उड़ती हुई विजय सूचक वैजयंती पताकाओं से युक्त हैं, छत्रों पर छत्र से युक्त हैं, ऊंची हैं, उनके शिखर आकाश को लांघ रहे हैं, वे प्रसन्नता पैदा करने वाले यावत् प्रतिरूप हैं।

तेसि णं महिंदज्झयाणं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता। तेसि णं महिंदज्झयाणं पुरओ तिदिसिं तओ णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, ताओ णं पुक्खरिणीओ अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं सक्कोसाइं छ जोयणाइं विक्खंभेणं दसजोयणाइं उव्वेहेणं अच्छाओ सण्हाओ पुक्खरिणीवण्णओ पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खित्ताओ पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ताओ वण्णओ जाव पडिरूवाओ। तेसि णं पुक्खरिणीणं पत्तेयं पत्तेयं तिदिसिं तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं वण्णओ, तोरणा भाणियव्वा जाव छत्ताइच्छत्ता।

सभाए णं सुहम्माए छ मणोगुलिया साहस्सीओ पण्णत्ताओ, तंजहा - पुरत्थिमेणं दो साहस्सीओ पच्चत्थिमेणं दो साहस्सीओ दाहिणेणं एगा साहस्सी उत्तरेणं एगा साहस्सी, तासु णं मणोगुलियासु बहवे सुवण्णरुप्पामया फलगा पण्णत्ता, तेसु णं सुवण्णरुप्पामएसु फलगेसु बहवे वइरामया णागदंतगा पण्णत्ता, तेसु णं वइरामएसु णागदंतएसु बहवे किण्हसुत्त वट्टवग्घारियमल्लदामकलावा जाव सुक्किलसुत्तवट्ट-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - तिसोवाणपडिरूवगाणं - त्रिसोपान प्रतिरूपक-पुष्करणियों में प्रवेश करने के पगथिये (सीढ़ियाँ), **मणोगुलिया** - मनोगुलिका-गोमानसिका के नीचे की पीठिका (चबुतरा), **फलगा**- फलक-पाटिया-खूंटियां जिसमें से निकली है, उसके नीचे आये हुए पाटियों को फलक कहते हैं, **णागदंतगा** - नागदंतक-खूंटिया, **तवणिज्जलंबूसगा** - सोने के लम्बूसक-पेंडल वाली।

भावार्थ - उन महेन्द्र ध्वजों के ऊपर आठ आठ मंगल, ध्वजाएं और छत्रातिछत्र हैं।

उन महेन्द्र ध्वजों के आगे तीन दिशाओं में तीन नन्दा एुष्करिणियां हैं। वे नन्दा पुष्करिणियां साढे बारह योजन लम्बी हैं, सवा छह योजन की चौड़ी और दस योजन की ऊंडी हैं, स्वच्छ हैं, मृदु हैं इत्यादि पुष्करिणी का सारा वर्णन कह देना चाहिये। वे प्रत्येक पुष्करिणियां पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से घिरी हुई हैं। पद्मवरवेदिका और वनखण्ड का वर्णन समझ लेना चाहिये यावत् वे पुष्करिणियां दर्शनीय यावत् प्रतिरूप हैं। उन पुष्करिणियों की तीन दिशाओं में अलग अलग त्रिसोपानप्रतिरूपक (उन पुष्करणियों में प्रवेश करने के पगथिये-सीढियें)कहे गये हैं। उन त्रिसोपानप्रतिरूपकों का वर्णन कह देना चाहिये। तोरणों का वर्णन यावत् छत्रातिछत्र हैं।

उस सुधर्मा सभा में छह हजार मनोगुलिकाएं-गोमानसिका के नीचे की पीठिका (चबूतरे) कही गई हैं वे इस प्रकार हैं - पूर्व में दो हजार, पश्चिम में दो हजार, दक्षिण में एक हजार और उत्तर में एक हजार। उन मनोगुलिकाओं में बहुत से सोने चांदी के फलक-पाटिये हैं। उन सोने चांदी के फलकों में बहुत से वज्रमय नागदंतक (खूंटियाँ) हैं। उन वज्रमय नागदंतकों में बहुत सी काले सूत में पिरोई हुई गोल और लटकती हुई पुष्पमालाओं के समुदाय हैं यावत् सफेद डोरे में पिरोई हुई गोल और लटकती हुई पुष्पमालाओं के समुदाय हैं। वे पुष्पमालाएं सोने के लम्बूसक-पेंडल वाली हैं यावत् सब दिशाओं को सुगंध से पूरित करती हुई स्थित है।

सभाए णं सुहम्माए छ गोमाणसीसाहस्सीओ पण्णत्ताओ तंजहा-पुरत्थिमेणं दो साहस्सीओ, एवं पच्चत्थिमेणवि दाहिणेणं सहस्सं एवं उत्तरेणवि, तासु णं गोमाणसीसु बहवे सुवण्णरुप्पमया फलगा पण्णत्ता जाव तेसु णं वइरामएसु णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कया पण्णत्ता, तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वेरुलियामईओ धूवघडियाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं धूवघडियाओ कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्क जाव घाणमणणिव्वुइकरेणं गंधेणं सव्वओ समंता आपूरेमाणीओ चिट्ठंति।

सभाए णं सुहम्माए अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीणं फासो उल्लोया पउमलयभत्तिचित्ता जाव सव्वतवणिज्जमए अच्छे जाव पडिरूवे।। १३७।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस सुधर्मा सभा में छह हजार गोमानसिका-शय्या रूप स्थान कही गई हैं वे इस प्रकार हैं - पूर्व में दो हजार, पश्चिम में दो हजार, दक्षिण में एक हजार और उत्तर में एक हजार। उन गोमानसिका में बहुत से सोने चांदी के फलक-पाटिया हैं (खूंटियां जिसमें से निकली है, उसके नीचे आये हुए पाटियों को फलक कहते हैं) उन फलकों में बहुत से वज्रमय नागदंतक (खूंटियाँ) हैं, उन वज्रमय नागदंतकों में बहुत से चांदी के सींके (छींके) हैं। उन रजतमय छींकों में बहुत-सी वैडूर्य रत्न की धूपघटिकाएं कही गई हैं। वे धूपघटिकाएं काले अगर, श्रेष्ठ कुंदुरुक्क और लोभान के धूप की नाक और मन को तृप्ति देने वाली सुगंध से आसपास के क्षेत्र को पूरित करती हुई स्थित हैं।

उस सुधर्मा सभा में बहुसमरमणीय भूमिभाग कहा गया है यावत् मणियों का स्पर्श, भीतरी छत, पद्मलता आदि के विविध चित्र का वर्णन करना चाहिये यावत् वह भूमिभाग तपनीय स्वर्णमय है, स्वच्छ है और प्रतिरूप है।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता, सा णं मणिपेढिया दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमई जाव पडिरूवा॥ तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं माणवए णामं चेइयखंभे पण्णत्ते अद्धट्ठमाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धकोसं उव्वेहेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं छकोडीए छलंसे छव्विग्गहिए वइरामयवट्टलट्ठसंठिए एवं जहा महिंदज्झयस्स वण्णओ जाव पासाईए॥ तस्स णं माणवगस्स चेइयखंभस्स उवरिं छक्कोसे ओगाहित्ता हेट्ठा वि छक्कोसे वज्जेत्ता मज्झे अद्धपंचमेसु जोयणेसु एत्थ णं बहवे सुवण्णरुप्पमया फलगा पण्णत्ता, तेसु णं सुवण्णरुप्पमएसु फलएसु बहवे वइरामया णागदंता पण्णत्ता, तेसु णं वइरामएसु णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कगा पण्णत्ता॥ तेसु णं रययामयसिक्कएसु बहवे वइरामया गोलवट्टसमुग्गका पण्णत्ता, तेसु णं वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहवे जिणसकहाओ संणिक्खित्ताओ चिट्ठंति, जाओ णं विजयस्स देवस्स अण्णेसिं च बहूणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जाओ। माणवगस्स णं चेइयखंभस्स उवरिं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता॥

कठिन शब्दार्थ - **माणवगस्स चेइय खंभस्स** - माणवक नामक चैत्य स्तंभ-सुधर्मा सभा में आया हुआ एक विशिष्ट स्तंभ। **जिणसकहाओ** - जिनसक्थाएं-पृथ्वीकाय की बनी हुई शाश्वत दाढाएं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्य भाग में एक मणिपीठिका कही गई है। वह मणिपीठिका दो योजन लम्बी चौड़ी, एक योजन मोटी और सर्व मणिमय है। उस मणिपीठिका के ऊपर माणवक नामक चैत्य स्तंभ कहा गया है वह साढे सात योजन ऊंचा, आधा कोस ऊंडा और आधा कोस चौड़ा है। उसकी छह कोटियां हैं, छह कोण हैं और छह भाग हैं, वह वज्र का है, गोल है और सुंदर आकार वाला है। इस प्रकार महेन्द्र ध्वज के समान वर्णन कह देना चाहिये यावत् वह प्रसन्नता पैदा करने वाला यावत् प्रतिरूप हैं। उस माणवक चैत्य स्तंभ के ऊपर छह कोस ऊपर और छह कोस नीचे छोड़कर बीच के साढे चार योजन में बहुत से सोने-चांदी के फलक कहे गये हैं। उन सोने चांदी के फलकों में बहुत से वज्रमय नागदंतक हैं। उन वज्रमय नागदंतकों में बहुत से चांदी के छींके कहे गये हैं। उन रजतमय छींकों में बहुत से वज्रमय गोल समुद्गक (मंजूषा) कहे गये हैं। उन वज्रमय गोल-वर्तुल समुद्गकों में बहुत-सी जिनसक्थाएं (पृथ्वीकाय की बनी हुई शाश्वत दाढाएं।) रखी हुई हैं। वे विजयदेव और अन्य बहुत से वाणव्यंतर देव और देवियों के लिये अर्चनीय, वंदनीय, पूजनीय, सत्कार योग्य, सम्मान योग्य, कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, चैत्य रूप और पर्युपासना योग्य हैं। उस माणवक चैत्य स्तंभ के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजाएं और छत्रातिछत्र हैं।

विवेचन - मूल पाठ में **जिणसकहाओ** शब्द आया है उसका अर्थ **जिनसक्थाएं** होता है। जिनसक्थाएं का अर्थ है - पृथ्वीकाय नी बनी हुई शाश्वत दाढाएं। जिसे वे देव इस देवभव में मंगलकारी समझते हैं। मंगलरूप होने से उस पर उन देवों की भक्ति रहती है। वे उसे सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। **जो जिणसकहाओ** का अर्थ **जिन अस्थियाँ** करते हैं वह उचित नहीं है।

विजयदेव के भी जीवन में अनेक समस्याएं आने से अनेक बार जिनसक्था की पूजा का वर्णन है। युद्ध भी एक समस्या है।

तस्स णं माणवकस्स चेइयखंभस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं एगा महामणिपेढिया पण्णत्ता, सा णं मणिपेढिया दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमई जाव पडिरूवा॥ तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं एगे महं सीहासणे पण्णत्ते, सीहासणवण्णओ॥ तस्स णं माणवगस्स चेइय खंभस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता जोयणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा जाव पडिरूवा॥ तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते, तस्स णं देवसयणिज्जस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा-णाणामणिमया पडिपाया सोवण्णिया पाया णाणामणिमया पायसीसा जंबूणयमयाइं गत्ताइं वइरामया संधी णाणामणिमए विच्चे रययामया तूली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोहियक्खमया बिब्बोयणा तवणिज्जमई गंडोवहाणिया, से णं देवसयणिज्जे उभओ बिब्बोयणे दुहओ उण्णए मज्झेणयगंभीरे सालिंगणवट्टिए गंगापुलिणवालुउद्दालसालिसए ओयवियक्खोमदुगुल्लपट्टपडिच्छायणे सुविरइयरयत्ताणे रत्तंसुयसंवुए सुरम्मे आईणगरूयबूरणवणीयतूलफासमउए पासाईए ४॥

भावार्थ - उस माणवक चैत्यस्तम्भ के पूर्व में एक बड़ी मणिपीठिका है। वह मणिपीठिका दो योजन लम्बी चौड़ी, एक योजन मोटी और सर्व मणिमय यावत् प्रतिरूप है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक बड़ा सिंहासन कहा गया है सिंहासन का वर्णन कह देना चाहिये।

उस माणवक चैत्य स्तम्भ के पश्चिम में एक बड़ी मणिपीठिका है जो एक योजन लम्बी चौड़ी और आधा योजन मोटी है जो सर्वमणिमय और स्वच्छ है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक बड़ा देवशयनीय कहा गया है। देवशयनीय का वर्णन इस प्रकार है - नाना मणियों के उसके प्रतिपाद-मूल पायों को स्थिर रखने वाले पाये-हैं, उसके मूल पाये सोने के हैं नाना मणियों के पायों के ऊपरी भाग हैं, जम्बूनद स्वर्ण की उसकी ईसें हैं, वज्रमय संधियां हैं, वह नानामणियों से बुना हुआ है, चांदी की गादी है, लोहिताक्ष रत्नों के तकिये हैं और तपनीय स्वर्ण का गलमसूरिया है।

वह देवशयनीय, सिर और पांव की तरफ-दोनों ओर तकियों वाला हैं, शरीर प्रमाण मसनद-बड़े बड़े गोल तकिये हैं, वह दोनों तरफ से उन्नत और मध्य में नत एवं गहरा है, गंगा नदी के किनारे की बालुका में पैर रखते ही जैसे वह अंदर उतर जाता है वैसे ही वह शय्या उस पर सोते ही नीचे बैठ जाती है, उस पर बेल-बूटे निकाला हुआ पलंगपोस (सूती वस्त्र) बिछा हुआ है, उस पर रजस्त्राण लगाया हुआ है, वह लालवस्त्र से ढका हुआ है, सुरम्य है, मृग चर्म, रुई, बूर वनस्पति और मक्खन के समान मृदु उसका स्पर्श है, वह प्रसन्नता पैदा करने वाला यावत् प्रतिरूप है।

तस्स णं देवसयणिज्जस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं महई एगा मणिपीढिया पण्णत्ता जोयणमेगं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा जाव पडिरूवा॥ तीसे णं मणिपीढियाए उप्पिं एगे महं खुड्डुए महिंदज्झए पण्णत्ते अद्धट्ठमाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धकोसं उव्वेहेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं वेरुलिया मयवट्टलट्ठसंठिए तहेव जाव मंगलगा झया छत्ताइछत्ता॥

तस्स णं खुड्डमहिंदज्झयस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स चुप्पालए णाम पहरणकोसे पण्णत्ते॥ तत्थ णं विजयस्स देवस्स फलिहरयणपामोक्खा बहवे पहरणरयणा संणिक्खित्ता चिट्ठंति, उज्जलसुणिसियसुतिक्खधारा पासाईया ४॥ तीसे णं सभाए सुहम्माए उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता॥ १३८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस देवशयनीय के उत्तरपूर्व-ईशान कोण में एक बड़ी मणिपीठिका कही गई है। वह एक योजन की लम्बी-चौड़ी और आधे योजन की मोटी तथा सर्वमणिमय यावत् स्वच्छ है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक छोटा महेन्द्र ध्वज कहा गया है जो साढे सात योजन ऊंचा, आधा कोस ऊंडा और आधा कोस चौड़ा है। वह वैडूर्य रत्न का है, गोल है और सुंदर आकार का है इत्यादि सारा वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिए यावत् आठ-आठ मंगल, ध्वजाएं और छत्रातिछत्र हैं।

उस छोटे महेन्द्रध्वज के पश्चिम में विजय देव का चौपाल नामक शस्त्रागार है। वहां विजय देव के परिघरत्न आदि शस्त्र रत्न रखे हुए हैं। वे शस्त्र उज्ज्वल, अति तेज और तीखी धार वाले हैं वे प्रासादीय यावत् प्रतिरूप हैं। उस सुधर्मा सभा के ऊपर बहुत सारे आठ-आठ मंगल, ध्वजाएं और छत्रातिछत्र हैं।

सिद्धायतन का वर्णन

सभाए णं सुहम्माए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थणं एगे महं सिद्धायतणे पण्णत्ते अद्धतेरस जोयणाइं आयामेणं छ जोयणाइं सकोसाइं विक्खंभेणं णवजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं जाव गोमाणसिया वत्तव्वया, जा चेव सभाए सुहम्माए वत्तव्वया सा चेव णिरवसेसा भाणियव्वा तहेव दारा मुहमंडवा पेच्छाघरमंडवा झया थूभा चेइयरुक्खा महिंदज्झया णंदाओ पुक्खरिणीओ, तओ य सुहम्माए जहा पमाणं मणगुलियाणं गोमाणसिया धूवयघडिओ तहेव भूमिभागे उल्लोए य जाव मणिफासे॥

तस्स णं सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा०, तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं एगे महं देवच्छंदए पण्णत्ते दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं सव्वरयणामए अच्छे॥ तत्थ णं देवच्छंदए अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहप्पमाणमेत्ताणं संणिक्खित्तं चिट्ठइ॥

कठिन शब्दार्थ - सिद्धायतणे - सिद्धायतन-शाश्वत प्रतिमाओं का स्थान।

भावार्थ - सुधर्मा सभा के उत्तरपूर्व (ईशानकोण) में एक विशाल सिद्धायतन कहा गया है जो साढे बारह योजन का लम्बा, छह योजन एक कोस चौड़ा और नौ योजन ऊंचा है। इस प्रकार जैसा सुधर्मा सभा का वर्णन कहा है वैसा गोमानसिका (शय्या) तक कह देना चाहिये। द्वार, मुखमण्डप, प्रेक्षागृह मण्डप, ध्वजा, स्तूप, चैत्य वृक्ष, महेन्द्र ध्वज, नन्दा पुष्करिणियां मनोगुलिकाओं का प्रमाण गोमानसिका, धूपघटिकाएं, भूमिभाग, भीतरी छत यावत् मणियों का स्पर्श आदि का वर्णन सुधर्मा सभा की तरह कह देना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उस सिद्धायतन के बहुमध्य देशभाग में एक विशाल मणिपीठिका कही गई है जो दो योजन लम्बी चौड़ी, एक योजन मोटी है, सर्वमणिमय है, स्वच्छ है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल देवच्छंदक-आसन विशेष कहा गया है जो दो योजन लम्बा, चौड़ा और कुछ अधिक दो योजन का ऊंचा है, सर्वरत्नमय है और स्वच्छ स्फटिक के समान है। उस देवच्छंदक में जिनोत्सेध प्रमाण एक सौ आठ जिन प्रतिमाएं रखी हुई हैं।

विवेचन - यहां पर एवं अन्यत्र भी जहां 'सिद्धायतन' का वर्णन आया है। वहां सर्वत्र 'सिद्धायतन' का अर्थ - 'शाश्वत प्रतिमाओं का स्थान' समझना चाहिये। टीकाकार ने भी इसी प्रकार का अर्थ किया है। ये शाश्वत प्रतिमाएं तीर्थंकरों की नहीं समझकर कामदेव आदि सरागियों की समझनी चाहिये। मूलपाठ में आये हुए 'जिन' शब्द के अनेक अर्थ होने से यहां पर तीर्थंकर आदि के अर्थ उचित एवं प्रासंगिक नहीं होते हैं।

तासि णं जिणपडिमाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा-तवणिज्जमया हत्थतला अंकामयाइं णक्खाइं अंतोलोहियक्खपरिसेयाइं कणगामया पादा कणगामया गोप्फा कणगामईओ जंघाओ कणगामया जाणू कणगामया उरु कणगामयाओ गायलट्ठीओ तवणिज्जमईओ णाभीओ रिट्ठामईओ रोमराईओ तवणिज्जमया चुच्चुया तवणिज्जमया सिरिवच्छा कणगमयाओ बाहाओ कणगमईओ पासाओ कणगमईओ गीवाओ रिट्ठामए मंसु सिलप्पवालमया उट्ठा फलिहामया दंता तवणिज्जमईओ जीहाओ तवणिज्जमया तालुया कणगमईओ णासाओ, अंतोलोहियक्खपरिसेयाओ अंकामयाइं अच्छीणि अंतोलोहियक्खपरिसेयाइं पुलगमईओ दिट्ठीओ रिट्ठामईओ तारगाओ रिट्ठामयाइं अच्छिपत्ताइं रिट्ठामईओ भमुहाओ कणगामया कवोला कणगामया सवणा कणगामया णिडाला वट्टा वइरामईओ सीसघडिओ तवणिज्जमईओ केसंतकेसभूमीओ रिट्ठामया उवरिमुद्धज्जा।।

भावार्थ - उन जिन प्रतिमाओं का वर्णन इस प्रकार कहा गया है - उनके हस्ततल तपनीय स्वर्ण के हैं, उनके नख अंकरत्नों के हैं, उनका मध्य भाग लोहिताक्ष रत्नों की ललाई से युक्त हैं, उनके पांव स्वर्ण के हैं, उनके टखने (गुल्फ) कनकमय हैं, उनकी जंघाएं कनकमयी हैं, उनके घुटने कनकमय है, उनके जंघाएं (ऊरु) कनकमय हैं, उनकी गात्रयष्टि कनकमयी है, उनकी नाभियां तपनीय स्वर्ण की हैं, उनकी रोमराजि रिष्टरत्नों की है, उनके चूचूक (स्तनों के अग्रभाग) तपनीय स्वर्ण के हैं, उनके श्रीवत्स-छाती पर अंकित चिह्न तपनीय स्वर्ण के हैं, उनकी भुजाएं कनकमयी हैं, उनकी पसलियां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कनकमयी हैं, उनकी ग्रीवा कनकमयी है, उनकी मूछें रिष्टरत्न की हैं, उनके होठ प्रवाल रत्न के हैं, उनके दांत स्फटिक रत्न के हैं, तपनीय स्वर्ण की जिह्वाएं हैं, तपनीय स्वर्ण के तालु हैं, कनकमयी उनकी नासिका हैं, जिसका मध्यभाग लोहिताक्ष रत्नों की ललाई से युक्त हैं, उनकी आंखें अंकरत्न की है, उनका मध्यभाग लोहिताक्ष रत्न की ललाई युक्त है, उनकी दृष्टि पुलकित-प्रसन्न है, उनकी आंखों की कीकी रिष्टरत्नों की हैं, उनकी अक्षिपत्र रिष्टरत्नों के हैं, उनकी भौंहें रिष्ट रत्नों की हैं, उनके गाल स्वर्ण के हैं, उनके कान स्वर्ण के हैं, उनके ललाट कनकमय हैं, उनके शीर्ष गोल वज्ररत्न के हैं, केशों की भूमि तपनीय स्वर्ण की है और केश रिष्ट रत्नों के बने हुए हैं।

तासि णं जिणपडिमाणं पिट्ठओ पत्तेयं पत्तेयं छत्तधारपडिमाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं छत्तधारपडिमाओ हिमरययकुंदेंदुसप्पगासाइं सकोरेंटमल्लदामधवलाइं आतपत्ताइं सलीलं ओहारेमाणीओ चिट्ठंति॥ तासि णं जिणपडिमाणं उभओ पासिं पत्तेयं पत्तेयं चामरधारपडिमाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं चामरधारपडिमाओ चंदप्पहवइरवेरुलियणाणामणिकणगरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाओ चिल्लियाओ संखंककुंददगरयअमयमहितफेणपुंजसण्णिगासाओ सुहुमरययदीहवालाओ धवलाओ चामराओ सलीलं ओहारेमाणीओ चिट्ठंति॥ तासि णं जिणपडिमाणं पुरओ दो दो णागपडिमाओ दो दो जक्खपडिमाओ दो दो भूतपडिमाओ दो दो कुंडधारपडिमाओ विणओणयाओ पायवडियाओ पंजलिउडाओ संणिक्खित्ताओ चिट्ठंति सव्वरयणामईओ अच्छाओ सण्हाओ लण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ णीरयाओ णिप्पंकाओ जाव पडिरूवाओ॥

भावार्थ - उन जिन प्रतिमाओं के पीछे अलग अलग छत्रधारिणी प्रतिमाएं कही गई हैं। वे छत्रधारण करने वाली प्रतिमाएं लीलापूर्वक कोरंट पुष्प की मालाओं से युक्त हिम, रजत, कुंद और चन्द्र के समान श्वेत आतपत्रों-छत्रों को धारण किये हुए खड़ी है। उन जिन प्रतिमाओं के दोनों पार्श्वभाग में अलग अलग चंवर धारण करने वाली प्रतिमाएं कही गई हैं। वे चामरधारिणी प्रतिमाएं चन्द्रकांतमणि, वज्र, वैडूर्य आदि नाना मणिरत्नों व सोने से खचित और निर्मल बहुमूल्य तपनीय स्वर्ण के समान उज्ज्वल और विचित्र दंडों एवं शंख, अंकरत्न, कुंद, जलकण, चांदी एवं क्षीरोदधि (अमृत) को मथने से उत्पन्न फेनपुंज के समान सफेद सूक्ष्म और चांदी के दीर्घ बाल वाले धवल चामरों को लीलापूर्वक धारण करती हुई स्थित हैं।

उन जिन प्रतिमाओं के आगे दो दो नाग प्रतिमाएं, दो दो यक्ष प्रतिमाएं, दो दो भूतप्रतिमाएं, दो दो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुण्डधार प्रतिमाएं विनययुक्त पाद पतित और हाथ जोड़े हुए रखी हुई है। वे सर्वरत्नमयी हैं। स्वच्छ हैं, मृदु हैं, सूक्ष्म पुद्गलों से निर्मित हैं घीसी हुई, मंजी हुई, रज रहित, निर्मल निष्पंक यावत् प्रतिरूप हैं।

तासि णं जिणपडिमाणं पुरओ अट्ठसयं घंटाणं अट्ठसयं चंदणकलसाणं एवं अट्ठसयं भिंगारगाणं एवं आयंसगाणं थालाणं पाईणं सुपइट्ठाणं मणगुलियाणं वायकरगाणं चित्ताणं रयणकरंडगाणं हयकंठगाणं जाव उसभकंठगाणं पुप्फचंगेरीणं जाव लोमहत्थचंगेरीणं पुप्फपडलगाणं अट्ठसयं तेलसमुग्गाणं जाव धूवकडुच्छुयाणं संणिक्खित्तं चिट्ठइ॥ तस्स णं सिद्धायतणस्स णं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठ मंगलगा झया छत्ताइछत्ता उत्तिमागारा सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोभिया तं जहा-रयणेहिं जाव रिट्ठेहिं॥ १३९॥

कठिन शब्दार्थ - वायकरगाणं - वातकरक-जलशून्य घड़े, **लोमहत्थचंगेरीणं** - लोमहस्तचंगेरी-गोलोम आदि के बने हुए चमरों से अथवा लोमहस्तकों से भरी हुई छबडी, **पुप्फपडलगाणं** - पुष्प पटलक, **उत्तिमागारा** - उत्तम आकार के।

भावार्थ - उन जिनप्रतिमाओं के आगे एक सौ आठ घंटा, एक सौ आठ चंदन कलश, एक सौ आठ झारियां तथा इसी तरह आदर्शक, स्थाल, पात्रियां, सुप्रतिष्ठक, मनोगुलिका, वातकरक-जलशून्य घड़े, चित्र रत्नकरंडक, हयकंठक यावत् वृषभकंठक, पुष्पचंगेरियां यावत् लोमहस्त चंगेरियां, पुष्पपटलक, तैल समुद्गक यावत् धूप के कडुच्छुक-ये सब एक सौ आठ, एक सौ आठ वहां रखे हुए हैं। उस सिद्धायतन के ऊपर बहुत से आठ-आठ मंगल ध्वजाएं और छत्रातिछत्र हैं जो उत्तम आकार के सोलह रत्नों यावत् रिष्ट रत्नों से शोभायमान हैं।

विवेचन - उपर्युक्त पाठ में 'लोमहस्त चंगेरी' शब्द आया है इसका अर्थ यह होता है - गो लोम आदि के बने हुए चमरों से अथवा लोमहस्तकों से भरी हुई छबड़ी। ऊन आदि के रोमों से बनी हुई जैसी, प्रतिमा आदि को पूंजने में काम आने वाली पूंजनी को लोमहस्तक कहा जाता है।

उपपात सभा का वर्णन

तस्स णं सिद्धायतणस्स णं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं उववायसभा पण्णत्ता जहा सुहम्मा तहेव जाव गोमाणसीओ उववायसभाए वि दारा मुहमंडवा सव्वं भूमिभागे तहेव जाव मणिफासो (सुहम्मासभा वत्तव्वया भाणियव्वा जाव भूमीए फासो)॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता जोयणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा जाव पडिरूवा, तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते, तस्स णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवसयणिज्जस्स वण्णओ, उववायसभाए णं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता जाव उत्तिमागारा, तीसे णं उववायसभाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं हरए पण्णत्ते, से णं हरए अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं छकोसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं दस जोयणाइं उव्वेहेणं अच्छे सण्हे वण्णओ जहेव णंदाणं पुक्खरिणीणं जाव तोरणवण्णओ, तस्स णं हरयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं अभिसेयसभा पण्णत्ता जहा सभा सुहम्मा तं चेव णिरवसेसं जाव गोमाणसीओ भूमिभाए उल्लोए तहेव॥

कठिन शब्दार्थ - **उववायसभाए** - उपपात सभा, **हरए** - सरोवर।

भावार्थ - उस सिद्धायतन के उत्तरपूर्व-ईशानकोण में एक बड़ी उपपात सभा कही गई है। सुधर्मा सभा की तरह गोमानसिका पर्यन्त सारा वर्णन कह देना चाहिये। उपपात सभा में भी द्वार, मुखमण्डप आदि सब वर्णन भूमिभाग यावत् मणियों का स्पर्श आदि कह देना चाहिये। (यहां सुधर्मा सभा का वर्णन भूमिभाग और मणियों के स्पर्श तक कहना चाहिये)।

उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के मध्य एक बड़ी मणिपीठिका कही गई है। वह एक योजन लम्बी-चौड़ी और आधा योजन मोटी है। सर्वरत्नमय और स्वच्छ है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक बड़ा देवशयनीय कहा गया है। उस देवशयनीय का वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये। उस उपपात सभा के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजा और छत्रातिछत्र हैं जो उत्तम आकार के हैं और रत्नों से शोभायमान हैं।

उस उपपात सभा के उत्तरपूर्व में एक बड़ा सरोवर कहा गया है। वह सरोवर साढे बारह योजन लम्बा, छह योजन एक कोस चौड़ा और दस योजन ऊंडा है। वह स्वच्छ है, मृदु है आदि वर्णन नंदापुष्करिणी के समान यावत् तोरण तक कह देना चाहिये।

उस सरोवर के उत्तर पूर्व (ईशानकोण) में एक अभिषेक सभा कही गई है उसका सारा वर्णन सुधर्मा सभा की तरह कह देना चाहिये यावत् गोमानसिका, भूमिभाग, उल्लोक (भीतरी छत) आदि का वर्णन सुधर्मा सभा की तरह ही समझना चाहिये।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता जोयणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमया अच्छा०॥ तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं एगे महं सीहासणे पण्णत्ते, सीहासणवण्णओ अपरिवारो॥ तत्थ णं विजयस्स देवस्स सुबहु अभिसेक्के भंडे संणिक्खित्ते चिट्ठइ, अभिसेयसभाए उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा जाव उत्तिमागारा सोलसविहेहिं रयणेहिं(उवसोभिया), तीसे णं अभिसेयसभाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं अलंकारियसभा पण्णत्ता अभिसेयसभावत्तव्वया भाणियव्वा जाव गोमाणसीओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मणिपेढियाओ जहा अभिसेयसभाए उप्पिं सीहासणं (स)अपरिवारं॥ तत्थ णं विजयस्स देवस्स सुबहु अलंकारिए भंडे संणिक्खित्ते चिट्ठइ, अलंकारिय० उप्पिं मंगलगा झया जाव (छत्ताइछत्ता) उत्तिमागारा॥

भावार्थ - उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्य भाग में एक बड़ी मणिपीठिका कही गई है। वह एक योजन लम्बी-चौड़ी और आधा योजन मोटी है, सर्व मणिमय और स्वच्छ है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक बड़ा सिंहासन है। यहाँ सिंहासन का वर्णन कह देना चाहिये किंतु परिवार का कथन नहीं करना चाहिये। उस सिंहासन पर विजयदेव के अभिषेक योग्य सामग्री रखी हुई है। अभिषेक सभा के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजाएं, छत्रातिछत्र कह देने चाहिये जो उत्तम आकार के और सोलह रत्नों से शोभायमान हैं।

उस अभिषेक सभा के उत्तरपूर्व (ईशानकोण) में एक विशाल अलंकार सभा है। उसका वर्णन अभिषेक सभा की तरह गोमानसिका पर्यंत कह देना चाहिये। मणिपीठिका का वर्णन भी अभिषेक सभा की तरह समझ लेना चाहिये। उस मणिपीठिका पर सपरिवार सिंहासन का कथन करना चाहिये। उस सिंहासन पर विजयदेव के अलंकार योग्य बहुत-सी सामग्री रखी हुई है। उस अलंकार सभा के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजाएं और छत्रातिछत्र हैं जो उत्तम आकार के रत्नों से शोभायमान हैं।

तीसे णं अलंकारियसहाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं ववसायसभा पण्णत्ता, अभिसेयसभावत्तव्वया जाव सीहासणं अपरिवारं॥ त(ए)त्थ णं विजयस्स देवस्स एगे महं पोत्थयरयणे संणिक्खित्ते चिट्ठइ, तस्स णं पोत्थयरयणस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा-रिट्ठामईओ कंबियाओ [रययामयाइं पत्तगाइं] तवणिज्जमए दोरे णाणामणिमए गंठी (अंकमयाइं पत्ताइं) वेरुलियमए लिप्पासणे तवणिज्जमई संकला रिट्ठामए छायणे रिट्ठामया मसी वइरामई लेहणी रिट्ठामयाइं अक्खराइं धम्मिए सत्थे ववसायसभाए णं-उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता उत्तिमागारेइ।

तीसे णं ववसायसभाए उत्तरपुरत्थिमेणं एगे महं बलिपेढे पण्णत्ते दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वरययामए अच्छे जाव पडिरूवे॥ तस्स णं बलिपेढस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं णंदापुक्खरिणी पण्णत्ता जं चेव पमाणं हरयस्स तं चेव सव्वं॥ १४०॥

कठिन शब्दार्थ - ववसायसभा - व्यवसाय सभा, **पोत्थयरयणे** - पुस्तक रत्न, **कंबियाओ** - कंबिका (पुट्ठे), **लिप्पासणे** - मषिपात्र (दवात), **मसी** - स्याही, **लेहणी** - लेखनी, **धम्मिए सत्थे** - धार्मिक शास्त्र-संविधान (कानून) राष्ट्र धर्म का शास्त्र, **बलिपेढे** - बलिपीठ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस अलंकार सभा के उत्तरपूर्व (ईशानकोण) में एक बड़ी व्यवसाय सभा कही गई है। परिवार रहित सारा वर्णन अभिषेक सभा की तरह सिंहासन पर्यन्त तक कह देना चाहिये। उस सिंहासन पर विजयदेव का पुस्तक रत्न रखा हुआ है। उस पुस्तक रत्न का वर्णन इस प्रकार है - रिष्ट रत्न की उसकी कंबिका (पुट्ठे) हैं, चांदी के उसके पन्ने हैं, रिष्ट रत्नों के अक्षर हैं, तपनीय स्वर्ण का डोरा है, जिसमें पन्ने पिरोये हुए हैं नाना मणियों की उस डोरे की गांठ है ताकि पन्ने अलग अलग न हों, वैडूर्य रत्न का मषिपात्र-दवात है, तपनीय स्वर्ण की उस दवात की सांकल है, रिष्ट रत्न का उसका ढक्कन है, रिष्ट रत्न की स्याही है, वज्ररत्न की लेखनी है। वह एक धार्मिक ग्रंथ हैं। उस व्यवसाय सभा के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजाएं और छत्रातिछत्र हैं जो उत्तम आकार के हैं यावत् रत्नों से सुशोभित है।

उस व्यवसाय सभा के उत्तरपूर्व में एक विशाल बलिपीठ है, वह दो योजन लम्बा-चौड़ा और एक योजन मोटा है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप है। उस बलिपीठ के उत्तरपूर्व में एक बड़ी नन्दा पुष्करिणी कही गई है। उसका प्रमाण आदि वर्णन पूर्वोक्त सरोवर के समान समझ लेना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में उपपात सभा आदि का वर्णन किया गया है अब सूत्रकार विजयदेव का उपपात वर्णन करते हैं -

विजयदेव का उपपात और उसका अभिषेक

तेणं कालेणं तेणं समएणं विजए देवे विजयाए रायहाणीए उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिए अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए बोंदीए विजयदेवत्ताए उववण्णे॥ तए णं से विजए देवे अहुणोववण्णमेत्तए चेव समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गच्छइ, तंजहा-आहारपज्जत्तीए सरीरपज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए आणापाणुपज्जत्तीए भासामणपज्जत्तीए॥ तए णं तस्स विजयस्स देवस्स पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गयस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पजित्था-किं मे पुव्वं सेयं किं मे पच्छा सेयं किं मे पुव्विं करणिज्जं किं मे पच्छा करणिज्जं किं मे पुव्विं वा पच्छा वा हियाए सुहाए खेमाए णिस्सेसयाए अणुगामियत्ताए भविस्सइ त्तिकट्टु एवं संपेहेइ॥

कठिन शब्दार्थ - **देवसयणिज्जंसि** - देव शयनीय में, **देवदूसंतरिए** - देवदूष्य के अंदर, **अज्झत्थिए** - अध्यवसाय, **चिंतिए** - चिंतन, **पत्थिए** - प्रार्थित, **मणोगए** - मनोगत।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस काल और उस समय में विजयदेव विजया राजधानी की उपपात सभा में देवशयनीय में देवदूष्य के अंदर अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण शरीर में विजयदेव के रूप में उत्पन्न हुआ। तब वह विजयदेव उत्पन्न होते ही पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पूर्ण हुआ। वे पांच पर्याप्तियां इस प्रकार हैं - १. आहार पर्याप्ति २. शरीर पर्याप्ति ३. इन्द्रिय पर्याप्ति ४. आनप्राण-श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति और ५. भाषा मन पर्याप्ति (भाषा पर्याप्ति और मनःपर्याप्ति कुछ ही अन्तर से लगभग एक साथ पूर्ण होने के कारण उनकी अलग अलग विवक्षा नहीं की गई है)।

तब उस विजयदेव को पांच पर्याप्तियों से पर्याप्त होने पर इस प्रकार का अध्यवसाय, चिंतन, प्रार्थित और मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ - मेरे लिए पूर्व में क्या श्रेयस्कर है, पश्चात् क्या श्रेयस्कर है, मुझे पहले क्या करना चाहिये, मुझे पश्चात् क्या करना चाहिये, मेरे लिये पहले और बाद में क्या हितकारी, सुखकारी, कल्याणकारी, निःश्रेयस्कारी और परलोक में साथ जाने वाला होगा। वह इस प्रकार का चिंतन करता है।

तएणं तस्स विजयस्स देवस्स सामाणियपरिसोववण्णगा देवा विजयस्स देवस्स इमं एयारूवं अज्झत्थियं चिंतियं पत्थियं मणोगयं संकप्पं समुप्पण्णं जाणित्ता जेणामेव से विजय देवे तेणामेव उवागच्छंति तेणामेव उवागच्छित्ता विजयं देवं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति जएणं विजएणं वद्धावेत्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पियाणं विजयाए रायहाणीए सिद्धायतणंसि अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहपमाणमेत्ताणं संणिक्खित्तं चिट्ठइ सभाए य सुहम्माए माणवए चेइयखंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सण्णिक्खित्ताओ चिट्ठंति जाओ णं देवाणुप्पियाणं अण्णेसिं च बहूणं विजयरायहाणिवत्थव्वाणं देवाणं देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जाओ एयण्णं देवाणुप्पियाणं पुव्विंपि सेयं एयण्णं देवाणुप्पियाणं पच्छावि सेयं एयण्णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं करणिज्जं पच्छा करणिज्जं एयण्णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं वा पच्छा वा जाव आणुगामियत्ताए भविस्सइ ति कट्टु महया महया जय (जय) सद्दं पउंजंति॥

भावार्थ - तब उस विजयदेव की सामानिक परिषद् के देव विजयदेव के इस प्रकार के अध्यवसाय, चिंतन, प्रार्थित और मनोगत संकल्प को उत्पन्न हुआ जान कर जिस ओर विजयदेव था उस ओर आते हैं और आकर विजयदेव को हाथ जोड़ कर, मस्तक पर अंजलि लगा कर जय विजय से बधाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बधाकर वे इस प्रकार बोले - हे देवानुप्रिय! आपकी विजया राजधानी के सिद्धायतन में जिनोत्सेधप्रमाण एक सौ आठ जिन प्रतिमाएं रखी गई हैं और सुधर्मा सभा के माणवक चैत्य स्तंभ पर वज्रमय गोल मंजूषाओं में बहुत सी जिनसक्थाएं (पृथ्वीकाय की बनी हुई शाश्वत दाढाएं) रखी हुई है जो आप देवानुप्रिय के और विजया राजधानी में रहने वाले बहुत से देवों और देवियों के लिये अर्चनीय, वंदनीय, पूजनीय, सत्कारनीय, सम्माननीय है जो कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, चैत्यरूप हैं तथा पर्युपासना करने योग्य हैं। यह आप देवानुप्रिय के लिये पूर्व में भी श्रेयस्कर है, पश्चात् भी श्रेयस्कर है, पूर्व में भी करणीय है और पश्चात् में भी करणीय है। यह आप देवानुप्रिय के लिए पहले और बाद में हितकारी यावत् साथ चलने वाला होगा, ऐसा कह कर वे जोर जोर से जय-जयकार शब्द का प्रयोग करते हैं।

तएणं से विजए देवे तेसिं सामाणियपरिसोववण्णगाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियए (तए णं से विजए देवे) देवसयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता दिव्वं देवदूसजुयलं परिहेइ २ त्ता देवसयणिज्जाओ पच्चोरुहइ २ त्ता उववायसभाओ पुरत्थिमेणं दारेणं णिग्गच्छइ २ त्ता जेणेव हरए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता हरयं अणुपयाहिणं करेमाणे करमाणे पुरत्थिमेणं तोरणेणं अणुप्पविसइ २ त्ता पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ २ त्ता हरयं ओगाहइ २ त्ता जलावगाहणं करेइ २ त्ता जलमज्जणं करेइ २ त्ता जलकिड्डं करेइ २ त्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूए हरयाओ पच्चुत्तरइ २ त्ता जेणामेव अभिसेयसभा तेणामेव उवागच्छइ २ त्ता अभिसेयसभं अणुपयाहिणं करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ २ त्ता जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरच्छाभिमुहे सण्णिसण्णे॥

भावार्थ - वह विजयदेव उन सामानिक परिषद् के देवों से ऐसा सुन कर हृष्टतुष्ट हुआ यावत् उसका हृदय विकसित हुआ। वह देवशयनीय से उठता है और उठ कर देवदूष्य युगल धारण करता है, धारण करके देवशयनीय से नीचे उतरता है, उतर कर उपपात सभा के पूर्व द्वार से बाहर निकलता है और जिधर ह्रद-सरोवर है उधर जाता है जाकर सरोवर की प्रदक्षिणा करके पूर्व दिशा के तोरण से उसमें प्रवेश करता है और प्रवेश करके पूर्व दिशा के त्रिसोपान प्रतिरूपक से नीचे उतरता है और जल में अवगाहन करता है। जलावगाहन करके जलमज्जन और जलक्रीड़ा करता है। इस प्रकार अत्यंत पवित्र और शूचिभूत होकर सरोवर से बाहर निकलता है और जिधर अभिषेक सभा है उधर जाता है। अभिषेक सभा की प्रदक्षिणा करके पूर्व दिशा के द्वार से उसमें प्रवेश करता है और जिस तरफ सिंहासन रखा है उधर जाता है तथा पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर बैठ जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तएणं तस्स विजयस्स देवस्स सामाणियपरिसोववण्णगा देवा आभिओगिए देवे सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! विजयस्स देवस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं इंदाभिसेयं उवट्ठवेह॥

कठिन शब्दार्थ - **महत्थं** - महार्थ-जिसमें बहुत रत्नादिक धन का उपयोग हो, **महग्घं** - महार्घ-महा पूजा योग्य, **महरिहं** - महार्ह-महोत्सव योग्य, **इंदाभिसेयं** - इन्द्राभिषेक।

भावार्थ - तदनन्तर उस विजयदेव की सामानिक परिषद् के देवों ने अपने आभियोगिक देवों को बुलाया और कहा - हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही विजयदेव के महार्थ, महार्घ, महार्ह और विपुल इन्द्राभिषेक की तैयारी करो।

तएणं ते आभिओगिया देवा सामाणियपरिसोववण्णेहिं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव हियया करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं देवा तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति २ त्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति २ त्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं णिसरंति तंजहा-रयणाणं जाव रिट्ठाणं, अहाबायरे पोग्गले परिसाडंति २ त्ता अहासुहुमे पोग्गले परियायंति २ त्ता दोच्चंपि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता अट्ठसहस्सं सोवण्णियाणं कलसाणं अट्ठसहस्सं रुप्पामयाणं कलसाणं अट्ठसहस्सं मणिमयाणं अट्ठसहस्सं सुवण्णरुप्पामयाणं अट्ठसहस्सं सुवण्णमणिमयाणं अट्ठसहस्सं रुप्पामणिमयाणं अट्ठसहस्सं भोमेज्जाणं अट्ठसहस्सं भिंगारगाणं एवं आयंसगाणं थालाणं पाईणं सुपइट्ठगाणं चित्ताणं रयणकरंडगाणं पुप्फचंगेरीणं जाव लोमहत्थचंगेरीणं पुप्फपडलगाणं जाव लोमहत्थगपडलगाणं अट्ठसयं सीहासणाणं छत्ताणं चामराणं अवपडगाणं वट्टगाणं तवसिप्पाणं खोरगाणं पीणगाणं तेल्लसमुग्गयाणं अट्ठसयं धूवकडुच्छुयाणं विउव्वंति ते साभाविए विउव्विए य कलसे य जाव धूवकडुच्छए य गेण्हंति गेण्हित्ता विजयाओ रायहाणीओ पडिणिक्खमंति २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जाव उद्धुयाए दिव्वाए देवगईए तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणा वीईवयमाणा जेणेव खीरोए समुद्दे तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता खीरोदगं गिण्हंति गिण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव सयसहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हंति २ त्ता जेणेव पुक्खरोदे समुद्दे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता पुक्खरोदगं गेण्हंति पुक्खरोदगं गिण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सयसहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हंति २ त्ता जेणेव समयखेत्ते जेणेव भरहेरवयाइं वासाइं जेणेव मागहवरदामपभासाइं तित्थाइं तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता तित्थोदगं गिण्हंति २ त्ता तित्थमट्टियं गेण्हंति २ त्ता जेणेव गंगासिंधुरत्तारत्तवईसलिला तेणेव उवागच्छंति २ त्ता सरिओदगं गेण्हंति २ त्ता उभओ तडमट्टियं गेण्हंति गेण्हित्ता जेणेव चुल्लहिमवंतसिहरिवासहरपव्वया तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सव्वतुवरे य सव्वपुप्फे य सव्वगंधे य सव्वमल्ले य सव्वोसहिसिद्धत्थए य गिण्हंति सव्वोसहिसिद्धत्थए गिण्हित्ता जेणेव पउमद्दहपुंडरीयद्दहा तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता दहोदगं गेण्हंति २ त्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव सयसहस्सपत्ताइं ताइं गेण्हंति ताइं गिण्हित्ता जेणेव हेमवयहेरण्णवयाइं वासाइं जेणेव रोहियरोहियंस-सुवण्ण-कूलरुप्पकूलाओ तेणेव उवागच्छंति २ त्ता सलिलोदगं गेण्हंति २ त्ता उभओ तडमट्टियं गिण्हंति गेण्हित्ता जेणेव सद्दावाइमालवंतपरियागा वट्टवेयड्ढपव्वया तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सव्वतुवरे य जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य गेण्हंति सव्वोसहिसिद्धत्थए गेण्हित्ता जेणेव महाहिमवंतरुप्पिवासहरपव्वया तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सव्वपुप्फे तं चेव जेणेव महापउमद्दहमहापुंडरीयद्दहा तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं तं चेव जेणेव हरिवासे रम्मावासेति जेणेव हरकांतहरिकंतणरकंतणारिकंताओ सलिलाओ तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सलिलोदगं गेण्हंति सलिलोदगं गेण्हित्ता जेणेव वियडावइगंधा-वइवट्टवेयड्ढपव्वया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता सव्वपुप्फे य तं चेव जेणेव णिसहणील-वंतवासहरपव्वया तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सव्वतुवरे य तहेव जेणेव तिगिच्छिदहकेसरिदहा तेणेव उवागच्छंति २ त्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं तं चेव जेणेव पुव्वविदेहावरविदेहवासाइं जेणेव सीयासीओयाओ महाईणओ जहा णईओ जेणेव सव्वचक्कवट्टिविजया जेणेव सव्वमागहवरदामपभासाइं तित्थाइं तहेव जहेव जेणेव सव्ववक्खारपव्वया सव्वतुवरे य जेणेव सव्वंतरणइओ सलिलोदगं गेण्हंति २ त्ता तं चेव जेणेव मंदरे पव्वए जेणेव भद्दसालवणे तेणेव उवागच्छंति सव्वतुवरे य जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य गिण्हंति २ त्ता जेणेव णंदणवणे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता सव्वतुवरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सरसं च गोसीसचंदणं गिण्हंति २ त्ता जेणेव सोमणसवणे तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सव्वतुवरे य जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसगोसीसचंदणं दिव्वं च सुमणदामं गेण्हंति गेण्हित्ता जेणेव पंडगवणे तेणामेव समुवागच्छंति तेणेव समुवागच्छित्ता सव्वतुवरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसं च गोसीसचंदणं दिव्वं च सुमणोदामं दद्दरयमलयसुगंधिए य गंधे गेण्हंति २ त्ता एगओ मिलंति २ त्ता जंबुद्दीवस्स पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं णिग्गच्छंति पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं णिग्गच्छित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव दिव्वाए देवगईए तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं वीइवयमाणा २ जेणेव विजया रायहाणी तेणेव उवागच्छंति २ त्ता विजयं रायहाणिं अणुप्पयाहिणं करेमाणा २ जेणेव अभिसेयसभा जेणेव विजए देवे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति विजयस्स देवस्स तं महत्थं महग्घं महरिहं विउलं अभिसेयं उवट्ठवेंति॥

कठिन शब्दार्थ - दंडं - दण्ड, **णिस्सरंति** - निकालते हैं-फैलाते हैं, **उक्किट्ठाए** - उत्कृष्ट, **उद्धुयाए** - उद्धुत (तेज), **तित्थोदगं** - तीर्थोदक-तीर्थों का पानी, **तडमट्टियं** - तटों की मिट्टी को, **सिद्धत्थए** - सिद्धार्थक-सरसों, **अभिसेयं** - अभिषेक।

भावार्थ - आभियोगिक देव सामानिक परिषद् के देवों के ऐसा कहे जाने पर हृष्ट तुष्ट हुए यावत् उनका हृदय विकसित हुआ। हाथ जोड़ कर मस्तक पर अंजलि लगाकर "देव! आपकी आज्ञा प्रमाण है" ऐसा कह कर विनयपूर्वक उन्होंने उस आज्ञा को स्वीकार किया। वे उत्तर पूर्व दिशा भाग में जाते हैं और वैक्रिय संमुद्घात से समवहत होकर संख्यात योजन का दण्ड निकालते हैं, रत्नों के यावत् रिष्ट रत्नों के तथाविध बादर पुद्गलों को छोड़ते हैं और यथासूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण करते हैं। तदनन्तर दूसरी बार वैक्रिय समुद्घात करके एक हजार आठ सोने के कलश, एक हजार आठ चांदी के कलश, एक हजार आठ मणियों के कलश, एक हजार आठ सोने चांदी के कलश, एक हजार आठ सोने मणियों के कलश, एक हजार आठ चांदी-मणियों के कलश, एक हजार आठ मिट्टी के कलश, एक हजार आठ झारियां, इसी प्रकार आदर्शक, स्थाल, पात्री, सुप्रतिष्ठक, चित्र, रत्नकरंडक, पुष्प चंगेरियां यावत् लोमहस्तक चंगेरियां, पुष्पपटलक यावत् लोमहस्तपटलक, एक सौ आठ सिंहासन, छत्र, चामर, ध्वजा, वर्तक, तपःसिप्र, क्षौरक, पीनक, तैलसमुद्गक, एक सौ आठ धूपाणिये (धूप के कडुच्छुक) विक्रिया से बनाते हैं। उन स्वाभाविक और वैक्रिय से निर्मित कलशों यावत् धूपाणियों (धूप कडुच्छकों) को लेकर विजया राजधानी से निकलते हैं और उस उत्कृष्ट यावत् उद्धुत दिव्य देवगति से तिरछी दिशा में असंख्यात द्वीप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुद्रों के मध्य से गुजरते हुए जहां क्षीरोद समुद्र है वहां जाते हैं, वहां का क्षीरोदक लेकर वहां के उत्पल, कमल यावत् शतपत्र सहस्रपत्रों को ग्रहण करते हैं। वहां से पुष्करोद समुद्र की ओर जाते हैं पुष्करोदक तथा उत्पल, कमल यावत् शतपत्र सहस्रपत्रों को ग्रहण करते हैं। वहां से वे समय क्षेत्र में जहां भरत ऐरवत क्षेत्र हैं जहां मागध, वरदाम और प्रभास तीर्थ हैं वहां आकर तीर्थोदक को ग्रहण करते हैं। तीर्थों की मिट्टी को लेकर जहां गंगा सिन्धू, रक्ता रक्तवती महानदियां हैं वहां आकर उनका जल और नदी तटों की मिट्टी लेकर जहां क्षुल्लहिमवंत और शिखरी वर्षधर पर्वत हैं वहां आते हैं वहां से सर्व ऋतुओं के श्रेष्ठ, सब जाति के फूलों, सब जाति के गंधों, सब जाति के माल्यों (गूंथी हुई मालाओं), सब प्रकार की औषधियों और सिद्धार्थकों (सरसों) को लेते हैं। वहां से पद्मद्रह और पुण्डरीकद्रह की ओर जाते हैं और वहां से द्रहों का जल लेते हैं और वहां के उत्पल कमलों यावत् शतपत्र सहस्रपत्र कमलों को लेते हैं। वहां से हेमवत और हैरण्यवत् क्षेत्रों में रोहिता रोहितांशा सुवर्णकूला और रूप्यकूला महानिदयों पर जाते हैं वहां का जल और दोनों किनारों की मिट्टी ग्रहण करते हैं। वहां से शब्दापाति और माल्यवंत नाम के वृत वैताढ्य पर्वतों पर आते हैं वहां के सब ऋतुओं के श्रेष्ठ फूलों यावत् सभी औषधियों और सिद्धार्थकों को लेते हैं। वहां से महाहिमवंत और रुक्मि वर्षधर पर्वतों पर जाते हैं वहां के सब ऋतुओं के पुष्पादि लेते हैं। वहां से महापद्मद्रह और महापुंडरीकद्रह पर आते हैं वहां के उत्पल कमलादि ग्रहण करते हैं। वहां से हरिवर्ष रम्यक्वर्ष की हरकांत हरिकांत नरकांत नारीकांत नदियों पर आते हैं और वहां का जल ग्रहण करते हैं। वहां से विकटापाति और गंधपाति वृत वैताढ्य पर्वतों पर आते हैं और सब ऋतुओं के श्रेष्ठ फूलों को ग्रहण करते हैं। वहां से निषध और नीलवंत वर्षधर पर्वतों पर आते हैं और सब ऋतुओं के पुष्प आदि ग्रहण करते हैं। वहां से तिगिंछद्रह और केसरिद्रह पर आते हैं और वहां के उत्पल कमलादि ग्रहण करते हैं। वहां से पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह की शीता, शीतोदा महानदियों का जल और दोनों तटों की मिट्टी ग्रहण करते हैं। वहां से सब चक्रवर्ती विजयों के सभी मागध, वरदाम और प्रभास नामक तीर्थों पर आते हैं और वहां का पानी और मिट्टी ग्रहण करते हैं। वहां से सब वक्षस्कार पर्वतों पर जाते हैं। वहां के सब ऋतुओं के फूल आदि ग्रहण करते हैं वहां से सर्वान्तर नदियों पर आकर वहां का जल और तटों की मिट्टी ग्रहण करते हैं। इसके बाद वे मेरु पर्वत के भद्रशालवन में आते हैं। वहां के सब ऋतुओं के फूल यावत् सर्वोषधि और सरसों ग्रहण करते हैं। वहां से नन्दन वन में आते हैं वहां के सब ऋतुओं के श्रेष्ठ फूल यावत् सर्वोषधि, सिद्धार्थक तथा सरस गोशीर्ष चंदन ग्रहण करते हैं। वहां से सौमनस वन में आते हैं और सब ऋतुओं के फूल यावत् सर्वोषधि, सिद्धार्थक, सरस गोशीर्ष चंदन तथा दिव्य फूलों की मालाएं ग्रहण करते हैं। वहां से पण्डकवन में आते हैं और सब ऋतुओं के फूल, सर्वोषधियां, सिद्धार्थक, सरस गोशीर्ष चंदन, दिव्य फूलों की माला और कपडछन्न किया हुआ मलय चंदन का चूर्ण आदि सुगंधित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यों को ग्रहण करते हैं। तत्पश्चात् सभी आभियोगिक देव एकत्रित होकर जंबूद्वीप के पूर्वदिशा के द्वार से निकलते हैं और उस उत्कृष्ट यावत् दिव्य गति से चलते हुए तिरछी दिशा में असंख्यात द्वीप समुद्रों के मध्य होते हुए विजया राजधानी में आते हैं। विजया राजधानी की प्रदक्षिणा करते हुए अभिषेक सभा में विजयदेव के पास आते हैं और हाथ जोड़ कर मस्तक पर अंजलि लगा कर जयविजय शब्दों से उसे बधाते हैं। वे महार्थ, महार्घ और महार्ह विपुल अभिषेक सामग्री को उपस्थित करते हैं।

तए णं तं विजयदेवं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ चत्तारि अग्गमहिसीओ सपरिवाराओ तिण्णि परिसाओ सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ अण्णे य बहवे विजयरायहाणिवत्थव्वगा वाणमंतरा देवा य देवीओ य तेहिं साभाविएहिं उत्तरवेउव्विएहि य वरकमलपइट्ठाणेहिं सुरभिवरवारि-पडिपुण्णेहिं चंदणकयचच्चाएहिं आविद्धकंठेगुणेहिं पउमुप्पलपिहाणेहिं करयलसु-कुमालकोमलपरिग्गहिएहिं अट्ठसहस्साणं सोवण्णियाणं कलसाणं रुप्पमयाणं जाव अट्ठसहस्साणं भोमेज्जाणं कलसाणं सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतुवरेहिं सव्वपुप्फेहिं जाव सव्वोसहिसिद्धत्थएहिं सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वोरोहेणं सव्वणाडएहिं सव्वपुप्फगंध-मल्लालंकारविभूसाए सव्वदिव्वतुडियणिणाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया समुदएणं महया तुरियजमगसमगपडुप्पवाइयरवेणं संखपणवपडह-भेरिझल्लरिखरमुहि-हुडुक्कमुरवमुयंगदुंदुहिणिग्घोससंणिणाइयरवेणं महया महया इंदाभिसेएणं अभिसिंचंति॥

भावार्थ - उस विजयदेव का, चार हजार सामानिक देव, सपरिवार चार अग्रमहिषियां, तीन परिषदाओं के देव, सात अनीक, सात अनीकाधिपति, सोलह हजार आत्मरक्षक देव और विजया राजधानी के रहने वाले अन्य बहुत से देव देवियां उन स्वाभाविक और उत्तरवैक्रिय से निर्मित श्रेष्ठ कमल के आधार वाले, सुगंधित श्रेष्ठ जल से भरे हुए, चंदन से चर्चित, गलों में मौलि बंधे हुए, पद्म कमल के ढक्कन वाले सुकुमार और मृदु करतलों में परिगृहित एक हजार आठ सोने के, एक हजार आठ चांदी के यावत् एक हजार आठ मिट्टी के कलशों के सर्वजल से, सर्व मिट्टी से, सर्व ऋतु के श्रेष्ठ पुष्पों से यावत् सभी औषधियों और सरसों से सम्पूर्ण परिवार की ऋद्धि के साथ, सम्पूर्ण द्युति के साथ, सम्पूर्ण हस्ती आदि सेना के साथ, सम्पूर्ण आभियोग्य परिवार के साथ, समस्त आदर से, समस्त विभूति से, समस्त विभूषा से, समस्त उत्साह से, सर्वारोहण सर्व स्वर सामग्री से सर्व नाटकों से, समस्त पुष्प-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गंध-माल्य अलंकार रूप विभूषा से, सर्व दिव्य वाद्यों की ध्वनि से बहुत बड़ी ऋद्धि, बहुत बड़ी द्युति, महान् बल, महान् आभियोग्य परिवार, महान् एक साथ पटु पुरुषों से बजाये गये वाद्यों के शब्द से शंख, ढोल, नगारा, भेरी, झल्लरी, खरमुही, हुडुक्क (बड़ा मृदंग) मुरज, मृदंग एवं दुंदुभि के निनाद और गूंज के साथ और उल्लास के साथ इन्द्राभिषेक करते हैं।

तए णं तस्स विजयस्स देवस्स महया महया इंदाभिसेयंसि वट्टमाणंसि अप्पेगइया देवा णच्चोदगं णाइमट्टियं पविरलपप्फुसियं दिव्वं सुरभिं रयरेणुविणासणं गंधोदगवासं वासंति, अप्पेगइया देवा णिहयरयं णट्ठरयं भट्ठरयं पसंतरयं उवसंतरयं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं सब्भिंतरबाहिरियं आसित्तसम्मज्जिओवलित्तं सित्तसुइसम्मट्ठरत्थंतरावणवीहियं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं मंचाइमंचकलियं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं णाणाविहरागरंजियऊसियजयविजयवेजयंतीपडागाइपडागमंडियं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं लाउल्लोइयमहियं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं गोसीससरसरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितलं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं उवचियचंदणकलसं चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवडज्झंतमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेंति।।

कठिन शब्दार्थ - णच्चोदगं - न अधिक पानी, **णाइमट्टियं** - न अधिक मिट्टी (कीचड़), **पविरलफुसियं** - प्रविरल स्पृष्टं-विरल बूंदों का छिड़काव, **रयरेणुविणासणं** - रज रेणु विनाशक, **णिहतरयं** - निहत रज वाली, **भट्ठरयं** - भ्रष्ट रज वाली, **आसित्तसम्मजित्तओवलित्तं**-आसिक्त सम्मार्जितोपलिप्ताम्-जल का छिड़काव कर झाड़ बुहार कर और लीप पोत कर, **सित्तसुइसम्मट्ठरत्थंतरावणवीहियं**-सिक्त-शुचि-सम्मृष्ट-रथ्यान्तराऽऽपण वीथिका-गलियों और बाजार के रास्तों को छिड़काव से शुद्ध कर साफ सुथरा करने में लगे हुए हैं।

भावार्थ - उस विजयदेव के महान् इन्द्राभिषेक के चलते हुए कोई देव दिव्य सुगंधित जल की वर्षा इस ढंग से करते हैं जिससे न तो पानी अधिक होकर बहता है, न कीचड़ होता है अपितु विरल बूंदों वाला छिड़काव होता है जिससे रजकण, धूलि कण दब जाते हैं। कोई देव उस विजया राजधानी को निहत रजवाली, नष्ट रजवाली, भ्रष्ट रजवाली, प्रशांत रजवाली, उपशांत रज वाली बनाते हैं। कोई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देव उस विजया राजधानी को अंदर और बाहर से जल का छिड़काव कर झाड़ बुहाड़ कर लीप कर तथा उसकी गलियों और बाजारों को छिड़काव से शुद्ध कर साफ सुथरा करने में लगे हुए हैं। कोई देव विजया राजधानी में मंच पर मंच बनाने में लगे हुए हैं। कोई देव अनेक प्रकार के रंगों से रंगी हुई एवं जयसूचक वैजयंती पताकाओं पर पताकाएं लगा कर विजया राजधानी को सजाने में लगे हुए हैं, कोई देव विजया राजधानी को चूना आदि से पोतने में चंदरवा आदि बांधने में तत्पर हैं। कोई देव गोशीर्ष चंदन, सरस लाल चंदन, चंदन के चूरे के लेपों से अपने हाथों को लिप्त कर पांचों अंगुलियों के छापे लगा रहे हैं। कोई देव विजया राजधानी के घर-घर के दरवाजों पर चंदन-कलश रख रहे हैं। कोई देव चंदन घट और तोरणों से घर के दरवाजे सजा रहे हैं, कोई देव ऊपर से नीचे तक लटकने वाली बड़ी बड़ी गोलाकार पुष्पमालाओं से उस राजधानी को सजा रहे हैं, कोई देव पांच वर्णों के श्रेष्ठ सुगंधित पुष्पों के पुंजों से युक्त कर रहे हैं, कोई देव उस विजया राजधानी को काले अगर उत्तम कुंदुरुक्क एवं लोभान जला कर उससे उठती हुई सुगंध से उसे मघमघायमान कर रहे हैं अतएव वह राजधानी अत्यंत सुगंध से अभिराम बनी हुई है और विशिष्ट गंध की बत्ती-सी बन रही है।

अप्पेगइया देवा हिरण्णवासं वासंति, अप्पेगइया देवा सुवण्णवासं वासंति, अप्पेगइया देवा एवं रयणवासं वइरवासं पुप्फवासं मल्लवासं गंधवासं चुण्णवासं वत्थवासं आभरणवासं, अप्पेगइया देवा हिरण्णविहिं भाइंति, एवं सुवण्णविहिं रयणविहिं वइरविहिं पुप्फविहिं मल्लविहिं चुण्णविहिं गंधविहिं वत्थविहिं आभरणविहिं भाइंति॥

भावार्थ - कोई देव स्वर्ण की वर्षा कर रहे हैं, कोई चांदी की वर्षा कर रहे हैं कोई रत्न की कोई वज्र की वर्षा कर रहे हैं, कोई फूल बरसा रहे हैं, कोई मालाएं बरसा रहे हैं, कोई सुगंधित द्रव्य, कोई सुगंधित चूर्ण, कोई वस्त्र और कोई आभरणों की वर्षा कर रहे हैं। कोई देव हिरण्य बांट रहे हैं, कोई सुवर्ण, कोई रत्न, कोई वज्र, कोई फूल, कोई माल्य, कोई चूर्ण, कोई गंध, कोई वस्त्र और कोई देव आभरण बांट रहे हैं, परस्पर आदान प्रदान कर रहे हैं।

अप्पेगइया देवा दुयं णट्टविहिं उवदंसेंति अप्पेगइया देवा विलंबियं णट्टविहिं उवदंसेंति अप्पेगइया देवा दुयविलंबियं णाम णट्टविहिं उवदंसेंति अप्पेगइया देवा अंचियं णट्टविहिं उवदंसेंति अप्पेगइया देवा रिभियं णट्टविहिं उवदंसेंति अप्पेगइया देवा अंचियरिभियं णाम दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति अप्पेगइया देवा आरभडं णट्टविहिं उवदंसेंति अप्पेगइया देवा भसोलं णट्टविहिं उवदंसेंति अप्पेगइया देवा आरभडभसोलं णाम दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति अप्पेगइया देवा उप्पायणिवायपवुत्तं संकुचियपसारियं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रियारियं भंतसंभंतं णाम दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति, अप्पेगइया देवा चउव्विहं वाइयं वाएंति, तंजहा-ततं विततं घणं झुसिरं, अप्पेगइया देवा चउव्विहं गेयं गायंति, तंजहा-उक्खित्तयं पवत्तयं मंदायं रोइयावसाणं, अप्पेगइया देवा चउव्विहं अभिणयं अभिणयंति, तंजहा-दिट्ठंतियं पाडंतियं सामंतोवणिवाइयं लोगमज्झावसाणियं।।

भावार्थ - कोई देव द्रुत नामक नाट्य विधि का प्रदर्शन करते हैं, कोई देव विलम्बित नाट्यविधि का प्रदर्शन करते हैं, कोई देव द्रुतविलम्बित नाट्य विधि का प्रदर्शन करते हैं, कोई देव अंचित नामक नाट्यविधि का, कोई रिभित नाट्यविधि, कोई अंचित-रिभित नाट्यविधि, कोई आरभट नाट्यविधि, कोई भसोल नाट्यविधि, कोई आरभट-भसोल नाट्यविधि, कोई उत्पात-निपात प्रवृत्त संकुचित प्रसारित, रेक्करचित (गमनागमन) भ्रान्त संभ्रान्त नामक नाट्यविधियां प्रदर्शित करते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कुछ नाट्य विधियों का उल्लेख किया गया है। राजप्रश्नीय सूत्र में सूर्याभदेव द्वारा भगवान् महावीर स्वामी के सम्मुख दिखाये गए बत्तीस प्रकार के नाटकों का वर्णन किया गया है। जिज्ञासुओं को नाट्य विधियों का वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र से देख लेना चाहिए।

कोई देव चार प्रकार के वादिन्त्र बजाते हैं। यथा - तत, वितत, घन और झुषिर। कोई देव चार प्रकार के गेय गाते हैं। वे चार गेय हैं - उत्क्षिप्त, प्रवृत्त, मंद और रोचितावसान। कोई देव चार प्रकार के अभिनय करते हैं। वे इस प्रकार हैं - दार्ष्टान्तिक प्रतिश्रुतिक, सामान्यतोविनिपातिक और लोक मध्यावसान।

अप्पेगइया देवा पीणंति, अप्पेगइया देवा बुक्कारेंति, अप्पेगइया देवा तंडवेंति, अप्पेगइया देवा लासेंति, अप्पेगइया देवा पीणंति बुक्कारेंति तंडवेंति लासेंति, अप्पेगइया देवा बुक्कारेंति, अप्पेगइया देवा अप्फोडंति, अप्पेगइया देवा वग्गंति, अप्पेगइया देवा तिवइं छिंदंति, अप्पेगइया देवा अप्फोडेंति वग्गंति तिवइं छिंदेंति, अप्पेगइया देवा हयहेसियं करेंति, अप्पेगइया देवा हत्थिगुलगुलाइयं करेंति, अप्पेगइया देवा रहघणघणाइयं करेंति, अप्पेगइया देवा हयहेसियं करेंति हत्थिगुलगुलाइयं करेंति रहघणघणाइयं करेंति, अप्पेगइया देवा उच्छोलेंति, अप्पेगइया देवा पच्छोलेंति, (अप्पेगइया देवा उक्किट्ठि करेंति) अप्पेगइया देवा उक्किट्ठीओ करेंति, अप्पेगइया देवा उच्छोलेंति पच्छोलेंति उक्किट्ठीओ करेंति, अप्पेगइया देवा सीहणायं करेंति, अप्पेगइया देवा पायदद्दरयं करेंति, अप्पेगइया देवा भूमिचवेडं दलयंति, अप्पेगइया देवा सीहणायं पायदद्दरयं भूमिचवेडं दलयंति, अप्पेगइया देवा हक्कारेंति, अप्पेगइया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवा वुक्कारेंति, अप्पेगइया देवा थक्कारेंति, अप्पेगइया देवा पुक्कारेंति, अप्पेगइया देवा णामाइं सावेंति, अप्पेगइया देवा हक्कारेंति वुक्कारेंति थक्कारेंति पुक्कारेंति णामाइं सावेंति, अप्पेगइया देवा उप्पयंति, अप्पेगइया देवा णिवयंति, अप्पेगइया देवा परिवयंति, अप्पेगइया देवा उप्पयंति, णिवयंति परिवयंति, अप्पेगइया देवा जलेंति, अप्पेगइया देवा तवंति, अप्पेगइया देवा पतवंति, अप्पेगइया देवा जलंति तवंति पतवंति, अप्पेगइया देवा गज्जेंति, अप्पेगइया देवा विज्जुयायंति, अप्पेगइया देवा वासंति, अप्पेगइया देवा गज्जंति विज्जुयायंति वासंति, अप्पेगइया देवा देवसण्णिवायं करेंति, अप्पेगइया देवा देवुक्कलियं करेंति, अप्पेगइया देवा देवकहकहं करेंति, अप्पेगइया देवा देवदुहदुहं करेंति, अप्पेगइया देवा देवसण्णिवायं देवउक्कलियं देवकहकहं देवदुहदुहं करेंति, अप्पेगइया देवा देवुज्जोयं करेंति, अप्पेगइया देवा विज्जुयारं करेंति, अप्पेगइया देवा चेलुक्खेवं करेंति, अप्पेगइया देवा देवुज्जोयं विज्जुयारं चेलुक्खेवं करेंति, अप्पेगइया देवा उप्पलहत्थगया जाव सहस्सपत्त हत्थगया घंटाहत्थगया कलसहत्थगया जाव धूवकडुच्छुहत्थगया हट्ठतुट्ठ जाव हरिसवसविसप्पमाणहियया विजयाए रायहाणीए सव्वओ समंता आधावेंति परिधावेंति॥

कठिन शब्दार्थ - पीणंति - पीन बना लेते हैं-फूला देते हैं, **अप्फोडंति** - आस्फोटन भूमि पर पैर फटकारना करते हैं, **वग्गंति** - वल्गन (कूदना) करते हैं, **तिवइं** - त्रिपदी, **छिंदेति** - छेदन (ताल ठोकना) करते हैं, **चेल्लुक्खेवं** - चेलोत्क्षेप-वस्त्रों को हवा में फहराना, **हरिसवसविसप्पमाणहियया** - हर्ष के कारण विकसित हृदय वाले।

भावार्थ - कोई देव स्वयं को स्थूल (पीन) बना लेते हैं - फूला लेते हैं, कोई देव ताण्डव नृत्य करते हैं, कोई देव लास्य नृत्य करते हैं, कोई देव छु-छु करते हैं, कोई देव उक्त चारों क्रियाएं करते हैं कोई देव आस्फोटन करते हैं, कोई देव वल्गन करते हैं, कोई देव त्रिपदी छेदन करते हैं, कोई देव उक्त तीनों क्रियाएं करते हैं, कोई देव घोड़े की तरह हिनहिनाते हैं, कोई देव हाथी की तरह गुड़गुड़ आवाज करते हैं, कोई रथ की आवाज की तरह आवाज निकालते हैं, कोई देव उक्त तीनों प्रकार की आवाजें निकालते हैं, कोई देव उछलते हैं, कोई देव विशेष रूप से उछलते हैं, कोई देव छलांग लगाते हैं, कोई देव उक्त तीनों क्रियाएं करते हैं। कोई देव सिंहनाद करते हैं, कोई देव भूमि पर पांव से आघात करते हैं कोई देव भूमि पर हाथ से प्रहार करते हैं। कोई देव उक्त तीनों क्रियाएं करते हैं। कोई देव हक्कार करते हैं, कोई देव वुक्कार करते हैं, कोई देव थक्कार करते हैं, कोई देव फुक्कार करते हैं, कोई देव नाम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुनाने लगते हैं, कोई देव उक्त सभी क्रियाएं करते हैं। कोई देव ऊपर उछलते हैं, कोई देव नीचे गिरते हैं, कोई देव तिरछे गिरते हैं, कोई देव उक्त तीनों क्रियाएं करते हैं।

कोई देव जलने लगते हैं, कोई ताप से तप्त होने लगते हैं, कोई खूब तपने लगते हैं कोई देव उक्त तीनों क्रियाएं करते हैं, कोई देव गर्जना करते हैं, कोई देव बिजलियाँ चमकाते हैं, कोई देव वर्षा करने लगते हैं कोई देव उक्त तीनों क्रियाएं करते हैं, कोई देव देवों का सम्मेलन करते हैं, कोई देव देवों को हवा में नचाते हैं, कोई देव देवों में कहकहा मचाते हैं, कोई देव हु हु हु करते हुए हर्षोल्लास प्रकट करते हैं, कोई देव उक्त सभी क्रियाएं करते हैं, कोई देव देवोद्योत करते हैं, कोई देव विद्युत् का चमत्कार करते हैं, कोई देव चेलोत्क्षेप करते हैं। कोई देव उक्त सभी क्रियाएं करते हैं। किन्हीं देवों के हाथों में उत्पल कमल हैं यावत् किन्हीं देवों के हाथों में सहस्रपत्र कमल हैं, किन्हीं के हाथों में घंटाएं हैं, किन्हीं के हाथों में कलश हैं, किन्हीं के हाथों में धूप कडुच्छुक हैं। इस प्रकार वे देव हृष्ट तुष्ट हैं यावत् हर्ष के कारण उनके हृदय विकसित हो रहे हैं। वे उस विजया राजधानी में चारों ओर इधर उधर दौड़ रहे हैं- भाग रहे हैं।

तए णं तं विजयं देवं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ चत्तारि अग्गमहिसीओ सपरिवाराओ जाव सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ अण्णे य बहवे विजय-रायहाणीवत्थव्वा वाणमंतरा देवा य देवीओ य तेहिं वरकमलपइट्ठाणेहिं जाव अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं तं चेव जाव अट्ठसएणं भोमेज्जाणं कलसाणं सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतुवरेहिं सव्वपुप्फेहिं जाव सव्वोसहिसिद्धत्थएहिं सव्विड्ढीए जाव णिग्घोसणाइयरवेणं महया महया इंदाभिसेएणं अभिसिंचंति २ त्ता पत्तेयं २ सिरसावत्तं अंजलिं कट्टु एवं वयासी-जय जय णंदा! जय जय भद्दा! जय जय णंद भद्दं ते अजियं जिणेहि जियं पालयाहि अजियं जिणेहि सत्तुपक्खं जियं पालेहि मित्तपक्खं जियमज्झे वसाहि तं देव! णिरुवसग्गं इंदो इव देवाणं चंदो इव ताराणं चमरो इव असुराणं धरणो इव णागाणं भरहो इव मणुयाणं बहूणि पलिओवमाइं बहूणि सागरोवमाणि बहूणि पलिओवमसागरोवमाणि चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव आयरक्खदेव-साहस्सीणं विजयस्स देवस्स विजयाए रायहाणीए अण्णेसिं च बहूणं विजयरायहा-णिवत्थव्वाणं वाणमंतराणं देवाण देवीणं य आहेवच्चं जाव आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहराहित्तिकट्टु महया २ सद्देणं जयजयसद्दं पउंजंति॥ १४१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **अजियं** - नहीं जीते हुए, **पालयाहि** - पालन कीजिये, **णिरुवसग्गं** - निरुपसर्ग-उपसर्ग रहित।

भावार्थ - तदनन्तर उस विजय देव का वे चार हजार सामानिक देव परिवार सहित चार अग्रमहिषियाँ यावत् सोलह हजार आत्म रक्षक देव तथा विजया राजधानी के निवासी बहुत से वाणव्यंतर देव देवियाँ उन श्रेष्ठ कमलों पर प्रतिष्ठित यावत् एक सौ आठ स्वर्ण कलशों यावत् एक सौ आठ मिट्टी के कलशों से, सर्वोदक से, सब मिट्टियों से, सब ऋतुओं के श्रेष्ठ फूलों से यावत् सर्वोषधियों और सरसों से सर्व ऋद्धि के साथ यावत् वाद्यों की ध्वनि के साथ भारी उत्सव पूर्वक इन्द्र के रूप में अभिषेक करते हैं। अभिषेक करके वे सब अलग-अलग सिर पर अंजलि लगाकर इस प्रकार कहते हैं - हे नंद! आपकी जय हो विजय हो! हे भद्र! आपकी जय विजय हो। हे नंद! हे भद्र! आपकी जय विजय हो। आप नहीं जीते हुओ को जीतिये, जीते हुओं का पालन कीजिये, अजित शत्रुपक्ष को जीतिये और विजितों का पालन कीजिये। हे देव! जित मित्र पक्ष का पालन कीजिये और उनके मध्य में रहिये। देवों में इन्द्र की तरह, असुरों में चमरेन्द्र की तरह, नागकुमारों में धरणेन्द्र की तरह, मनुष्यों में भरत चक्रवर्ती की तरह आप उपसर्ग रहित हो। बहुत से पल्योपम, बहुत से सागरोपम और बहुत से पल्योपम सागरोपम तक चार हजार सामानिक देवों का यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवों का इस विजया राजधानी का और इस राजधानी में निवास करने वाले अन्य बहुत से वाणव्यंतर देवों और देवियों का आधिपत्य यावत् आज्ञा ऐश्वर्य और सेनाधिपत्य करते हुए उनका पालन करते हुए आप विचरें। ऐसा कह कर वे बहुत जोर-जोर से जयजयकार करते हैं, जय जय शब्दों का प्रयोग करते हैं।

तए णं से विजए देवे महया महया इंदाभिसेएणं अभिसित्ते समाणे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ सीहासणाओ अब्भुट्ठेत्ता अभिसेयसभाओ पुरत्थिमेणं दारेणं पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणामेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अलंकारियसभं अणुप्पयाहिणी करेमाणे २ पुरत्थिमेणं दारेणं अणुपविसइ पुरत्थिमेणं दारेणं अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे, तए णं तस्स विजयस्स देवस्स सामाणियपरिसोववण्णगा देवा आभिओगिए देवे सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! विजयस्स देवस्स अलंकारियं भंडं उवणेह, तए णं ते अलंकारियं भंडं जाव उवट्ठवेंति॥

कठिन शब्दार्थ - **अलंकारियंभंडं** - आलंकारिक भाण्ड (श्रृंगारदान)।

भावार्थ - तब वह विजयदेव उस महान् इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त हो जाने पर सिंहासन से उठता है और उठ कर अभिषेक सभा के पूर्व दिशा के द्वार से बाहर निकलता है और अलंकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सभा की ओर जाता है और अलंकार सभा की प्रदक्षिणा करके पूर्व दिशा के द्वार से उसमें प्रवेश करता है। प्रवेश कर जिस ओर सिंहासन था उस ओर आकर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की ओर मुंह करके बैठा। तत्पश्चात् उस विजयदेव की सामानिक परिषद् के देवों ने आभियोगिक देवों को बुलाया और कहा-'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही विजयदेव का अलंकारिक भाण्ड (श्रृंगारदान) लाओ।' वे आभियोगिक देव अलंकारिक भाण्ड लाते हैं।

तए णं से विजए देवे तप्पढमयाए पम्हलसूमालाए दिव्वाए सुरभीए गंधकासाईए गायाइं लूहेइ गायाइं लूहेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपइ सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपेत्ता तओऽणंतरं च णं णासाणीसासवायवोज्झं चक्खुहरं वण्णफरिसजुत्तं हयलालापेलवाइरेगं धवलं कणगखइयंतकम्मं आगासफलिहसरिसप्पभं अहयं दिव्वं देवदूसजुयलं णियंसेइ णियंसेत्ता हारं पिणिद्धेइ हारं पिणिद्धेत्ता अद्धहारं पिणद्धेइ अद्धहारं पिणिद्धेता एवं एगावलिं पिणिंधेइ एगावलिं पिणिंधेत्ता एवं एएणं अभिलावेणं मुत्तावलिं कणगावलिं रयणावलिं कडगाइं तुडियाइं अंगयाइं केऊराइं दसमुद्दियाणंतगं कडिसुत्तगं वेयच्छिसुत्तगं मुरविं कंठमुरविं पालंबं कुंडलाइं चूडामणिं चित्तरयणुक्कडं मउडं पिणिंधेइ पिणिंधित्ता गंठिमवेढिमपूरिमसंघाइमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खयंपिव अप्पाणं अलंकियविभूसियं करेइ कप्परुक्खयंपिव अप्पाणं अलंकियविभूसियं करेत्ता दद्दरमलयसुगंधगंधिएहिं गंधेहिं गायाइं सुक्किडइ २ त्ता दिव्वं च सुमणदामं पिणिद्धइ॥

कठिन शब्दार्थ - तप्पढमयाए - सर्व प्रथम, **पम्हलसूमालाए** - रोएंदार सुकोमल, **गंध कासाईए**- गंध काषायिक (तौलिये) से, **णासाणीसासवायवोज्झं** - श्वास की वायु से उड़ जाय ऐसा, **हयलालापेलवाइरेगं** - घोडे की लाला-लार से अधिक मृदु, **कणग खइयंतकम्मं** - सोने के तारों से खचित, **आगासफलिहसरिसप्पभं** - आकाश और स्फटिक रत्न की तरह स्वच्छ।

भावार्थ - तब विजयदेव ने सर्व प्रथम रोएंदार सुकोमल दिव्य सुगंधित गंध काषायिक-तौलिये से अपने शरीर को पोंछा। शरीर पोंछ कर सरस गोशीर्ष चंदन से शरीर पर लेप लगाया। लेप लगाने के पश्चात् श्वास की वायु से उड़ जाय ऐसा, नेत्रों को हरण करने वाला, सुन्दर रंग और मृदु स्पर्श युक्त घोड़े की लार से अधिक मृदु और सफेद, जिसके किनारों पर सोने के तार खचित हैं, आकाश और स्फटिक रत्न की तरह स्वच्छ, अक्षत ऐसे दिव्य देवदूष्य-युगल को धारण किया। बाद में हार पहना,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकावली, मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली हार पहने, कड़े त्रुटित-भुजबंद, अंगद, केयूर, दसों अंगुलियों में अंगूठियां, कटिसूत्र (करधनी-कंदोरा) त्रि-अस्थिसूत्र, मुरवी कंठमुरवी, प्रालम्ब, कुण्डल, चूडामणि और नाना प्रकार के बहुत से रत्नों से जड़ा हुआ मुकुट धारण किया। ग्रंथिम, वेष्टिम, पूरित और संघातिम-इस प्रकार चार तरह की मालाओं से कल्पवृक्ष की तरह स्वयं को अलंकृत और विभूषित किया। फिर दर्दर मलयचंदन की सुगंधित गंध से अपने शरीर को सुगंधित किया और दिव्य सुमन रत्न-फूलों की माला को धारण किया।

तएणं से विजय देवे केसालंकारेणं वत्थालंकारेणं मल्लालंकारेणं आभरणालंकारेणं चउव्विहेणं अलंकारेणं अलंकियविभूसिए समाणे पडिपुण्णालंकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता अलंकारियसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव ववसायसभा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता ववसायसभं अणुप्पयाहिणं करेमाणे करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ २ त्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे। तए णं तस्स विजयस्स देवस्स आभिओगिया देवा पोत्थयरयणं उवणेंति॥

भावार्थ - तत्पश्चात् वह विजयदेव केशालंकार, वस्त्रालंकार, माल्यालंकार और आभरणालंकार-ऐसे चार अलंकारों से अलंकृत होकर और परिपूर्ण अलंकारों से सज्जित होकर सिंहासन से उठा और अलंकारिक सभा के पूर्व के द्वार से निकल कर जिस ओर व्यवसाय सभा है उस ओर आया। व्यवसाय सभा की प्रदक्षिणा करके पूर्व के द्वार से उसमे प्रविष्ट हुआ और जहाँ सिंहासन था उस ओर जाकर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके बैठा। तब उस विजयदेव के आभियोगिक देव पुस्तक रत्न लाकर उसे अर्पित करते हैं।

तए णं से विजए देवे पोत्थयरयणं गेण्हइ २ त्ता पोत्थयरयणं मुयइ पोत्थयरयणं मुएत्ता पोत्थयरयणं विहाडेइ पोत्थयरयणं विहाडेत्ता पोत्थयरयणं वाएइ पोत्थयरयणं वाएत्ता धम्मियं ववसायं पगेण्हइ धम्मियं ववसायं पगेण्हित्ता पोत्थयरयणं पडिणिक्खिवेइ २ त्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता ववसायसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव णंदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता णंदं पुक्खरिणिं अणुप्पयाहिणी करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ २ त्ता पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाण-पडिरूवगएणं पच्चोरुहइ २ त्ता हत्थं पादं पक्खालेइ २ त्ता एगं महं सेयं रययामयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विमलसलिलपुण्णं मत्तगयमहामुहाकितिसमाणं भिंगारं पगिण्हइ भिंगारं पगिण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं पउमाइं जाव सयसहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हइ २ त्ता णंदाओ पुक्खरिणीओ पच्चुत्तरेइ २ त्ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेत्थ गमणाए॥

भावार्थ - तब वह विजयदेव उस पुस्तक रत्न को ग्रहण करता है पुस्तक रत्न को अपनी गोद में लेता है, पुस्तक रत्न को खोलता है और पुस्तक रत्न का वाचन करता है। पुस्तक रत्न का वाचन करके उसमें अंकित धर्मानुगत व्यवसाय को करने की इच्छा करता है। तदनन्तर पुस्तक रत्न को वहाँ रख कर सिंहासन से उठता है और व्यवसाय सभा में पूर्ववर्ती द्वार से बाहर निकल कर जहाँ नंदापुष्करिणी है वहाँ आता है। नंदापुष्करिणी की प्रदक्षिणा करके पूर्व के द्वार से उसमें प्रवेश करता है। पूर्व के त्रिसोपान- प्रतिरूपक से नीचे उतर कर हाथ-पांव धोता है और एक बड़ी श्वेत चांदी की मत्त हाथी के मुख की आकृति की विमल जल से भरी हुई झारी को ग्रहण करता है और वहाँ के उत्पल कमल यावत् शतपत्र सहस्रपत्र कमलों को लेता है और नंदा पुष्करिणी से बाहर निकल कर जिस ओर सिद्धायतन है उस ओर जाने का संकल्प किया।

तए णं तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ जाव अण्णे य बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य अप्पेगइया उप्पलहत्थगया जाव हत्थगया विजयं देवं पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छंति॥ तएणं तस्स विजयस्स देवस्स बहवे आभिओगिया देवा देवीओ य कलसहत्थगया जाव धूवकडुच्छुयहत्थगया विजयं देवं पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छंति॥

भावार्थ - तत्पश्चात् विजय देव के चार हजार सामानिक देव यावत् और अन्य भी बहुत सारे वाणव्यंतर देव और देवियां कोई हाथ में उत्पल कमल लेकर यावत् कोई शतपत्र सहस्रपत्र कमल हाथ में लेकर विजयदेव के पीछे पीछे चलते हैं। उस विजयदेव के बहुत से आभियोगिक देव और देवियां कोई हाथ में कलश यावत् धूप का कडुच्छक हाथ में लेकर विजयदेव के पीछे-पीछे चलते हैं।

तए णं से विजए देवे चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव अण्णेहि य बहूहिं वाणमंतरेहिं देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए ससव्वजुत्तीए जाव णिग्घोसणाइयरवेणं जेणेव सिद्धाययणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सिद्धायतणं अणुप्पयाहिणी करेमाणे करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ अणुपविसित्ता जेणेव देवच्छंदए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आलोए जिणपडिमाणं पणामं करेइ २ त्ता लोमहत्थगं गेण्हइ लोमहत्थगं गेण्हित्ता जिणपडिमाओ लोमहत्थएणं पमज्जइ २ त्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुरभिणा गंधोदएणं ण्हाणेइ २ त्ता दिव्वाए सुरभिगंधकासाइएणं गायाइं लूहेइ २ त्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाणिं अणुलिंपइ अणुलिंपेत्ता जिणपडिमाणं अहयाइं सेयाइं दिव्वाइं देवदूसजुयलाइं णियंसेइ णियंसेत्ता अग्गेहिं वरेहि य गंधेहि य मल्लेहि य अच्चेइ २ त्ता पुप्फारुहणं गंधारुएणं मल्लारुहणं वण्णारुहणं चुण्णारुहणं आभरणारुहणं करेइ २ त्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदाम कलावं करेइ २ त्ता अच्छेहिं सण्हेहिं(सेएहिं) रययामएहिं अच्छरसातंदुलेहिं जिणपडिमाणं पुरओ अट्ठट्ठमंगलए आलिहइ सोत्थियसिरिवच्छ जाव दप्पण अट्ठट्ठमंगलए आलिहइ २ त्ता कयग्गाहग्गहियकरतल-पब्भट्ठ-विप्पमुक्केणं दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं मुक्क-पुप्फपुंजोवयारकलियं करेइ २ त्ता चंदप्पभवइरवेरुलिय विमलदंडं कंचणमणिरयण-भत्तिचित्तं कालागुरुपवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कधूवगंधुत्तमाणुविद्धं धूमवट्टिं विणिम्मुयंतं वेरुलियामयं कडुच्छुयं पग्गहित्तु पयत्तेणं धूवं दाऊण सत्तट्ठपयाइं ओसरइ सतट्ठपयाइं ओसरित्ता जिणवराणं अट्ठसय-विसुद्ध-गंधजुत्तेहिं महावित्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं संथुणइ २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ २ त्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि णिवाडेइ तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि णमेइ णमित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ २ त्ता कडयतुडियथंभियाओ भुयाओ पडिसाहरइ २ त्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी-णमोऽत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्ताणं तिकट्टु वंदइ णमंसइ।

कठिन शब्दार्थ - **णियंसेइ** - पहनाता है, **पुप्फारोहणं** - पुष्पारोपणं-फूल चढाये, **ईसिं पच्चुण्णमइ**- कुछ ऊँचा उठाया।

भावार्थ - तब वह विजयदेव चार हजार सामानिक देवों के साथ यावत् अन्य बहुत सारे वाणव्यंतर देवों और देवियों के साथ और उनसे घिरे हुए सब प्रकार की ऋद्धि और सब प्रकार की द्युति के साथ यावत् वाद्यों की गूंजती हुई ध्वनि के बीच जिस ओर सिद्धायतन था उस ओर जाता है और सिद्धायतन की प्रदक्षिणा करके पूर्व दिशा के द्वार से सिद्धायतन में प्रवेश करता है और जहां देवच्छंदक था वहाँ आता है और जिन प्रतिमाओं को देखते ही प्रणाम करता है फिर लोमहस्तक लेकर जिन प्रतिमाओं का प्रमार्जन करता है और सुगंधित गंधोदक से उन्हें नहलाता है, दिव्य सुगंधित गंधकाषायिक से उनके अवयवों को पौंछता है, सरस गोशीर्ष चंदन का उनके अंगों पर लेप करता है फिर जिन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिमाओं को अक्षत, श्वेत और दिव्य देवदूष्य-युगल पहनाता है और श्रेष्ठ, प्रधान गंधों से, माल्यों से उन्हें पूजता है, पूज कर फूल चढाता है, गंध चढाता है, मालाएं चढाता है, वर्णक-केसर आदि चूर्ण और आभरण चढाता है। फिर ऊपर से नीचे तक लटकती हुई विपुल और गोल बड़ी-बड़ी मालाएं चढाता है। तत्पश्चात् स्वच्छ, सफेद, रजतमय और चमकदार चावलों से जिनप्रतिमाओं के आगे आठ-आठ मंगलों का आलेखन करता है। वे आठ मंगल हैं - स्वस्तिक, श्रीवत्स यावत् दर्पण। आठ मंगलों का आलेखन करके कचग्राह से गृहीत और करतल से मुक्त होकर बिखरे हुए पांच वर्णों के फूलों से पुष्पोपचार (फूल पूजा) करता है। चन्द्रकांत मणि, वज्रमणि और वैडूर्यमणि से युक्त निर्मल दण्ड वाले, कंचन मणि और रत्नों से विविध रूपों में चित्रित, काला अगुरु श्रेष्ठ कुंदरुक्क् और लोभान के धूप की उत्तम गंध से युक्त, धूप की वाती को छोड़ते हुए वैडूर्यमय कडुच्छक को लेकर सावधानी के साथ धूप देकर सात आठ पांव पीछे सरक कर जिनवरों की एक सौ आठ विशुद्ध ग्रंथ (शब्द संदर्भ युक्त) महाछंदों वाले, अर्थ युक्त और अपुनरुक्त स्तोत्रों से स्तुति करता है। स्तुति करके बायें घुटने को ऊंचा रख कर तथा दायें घुटने को जमीन से लगा कर तीन बार अपने मस्तक को जमीन पर नमाता है फिर थोड़ा ऊँचा उठा कर अपनी कटक और त्रुटित (बाजुबन्द) से स्तंभित भुजाओं को संकुचित कर हाथ जोड़ कर मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोलता है - 'नमस्कार हो अरिहंत भगवंतों को यावत् जो सिद्धि गति नामक स्थान को प्राप्त हुए हैं।' ऐसा कह कर वंदन करता है नमस्कार करता है।

विवेचन - यद्यपि जीवाभिगम और रायप्पसेणईय सूत्र की उपलब्ध प्रतियों में **'णमोत्थुणं'** का पाठ उपलब्ध होता है। परन्तु वह पाठ प्रक्षिप्त मालूम पड़ता है। क्योंकि वहाँ के संदर्भ को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि 'प्रतिमार्चन को वे धार्मिक आध्यात्मिक (आत्मा को उन्नत करने वाला) कृत्य नहीं मानते हैं, परन्तु देवलोक में मंगल रूप होने से जिस तरह भरतादि चक्रवर्ती चक्रार्चन करते हैं वैसे ही सूर्याभ आदि विमानों तथा विजयादि राजधानियों में उत्पन्न होने वाले समकिती मिथ्यात्वी सभी देव उत्पन्न होते ही सामानिक देवों द्वारा तथा पुस्तक रत्न द्वारा वहाँ के पूर्व पश्चात् कर्त्तव्यों का ज्ञान करके जन्मोत्सव के समय में एक बार भरतादि चक्रवर्तियों के चक्रार्चनवत् प्रतिमार्चन करते हैं। चक्रार्चन और प्रतिमार्चन में 'णमोत्थुणं' के सिवाय सभी विधि समान ही है। इससे प्रतिमार्चन में 'णमोत्थुणं' का पाठ आना संदर्भ के अनुरूप प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि मंगल रूप होने से प्रतिमार्चन तो समकिती, मिथ्यात्वी दोनों प्रकार के देव करते हैं। विधि दोनों के लिए समान है। इसलिए जो प्रतिमार्चन विधि में सिद्धों को नमस्कार करने रूप और स्तवन करने रूप 'णमोत्थुणं' भी सम्मिलित होवे तो मिथ्यात्वी देव इस विधि को यथावत् संपादन नहीं करते, परन्तु मिथ्या देवों के लिए भी प्रतिमार्चन की पूर्ण विधि का विधान है। इसलिए प्रतिमार्चन विधि में 'णमोत्थुणं' नहीं होना चाहिए।

यदि ऐसा कहे कि मिथ्यात्वी देव मंगल कृत्य तथा जीताचार समझ कर 'णमोत्थुणं' का पाठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बोलते हैं तब तो सभी जीवों के लिए मंगल और जीताचार कृत्य होने से चक्रार्चन के जैसे मंगल कृत्य ही सिद्ध होता है। इसलिए यहां पूर्वापर संदर्भ की संगति से अधिक संभव तो यही है कि यहाँ 'णमोत्थुणं' का पाठ प्रक्षिप्त है। क्योंकि यदि मंगल कृत्य रूप से 'णमोत्थुणं' का पाठ बोलने की प्रथा होती तो भरतादि चक्रवर्ती भी चक्रार्चन के समय में बोलते, परन्तु वे यह पाठ नहीं बोलते हैं। इससे प्रतिमार्चन के स्थान का पाठ भी चक्रार्चन के स्थान की तरह **'कडुच्छयं पग्गहेतु पयत्ते धूवं दहई दहित्ता सत्तट्ठपयाइं पच्चोसक्कइ २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ जाव पणामं करेइ'** ऐसा पाठ होना अधिक संगत प्रतीत होता है।

ज्ञाताधर्मकथा सूत्र के द्रौपदी अधिकार में भी 'णमोत्थुणं' का पाठ प्राचीन प्रतियों के देखने से प्रक्षिप्त सिद्ध होता है। दिल्ली के श्रीयुत् लाला मन्नूलाल जी अग्रवाल की नेश्राय की प्राचीन प्रति में भी 'णमोत्थुणं' का पाठ नहीं है तथा नवाङ्गी टीकाकार अभयदेवसूरिजी भी इस स्थल की टीका करते हुए लिखते हैं कि - **''जिणपडिमाणं अच्चणं करेई त्ति' ऐकस्या वाचना या मेताव देव दृश्यते वाचनां-तरेसु''** तथा आगे द्रौपदी प्रकरण में भी **'न च चरितानुवाद वचनानि विधि निषेध साधकानि भवंति'** इत्यादि रूप से इन प्रकरणों को विधि निषेध साधक नहीं मानते हैं।

मूर्तिपूजक समाज के प्रतिष्ठित विद्वान् पं. बेचरदास जी भी **'जैन साहित्य मां विकारथवाथी थयेली हानि'** (या जैन साहित्य मां विकार) पुस्तक में लिखते हैं कि - 'मूर्ति पूजा आगम विरुद्ध है। इसके लिए तीर्थंकरों ने सूत्रों में कोई विधान नहीं किया है। यह कल्पित पद्धति है।' इस प्रकार मूर्तिपूजक विद्वान भी मूर्तिपूजा के विधान को आगमीय विधान नहीं मानते हैं। तो फिर उसको भगवान् समझकर उसके सामने 'णमोत्थुणं' देने का तो प्रश्न ही नहीं रहता। अर्थात् इन लोगों की मान्यता भी 'णमोत्थुणं' का पाठ प्रक्षिप्त मानने की तरफ ही है।

आगमों में जहाँ कहीं भी प्रतिमार्चन का वर्णन है। प्रायः वहां का पाठ समान ही है। द्रौपदी के प्रतिमार्चन के संबंध में स्वयं टीकाकार भी 'णमोत्थुणं' का वाचनांतर बताते हैं। तथा 'णमोत्थुणं' के बिना के पाठ को अधिक महत्त्व देते हैं। इस प्रकार प्रतिमार्चन का पाठ सर्वत्र समान होने से सूर्याभ और विजयदेव के वर्णन में भी **'णमोत्थुणं'** का पाठ प्रक्षिप्त ध्यान में आता है।

विक्रम की ८-९ वीं शताब्दियों में जब चैत्य वासियों का जोर सर्वत्र फैला हुआ था, वे मठाधीश यति बन गये थे। मंदिरों के पैसों की उघराणी करते थे और सारा वहीवट स्वयं की देखरेख में रखते थे। जिसका खंडन 'संबोध प्रकरण' और 'महानिशीथ' में हुआ है। संभवतः इस युग में 'णमोत्थुणं' का पाठ तीनों प्रतियों (जीवाभिगम, जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति और ज्ञाता धर्मकथांग सूत्र) में प्रक्षिप्त हुआ हो तो असंभवित नहीं।

१२ वीं शती में होने वाले नवाङ्गी टीकाकार अभयदेव सूरि तक तो दोनों प्रकार की प्रतियाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्ध होती है। जिनसे ही उन्होंने ज्ञाता सूत्र में 'णमोत्थुणं' के बिना के पाठ को प्रधानता दी है। इससे ७-८ वीं शती में लिखित प्राचीन प्रतियों से इस पाठ को मिलाने से इसकी प्रक्षिप्तता जानी जा सकती है। अन्य सांदर्भिक पाठों और ज्ञाता सूत्र के पाठ के आधार से उसे प्रक्षिप्त कहा जाता है। पूर्ण निश्चितता के लिए प्राचीन प्रतियों के पाठ को मिलाने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि प्राचीन प्रतियों में भी 'णमोत्थुणं' का पाठ मिल जाय तो समकिती, मिथ्यात्वी सभी के लिए करणीय होने से 'णमोत्थुणं' भी मंगल रूप ही सिद्ध होगा, धार्मिक कृत्य नहीं। रायप्पसेणइय और जीवाभिगम के टीकाकार श्री मलयगिरिजी नवांगी टीकाकार श्री अभयदेव जी के पश्चाद्वर्ती है। इनको प्रक्षिप्त पाठ वाली प्रतियाँ उपलब्ध होने की संभावना है। जिससे इन्होंने अपनी टीका में 'णमोत्थुणं' के पाठ की भी टीका की है। परन्तु इसकी संगति के विषय में मौन है। इसी तरह इस संबंध में लोकाशाह मत समर्थन, जिनागम विरुद्ध मूर्त्ति पूजा, स्थानकवासी धर्म की सत्यता (लेखक - श्री रतनलालजी डोशी), दंडी दंभ दर्पण (माधवाचार्य) आदि पुस्तकें द्रष्टव्य है। जिनमें अनेक प्रामाणिक आधारों के साथ स्पष्ट रूप से मूर्तिपूजा को जिनागम विरुद्ध सिद्ध किया है। इत्यादि प्रमाणों के आधार से मूर्त्ति पूजा की जिनागम विरुद्धता और 'णमोत्थुणं' के पाठ की प्रक्षिप्तता के संबंध में ऊहापोह कर के वास्तविक तथ्य जाना जा सकता है।

वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खइ २ त्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलेणं मंडलं आलिहइ २ त्ता चच्चए दलयइ चच्चाए दलयित्ता कयग्गाहग्गहिय करतलपब्भट्ठविमुक्केणं दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेइ २ त्ता धूवं दलयइ २ त्ता जेणेव सिद्धायतणस्स दाहिणिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता लोमहत्थगं गेण्हइ २ त्ता दारचेडीओ य सालभंजियाओ य वालरुवए य लोमहत्थएणं पमज्जइ २ त्ता बहुमज्झदेसभाए सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलेणं अणुलिंपइ २ त्ता चच्चए दलयइ २ त्ता पुप्फारुहणं जाव आभरणारुहणं करेइ २ आसत्तोसत्तविउल वट्टवग्घारिय-मल्लदामकलावं करेइ २ त्ता कयग्गाहग्गहिय जाव पुंजोवयारकलियं करेइ २ त्ता धूवं दलयइ २ त्ता जेणेव मुहमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता बहुमज्झदेसभाए लोमहत्थेणं पमज्जइ २ त्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ २ त्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलेणं मंडलगं आलिहइ २ त्ता चच्चए दलयइ २ ता कयग्गाह० जाव धूवं दलयइ २ त्ता जेणेव मुहमंडवस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता लोमहत्थगं गेण्हइ २ दारचेडीओ य सालभंजियाओ य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वालरुवए य लोमहत्थएणं पमज्जइ २ दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ २ सरसेणं गोसीसचंदणेणं जाव चच्चए दलयइ २ आसत्तोसत्त० कयग्गाह० धूवं दलयइ २ जेणेव मुहमंडवगस्स उत्तरिल्ला णं खंभपंती तेणेव उवागच्छइ २ लोमहत्थगं परामुसइ सालभंजियाओ दिव्वाए उदगधाराए सरसेणं गोसीसचंदणेणं पुप्फारुहणं जाव आसत्तोसत्त० कयग्गाह० धूवं दलयइ जेणेव मुहमंडवस्स पुरत्थिमिल्ले दारे तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव दारस्स अच्चणिया जेणेव दाहिणिल्ले दारे तं चेव पेच्छाघर-मंडवस्स बहुमज्झदेसभाए जेणेव वइरामए अक्खाडए जेणेव मणिपेढिया जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ लोमहत्थगं गिण्हइ लोमहत्थगं गिण्हित्ता अक्खाडगं च सीहासणं च लोमहत्थएणं पमज्जइ २ त्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भु० पुप्फारुहणं जाव धूवं दलयइ जेणेव पेच्छाघरमंडवपच्चत्थिमिल्ले दारे दारच्चणिया उत्तरिल्ला खंभपंती तहेव पुरत्थिमिल्ले दारे तहेव जेणेव दाहिणिल्ले दारे तहेव जेणेव चेइयथूभे तेणेव उवागच्छइ।

भावार्थ - वंदन नमस्कार करके जहाँ सिद्धायतन का मध्यभाग है वहाँ आता है और दिव्य जल की धारा से उसका सिंचन करता है, सरस गोशीर्ष चंदन से हाथों को लिप्त कर पांचों अंगुलियों से मंडल बनाता है, उसकी अर्चना करता है और कचग्राह गृहीत और करतल से विमुक्त होकर बिखरे हुए पांच वर्णों के फूलों से उसको पुष्पोपचार युक्त करता है और धूप देता है। धूप देकर जिधर सिद्धायतन का दक्षिण दिशा का द्वार है उधर जाता है। वहाँ जाकर लोमहस्तक लेकर द्वार शाखा, शालभंजिका तथा व्यालरूपक का प्रमार्जन करता है, उसके मध्यभाग को सरस गोशीर्ष चंदन से लिप्त हाथों से लेप लगाता है, अर्चना करता है, फूल चढाता है यावत् आभरण चढाता है ऊपर से लेकर जमीन तक लटकती बड़ी बड़ी मालाएं रखता है और कचग्राह ग्रहीत तथा करतल विमुक्त फूलों से पुष्पोपचार करता है, धूप देता है और जिधर मुखमण्डप का बहुमध्यभाग है वहाँ जाकर लोमहस्तक से प्रमार्जन करता है, दिव्य उदकधारा से सिंचन करता है, सरस गोशीर्ष चंदन से लिप्त पांचों अंगुलियों से एक मंडल बनाता है उसकी अर्चना करता है, कचग्राह गृहीत और करतल विमुक्त होकर बिखरे हुए पांचों वर्णों के फूलों का ढेर लगाता है, धूप देता है और जिधर मुखमंडप का पश्चिम दिशा का द्वार है उधर जाता है।

मुखमंडप के पश्चिम दिशा के द्वार पर आकर लोमहस्तक से द्वार शाखाओं, शालभंजिकाओं और व्यालरूपक का प्रमार्जन करता है, दिव्य उदगधारा से सिंचन करता है, सरस गोशीर्ष चंदन का लेप करता है यावत् अर्चना करता है, ऊपर से नीचे तक लंबी लटकती हुई बड़ी-बड़ी मालाएं रखता है,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कचग्राह गृहीत करतल विमुक्त पांच वर्णों के फूलों से पुष्पोपचार करता है, धूप देता है। फिर मुखमंडप की उत्तर दिशा की स्तंभ पंक्ति की ओर जाता है लोमहस्तक से शालभंजिकाओं का प्रमार्जन करता है, दिव्यजलधारा से सिंचन करता है, सरस गोशीर्ष चंदन का लेप करता है फूल चढाता है यावत् बडी बडी मालाएं रखता है, कचग्राहग्रहीत करतल विमुक्त होकर बिखरे हुए फूलों से पुष्पोपचार करता है, धूप देता है। फिर मुखमंडप के पूर्व के द्वार की ओर जाता है और वह सब कथन पूर्ववत् कह देना चाहिए यावत् द्वार की अर्चना करता है। इसी तरह दक्षिण दिशा के द्वार में भी वैसा ही कथन कर देना चाहिए। फिर प्रेक्षा घर मण्डप के बहुमध्यभाग में जहाँ वज्रमय अखाड़ा है जहां मणिपीठिका है जहाँ सिंहासन है वहा आता है लोमहस्तक से अखाड़ा मणिपीठिका और सिंहासन का प्रमार्जन करता है, उदकधारा से सिंचन करता है फूल चढाता है यावत् धूप देता है। फिर प्रेक्षाघर मण्डप के पश्चिम के द्वार में द्वार पूजा उत्तर की खंभपंक्ति में वैसा ही कथन पूर्व के द्वार में वैसा ही कथन और दक्षिण के द्वार में भी वही कथन कर देना चाहिए। फिर जहाँ चैत्य स्तुप है वहां आता है।

उवागच्छित्ता लोमहत्थगं गेण्हइ २ त्ता चेइयथूभं लोमहत्थएणं पमज्जइ पमज्जित्ता दिव्वाए दग० सरसेण० पुप्फारुहणं आसत्तोसत्त जाव धूवं दलयइ २ त्ता जेणेव पच्चत्थिमिल्ला मणिपेढिया जेणेव जिणपडिमा तेणेव उवागच्छइ जिणपडिमाए आलोए पणामं करेइ २ त्ता लोमहत्थगं गेण्हइ २ त्ता तं चेव सव्वं जं जिणपडिमाणं जाव सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं वंदइ णमंसइ, एवं उत्तरिल्लाएवि, एवं पुरत्थिमिल्लाएवि, एवं दाहिणिल्लाएवि, जेणेव चेइयरुक्खा दारविही य मणिपेढिया जेणेव महिंदज्झए दारविही, जेणेव दाहिणिल्ला णंदापुक्खरिणी तेणेव उवा० लोमहत्थगं गेण्हइ चेइयाओ य तिसोवाणपडिरूवए य तोरणे य सालभंजियाओ य वालरुवए य लोमहत्थएण य पमज्जइ २ त्ता दिव्वाए उदगधाराए सिंचइ सरसेणं गोसीसचंदणेणं अणुलिंपइ २ त्ता पुप्फारुहणं जाव धूवं दलयइ २ त्ता सिद्धायतणं अणुप्पयाहिणं करेमाणे जेणेव उत्तरिल्ला णंदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तहेव महिंदज्झया चेइयरुक्खो चेइयथूभे पच्चत्थिमिल्ला मणिपेढिया जिणपडिमा उत्तरिल्ला पुरत्थिमिल्ला दक्खिणिल्ला पेच्छाघरमंडवस्सवि तहेव जहा दक्खिणिल्लस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे जाव दक्खिणिल्ला णं खंभपंती मुहमंडवस्सवि तिण्हं दाराणं अच्चणिया भणिऊणं दक्खिणिल्ला णं खंभपंती उत्तरे दारे पुरच्छिमे दारे सेसं तेणेव कमेण जाव पुरत्थिमिल्ला णंदापुक्खरिणी जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भावार्थ - चैत्य स्तुप पर आकर लोमहस्तक ग्रहण करता है, लोमहस्तक से चैत्यस्तूप का प्रमार्जन, उदकधारा से सिंचन, सरस चंदन से लेप, पुष्प चढाना, मालाएं रखना, धूप देना आदि विधि करता है। फिर पश्चिम की मणिपीठिका और जिन प्रतिमा है वहाँ जाकर जिन प्रतिमा को देखते ही नमस्कार करता है, लोमहस्तक से प्रमार्जन करता है आदि कथन यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त अरिहंत भगवंतों को वंदन करता है नमस्कार करता है। इसी प्रकार उत्तर की, पूर्व की और दक्षिण की मणिपीठिका और जिनप्रतिमाओं के विषय में कह देना चाहिए। फिर जहाँ दक्षिण दिशा का चैत्यवृक्ष है वहाँ जाता है वहाँ पूर्ववत् अर्चना करता है, वहाँ से महेन्द्र ध्वज के पास आकर पूर्ववत् अर्चना करता है। वहाँ से दक्षिण दिशा की नंदा पुष्करिणी के पास आता है, लोमहस्तक लेता है और चैत्यों, त्रिसोपानप्रतिरूपक, तोरण, शालभंजिकाओं और व्यालरूपकों का प्रमार्जन करता है, दिव्य उदक धारा से सिंचन करता है, सरस गोशीर्ष चंदन से लेप करता है, फूल चढ़ाता है यावत् धूप देता है। तदनन्तर सिद्धायतन की प्रदक्षिणा करता हुआ जिधर उत्तरदिशा की नंदापुष्करिणी है उधर जाता है। उसी तरह महेन्द्रध्वज, चैत्यवृक्ष, चैत्य स्तूप, पश्चिम की मणिपीठिका और जिन प्रतिमा, उत्तर, पूर्व और दक्षिण की मणिपीठिका और जिन प्रतिमाओं का कथन करना चाहिये। तत्पश्चात् उत्तर के प्रेक्षाघर मण्डप में आता है, वहाँ दक्षिण के प्रेक्षागृह मण्डप की तरह सारा कथन कह देना चाहिए। वहाँ से उत्तरद्वार से निकल कर उत्तरदिशा के मुखमण्डप में आता है। वहाँ दक्षिण के मुख मण्डप की तरह संपूर्ण विधि करके उत्तरद्वार से निकल कर सिद्धायतन के पूर्वद्वार पर आता है। वहाँ पूर्ववत् अर्चना करके पूर्व के मुखमण्डप के दक्षिण, उत्तर और पूर्वदिशा के द्वारों में क्रमशः पूर्वानुसार पूजा करके पूर्व द्वार से निकल कर पूर्व प्रेक्षागृह मंडप में आकर पूर्ववत् अर्चना करता है। फिर पूर्वोक्त रीति से क्रमशः चैत्यस्तूप, जिन प्रतिमा, चैत्यवृक्ष, महेन्द्र ध्वज और नंदापुष्करिणी की पूजा-अर्चना करता है। वहाँ से सुधर्मा सभा की ओर आने की इच्छा करता है।

तए णं तस्स विजयस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ एयप्पभिइं जाव सव्विड्डिए जाव णाइयरवेणं जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तं णं सभं सुहम्मं अणुप्पयाहिणी करेमाणे २ पुरत्थिमिल्लेणं अणुपविसइ २ त्ता आलोए जिणसकहाणं पणामं करेइ २ जेणेव मणिपेढिया जेणेव माणवयचेइयक्खंभे जेणेव वइरामया गोलवट्टसमुग्गका तेणेव उवागच्छइ २ लोमहत्थयं गेण्हइ २ त्ता वइरामए गोलवट्टसमुग्गए लोमहत्थएण पमज्जइ २ त्ता वइरामए गोलवट्टसमुग्गए विहाडेइ २ त्ता जिणसकहाओ लोमहत्थएणं पमज्जइ २ त्ता सुरभिणा गंधोदएणं तिसत्तखुत्तो जिणसकहाओ पक्खालेइ २ सरसेणं गोसीसचंदणेणं अणुलिंपइ २ त्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं मल्लेहि य अच्चिणइ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२ त्ता धूवं दलयइ २ त्ता वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु पडिणिक्खिवइ २ त्ता माणवकं चेइयखंभं लोमहत्थएणं पमज्जइ २ दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ २ त्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ २ पुप्फारुहणं जाव आसत्तोसत्त० कयग्गाह० धूवं दलयइ २ जेणेव सभाए सुहम्माए बहुमज्झदेसभाए तं चेव जेणेव सीहासणे तेणेव जहा दारच्चणिया जेणेव देवसयणिज्जे तं चेव जेणेव खुड्डागे महिंदज्झए तं चेव जेणेव पहरणकोसे चोप्पाले तेणेव उवागच्छइ २ पत्तेयं पत्तेयं पहरणाइं लोमहत्थएणं पमज्जइ पमज्जित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं तहेव सव्वं सेसं पि दक्खिणदारं आदिकाउं तहेव णेयव्वं जाव पुरच्छिमिल्ला णंदापुक्खरिणी सव्वाणं सभाणं जहा सुहम्माए सभाए तहा अच्चणिया उववायसभाए णवरि देवसयणिज्जस्स अच्चणिया सेसासु सीहासणाण अच्चणिया हरयस्स जहा णंदाए पुक्खरिणीए अच्चणिया, ववसायसभाए पोत्थयरयणं लोम० दिव्वाए उदगधाराए सरसेणं गोसीसचंदणेणं अणुलिंपइ अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं य मल्लेहि य अच्चिणइ २ त्ता (मल्लेहि) सीहासणे लोमहत्थएणं पमज्जइ जाव धूवं दलयइ सेसं तं चेव णंदाए जहा हरयस्स तहा जेणेव बलिपीढं तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आभिओगे देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! विजयाए रायहाणीए सिंघाडएसु य तिएसु य चउक्केसु य चच्चरेसु य चउमुहेसु य महापहपहेसु य पासाएसु य पागारेसु य अट्टालएसु य चरियासु य दारेसु य गोपुरेसु य तोरणेसु य वावीसु य पुक्खरिणीसु य जाव बिलपंतियासु य आरामेसु य उज्जाणेसु य काणणेसु य वणेसु य वणसंडेसु य वणराईसु य अच्चणियं करेह करेत्ता ममेयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह। तए णं ते आभिओगिया देवा विजएणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा जाव हट्टतुट्ठा विणएणं पडिसुणेंति २ त्ता विजयाए रायहाणीए सिंघाडएसु य जाव अच्चणियं करेत्ता जेणेव विजए देवे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति॥

कठिन शब्दार्थ - गोलवट्टसमुग्गए - गोल-वर्तुलाकार मंजूषाएं (समुद्गक), **विहाडेइ** - खोलता है, **पहरणकोसे** - प्रहरण कोष (शस्त्रागार), **सिंघाडएसु** - शृंगाटकों-त्रिकोण स्थानों में, **तिएसु**- त्रिकों में-जहाँ तीन रास्ते मिलते हैं, **चउक्केसु** - चतुष्कों में-जहाँ चार रास्ते मिलते हैं, **चच्चरेसु** - चत्वरों में-जहाँ बहुत से रास्ते मिलते हैं, **चउमुहेसु** - चतुर्मुखों में-जहाँ से चारों दिशाओं में रास्ते जाते हैं, **चरियासु** - चर्याओं-नगर और प्राकार के बीच आठ हाथ प्रमाण चौड़े अन्तराल मार्ग-में, **गोपुरेसु** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोपुरों में-प्राकार के द्वारों में, **बिलपंतियासु** - सरोवरों की पंक्तियों में, **आरामेसु** - आरामों-लतागृहों में, **काणणेसु** - काननों-नगर के समीप के वनों में, **वणसंडेसु** - वनखण्डों-अनेक जाति के वृक्ष समूहों में, **वणराईसु** - वनराजियों-एकजातीय उत्तमवृक्ष समूहों-में।

भावार्थ - तब वह विजयदेव अपने चार हजार सामानिक देवों आदि अपने समस्त परिवार के साथ यावत् सब प्रकार की ऋद्धि के साथ वाद्यों की ध्वनि की बीच सुधर्मा सभा की ओर जाता है और उसकी प्रदक्षिणा करके पूर्व दिशा के द्वार से उसमें प्रवेश करता है। प्रवेश करके जिन-सक्थाओं को देखते ही प्रणाम करता है और जहाँ मणिपीठिका है जहाँ माणवक चैत्य स्तंभ है और जहाँ वज्ररत्न की गोल वर्तुल मंजूषाएं हैं वहाँ आता है और लोमहस्तक से उन गोल वर्तुलाकार मंजूषाओं का प्रमार्जन कर उनको खोलता है। उनमें रखी हुई जिन-सक्थाओं का लोमहस्तक से प्रमार्जन कर सुगंधित गंधोदक से इक्कीस बार उनको धोता है, सरस गोशीर्ष चंदन का लेप करता है, प्रधान और श्रेष्ठ गंधों और मालाओं से पूजन करता है, धूप देता है। तदनन्तर उनको उन गोल वर्तुलाकार मंजूषाओं में रख देता है तत्पश्चात् माणवक चैत्य स्तंभ का लोमहस्तक से प्रमार्जन करता है, दिव्य उदक धारा से सिंचन करता है, सरस गोशीर्ष चंदन का लेप करता है, फूल चढाता है यावत् लम्बी लटकती हुई फूलमालाएं रखता है, कचग्राहगृहीत करतल से विमुक्त बिखरे हुए पांच वर्णों के फूलों से पुष्पोपचार करता है, धूप देता है। इसके बाद सुधर्मा सभा के मध्य भाग में जहाँ सिंहासन है वहाँ आकर सिंहासन आदि का प्रमार्जन कर पूर्वोक्त रीति से अर्चन करता है। तत्पश्चात् जहाँ मणिपीठिका और देवशयनीय है वहाँ आता है आकर पूर्ववत् पूजा करता है। इसी प्रकार क्षुल्लक महेन्द्रध्वज की पूजा करता है। इसके बाद जहाँ चौपालक नामक प्रहरण कोष-शस्त्रागार है वहाँ आता है आकर शस्त्रों का लोम हस्तक से प्रमार्जन करता है, उदकधारा से सिंचन कर, चंदन का लेप लगा कर पुष्प आदि चढा कर धूप देता है। इसके पश्चात् सुधर्मा सभा के दक्षिण द्वार पर आकर पूर्ववत् पूजा करता है फिर दक्षिण द्वार से निकलता है। इसके आगे सारा वर्णन सिद्धायतन के समान समझना चाहिए यावत् पूर्व दिशा की नंदापुष्करिणी की अर्चना करता है। सभी सभाओं का पूजा का वर्णन सुधर्मा सभा की तरह समझ लेना चाहिए। अंतर यह है कि उपपात सभा में देवशयनीय की पूजा का कथन करना चाहिए शेष सभाओं में सिंहासनों की पूजा का कथन करना चाहिये। ह्रद (सरोवर) की पूजा का कथन नंदापुष्करिणी की तरह कह देना चाहिए। व्यवसाय सभा में पुस्तक रत्न का लोमहस्तक से प्रमार्जन, दिव्य उदकधारा से सिंचन, सरस गोशीर्ष चंदन से लेप, प्रधान एवं श्रेष्ठ गंधों और माल्यों से अर्चन करता है। तब सिंहासन का प्रमार्जन यावत् धूप देता है। शेष सारा वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिए। ह्रद का कथन नंदापुष्करिणी की तरह कह देना चाहिये। तत्पश्चात् जहाँ बलिपीठ है वहाँ जाता है और वहाँ अर्चन आदि करके आभियोगिक देवों को बुलाता है और उन्हें कहता है कि हे देवानुप्रियो! विजया राजधानी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चत्वरों, चतुर्मुखों, महापथों, सामान्य पथों, प्रासादों, प्राकारों, अट्टालिकाओं, चर्याओं, द्वारों, गोपुरों, तोरणों, बावडियों, पुष्करिणियों यावत् सरोवरों की पंक्तियों, आरामों, उद्यानों, काननों, वनों, वनखण्डों और वनराजियों में पूजा अर्चना करो और यह कार्य सम्पन्न कर मुझे मेरी आज्ञा सौंपो अर्थात् कार्य समाप्ति की सूचना दो।

तब वे आभियोगिक देव विजयदेव द्वारा ऐसा कहे जाने पर हृष्ट तुष्ट हुए और उसकी आज्ञा को स्वीकार कर विजया राजधानी के श्रृंगाटकों यावत् वनखण्डों में पूजा-अर्चना करके विजयदेव के पास आकर कार्य संपन्न करने की सूचना देते हैं।

तए णं से विजए देवे तेसिं णं आभिओगियाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिय जाव हयहियए जेणेव णंदा पुक्खारिणी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पुरत्थिमिल्लेणं तोरणेणं जाव हत्थपायं पक्खालेइ पक्खालित्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूए णंदापुक्खरिणीओ पच्चुत्तरइ पच्चुत्तरित्ता जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं से विजए देवे चउहिं सामाणिय-साहस्सीहिं जाव सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं सव्विड्ढीए जाव णिग्घोसणाइयरवेणं जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सभं सुहम्मं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ २ त्ता जेणेव मणिपेढिया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरच्छाभिमुहे सण्णिसण्णे ॥१४२॥

भावार्थ - तब वह विजयदेव उन आभियोगिक देवों से यह बात सुन कर हृष्ट तुष्ट हुआ, आनंदित हुआ यावत् उसका हृदय विकसित हुआ। तत्पश्चात् वह नंदापुष्करिणी की ओर जाता है और पूर्व के तोरण से उसमें प्रवेश करता है यावत् हाथ पांव धोकर, आचमन करके, स्वच्छ और परम शूचिभूत होकर नंदा पुष्करिणी से बाहर आता है और सुधर्मा सभा की ओर जाने की इच्छा (संकल्प) करता है।

तब वह विजयदेव चार हजार सामानिक देवों के साथ यावत् सोलह हजार आत्म रक्षक देवों के साथ सर्व ऋद्धि पूर्वक यावत् वाद्यों की ध्वनि के बीच सुधर्मा सभा की ओर आता है, सुधर्मा सभा के पूर्व दिशा के द्वार से उसमें प्रवेश करता है तथा जहां मणिपीठिका है वहाँ जाकर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठता है।

तए णं तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरच्छिमेणं पत्तेयं २ पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति। तए णं तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि अग्गमहिसीओ पुरत्थिमेणं पत्तेयं २ पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तए णं तस्स विजयस्स देवस्स दाहिणपुरत्थिमेणं अब्भिंतरियाए परिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पत्तेयं २ जाव णिसीयंति। एवं दक्खिणेणं मज्झिमियाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ जाव णिसीयंति। दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पत्तेयं २ जाव णिसीयंति। तए णं तस्स विजयस्स देवस्स पच्चत्थिमेणं सत्त अणियाहिवई पत्तेयं २ जाव णिसीयंति। तए णं तस्स विजयस्स देवस्स पुरत्थिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ पत्तेयं २ पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति, तंजहा-पुरत्थिमेणं चत्तारि साहस्सीओ जाव उत्तरेणं ४॥

भावार्थ - तब उस विजयदेव के चार हजार सामानिक देव पश्चिमोत्तर, उत्तर और उत्तरपूर्व में पहले से रखे हुए चार हजार भद्रासनों पर अलग अलग बैठते हैं। उस विजयदेव की चार अग्रमहिषियाँ पूर्व दिशा में पहले से रखे हुए अलग-अलग भद्रासनों पर बैठती हैं। उस विजयदेव के दक्षिण पूर्व दिशा में आभ्यंतर परिषद् के आठ हजार देव अलग अलग पूर्व में रखे हुए भद्रासनों पर बैठते हैं।

उस विजयदेव की दक्षिण दिशा में मध्यम परिषद् के दस हजार देव पहले से रखे हुए अलग-अलग भद्रासनों पर बैठते हैं। दक्षिण-पश्चिम दिशा में बाह्य परिषद् के बारह हजार देव पहले से रखे हुए अलग-अलग भद्रासनों पर बैठते हैं।

उस विजय देव के पश्चिम दिशा में सात अनीकाधिपति पूर्व में रखे हुए अलग अलग भद्रासनों पर बैठते हैं। उस विजयदेव के पूर्व में, दक्षिण में, पश्चिम में और उत्तर में सोलह हजार आत्मरक्षक देव पहले से ही रखे हुए अलग-अलग भद्रासनों पर बैठते हैं। पूर्व दिशा में चार हजार आत्मरक्षक देव, दक्षिण में चार हजार आत्मरक्षक देव, पश्चिम में चार हजार आत्मरक्षक देव और उत्तर में चार हजार आत्मरक्षक देव पहले से रखे हुए अलग-अलग भद्रासनों पर बैठते हैं।

ते णं आयरक्खा सण्णद्धबद्धवम्मियकवया उप्पीलियसरासणपट्टिया पिणद्धगेवेज्जविमलवरचिंधपट्टा गहियाउहप्पहरणा तिणयाइं तिसंधीणि वइरामया कोडीणि धणूइं अभिगिज्झ परियाइयकंडकलावा णीलपाणिणो पीयपाणिणो रत्तपाणिणो चावपाणिणो चारुपाणिणो चम्मपाणिणो खग्गपाणिणो दंडपाणिणो पासपाणिणो णीलपीयरत्तचावचारुचम्मखग्गदंडपासवरधरा आयरक्खा रक्खोवगा गुत्ता गुत्तपालिया जुत्ता जुत्तपालिया पत्तेयं २ समयओ विणयओ किंकरभूयाविव चिट्ठंति॥

कठिन शब्दार्थ - **सण्णद्धबद्धवम्मियकवया** - कवच को शरीर पर कस कर पहने हुए, **उप्पीलियसरासणपट्टिया** - धनुष की पट्टिका-मुष्टि ग्रहण स्थान को मजबूती से पकड़े हुए,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पिणद्धगेवेज्जविमलवरचिंधपट्टा - ग्रैवेयक-ग्रीवाभरण और विमल सुभट चिह्नपट्ट को धारण किये हुए, **गहियाउहप्पहरणा** - आयुधों और शस्त्रों को ग्रहण किये हुए, **तिणयाइं** - तीन स्थानों (आदि, मध्य और अन्त) में नमे हुए, **तिसंधीणि** - तीन संधियों वाले, **वइरामया कोडीणि** - वज्रमय कोटि वाले, **परियाइयकंडकलावा** - नाना प्रकार के बाणों से भरे हुए तूणीर वाले, **चावपाणिणो** - हाथों में धनुष है, **चारुपाणिणो** - हाथों में चारु-प्रहरण विशेष है, **रक्खोवगा** - रक्षा करने में दत्तचित्त, **गुत्ता** - गुप्त-स्वामी का भेद प्रकट नहीं करने वाले, **किंकरभूयाविव** - किंकर भूत-किंकर नहीं किन्तु शिष्टाचारवश विनम्र हैं।

भावार्थ - वे आत्मरक्षक देव लोहे की कीलों से युक्त कवच को शरीर पर कस कर पहने हुए हैं, धनुष की पट्टिका को मजबूती से पकड़े हुए हैं, उन्होंने गले में ग्रैवेयक और विमल सुभट चिह्नपट्ट को धारण कर रखा है, आयुधों और शस्त्रों को ग्रहण कर रखा है, आदि मध्य और अंत इन तीन स्थानों में नमे हुए, तीन संधियों वाले और वज्रमय कोटि वाले धनुषों को लिये हुए हैं, उनके तूणीरों में नाना प्रकार के बाण भरे हैं। किन्हीं के हाथ में नीले बाण हैं, किन्हीं के हाथ में पीले बाण हैं, किन्हीं के हाथों में लाल बाण है, किन्हीं के हाथों में धनुष है, किन्हीं के हाथों में चारु है, किन्हीं के हाथों में चर्म-अंगूठों और अंगुलियों का आच्छादन रूप है, किन्हीं के हाथों में दण्ड है, किन्हीं के हाथों में तलवार हैं, किन्हीं के हाथों में पाश (चाबुक) है और किन्हीं के हाथों में उक्त सब शस्त्र आदि हैं। वे आत्म-रक्षक देव रक्षा करने में दत्तचित्त हैं, गुप्त हैं, उनके सेतु दूसरों के द्वारा गम्य नहीं है, वे युक्त हैं (सेवक गुणोपेत हैं) उनके सेतु परस्पर संबद्ध हैं - बहुत दूर नहीं हैं। वे अपने आचरण और विनय से मानो किंकरभूत हैं।

तए णं से विजए देवे चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं सोलसण्हं आयरक्ख देवसाहस्सीणं विजयस्स णं दारस्स विजयाए रायहाणीए, अण्णेसिं च बहूणं विजयाए रायहाणीए वत्थव्वगाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहयणट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

भावार्थ - तब वह विजयदेव चार हजार सामानिक देवों, सपरिवार चार अग्रमहिषियों, तीन परिषदों, सात अनीकों, सात अनीकाधिपतियों, सोलह हजार आत्म-रक्षक देवों का तथा विजय द्वार, विजया राजधानी एवं विजया राजधानी के निवासी बहुत से देवों और देवियों का आधिपत्य, पुरोवर्तित्व, स्वामित्व, भट्टित्व, महत्तरकत्व, आज्ञा-ईश्वर-सेनाधिपतित्व करता हुआ और सब का पालन करता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुआ, जोर से बजाए हुए वाद्यों, नृत्य, गीत, तंत्री, तल, ताल, त्रुटित, घन मृदंग आदि की ध्वनि के साथ दिव्य भोगोपभोग भोगता हुआ रहता है।

विजयस्स णं भंते! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

विजयस्स णं भंते! देवस्स सामाणियाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, एवं महिड्डिए एवं महज्जुइए एवं महब्बले एवं महायसे एवं महासुक्खे एवं महाणुभागे विजए देवे विजए देवे॥ १४३॥

भावार्थ - हे भगवन्! विजयदेव की स्थिति कितने काल की कही गई है?

हे गौतम! विजयदेव की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है।

हे भगवन्! विजयदेव के सामानिक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

हे गौतम! विजयदेव के सामानिक देवों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है।

इस प्रकार वह विजयदेव ऐसी महर्द्धि वाला, महाद्युति वाला, महाबल वाला, महायश वाला, महासुख वाला और ऐसा महान् प्रभावशाली है।

विवेचन - विजयद्वार का विस्तृत वर्णन करने के बाद सूत्रकार अब वैजयंत आदि द्वारों का वर्णन करते हैं।

वैजयंत आदि द्वारों का वर्णन

कहि णं भंते! जंबुद्दीवस्स २ वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते?

गोयमा! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए जंबुद्दीवदीवदाहिणपेरंते लवणसमुद्ददाहिणद्धस्स उत्तरेणं एत्थ णं जंबुद्दीवस्स २ वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं सच्चेव सव्वा वत्तव्वया जाव णिच्चे। कहि णं भंते!० रायहाणी? दाहिणेणं जाव वेजयंते देवे २॥

भावार्थ - हे भगवन्! जंबूद्वीप नामक द्वीप का वैजयंत नाम का द्वार कहां कहा गया है?

हे गौतम! जंबूद्वीप में मेरुपर्वत के दक्षिण में पैंतालीस हजार योजन आगे जाने पर जंबूद्वीप की दक्षिण दिशा के अंत में तथा दक्षिण दिशा के लवण समुद्र से उत्तर में यह जंबूद्वीप का वैजयंत नाम का द्वार कहा गया है। यह आठ योजन ऊँचा और चार योजन चौड़ा है, आदि सारा वर्णन विजय द्वार के अनुसार कह देना चाहिये यावत् वह वैजयंत द्वार नित्य है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे भगवन्! वैजयन्त देव की वैजयंती नाम की राजधानी कहां है?

हे गौतम! वैजयंत द्वार की दक्षिण दिशा में तिरछे असंख्य द्वीप समुद्रों को पार करने पर आदि सारा वर्णन विजयद्वार के अनुसार कह देना चाहिए यावत् वहां वैजयंत नाम का महर्द्धिक देव है।

कहि णं भंते! जंबुद्दीवस्स २ जयंते णामं दारे पण्णत्ते?

गोयमा! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं जंबुद्दीवपच्चत्थिमपेरंते लवणसमुद्दपच्चत्थिमद्धस्स पुरच्छिमेणं सीओयाए महाणईए उप्पिं एत्थ णं जंबूद्दीवस्स दीवस्स जयंते णामं दारे पण्णत्ते, तं चेव से पमाणं जयंते देवे पच्चत्थिमेणं से रायहाणी जाव महिड्डिए० ॥

भावार्थ - हे भगवन्! जंबूद्वीप का जयंत नामक द्वार कहाँ कहा गया है?

हे गौतम! जंबूद्वीप के मेरुपर्वत के पश्चिम में पैंतालीस हजार योजन आगे जाने पर जंबूद्वीप की पश्चिम दिशा के अंत में तथा लवणसमुद्र के पश्चिमार्द्ध के पूर्व में शीतोदा महानदी के आगे जंबूद्वीप का जयन्त नाम का द्वार है। सारा वर्णन पूर्ववत् कह देना चाहिए यावत् वहाँ जयंत नामक महर्द्धिक देव है और उसकी राजधानी जयंत द्वार के पश्चिम में तिरछे असंख्य द्वीप समुद्रों को पार करने पर आदि वर्णन विजय द्वार के समान समझ लेना चाहिए।

कहि णं भंते! जंबुद्दीवस्स २ अपराइए णामं दारे पण्णत्ते?

गोयमा! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए जंबुद्दीवे २ उत्तरपेरंते लवणसमुद्दस्स उत्तरद्धस्स दाहिणेणं एत्थ णं जंबुद्दीवे २ अपराइए णामं दारे पण्णत्ते तं चेव पमाणं रायहाणी उत्तरेणं जाव अपराइए देवे, चउण्हवि अण्णंमि जंबुद्दीवे॥ १४४॥

भावार्थ - हे भगवन्! जंबूद्वीप का अपराजित नाम का द्वार कहाँ कहा गया है?

हे गौतम! मेरु पर्वत के उत्तर में पैंतालीस हजार योजन आगे जाने पर जंबू द्वीप की उत्तर दिशा के अन्त में तथा लवण समुद्र के उत्तरार्द्ध के दक्षिण में जंबूद्वीप का अपराजित नाम का द्वार है। उसका प्रमाण विजयद्वार के समान है। उसकी राजधानी अपराजित द्वीप के उत्तर में तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों को पार करने पर आदि वर्णन विजया राजधानी के समान है यावत् वहाँ अपराजित नाम का महर्द्धिक देव है। ये चारों राजधानियां इस प्रसिद्ध जंबूद्वीप में न होकर दूसरे जम्बूद्वीप में हैं।

जंबुद्दीवस्स णं भंते! दीवस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! अउणासीइं जोयणसहस्साइं बावण्णं च जोयणाइं देसूणं च अद्धजोयणं दारस्स य २ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते॥ १४५॥

भावार्थ - हे भगवन्! जंबूद्वीप के इन द्वारों में एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर कितना कहा गया है?

हे गौतम! जंबूद्वीप के इन द्वारों में एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर उन्यासी हजार बावन योजन और देशोन आधा योजन का कहा गया है।

विवेचन - एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर बताने के लिए टीका में निम्न दो गाथाएं दी गयी है-

कुड्डुवारपमाणं अट्ठारस जोयणाइं परिहीए।

सो हि य चउहिं विभत्तं इणमो दारंतरं होइ॥ १॥

अउन्नसीइं सहस्सा बावण्णा अद्धजोयणं णूणं।

दारस्स य दारस्स य अंतरमेयं विणिद्दिट्ठं॥ २॥

- प्रत्येक द्वार की शाखा रूप कुड्य (भींत) एक-एक कोस की मोटी है और प्रत्येक द्वार का विस्तार चार-चार योजन का है। इस तरह चारों द्वारों में भींत और द्वार प्रमाण १८ योजन का होता है। जंबूद्वीप की परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तावीस योजन तीन कोस एक सौ आठ धनुष और साढे तेरह अंगुल से कुछ अधिक है। इसमें से चारों द्वारों और शाखा द्वारों का १८ योजन प्रमाण घटाने पर परिधि का प्रमाण ३,१६,२०९ योजन तीन कोस एक सौ आठ धनुष और साढे तेरह अंगुल से अधिक शेष रहता है। इसके चार विभाग करने पर ७९०५२ योजन एक कोस १५३२ धनुष ३ अंगुल तीन यव आता है। इतना एक द्वार से दूसरे द्वार का अंतर होता है।

जंबुद्दीवस्स णं भंते! दीवस्स पएसा लवणं समुद्दं पुट्ठा? हंता पुट्ठा॥

ते णं भंते! किं जंबूद्दीवे २ लवणसमुद्दे? गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे णो खलु ते लवणसमुद्दे॥

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स पएसा जंबुद्दीवं दीवं पुट्ठा? हंता पुट्ठा।

ते णं भंते! किं लवणसमुद्दे जंबुद्दीवे दीवे? गोयमा! लवणे णं ते समुद्दे णो खलु ते जंबुद्दीवे दीवे॥

कठिन शब्दार्थ - पएसा - प्रदेश, **पुट्ठा** - स्पृष्ट-छुए हुए।

भावार्थ - हे भगवन्! जंबूद्वीप नामक द्वीप के प्रदेश लवण समुद्र से स्पृष्ट हैं क्या?

हाँ, गौतम! जंबूद्वीप के प्रदेश लवण समुद्र से स्पृष्ट हैं।

हे भगवन्! वे स्पृष्ट प्रदेश जंबूद्वीप रूप हैं या लवण समुद्र रूप?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे गौतम! वे स्पृष्ट प्रदेश जंबूद्वीपरूप हैं लवण समुद्र रूप नहीं हैं।

हे भगवन्! लवण समुद्र के प्रदेश जंबूद्वीप को स्पृष्ट हैं क्या?

हाँ, गौतम! लवण समुद्र के प्रदेश जंबूद्वीप को स्पृष्ट-छुए हुए हैं।

हे भगवन्! वे स्पृष्ट प्रदेश लवण समुद्र रूप हैं या जंबूद्वीप रूप?

हे गौतम! वे स्पृष्ट प्रदेश लवण समुद्र रूप हैं, जंबूद्वीप रूप नहीं है।

विवेचन - जंबूद्वीप के प्रदेश लवण समुद्र से और लवण समुद्र के प्रदेश जंबूद्वीप से स्पृष्ट-छुए हुए हैं। जंबूद्वीप के चरम स्पृष्ट प्रदेश जंबूद्वीप के ही हैं और लवण समुद्र के चरम स्पृष्ट प्रदेश लवण समुद्र के ही हैं।

जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता लवणसमुद्दे पच्चायंति?

गोयमा! अत्थेगइया पच्चायंति अत्थेगइया णो पच्चायंति॥

लवणे णं भंते! समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता जंबुद्दीवे दीवे पच्चायंति?

गोयमा! अत्थेगइया पच्चायंति अत्थेगइया णो पच्चायंति॥ १४६॥

कठिन शब्दार्थ - उद्दाइत्ता - अवद्राय-मर कर, **पच्चायंति** - पैदा होते हैं।

भावार्थ - हे भगवन्! जम्बूद्वीप में मर कर जीव क्या लवण समुद्र में पैदा होता है?

हे गौतम! कोई उत्पन्न होते हैं, कोई उत्पन्न नहीं होते हैं।

हे भगवन्! लवण समुद्र में मर कर जीव क्या जम्बूद्वीप में पैदा होते हैं?

हे गौतम! कोई पैदा होते हैं, कोई पैदा नहीं होते हैं।

विवेचन - जीव अपने किये हुए विविध कर्मों के कारण विविध गतियों में उत्पन्न होते हैं अतः जंबूद्वीप में मर कर कोई जीव लवण समुद्र में पैदा होते हैं, कोई नहीं होते। इसी प्रकार लवण समुद्र में मर कर कोई जीव जंबूद्वीप में पैदा होते हैं, कोई पैदा नहीं होते।

जम्बूद्वीप, जम्बूद्वीप क्यों कहलाता है?

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-जंबुद्दीवे दीवे?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं गंधमायणस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं उत्तरकुरा णामं कुरा पण्णत्ता, पाईणपडीणायया उदीणदाहिण-वित्थिण्णा अद्धचंदसंठाणसंठिया एक्कारस जोयणसहस्साइं अट्ठ बायाले जोयणसए दोण्णि य एगूणवीसइभागे जोयणस्स विक्खंभेणं॥ तीसे जीवा उत्तरओ पाईण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पडीणायया दुहओ वक्खारपव्वयं पुट्ठा, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठा, तेवण्णं जोयणसहस्साइं आयामेणं, तीसे धणुपट्ठं दाहिणेणं सट्ठिं जोयणसहस्साइं चत्तारि य अट्ठारसुत्तरे जोयणसए दुवालस य एगूणवीसइभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्ते॥

भावार्थ - हे भगवन्! जंबूद्वीप, जंबूद्वीप क्यों कहलाता है ?

हे गौतम! जंबूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर में, नीलवंत पर्वत के दक्षिण में, मालवंत वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में एवं गंधमादन वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में उत्तरकुरा नामक कुरा-क्षेत्र है। वह पूर्व से पश्चिम तक लम्बा और उत्तर से दक्षिण तक चौड़ा है, अर्द्धचन्द्र की तरह गोलाकार है। इसका विष्कम्भ-चौड़ाई ग्यारह हजार आठ सौ बयालीस (११८४२) योजन और एक योजन का $\frac{२}{१९}$ भाग है। इसकी जीवा (प्रत्यंचा) पूर्व-पश्चिम तक लम्बी है और दोनों वक्षस्कार पर्वतों को छूती है। पूर्व दिशा के छोर से पूर्व दिशा के वक्षस्कार पर्वत और पश्चिम दिशा के छोर से पश्चिम दिशा के वक्षस्कार पर्वत को छूती है। यह जीवा तिरपन हजार योजन लम्बी है। इस उत्तरकुरा का धनुपृष्ठ दक्षिण दिशा में साठ हजार चार सौ अठारह योजन और $\frac{१२}{१९}$ योजन है। यह धनुपृष्ठ परिधि रूप है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में उत्तरकुरु क्षेत्र का विस्तार, जीवा का प्रमाण और धनुपृष्ठ का प्रमाण बताया गया है जो इस तरह समझना चाहिये -

महाविदेह क्षेत्र में मेरु के उत्तर की ओर उत्तरकुरु और दक्षिण की ओर दक्षिणकुरु क्षेत्र है। उत्तरकुरु क्षेत्र पूर्व से पश्चिम तक लम्बा और उत्तर से दक्षिण तक फैला हुआ है। इसका संस्थान अष्टमी के चन्द्रमा जैसा अर्द्ध गोलाकार है। महाविदेह क्षेत्र का विस्तार ३३६८४ $\frac{४}{१९}$ योजन है। इसमें मेरु पर्वत का विस्तार १०,००० योजन घटाने पर २३६८४ $\frac{४}{१९}$ योजन रहते हैं। इसके दो विभाग करने पर ११८४२ $\frac{२}{१९}$ योजन होता है यही उत्तरकुरु और दक्षिणकुरु का विस्तार है। इसकी जीवा उत्तर में नील वर्षधर पर्वत के समीप तक विस्तृत और पूर्व पश्चिम तक लम्बी है। यह अपने पूर्व दिशा के छोर से माल्यवंत वक्षस्कार पर्वत को छूती है और पश्चिम दिशा के छोर से गंधमादन वक्षस्कार पर्वत को छूती है। यह जीवा ५३००० योजन लम्बी है। जो इस प्रकार समझनी चाहिये -

मेरु पर्वत की पूर्व दिशा और पश्चिम दिशा के भद्रशाल वनों की प्रत्येक की लम्बाई २२०००-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२२००० योजन है। कुल ४४००० योजन हुए। इसमें मेरु पर्वत के विष्कम्भ के १०,००० योजन मिलाने पर ५४००० योजन होते हैं। इसमें से दोनों वक्षस्कार पर्वतों के ५००-५०० योजन घटाने पर ५३,००० तिरेपन हजार आते हैं। यही जीवा का प्रमाण है।

गंधमादन और माल्यवंत पर्वत की प्रत्येक की लम्बाई ३०२०९ $\frac{६}{१९}$, ३०२०९ $\frac{६}{१९}$ योजन है। दोनों का कुल परिमाण ६०४१८ $\frac{१२}{१९}$ योजन होता है। यही प्रमाण उत्तरकुरु के धनुपृष्ट (परिधि) का है।

उत्तरकुराए णं भंते! कुराए केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णते?

गोयमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहा णामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव एवं एगूरुयदीववत्तव्वया जाव देवलोगपरिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!, णवरि इमं णाणत्तं-छधणुसहस्समूसिया दोछप्पणा पिट्ठकरंडगसया अट्ठमभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ तिण्णि पलिओवमाइं देसूणाइं पलिओवमस्सासंखिज्जइभागेण ऊणगाइं जहण्णेणं, तिण्णि पलिओवमाइं उक्कोसेणं, एगूणपण्णराइंदियाइं अणुपालणा, सेसं जहा एगूरुयाणं॥

उत्तरकुराए णं कुराए छव्विहा मणुस्सा अणुसज्जंति, तंजहा-पम्हगंधा १ मियगंधा २ अम्ममा ३ सहा ४ तेयालीसा ५ सणिच्चारी ६ ॥ १४७॥

कठिन शब्दार्थ - **आगारभावपडोयारे** - आकारभावप्रत्यवतार (स्वरूप), **दो छप्पणा पिट्ठकरंडगसया** - दो सौ छप्पन पसलियां, **अणुपालणा** - अनुपालन, **अणुसज्जंति** - उत्पन्न होते हैं, **पम्हगंधा**-पद्मगंध-पद्म जैसी गंध वाले, **मियगंधा**- मृगगंध-मृग जैसी गंध वाले, **अम्ममा** - अमम-ममत्वहीन, **सहा** - सह-सहनशील, **तेयालीसा** - तेयालीस-तेजस्वी, **सण्णिचारी** - शनैश्चारी-धीरे चलने वाले।

भावार्थ - हे भगवन्! उत्तरकुरु क्षेत्र का स्वरूप कैसा कहा गया है?

हे गौतम! उत्तरकुरु का भूमिभाग बहुत सम और रमणीय है। वह भूमिभाग आलिंगपुष्कर (मुरज-मृदंग) के मढे हुए चमड़े के समान समतल है इत्यादि सारा वर्णन एकोरुक द्वीप के अनुसार समझ लेना चाहिये यावत् हे आयुष्मन् श्रमण! वे मनुष्य मर कर देवलोक में उत्पन्न होते हैं। अंतर इतना है कि इनकी ऊंचाई छह हजार धनुष-तीन कोस की होती है। इनके २५६ पसलियां होती हैं। तीन दिन बाद इन्हें आहार की इच्छा होती है। इनकी स्थिति जघन्य पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम देशोन तीन पल्योपम की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है। ये ४९ दिन तक अपनी संतान (युगल) का पालन करते हैं। शेष वर्णन एकोरुक मनुष्य की तरह समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरकुरु क्षेत्र में छह प्रकार के मनुष्य पैदा होते हैं। वे इस प्रकार हैं - १. पद्म गंध २. मृगगंध ३. अमम ४. सह ५. तेयालीस (तेजस्वी) और ६. शनैश्चारी।

विवेचन - उत्तरकुरु क्षेत्र के स्वरूप वर्णन के लिये सूत्रकार ने एकोरुक द्वीप की भलामण दी है। अंतर इतना है कि - उत्तरकुरु के मनुष्य की ऊंचाई तीन कोस (६००० धनुष) है, उनके २५६ पसलियां होती है, उन्हें तीन दिन के अंतर से आहार की इच्छा होती है उनकी स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवां भाग कम तीन पल्योपम और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है। वे ४९ दिन तक युगल की पालना करते हैं। शेष वर्णन एकोरुक द्वीप के मनुष्य के समान है। वहां जाति भेद से पद्मगंध आदि छह प्रकार के मनुष्य रहते हैं-

१. पद्मगंध - कमल जैसी सुगन्ध।

२. मृग गंध - कस्तुरी जैसी गंध।

३. अमम - ममत्व रहित।

४. सह - सहनशील।

५. तेयालीस - तेजस्वी।

६. शनैश्चारी - मंद गति से चलने वाले।

उपर्युक्त छह प्रकारों में से प्रत्येक मनुष्य में पांच-पांच प्रकार ही पाते हैं। पहले दूसरे में से कोई एक होता है।

कहि णं भंते! उत्तर कुराए जमगा णामं दुवे पव्वया पण्णत्ता?

गोयमा! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं अट्ठचोत्तीसे जोयणसए चत्तारि य सत्तभागे जोयणस्स अबाहाए सीआए महाणईए (पुव्वपच्छिमेणं) उभओ कूले, इत्थ णं उत्तरकुराए २ जमगा णामं दुवे पव्वया पण्णत्ता, एगमेगं जोयणसहस्सं उड्ढं उच्चत्तेणं अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाणि उव्वेहेणं मूले एगमेगं जोयणसहस्सं आयामविक्खंभेणं मज्झे अद्धट्ठमाइं जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं उवरिं पंचजोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं एगं च बावट्ठिं जोयणसयं किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं मज्झे दो जोयणसहस्साइं तिण्णि य बावत्तरे जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते उवरिं पण्णरस एक्कासीए जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते, मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुया गोपुच्छसंठाणसंठिया सव्वकणगामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा पत्तेयं पत्तेयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पउमवरवेइयापरिक्खित्ता पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता, वण्णओ दोण्हवि, तेसि णं जमगपव्वयाणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते वण्णओ जाव आसयंति० ॥

भावार्थ - हे भगवन्! उत्तरकुरु नामक क्षेत्र में यमक नामक दो पर्वत कहां पर कहे गये हैं?

हे गौतम! नीलवंत वर्षधर पर्वत के दक्षिण में आठ सौ चौंतीस योजन और एक योजन के $\frac{४}{७}$ भाग आगे जाने पर शीता नामक महानदी के पूर्व पश्चिम के दोनों किनारों पर उत्तरकुरु क्षेत्र में दो यमक नामक पर्वत कहे गये हैं। ये एक एक हजार योजन ऊंचे, २५० योजन जमीन में हैं मूल में एक एक हजार योजन लम्बे-चौड़े, मध्य में साढे सात सौ योजन लम्बे-चौड़े ऊपर पांच सौ योजन आयाम विष्कम्भ (लंबाई चौड़ाई) वाले हैं। मूल में इनकी परिधि तीन हजार एक सौ बासठ योजन से कुछ अधिक है। मध्य में इनकी परिधि दो हजार तीन सौ बहत्तर योजन से कुछ अधिक और ऊपर पन्द्रह सौ इक्यासी योजन से कुछ अधिक की परिधि है। ये मूल में विस्तीर्ण (चौड़े), मध्य में संक्षिप्त और ऊपर पतले हैं। ये गोपुच्छ (गाय की पूंछ) के आकार के हैं। सर्वकनकमय, स्वच्छ, मृदु यावत् प्रतिरूप हैं। ये पर्वत पद्मवरवेदिका से घिरे हुए हैं और प्रत्येक वनखंड से युक्त हैं। दोनों का वर्णन कह देना चाहिये। उन यमक पर्वतों के ऊपर बहुसमरमणीय भूमिभाग है उसका वर्णन कहना चाहिये यावत् वहां बहुत से वाणव्यंतर देव और देवियां ठहरती हैं लेटती हैं यावत् पुण्यफल का अनुभव करती हुई विचरती हैं।

तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं पासायवडेंसगा पण्णत्ता, ते णं पासायवडेंसगा बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं एकत्तीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसिया वण्णओ भूमिभागा उल्लोया दो जोयणाइं मणिपेढियाओ वरसीहासणा सपरिवारा जाव जमगा चिट्ठंति॥

भावार्थ - उन दोनों बहुसमरमणीय भूमिभागों के मध्यभाग में अलग-अलग प्रासादावतंसक कहे गये हैं। वे प्रासादावतंसक साढे बासठ योजन ऊंचे और इकतीस योजन एक कोस के चौड़े हैं ये गगनचुम्बी और ऊंचे हैं आदि वर्णन कह देना चाहिये। इनके भूमिभागों, ऊपरी भीतरी छतों आदि का वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये। वहां दो योजन की मणिपीठिका है। उस पर श्रेष्ठ सिंहासन है। ये सिंहासन सपरिवार हैं अर्थात् सामानिक आदि देवों के भद्रासनों से युक्त है यावत् उन पर यमक देव बैठते हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-जमगा पव्वया जमगा पव्वया?

गोयमा! जमगेसु णं पव्वएसु तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहुईओ खुड्डाखुड्डियाओ बावीओ जाव बिलपंतियाओ, तासु णं खुड्डाखुड्डियासु जाव बिलपंतियासु बहूइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उप्पलाइं २ जाव सयसहस्सपत्ताइं जमगप्पभाइं जमगवण्णाइं, जमगा य एत्थ दो देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, ते णं तत्थ पत्तेयं पत्तेयं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव जमगाणं पव्वयाणं जमगाण य रायहाणीणं अण्णेसिं च बहूणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं जाव पालेमाणा विहरंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवंवुच्चइ जमगपव्वया जमगपव्वया, अदुत्तरं च णं गोयमा! जाव णिच्चा॥

कहि णं भंते! जमगाणं देवाणं जमगाओ णाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ? गोयमा! जमगाणं पव्वयाणं उत्तरेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीइवइत्ता अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं जमगाणं देवाणं जमगाओ णाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ बारसजोयणसहस्स जहा विजयस्स जाव महिड्डिया० जमगा देवा जमगा देवा॥ १४८॥

भावार्थ - हे भगवन्! ये यमक पर्वत, यमक पर्वत क्यों कहलाते हैं ?

हे गौतम! उन यमक पर्वतों पर स्थान स्थान पर यहां-वहां बहुत-सी छोटी-छोटी बावड़ियां हैं यावत् बिलपंक्तियां हैं उनमें बहुत से उत्पल कमल यावत् शतपत्र सहस्रपत्र हैं जो यमक (पक्षी विशेष) के आकार के हैं, यमक के समान वर्ण वाले हैं और यावत् पल्योपम की स्थिति वाले दो महान् ऋद्धि वाले देव रहते हैं। वे देव वहां अपने चार हजार सामानिक देवों का यावत् यमक पर्वतों का, यमक राजधानियों का और बहुत से अन्य वाणव्यंतर देवों और देवियों का आधिपत्य करते हुए यावत् उनका पालन करते हुए विचरते हैं। इसलिये हे गौतम! वे यमक पर्वत, यमक पर्वत कहलाते हैं। दूसरी बात हे गौतम! यमक पर्वत शाश्वत है यावत् नित्य हैं।

हे भगवन्! इन यमक देवों की यमका राजधानियां कहां कही गई है ?

हे गौतम! यमक पर्वतों के उत्तर में तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों को पार करने पर प्रसिद्ध जंबूद्वीप से भिन्न अन्य जंबूद्वीप में बारह हजार योजन आगे जाने पर यमक देवों की यमका नामक राजधानियां हैं जो बारह हजार योजन प्रमाण वाली आदि सारा वर्णन विजया राजधानी के समान कह देना चाहिये यावत् यमक नाम के दो महर्द्धिक देव उनके अधिपति हैं इसलिये ये यमक देव, यमक देव कहलाते हैं।

कहि णं भंते! उत्तरकुराए २ णीलवंतद्दहे णामं दहे पण्णत्ते?

गोयमा! जमगपव्वयाणं दाहिणेणं अट्ठचोत्तीसे जोयणसए चत्तारि सत्तभागा जोयणस्स अबाहाए सीयाए महाणईए बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं उत्तरकुराए २

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णीलवंतद्दहे णामं दहे पण्णत्ते, उत्तरदक्खिणायए पाईणपडीणविच्छिण्णे एगं जोयणसहस्सं आयामेणं पंच जोयणसयाइं विक्खंभेणं दस जोयणाइं उव्वेहेणं अच्छे सण्हे रययाम कूले चउक्कोणे समतीरे जाव पडिरूवे उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं वणसंडेहि य सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते दोण्हवि वण्णओ॥

भावार्थ - हे भगवन्! उत्तरकुरु नामक क्षेत्र में नीलवंत द्रह नाम का द्रह कहां कहा गया है?

हे गौतम! यमक पर्वतों के दक्षिण में आठ सौ चौतीस योजन और $\frac{४}{७}$ योजन आगे जाने पर सीता महानदी के ठीक मध्य में उत्तरकुरु क्षेत्र का नीलवंत द्रह नाम का द्रह कहा गया है। यह उत्तर से दक्षिण तक लम्बा और पूर्व-पश्चिम में चौड़ा है। एक हजार योजन इसकी लम्बाई है और पांच सौ योजन इसकी चौड़ाई है। यह दस योजन गहरा है, स्वच्छ है, मृदु है, इसके किनारे रजतमय है, यह चतुष्कोण और समतीर है यावत् प्रतिरूप है। यह दोनों ओर से पद्मवरवेदिकाओं और वनखंडों से चारों ओर से घिरा हुआ है। दोनों का वर्णन यहां कह देना चाहिये।

णीलवंतदहस्स णं दहस्स तत्थ २ जाव बहवे तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णओ भाणियव्वो जाव तोरणत्ति॥ तस्स णं णीलवंतद्दहस्स णं दहस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं पउमे पण्णत्ते, जोयणं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं दस जोयणाइं उव्वेहेणं दो कोसे ऊसिए जलंताओ साइरेगाइं दसद्धजोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते॥ तस्स णं पउमस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा - वइरामया मूला रिट्ठामए कंदे वेरुलियामए णाले वेरुलियामया बाहिरपत्ता जंबूणयमया अब्भिंतरपत्ता तवणिज्जमया केसरा कणगामई कण्णिया णाणामणिमया पुक्खरत्थिभुगा॥

कठिन शब्दार्थ - पउमे - पद्म (कमल), **पुक्खरत्थिभुगा** - पुष्कर स्तिबुका।

भावार्थ - नीलवंत द्रह नामक द्रह में यहां वहां बहुत से त्रिसोपानप्रतिरूपक कहे गये हैं। उनका वर्णन तोरण पर्यन्त कह देना चाहिये। उस नीलवंतद्रह नामक द्रह के मध्यभाग में एक बड़ा कमल कहा गया है। वह कमल एक योजन का लम्बा और एक योजन का चौड़ा है। उसकी परिधि इससे तीन गुनी से कुछ अधिक है। इसकी मोटाई आधा योजन है। यह दस योजन जल के अंदर और दो कोस (आधा योजन) जल से ऊपर है दोनों मिलाकर साढे दस योजन की इसकी ऊंचाई है।

उस कमल का वर्णन इस प्रकार कहा गया है - उसका मूल वज्रमय है, कंद रिष्ट रत्नों का है, नाल वैडूर्य रत्नों की है, बाहर के पत्ते वैडूर्यमय है, आभ्यंतर पत्ते जंबूनद स्वर्ण के हैं उसके केसर तपनीय स्वर्ण के हैं, स्वर्ण की कर्णिका है और नाना मणियों की पुष्कर-स्तिबुका है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सा णं कण्णिया अद्धजोयणं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं कोसं बाहल्लेणं सव्वप्पणा कणगामई अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा॥ तीसे णं कण्णियाए उवरिं बहुसमरमणिज्जे देसभाए पण्णत्ते जाव मणीहिं०॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं भवणे पण्णत्ते, कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं देसूणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखंभ-सयसंणिविट्ठं जाव वण्णओ, तस्स णं भवणस्स तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता पुरत्थिमेणं दाहिणेणं उत्तरेणं, ते णं दारा पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं सेया वरकणगथूभियागा जाव वणमालाउत्ति॥

भावार्थ - वह कर्णिका आधा योजन की लम्बी-चौड़ी है, इससे तिगुनी से कुछ अधिक इसकी परिधि है। एक कोस की मोटाई है, यह पूर्ण रूप से कनकमयी है, स्वच्छ है, मृदु है यावत् प्रतिरूप है।

उस कर्णिका के ऊपर एक बहुसमरमणीय भूमिभाग है इसका वर्णन मणियों की स्पर्श वक्तव्यता तक कह देना चाहिये। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्य में एक विशाल भवन कहा गया है जो एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा और एक कोस से कुछ कम ऊंचा है। वह अनेक सैकड़ों स्तंभों पर आधारित है आदि वर्णन कह देना चाहिये।

उस भवन की तीन दिशाओं में तीन द्वार कहे गये हैं - पूर्व में, दक्षिण में और उत्तर में। वे द्वार पांच सौ धनुष ऊंचे हैं, ढाई सौ धनुष चौड़े हैं और इतना ही इनका प्रवेश है। ये श्वेत हैं, श्रेष्ठ स्वर्ण की स्तूपिका से युक्त हैं यावत् उन पर वनमालाएं लटक रही हैं।

तस्स णं भवणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहा णामए-आलिंगपुक्खरेइ वा जाव मणीणं वण्णओ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं मणिपेढिया पण्णत्ता, पंचधणुसयाइं आयामविक्खंभेणं अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमई०॥ तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते, देवसयणिज्जस्स वण्णओ॥

से णं पउमे अण्णेणं अट्ठसएणं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्ताणं पउमाणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते॥ ते णं पउमा अद्धजोयणं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं कोसं बाहल्लेणं दस जोयणाइं उव्वेहेणं कोसं ऊसिया जलंताओ साइरेगाइं ते दस जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ताइं॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उस भवन में बहुसमरमणीय भूमिभाग कहा गया है। वह आलिंगपुष्कर (मुरज-मृदंग) पर चढ़े हुए चमड़े के समान समतल है आदि वर्णन कहना चाहिये। यह वर्णन मणियों के स्पर्श तक कह देना चाहिये। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्य में एक मणिपीठिका है जो पांच सौ धनुष की लम्बी चौड़ी है और ढाई सौ योजन मोटी है सर्व मणिमय है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल देवशयनीय है उसका वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये।

वह कमल दूसरे एक सौ आठ कमलों से सब ओर से घिरा हुआ है। वे कमल उस कमल से आधे ऊंचे प्रमाण वाले हैं। वे कमल आधा योजन के लम्बे चौड़े और इससे तिगुने से कुछ अधिक परिधि वाले हैं। उनकी मोटाई एक कोस की है। वे दस योजन पानी में गहरे हैं और जल तल से एक कोस ऊंचे हैं। जलांत से लेकर ऊपर तक समग्र रूप में वे कुछ अधिक (एक कोस अधिक) दस योजन के हैं।

तेसि ण पउमाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा - वइरामया मूला जाव णाणामणिमया पुक्खरत्थिभुगा॥ ताओ णं कण्णियाओ कोसं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं अद्धकोसं बाहल्लेणं सव्वकणगामईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ॥ तासि णं कण्णियाणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा जाव मणीणं वण्णो गंधो फासो॥ तस्स णं पउमस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरच्छिमेणं णीलवंतद्दहकुमारस्स देवस्स चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चत्तारि पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, एवं सव्वो परिवारो णवरि पउमाणं भाणियव्वो॥ से णं पउमे अण्णेहिं तिहिं पउमवरपरिक्खेवेहिं सव्वओ समता संपरिक्खित्ते, तंजहा - अब्भिंतरेणं मज्झिमेणं बाहिरएणं, अब्भिंतरए णं पउमपरिक्खेवे बत्तीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमए णं पउमपरिक्खेवे चत्तालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरए णं पउमपरिक्खेवे अडयालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, एवामेव सपुव्वावरेणं एगा पउमकोडी वीसं च पउमसयसहस्सा भवंतीति मक्खाया॥

भावार्थ - उन कमलों का वर्णन इस प्रकार है - वज्ररत्नों के उनके मूल हैं यावत् नानामणियों की पुष्करस्तिबुका है। कमल की कर्णिकाएं एक कोस लम्बी चौड़ी है और उससे तिगुने से अधिक उनकी परिधि है आधा कोस की मोटाई है, सर्व कनकमयी है, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप है। उन कर्णिकाओं के ऊपर बहुसमरमणीय भूमिभाग है यावत् मणियों के वर्ण, गंध, स्पर्श तक का वर्णन कह देना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उस कमल के पश्चिमोत्तर में, उत्तर में और उत्तरपूर्व में नीलवंतद्रह के नागकुमारेन्द्र नागकुमार राज के चार हजार सामानिक देवों के चार हजार पद्मरूप आसन कहे गये हैं। इसी तरह सब परिवार के योग्य पद्मरूप आसनों का कथन कर देना चाहिये।

वह कमल अन्य तीन पद्मवर परिक्षेप से सब ओर से घिरा हुआ है वे इस प्रकार हैं - आभ्यंतर, मध्यम और बाह्य। आभ्यंतर पद्मपरिक्षेप में बत्तीस लाख पद्म हैं, मध्यम पद्मपरिक्षेप में चालीस लाख पद्म हैं और बाह्य पद्मपरिक्षेप में अड़तालीस लाख पद्म हैं। इस प्रकार सब पद्मों की संख्या एक करोड़ बीस लाख कही गई है।

विवेचन - उपर्युक्त वर्णन में तीन पद्मवर परिक्षेपों को बताया गया है। परन्तु उन पद्मों (कमलों) के तीन परिक्षेपों में सभी कमल समाविष्ट नहीं होते हैं। अतः प्रत्येक परिक्षेप के एक या डेढ़ गोला लेने चाहिये। सूत्र में तो सरीखे आकार वाले होने से तीन परिक्षेप कह दिये गये हैं। उनका आशय उपर्युक्त रूप से समझना चाहिये।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-णीलवंतद्दहे दहे?

गोयमा! णीलवंतद्दहे णं दहे तत्थ तत्थ० जाइं उप्पलाइं जाव सयसहस्सपत्ताइं णीलवंतप्पभाइं णीलवंतवण्णाभाइं णीलवंतद्दहकुमारे य एत्थ देवे जमगदेवगमो से तेणट्ठेणं गोयमा! जाव णीलवंतदहे २, णीलवंतस्स णं रायहाणी पुव्वाभिलावेणं एत्थ सो चेव गमो जाव णीलवंते देवे २ ॥ १४९ ॥

भावार्थ - हे भगवन्! नीलवंत द्रह, नीलवंतद्रह क्यों कहलाता है?

हे गौतम! नीलवंतद्रह में यहां वहां स्थान स्थान पर नीलवर्ण के उत्पल कमल यावत् शतपत्र सहस्रपत्र कमल खिले हुए हैं तथा वहां नीलवंत नामक नागकुमारेन्द्र नागकुमार राज महर्द्धिक देव रहता है इस कारण नीलवंतद्रह नीलवंतद्रह कहा जाता है। नीलवंत देव की नीलवंता राजधानी का वर्णन विजया राजधानी के समान कह देना चाहिये यावत् नीलवंत देव उनके अधिपति हैं। इस कारण नीलवंतदेव नीलवंत देव कहलाते हैं।

कंचन पर्वत का वर्णन

णीलवंतद्दहस्स णं० पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं दस जोयणाइं अबाहाए एत्थ णं दस दस कंचणगपव्वया पण्णत्ता, ते णं कंचणगपव्वया एगमेगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं पणवीसं पणवीसं जोयणाइं उव्वेहेणं मूले एगमेगं जोयणसयं विक्खंभेणं मज्झे पण्णत्तरिं जोयणाइं (आयाम) विक्खंभेणं उवरिं पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं मूले तिण्णि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोलसे जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं मज्झे दोण्णि सत्ततीसे जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं उवरिं एगं अट्ठावण्णं जोयणसयं किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुया गोपुच्छसंठाणसंठिया सव्वकंचणमया अच्छा जाव पडिरूवा पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइया० पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता॥

भावार्थ - नीलवंतद्रह के पूर्व पश्चिम में दस योजन आगे जाने पर दस दस कंचन पर्वत कहे गये हैं। ये कंचन पर्वत एक सौ-एक सौ योजन ऊंचे, पच्चीस-पच्चीस योजन भूमि में, मूल में एक सौ-एक सौ योजन चौड़े मध्य में पचत्तर योजन चौड़े और ऊपर पचास पचास योजन चौड़े हैं। इनकी परिधि मूल में तीन सौ सोलह योजन कुछ अधिक, मध्य में दो सौ सैंतीस योजन से कुछ अधिक और ऊपर एक सौ अट्ठावन योजन से कुछ अधिक है। ये मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर पतले हैं गोपुच्छ के आकार में संस्थित हैं ये सर्वकंचनमयी, स्वच्छ हैं। इनके प्रत्येक के चारों और पद्मवरवेदिकाएं और वनखंड हैं।

तेसि णं कंचणगपव्वयाणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे जाव आसयंति०, तेसि णं० पत्तेयं पत्तेयं पासायवडेंसगा सड्ढ बावट्ठिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं मणिपेढिया दो जोयणिया सीहासणं सपरिवारं॥

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-कंचणगपव्वया कंचणगपव्वया? गोयमा! कंचणगेसु णं पव्वएसु तत्थ तत्थ० वावीसु० उप्पलाइं जाव कंचणगवण्णाभाइं कंचणगा देवा महिड्ढिया जाव विहरंति, उत्तरेणं कंचणगाणं कंचणियाओ रायहाणीओ अण्णंमि जंबू० तहेव सव्वं भाणियव्वं॥

भावार्थ - उन कंचन पर्वतों के ऊपर बहुसमरमणीय भूमिभाग है यावत् वहां बहुत से वाणव्यंतर देव देवियां बैठती हैं आदि। उन प्रत्येक भूमिभागों में प्रासादावतंसक कहे गये हैं। ये प्रासादावतंसक साढे बासठ योजन ऊंचे और इकतीस योजन एक कोस चौड़े हैं। इनमें दो योजन की मणिपीठिकाएं हैं और सिंहासन हैं। ये सिंहासन सपरिवार हैं अर्थात् सामानिक देव, अग्रमहिषियां आदि परिवार के भद्रासनों से युक्त हैं।

हे भगवन्! ये कंचन पर्वत, कंचन पर्वत क्यों कहे जाते हैं?

हे गौतम! इन कंचन पर्वत की बावड़ियों में बहुत से उत्पल कमल यावत् शतपत्र सहस्रपत्र कमल हैं जो स्वर्ण की कांति वाले और स्वर्ण वर्ण वाले हैं यावत् वहां कंचनक नामक महर्द्धिक देव रहते हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यावत् विचरते हैं इसलिए ये कंचन पर्वत कहे जाते हैं। इन कंचनदेवों की कंचनिका नामक राजधानियां इन कंचन पर्वतों के उत्तर में असंख्यात द्वीप समुद्रों को पार करने पर दूसरे जंबूद्वीप में कही गई है आदि वर्णन विजया राजधानी की तरह कह देना चाहिये।

कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे उत्तरकुराए कुराए उत्तरकुरुद्दहे णामं दहे पण्णत्ते? गोयमा! णीलवंतद्दहस्स दाहिणेणं अट्ठचोत्तीसे जोयणसए, एवं सो चेव गमो णेयव्वो जो णीलवंतद्दहस्स सव्वेसिंसरिसगो दहसरिसणामा य देवा, सव्वेसिं पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं कंचणगपव्वया दस दस एगप्पमाणा उत्तरेणं रायहाणीओ अण्णंमि जंबुद्दीवे २। चंदद्दहे एरावणद्दहे मालवंतद्दहे एवं एक्केक्को णेयव्वो॥ १५०॥

भावार्थ - हे भगवन्! जंबूद्वीप के उत्तरकुरुक्षेत्र का उत्तरकुरु द्रह कहां कहा गया है?

हे गौतम! नीलवंतद्रह के दक्षिण में आठ सौ चौतीस योजन और $\frac{४}{७}$ योजन दूर उत्तरकुरुद्रह है आदि सब वर्णन नीलवंतद्रह की तरह समझना चाहिये। सब द्रहों में उसी-उसी नाम के देव हैं। सब द्रहों के पूर्व में, पश्चिम में दस-दस कंचनक पर्वत हैं जिनका प्रमाण समान है। इनकी राजधानियां उत्तर की ओर असंख्य द्वीप समुद्र को पार करने पर दूसरे जंबूद्वीप में हैं। उनका सारा वर्णन विजया राजधानी की तरह कह देना चाहिये। इसी प्रकार चन्द्रद्रह ऐरावतद्रह और मालवंतद्रह के विषय में भी सारा वर्णन कह देना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कंचन पर्वतों का वर्णन किया गया है

जंबू वृक्ष का वर्णन

कहि णं भंते! उत्तरकुराए २ जंबूसुदंसणाए जंबुपेढे णामं पेढे पण्णत्ते?

गोयमा! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं गंधमायणस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महाणईए पुरत्थिमिल्ले कूले एत्थ णं उत्तरकुराए कुराए जंबूपेढे णामं पेढे पण्णत्ते पंचजोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं पण्णरस एक्कासीए जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं बहुमज्झदेसभाए बारस जोयणाइं बाहल्लेणं तयाणंतरं च णं मायाए मायाए पएसे परिहाणीए सव्वेसु चरमंतेसु दो कोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते सव्वजंबूणयामए अच्छे जाव पडिरूवे॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते वण्णओ दोण्हवि।

तस्स णं जंबुपेढस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता तं चेव जाव तोरणा जाव छत्ता॥

भावार्थ - हे भगवन्! उत्तरकुरु क्षेत्र में जंबू-सुदर्शना का जंबूपीठ नाम का पीठ कहां कहा गया है?

हे गौतम! जंबूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर दिशा में नीलवंत वर्षधर पर्वत के दक्षिण में मालवंत वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में, गंधमादन वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में सीता महानदी के पूर्व किनारे पर उत्तरकुरु क्षेत्र का जंबूपीठ नामक पीठ है जो पांच सौ योजन का लंबा चौड़ा है पन्द्रह सौ इक्यासी योजन से कुछ अधिक उसकी परिधि है। वह मध्यभाग में बारह योज़न की मोटाई वाला है उसके बाद क्रमशः प्रदेश हानि होने से थोड़ा कम होता होता सब चरमांतों में दो कोस का मोटा रह जाता है। वह सर्व जंबूनद स्वर्णमय है स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है।

वह जंबूपीठ एक पद्मवरवेदिका और एक वनखंड द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है। दोनों का वर्णन कह देना चाहिये। उस जंबूपीठ की चारों दिशाओं में चार त्रिसोपानप्रतिरूपक कहे गये हैं आदि सारा वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये। तोरणों का यावत् छत्रातिछत्र तक कथन कर देना चाहिये।

तस्स णं जंबूपेढस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव मणि०॥

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा॥

तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थ णं महं जंबूसुदंसणा पण्णत्ता अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धजोयणं उव्वेहेणं दो जोयणाइं खंधे अद्ध जोयणाइं विक्खंभेणं छ जोयणाइं विडिमा बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं साइरेगाइं अट्ठ जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता, वइरामयमूला रययसुपइट्ठियविडिमा एवं चेइयरुक्खवण्णओ जाव सव्वो रिट्ठामयविउलकंदा वेरुलियरुइरक्खंधा सुजायवरजायरूवपढमगविसालसाला णाणामणिरयणविविहसाहप्पसाहवेरुलियपत्ततवणिज्जपत्तविंटा जंबूणयरत्तमउय-सुकुमालपवालपल्लवंकुरधरा विचित्तमणिरयणसुरहिकुसुमा फलभारणमियसाला

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया अहियं मणोणिव्वुइकरा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा॥ १५१॥

भावार्थ - उस जंबूपीठ के ऊपर बहुसमरमणीय भूमिभाग है जो आलिंगपुष्कर (मुरज-मृदंग) के मढे हुए चमड़े के समान समतल है आदि वर्णन मणियों के स्पर्श पर्यंत तक कह देना चाहिये। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्यभाग में एक विशाल मणिपीठिका कही गई है जो आठ योजन की लम्बी चौड़ी और चार योजन की मोटी है, मणिमय है, स्वच्छ है, मृदु है यावत् प्रतिरूप है। उस मणिपीठिका के ऊपर विशाल जंबू सुदर्शना (जंबू वृक्ष) है। वह जंबूवृक्ष आठ योजन ऊंचा है, आधा योजन जमीन में हैं, दो योजन का उसका स्कंध है आधा योजन उसकी चौड़ाई है, छह योजन तक उसकी शाखाएं फैली हुई है, मध्यभाग में आठ योजन चौड़ा है, उद्वेध और बाहर की ऊंचाई मिलाकर आठ योजन से अधिक (साढे आठ योजन) ऊंचा है। इसके मूल वज्ररत्न के हैं, इसकी शाखाएं चांदी की है और ऊंची निकली हुई हैं, इस प्रकार चैत्यवृक्ष का वर्णन कहना चाहिये यावत् उसके कंद विपुल और रिष्ठ रत्नों के हैं उसके स्कंध सुंदर और वैडूर्य रत्न के हैं, इसकी मूलभूत शाखाएं सुंदर श्रेष्ठ चांदी की हैं, अनेक प्रकार के रत्नों और मणियों से इसकी शाखा-प्रशाखाएं बनी हुई हैं, वैडूर्य रत्नों के पत्ते हैं और तपनीय स्वर्ण के इसके पत्रवृन्त (वींट) हैं इसके प्रवाल और पल्लवांकुर जाम्बूनद नामक स्वर्ण के हैं, लाल हैं, सुकोमल हैं और मृदुस्पर्श वाले हैं। नानाप्रकार के मणियों के फूल हैं। वे फूल सुगंधित हैं। उसकी शाखाएं फल के भार से नमी हुई है। वह जंबूवृक्ष सुंदर छाया वाला, सुंदर कांतिवाला, शोभा वाला, उद्योत वाला और मन को अत्यंत तृप्ति देने वाला है। वह प्रसन्नता पैदा करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है।

जंबूए णं सुदंसणाए चउद्दिसिं चत्तारि साला पण्णत्ता, तंजहा-पुरत्थिमेणं दक्खिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं, तत्थ णं जे से पुरत्थिमिल्ले साले एत्थ णं एगे महं भवणे पण्णत्ते एगं कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं देसूणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखंभ० वण्णओ जाव भवणस्स दारं तं चेव पमाणं पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं विक्खंभेणं जाव वणमालाओ भूमिभागा उल्लोया मणिपेढिया पंचधणुसइया देवसयणिज्जं भाणियव्वं॥

भावार्थ - सुदर्शना (जंबू) की चारों दिशाओं में चार चार शाखाएं कही गई हैं वे इस प्रकार हैं - पूर्व में, दक्षिण में, पश्चिम में और उत्तर में। उनमें से पूर्व की शाखा पर एक विशाल भवन है जो एक कोस का लम्बा, आधा कोस चौड़ा, देशोन एक कोस ऊंचा है, अनेक सैकड़ों खंभों पर प्रतिष्ठित है आदि वर्णन भवन के द्वार तक कह देना चाहिये। वे द्वार पांच सौ धनुष के ऊंचे, ढाई सौ धनुष के चौड़े,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यावत् वनमालाओं, भूमिभागों, ऊपरी छतों, पांच सौ धनुष की मणिपीठिका और देवशयनीय का वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये।

तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले साले एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए पण्णत्ते, कोसं च उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धकोसं आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसिय० अंतो बहुसम० उल्लोया। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं। तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले साले एत्थ णं पासायवडेंसए पण्णत्ते तं चेव पमाणं सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं, तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले साले एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए पण्णत्ते तं चेव पमाणं सीहासणं सपरिवारं तत्थ णं जे से उवरिमविडिमे एत्थ णं एगे महं सिद्धायतणे कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं देसूणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे वण्णओ तिदिसिं तओ दारा पंचधणुसया अड्ढाइज्जधणुसयविक्खंभा मणिपेढिया पंचधणुसइया देवच्छंदओ पंचधणुसयविक्खंभो साइरेगपंचधणुसयउच्चत्ते।

तत्थ णं देवच्छंदए अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहप्पमाणाणं, एवं सव्वा सिद्धायतण वत्तव्वया भाणियव्वा जाव धूवकडुच्छुया उत्तिमागारा सोलसविहेहिं रयणेहिं उवेए चेव। जंबू णं सुदंसणा मूले बारसहिं पउमवरवेइयाहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, ताओ णं पउमवरवेइयाओ अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं वण्णओ॥

भावार्थ - उस जंबू वृक्ष की दक्षिणी शाखा पर एक विशाल प्रासादावतंसक है जो एक कोस ऊंचा, आधा कोस लम्बा-चौड़ा है, आकाश को छुता हुआ और उन्नत है। उसमें बहुसमरमणीय भूमिभाग है, भीतरी छतें चित्रित है आदि वर्णन कहना चाहिये। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के मध्य में सिंहासन है, वह सिंहासन सपरिवार है अर्थात् उसके आसपास अन्य सामानिक देवों आदि के भद्रासन हैं। यह सारा वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये।

उस जंबू वृक्ष की पश्चिमी शाखा पर एक विशाल प्रासादावतंसक है। उसका वही प्रमाण है और सारा वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये यावत् वहां सपरिवार सिंहासन कहा गया है।

उस जंबू वृक्ष की उत्तरी शाखा पर भी एक विशाल प्रासादावतंसक है आदि सारा वर्णन, प्रमाण सपरिवार सिंहासन आदि का वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उस जंबू वृक्ष की ऊपरी शाखा पर एक विशाल सिद्धायतन है जो एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा और देशोन एक कोस ऊंचा है तथा अनेक सौ खंभों पर प्रतिष्ठित है आदि वर्णन कह देना चाहिये। उसकी तीनों दिशाओं में तीन द्वार कहे गये हैं जो पांच सौ धनुष, ऊंचे, ढाई सौ धनुष चौड़े हैं। पांच सौ धनुष की मणिपीठिका है। उस पर पांच सौ धनुष चौड़ा और कुछ अधिक पांच सौ धनुष ऊंचा देवच्छंदक है। उस देवच्छंदक में जिनोत्सेध प्रमाण एक सौ आठ जिनप्रतिमाएं हैं, इस प्रकार पूरा सिद्धायतन का वर्णन कह देना चाहिये यावत् वहां धूपकडुच्छक है। वह उत्तम आकार का है और सोलह रत्नों से युक्त है। यह सुदर्शना (जंबू) मूल में बारह पद्मवरवेदिकाओं से चारों ओर घिरी हुई है। वे पद्मवरवेदिकाएं आधा योजन ऊंची पांच सौ धनुष चौड़ी है। यहां पद्मवरवेदिका का वर्णनक कह देना चाहिये।

जंबू णं सुदंसणा अण्णेणं अट्ठसएणं जंबूणं तयद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। ताओ णं जंबूओ चत्तारि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं कोसं चोव्वेहेणं जोयणं खंधो कोसं विक्खंभेणं तिण्णि जोयणाइं विडिमा बहुमज्झदेसभाए चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं साइरेगाइं चत्तारि जोयणाइं सव्वग्गेणं वइरामयमूला सो चेव चेइयरुक्खवण्णओ॥ जंबूए णं सुदंसणाए अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं अणाढियस्स देवस्स चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चत्तारि जंबूसाहस्सीओ, पण्णत्ताओ जंबूए णं सुदंसणाए पुरत्थिमेणं एत्थ णं अणाढियस्स देवस्स चउण्हं अग्गमहिसीणं चत्तारि जंबूओ पण्णत्ताओ, एवं परिवारो सव्वो णायव्वो जंबूए जाव आयरक्खाणं॥

भावार्थ - यह जंबू सुदर्शना एक सौ आठ अन्य उससे आधी ऊंचाई वाली जंबुओं से चारों ओर घिरी हुई है। वे जंबू चार योजन ऊंची, एक कोस जमीन में गहरी है, एक योजन का उनका स्कंध, एक योजन का विष्कंभ और तीन योजन तक फैली शाखाएं हैं। उनका मध्यभाग में चार योजन का विष्कम्भ है और चार योजन से अधिक उनकी समग्र ऊंचाई है। उनके वज्रमय मूल हैं आदि चैत्यवृक्ष का वर्णन यहां कह देना चाहिये।

जंबू सुदर्शना के पश्चिमोत्तर में, उत्तर में और उत्तर पूर्व में अनादृत देव के चार हजार सामानिक देवों के चार हजार जंबू हैं। जंबू सुदर्शना के पूर्व में अनादृत देव की चार अग्रमहिषियों के चार जंबू हैं इस प्रकार समस्त परिवार यावत् आत्मरक्षकों के जंबूओं का कथन करना चाहिये।

जंबू णं सुदंसणा तिहिं जोयणसएहिं वणसंडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, तंजहा-पढमेणं दोच्चेणं तच्चेणं। जंबूए णं सुदंसणाए पुरत्थिमेणं पढमं वणसंडं पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं एगे महं भवणे पण्णत्ते, पुरत्थिमिल्ले भवणसरिसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाणियव्वे जाव सयणिज्जं, एवं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं ॥ जंबूए णं सुदंसणाए उत्तरपुरत्थिमेणं पढमं वणसंडं पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-पउमा पउमप्पभा चेव कुमुया कुमुयप्पभा। ताओ णं णंदाओ पुक्खरिणीओ कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं पंचधणुसयाइं उव्वेहेणं अच्छाओ सण्हाओ लण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ णिप्पंकाओ णीरयाओ जाव पडिरूवाओ वण्णओ भाणियव्वो जाव तोरणत्ति छत्ताइछत्ता ॥

भावार्थ - जंबू-सुदर्शना सौ सौ योजन के तीन वनखंडों से चारों ओर से घिरी हुई है। वे इस प्रकार हैं - पहला वनखंड, दूसरा वनखंड और तीसरा वनखंड। जंबू सुदर्शना के पूर्व के प्रथम वनखंड में पचास योजन आगे जाने पर एक विशाल भवन है। पूर्व के भवन के समान ही शयनीय तक सारा वर्णन समझ लेना चाहिये। इसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में भी भवन समझने चाहिये।

जंबू सुदर्शना के उत्तर पूर्व के प्रथम वनखंड में पचास योजन आगे जाने पर चार नंदा पुष्करिणियां कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - पद्मा, पद्मप्रभा, कुमुदा और कुमुदप्रभा। वे नंदा पुष्करिणियां एक कोस लंबी, आधा कोस चौड़ी, पांच सौ धनुष गहरी हैं। वे स्वच्छ, मृदु, घिसी हुई, मजी हुई, निष्पंक, नीरज यावत् प्रतिरूप हैं इत्यादि सारा वर्णन तोरण, छत्रातिछत्र तक कह देना चाहिये।

तासि णं णंदापुक्खरिणीणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं पासायवडेंसए पण्णत्ते कोसप्पमाणे अद्धकोसं विक्खंभो सो चेव वण्णओ जाव सीहासणं सपरिवारं। एवं दक्खिणपुरत्थिमेणवि पण्णासं जोयणा० चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ उप्पलगुम्मा णलिणा उप्पला उप्पलुज्जला तं चेव पमाणं तहेव पासायवडेंसगो तप्पमाणो। एवं दक्खिणपच्चत्थिमेणवि पण्णासं जोयणाणं णवरं-भिंगा भिंगणिभा चेव अंजणा कज्जलप्पभा, सेसं तं चेव। जंबूए णं सुदंसणाए उत्तरपुरत्थिमेणं पढमं वणसंडं पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ तंजहा-सिरिकंता सिरिमहिया सिरिचंदा चेव तह य सिरिणिलया। तं चेव पणाणं तहेव पासायवडिंसओ ॥

भावार्थ - उन नंदा पुष्करिणियों के बहुमध्य देशभाग में प्रासादावतंसक कहा गया है जो एक कोस ऊंचा, आधा कोस चौड़ा है इत्यादि सारा वर्णन सपरिवार सिंहासन तक कह देना चाहिये। इसी प्रकार दक्षिण पूर्व में भी पचास योजन जाने पर चार नंदापुष्करिणियां हैं वे इस प्रकार हैं - उत्पल गुल्मा, नलिना, उत्पला, उत्पलोज्ज्वला। उनका परिमाण, प्रासादावतंसक और उसका प्रमाण पूर्वानुसार है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार दक्षिण पश्चिम में भी पचास योजन आगे जाने पर चार पुष्करिणियां हैं वे इस प्रकार हैं - भृंगा, भृंगिनियां, अंजना एवं कज्जल प्रभा। शेष वर्णन पूर्वानुसार है।

जंबू-सुदर्शना के उत्तर पूर्व में प्रथम वनखंड में पचास योजन आगे जाने पर चार नंदापुष्करिणियां हैं। वे इस प्रकार हैं - श्रीकांता, श्रीमहिता, श्रीचन्द्रा और श्रीनिलया। उनका परिमाण वही है। प्रासादावतंसक तथा उसका प्रमाण भी वही है।

जंबूए णं सुदंसणाए पुरत्थिमिल्लस्स भवणस्स उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं पासायवडेंसगस्स दाहिणेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं मूले बारस जोयणाइं विक्खंभेणं मज्झे अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं उवरिं चत्तारि जोयणाइं आयामविक्खंभेणं मूले साइरेगाइं सत्ततीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं मज्झे साइरेगाइं पणुवीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं उवरिं साइरेगाइं बारस जोयणाइं परिक्खेवेणं मूले विच्छिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वजंबूणयामए अच्छे जाव पडिरूवे, से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते दोण्हवि वण्णओ॥

भावार्थ - जंबू सुदर्शना के पूर्व दिशा के भवन के उत्तर में और उत्तरपूर्व के प्रासादावतंसक के दक्षिण में एक विशाल कूट कहा गया है जो आठ योजन ऊंचा, मूल में बारह योजन चौड़ा, मध्य में आठ योजन चौड़ा, ऊपर चार योजन चौड़ा, मूल में कुछ अधिक सैंतीस योजन की परिधि वाला, मध्य में कुछ अधिक पच्चीस योजन की परिधि वाला और ऊपर कुछ अधिक बारह योजन की परिधि वाला-मूल में विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर पतला, गोपुच्छ आकार वाला है। सर्वात्मना जंबूनद स्वर्णमय; स्वच्छ यावत् प्रतिरूप है। वह कूट एक पद्मवरवेदिका और एक वनखंड से चारों ओर से घिरा हुआ है। पद्मवरवेदिका और वनखंड दोनों का वर्णन कह देना चाहिये।

तस्स णं कूडस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव आसयंति०॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एगं सिद्धायययणं कोसप्पमाणं सव्वा सिद्धाययणवत्तव्वया।

जंबूए णं सुदंसणाए पुरत्थिमस्स भवणस्स दाहिणेणं दाहिणपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते तं चेव पमाणं सिद्धाययणं च।

जंबूए णं सुदंसणाए दाहिणिल्लस्स भवणस्स पुरत्थिमेणं दाहिणपुरत्थिमस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते, दाहिणस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं दाहिणपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडिंसगस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते तं चेव पमाणं सिद्धाययणं च, जंबूओ पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स दाहिणेणं दाहिणपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते तं चेव पमाणं सिद्धाययणं च, जंबूए० पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स उत्तरेणं उत्तरपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स दाहिणेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते तं चेव पमाणं सिद्धाययणं च। जंबूए० उत्तरस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं उत्तरपच्चत्थिमस्स पासायवडेंसगस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते, तं चेव०।

जंबूए० उत्तरभवणस्स पुरत्थिमेणं उत्तरपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते, तं चेव पमाणं तहेव सिद्धाययणं।

जंबू णं सुदंसणा अण्णेहिं बहूहिं तिलएहिं लउएहिं जाव रायरुक्खेहिं हिंगुरुक्खेहिं जाव सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। जंबूए णं सुदंसणाए उवरिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता, तंजहा - सोत्थियसिरिवच्छ० किण्हा चामरज्झया जाव छत्ताइच्छत्ता॥

भावार्थ - उस कूट के ऊपर बहुसमरमणीय भूमिभाग है आदि सारा वर्णन पूर्वानुसार कहना चाहिये यावत् वहां बहुत से वाणव्यंतर देव देवियां बैठते हैं आदि। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के मध्य में एक सिद्धायतन कहा गया है जो एक कोस प्रमाण वाला है आदि सिद्धायतन का सारा वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये। उस जंबू-सुदर्शना के पूर्व दिशा के भवन से दक्षिण में और दक्षिण-पूर्व के प्रासादावतंसक के उत्तर में एक विशाल कूट है। उसका प्रमाण वही है यावत् वहां सिद्धायतन है।

उस जम्बू सुदर्शना के दक्षिण दिशा के भवन के पूर्व में और दक्षिण पूर्व के प्रासादावतंसक के पश्चिम में एक विशाल कूट है इसी तरह दक्षिण के भवन के पश्चिम में और दक्षिण-पश्चिम प्रासादावतंसक के पूर्व में एक विशाल कूट है। उस जंबू सुदर्शना के पश्चिमी भवन के दक्षिण में और दक्षिण पश्चिम के प्रासादावतंसक के उत्तर में एक विशाल कूट है उसका प्रमाण वही है यावत् वहां सिद्धायतन है।

उस जंबू-सुदर्शना के पश्चिमी भवन के उत्तर में और उत्तर पश्चिम के प्रासादावतंसक के दक्षिण में एक विशाल कूट है वही प्रमाण है यावत् वहां सिद्धायतन है। उस जंबू सुदर्शना के उत्तर दिशा के भवन के पश्चिम में और उत्तर पश्चिम के प्रासादावतंसक के पूर्व में एक विशाल कूट है आदि वर्णन कहना चाहिये यावत् वहां सिद्धायतन है। उस जंबू सुदर्शना के उत्तर दिशा के भवन के पूर्व में और उत्तर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व के प्रासादावतंसक के पश्चिम में एक महान् कूट कहा गया है। उसका वही प्रमाण है यावत् वहां सिद्धायतन है।

वह जंबू-सुदर्शना अन्य बहुत से तिलक, लकुट वृक्षों यावत् राय वृक्षों हिंगु वृक्षों से चारों ओर से घिरी हुई है। जंबू सुदर्शना के ऊपर बहुत से आठ आठ मंगल कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - स्वस्तिक, श्रीवत्स यावत् दर्पण, कृष्ण ध्वज यावत् छत्रातिछत्र तक सारा वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये।

जम्बू-सुदर्शना के बारह नाम

जंबूए णं सुदंसणाए दुवालस णामधेज्जा पण्णत्ता, तंजहा-
सुदंसणा अमोहा य, सुप्पबुद्धा जसोधरा।
विदेह जंबू सोमणसा, णियया णिच्चमंडिया॥ १॥
सुभद्दा य विसाला य, सुजाया सुमणीतिया।
सुदंसणाए जंबूए, णामधेज्जा दुवालस॥ २॥

भावार्थ - जंबू-सुदर्शना के बारह नाम कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. सुदर्शना २. अमोहा ३. सुप्रबुद्धा ४. यशोधरा ५. विदेह जंबू ६. सौमनस्या ७. नियता ८. नित्यमंडिता ९. सुभद्रा १०. विशाला ११. सुजाता १२. सुमना। जंबू सुदर्शना के ये बारह नाम कहे गये हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जंबू-सुदर्शना के जो बारह सार्थक नाम बताये हैं उनके अभिप्राय इस प्रकार हैं -

१. सुदर्शना - अति सुंदर और नयन मनोहारी होने से यह सुदर्शना कहलाती है।

२. अमोघा - अपने नाम को सफल करने वाली होने से यह अमोघा कहलाती है। इसके होने से जंबूद्वीप का आधिपत्य सफल और सार्थक होता है।

३. सुप्रबुद्धा - मणि, कनक और रत्नों से सदा जगमगाती रहते हैं अतः सुप्रबुद्धा कहलाती है।

४. यशोधरा - इसके कारण जंबूद्वीप का यश त्रिभुवन में व्याप्त है इसलिये यशोधरा कहा है।

५. विदेह जम्बू - विदेह में जंबूद्वीप के उत्तरकुरुक्षेत्र में होने के कारण इसे विदेह जम्बू कहा है।

६. सौमनस्या - मन की प्रसन्नता का कारण होने से सौमनस्या है।

७. नियता - सर्वकाल अवस्थित होने से नियता है।

८. नित्य मंडिता - भूषणों से सदा भूषित होने से नित्यमंडिता है।

९. सुभद्रा - इसका अधिष्ठाता महर्द्धिक देव होने के कारण यह कदापि उपद्रवग्रस्त नहीं होती, सदाकाल कल्याण भागिनी है अतः सुभद्रा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१०. विशाला - आठ योजन प्रमाण विशाल-विस्तृत होने से विशाला है।

११. सुजाता - जन्मदोष रहिता-विशुद्ध मणि, कनक, रत्न आदि से निर्मित होने से सुजाता है।

१२. सुमना - जिसके कारण से मन शोभन-अच्छा होता है अतः सुमना है।

टीका में इन बारह पर्यायवाची नामों के क्रम में अंतर है।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-जंबूसुदंसणा जंबूसुदंसणा?

गोयमा! जंबूए णं सुदंसणाए जंबूदीवाहिवई अणाढिए णामं देवे महिड्ढिए जाव पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव जंबूदीवस्स जंबूए सुदंसणाए अणाढियाए य रायहाणीए जाव विहरंति। कहि णं भंते! अणाढियस्स जाव समत्ता वत्तव्वया रायहाणीए महिड्ढिए। अदुत्तरं च णं गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहवे जंबूरुक्खा जंबूवणा जंबूवणसंडा णिच्चं कुसुमिया जाव सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-जंबुद्दीवे जंबुद्दीवे, अदुत्तरं च णं गोयमा! जंबुद्दीवस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते, जण्ण कयावि णासि जाव णिच्चे॥ १५२॥

भावार्थ - हे भगवन्! जंबू-सुदर्शना को जंबू-सुदर्शना क्यों कहा जाता है?

हे गौतम! जंबू-सुदर्शना में जंबूद्वीप का अधिपति अनादृत नाम का महर्द्धिक देव रहता है यावत् उसकी एक पल्योपम की स्थिति है। वह चार हजार सामानिक देवों यावत् जंबूद्वीप की जंबू सुदर्शना का और अनादृता राजधानी का यावत् आधिपत्य करता हुआ विचरता है।

हे भगवन्! अनादृत देव की अनादृता राजधानी कहां है?

हे गौतम! विजया राजधानी की तरह ही यहां सारी वक्तव्यता कह देनी चाहिये यावत् वहां अनादृत नामक महर्द्धिक देव रहता है।

हे गौतम! दूसरा कारण यह है कि जंबूद्वीप नामक द्वीप में स्थान-स्थान पर यहां-वहां जंबूवृक्ष, जंबूवन और जंबू वनखंड हैं जो नित्य कुसुमित रहते हैं यावत् अतीव-अतीव शोभा से शोभायमान है। इसलिये हे गौतम! जंबूद्वीप, जंबूद्वीप कहलाता है। अथवा हे गौतम! जंबूद्वीप यह शाश्वत नाम है। यह पहले नहीं था-ऐसा नहीं, वर्तमान में नहीं है, ऐसा भी नहीं और भविष्य में नहीं होगा ऐसा भी नहीं, यावत् यह नित्य है।

भावार्थ - प्रस्तुत सूत्र में जंबूद्वीप को जंबूद्वीप क्यों कहा जाता है इसके जो कारण बताये हैं वे इस प्रकार हैं - १. जंबू वृक्ष से उपलक्षित होने के कारण यह जंबूद्वीप कहलाता है २. जंबूद्वीप में स्थान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थान पर जंबू वृक्ष, जम्बूवन (एक जाति के वृक्षों का समुदाय) और जंबू वनखंड (अनेक जाति के वृक्षों का समुदाय) हैं इसलिये भी जंबूद्वीप कहलाता है ३. जम्बू नाम शाश्वत होने से भी जंबूद्वीप कहलाता है।

जंबूद्वीप का अधिपति अनादृत देव बताया गया है। इसका अर्थ टीका में इस प्रकार किया है -

"अनादर क्रिया विषयीकृता शेषा जंबूद्वीपगता येनात्मनोऽत्युद्भूतम् महर्द्धिकत्व मीक्षमाणेन सो अनादृतः"

अर्थ - जिसमें अपने वैभव से जंबूद्वीप के सभी देवों को अनादृत (हीन-तिरस्कृत) कर दिया है। उसे अनादृत देव कहते हैं। इसका क्षेत्र संपूर्ण जंबूद्वीप है, शेष देवों का जंबूद्वीप का कुछ-कुछ सीमित क्षेत्र ही है। राजधानियां तो अन्य देवों की बड़ी हो जाने में भी बाधा नहीं है।

जंबूद्वीप में चन्द्र आदि की संख्या

जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे कइ चंदा पभासिंसु वा पभासेंति वा पभासिस्संति वा? कइ सूरिया तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा? कइ णक्खत्ता जोयं जोइंसु वा जोयंति वा जोएस्संति वा? कइ महग्गहा चारं चरिंसु वा चरिंति वा चरिस्संति वा? केवइयाओ तारागणकोडाकोडीओ सोहिंसु वा सोहंति वा सोहेस्संति वा?

गोयमा! जंबुद्दीवे णं दीवे दो चंदा पभासिंसु वा पभासेंति वा पभासिस्संति वा दो सूरिया तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा छप्पण्णं णक्खत्ता जोगं जोएंसु वा जोएंति वा जोइस्संति वा छावत्तरं गहसयं चारं चरिंसु वा चरिंति वा चरिस्संति वा।

एगं च सयसहस्सं तेत्तीसं खलु भवे सहस्साइं।
णव य सया पण्णासा तारागणकोडाकोडीणं॥ १॥
सोभिंसु वा सोभंति वा सोभिस्संति वा॥ १५३॥

भावार्थ - हे भगवन्! जंबूद्वीप नामक द्वीप में कितने चन्द्र उद्योत करते थे, करते हैं और करेंगे? कितने सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे? कितने नक्षत्र चंद्रमा के साथ योग करते थे, करते हैं और करेंगे? कितने महाग्रह आकाश में चलते थे, चलते हैं और चलेंगे? कितने कोडाकोडी तारागण शोभित होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे?

हे गौतम! जंबूद्वीप में दो चन्द्रमा उद्योत करते थे, करते हैं और करेंगे। दो सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे। छप्पन नक्षत्र चन्द्रमा से योग करते थे, करते हैं और करेंगे। एक सौ छियोत्तर महाग्रह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आकाश में चलते थे, चलते हैं और चलेंगे। एक लाख तेतीस हजार नौ सौ पचास कोडाकोडी तारागण आकाश में शोभित होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे।

विवेचन - एक चन्द्रमा के परिवार के लिये कहा है -

छावट्ठिसहस्साइं णव चेव सयाइं पंचसयराइं।

एक ससि परिवारो तारागण कोडिकोडीणं॥

- प्रत्येक चन्द्रमा के परिवार में २८ नक्षत्र, ८८ ग्रह और ६६९७५ कोडाकोडी ताराओं का समूह होता है।

जंबूद्वीप में दो चन्द्र दो सूर्य हैं अतः वहां ५६ नक्षत्र, १७६ ग्रह और १,३३,९५० कोडाकोडी तारागण हैं।

॥ जंबूद्वीप का वर्णन समाप्त॥

लवण समुद्र का वर्णन

जंबुद्दीवं णामं दीवं लवणे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ॥

लवणे णं भंते! समुद्दे किं समचक्कवालसंठिए विसमचक्कवालसंठिए?

गोयमा! समचक्कवालसंठिए णो विसमचक्कवालसंठिए॥

कठिन शब्दार्थ - **वलयागार संठाणसंठिए** - वलयाकार (गोलाकार) संस्थान संस्थित, **समचक्कवालसंठिए** - समचक्रवाल संस्थित, **विसमचक्कवालसंठिए** - विषमचक्रवाल संस्थित।

भावार्थ - जम्बूद्वीप नामक द्वीप को गोल और वलय की तरह गोलाकार में संस्थित लवण समुद्र चारों ओर से घेरे हुए अवस्थित है।

हे भगवन्! लवण समुद्र समचक्रवाल से संस्थित है या विषम चक्रवाल से संस्थित है?

हे गौतम! लवण समुद्र समचक्रवाल से संस्थित है किंतु विषमचक्रवाल से संस्थित नहीं है।

विवेचन - जम्बूद्वीप नामक मध्य द्वीप का वर्णन करने के बाद सूत्रकार लवण समुद्र का वर्णन प्रारंभ करते हैं। यह लवण समुद्र जंबूद्वीप को चारों ओर से घेरे हुए हैं अतः इसका आकार वलय के जैसा गोल हो गया है। लवण समुद्र सर्व दिशाओं में अच्छी तरह से संस्थापित परिवेष्ठित है। जिस प्रकार जंबूद्वीप सभी द्वीपों के मध्य में है उसी प्रकार लवण समुद्र सभी समुद्रों के मध्य है। इस लवण समुद्र का संस्थान सम है, विषम नहीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लवण समुद्र का चक्रवाल विष्कंभ और परिधि

लवणे णं भंते! समुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते? गोयमा! लवणे णं समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णरस जोयणसयसहस्साइं एगासीइसहस्साइं सयमेगूणचत्तालीसे किंचिविसेसूणं परिक्खेवेणं पण्णत्ते। से णं एक्काए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते चिट्ठइ, दोण्हवि वण्णओ। सा णं पउमवर वेइया अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंचधणुसयविक्खंभेणं लवणसमुद्दसमियपरिक्खेवेणं, सेसं तहेव। से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं जाव विहरइ॥

भावार्थ - हे भगवन्! लवण समुद्र का चक्रवाल-विष्कम्भ कितना है? और उसकी परिधि कितनी कही गई है?

हे गौतम! लवण समुद्र का चक्रवाल-विष्कम्भ दो लाख योजन का है और उसकी परिधि पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनतालीस (१५,८१,१३९) योजन से कुछ कम है।

वह लवण समुद्र एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से सब ओर से घिरा हुआ है। दोनों का वर्णन कह देना चाहिए। वह पद्मवरेदिका आधा योजन ऊंची और पांच सौ धनुष प्रमाण चौड़ी है। लवण समुद्र के समान ही उसकी परिधि है। शेष सारा वर्णन जंबूद्वीप की पद्मवरवेदिका के समान कह देना चाहिये। वह वनखण्ड कुछ कम दो योजन का है इत्यादि सारा वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये। यावत् वहां बहुत से वाणव्यंतर देव और देवियां अपने पुण्य फल का भोग करते हुए विचरते हैं।

लवण समुद्र के द्वार

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स कइ दारा पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि द्वारा पण्णत्ता, तंजहा - विजए वेजयंते जयंते अपराजिए॥

कहि णं भंते! लवण समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते? गोयमा! लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमपेरंते धायइखंडस्स दीवस्स पुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए उप्पिं एत्थ णं लवणस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारिजोयणाइं विक्खंभेणं, एवं तं चेव सव्वं जहा जंबुद्दीवस्स विजयसरिसेवि (दारसरिसमेयंपि) रायहाणी पुरत्थिमेणं अण्णंमि लवणसमुद्दे॥

भावार्थ - हे भगवन्! लवण समुद्र के कितने द्वार कहे गये हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे गौतम! लवण समुद्र के चार द्वार कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित।

हे भगवन्! लवण समुद्र का विजयद्वार कहां है?

हे गौतम! लवण समुद्र की पूर्व दिशा के अन्त में तथा धातकीखंड द्वीप के पूर्वार्द्ध से पश्चिम दिशा में सीतोदा महानदी के ऊपर लवण समुद्र का विजय नाम का द्वार है। यह द्वार आठ योजन का ऊंचा और चार योजन का चौड़ा है आदि सारा वर्णन जंबूद्वीप के विजयद्वार की तरह कह देना चाहिये। इस विजयदेव की राजधानी पूर्व में असंख्य द्वीप, समुद्र पार करने के बाद अन्य लवण समुद्र में है।

कहि णं भंते! लवणसमुद्दे वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते?

गोयमा! लवणसमुद्दे दाहिणपेरंते धायइसंडदीवस्स दाहिणद्धस्स उत्तरेणं सेसं तं चेव सव्वं। एवं जयंतेवि, णवरि सीयाए महाणईए उप्पिं भाणियव्वे। एवं अपराजिएवि, णवरं दिसीभागो भाणियव्वो॥

भावार्थ - हे भगवन्! लवण समुद्र में वैजयंत नाम का द्वार कहां है?

हे गौतम! लवण समुद्र की दक्षिण दिशा के अंत में धातकीखंड द्वीप के दक्षिणार्ध भाग के उत्तर में वैजयन्त नाम का द्वार है। शेष सारा वर्णन पूर्वानुसार समझना चाहिये। इसी प्रकार जयंत द्वार के विषय में भी समझना चाहिये। विशेषता यह है कि यह सीता महानदी के ऊपर है। इसी प्रकार अपराजित द्वार के विषय में समझना चाहिये। विशेषता यह है कि यह लवण समुद्र की उत्तर दिशा के अंत में और उत्तरार्द्ध धातकीखंड के दक्षिण में स्थित है। इसकी राजधानी अपराजित द्वार के उत्तर में असंख्य द्वीप समुद्र पार करने के बाद अन्य लवण समुद्र में है।

द्वारों का अंतर

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स दारस्स य २ एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?

गोयमा! 'तिण्णेव सयसहस्सा पंचाणउइं भवे सहस्साइं। दो जोयणसय असिया कोसं दारंतरे लवणे॥ १॥ जाव अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। लवणस्स णं पएसा धायइसंडं दीवं पुट्ठा, तहेव जहा जंबूदीवे धायइसंडेवि सो चेव गमो। लवणे णं भंते! समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता सो चेव विही, एवं धायइसंडेवि॥

भावार्थ - हे भगवन्! लवण समुद्र के इन द्वारों का एक द्वार से दूसरे द्वार का कितना अंतर कहा गया है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे गौतम! एक द्वार से दूसरे द्वार का अंतर तीन लाख पिचानवे हजार दो सौ अस्सी (३९५२८०) योजन और एक कोस का है।

हे भगवन्! क्या लवण समुद्र के प्रदेश धातकीखंड से स्पृष्ट-छुए हुए हैं ?

हाँ गौतम! लवण समुद्र के प्रदेश धातकीखंड से छुए हुए हैं आदि वर्णन जंबूद्वीप के समान ही कह देना चाहिये। धातकीखंड के प्रदेश भी लवण समुद्र से छुए हुए हैं आदि कथन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये।

क्या लवण समुद्र से मरकर जीव धातकीखंड में पैदा होते हैं ? आदि कथन भी पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये और धातकीखंड से मरकर लवण समुद्र में पैदा होने के विषय में भी पूर्वानुसार कथन कर देना चाहिये।

विवेचन - लवण समुद्र के एक-एक द्वार की पृथुता चार-चार योजन की है। एक एक द्वार में एक एक कोस मोटी दो शाखाएं हैं। एक द्वार की पूरी पृथुता साढे चार योजन की है। इस तरह चारों द्वारों की पृथुता अठारह योजन की है। ये अठारह योजन लवण समुद्र की परिधि (१५,८१,१३९ योजन से कुछ कम) में से घटा कर चार का भाग देने पर एक द्वार से दूसरे द्वार का अंतर ३,९५,२८० योजन और एक कोस आता है। कहा भी है -

असीया दोन्नि सया पणनउइसहस्स तिण्णिलक्खा य।
कोसेय अंतरं सागरस्स दाराणं विन्नेयं॥ १॥

लवण समुद्र, लवण समुद्र क्यों कहलाता है?

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ लवणसमुद्दे लवणसमुद्दे?

गोयमा! लवणे णं समुद्दे उदगे आविले रइले लोणे लिंदे खारए कडुए अप्पेज्जे बहूणं दुपयचउप्पयमियपसुपक्खि-सरीसिवाणं णण्णत्थ तज्जोणियाणं सत्ताणं, सुट्ठिए एत्थ लवणाहिवई देवे महिड्डिए पलिओवमट्ठिइए, से णं तत्थ सामाणिय जाव लवणसमुद्दस्स सुट्ठियाए रायहाणीए अण्णेसिं जाव विहरइ, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ लवणे णं समुद्दे लवणे णं समुद्दे, अदुत्तरं च णं गोयमा! लवणसमुद्दे सासए जाव णिच्चे॥ १५४॥

कठिन शब्दार्थ - आविले - अस्वच्छ (गुदला), **रइले** - रजवाला, **लोणे** - नमक के स्वाद वाला, **लिंदे** - लिन्द्र-गोबर जैसे स्वाद वाला, **अप्पेज्जे** - अपेय।

भावार्थ - हे भगवन्! लवण समुद्र, लवण समुद्र क्यों कहलाता है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे गौतम! लवण समुद्र का पानी अस्वच्छ है, रजवाला है, नमकीन है, गोबर जैसे स्वाद वाला है, खारा है, कडुआ है द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, सरीसृपों के लिए वह अपेय-पीने योग्य नहीं है केवल लवण समुद्र योनिक जीवों के लिए ही वह पेय है। लवण समुद्र का अधिपति सुस्थित नामक देव है जो महर्द्धिक है, पल्योपम की स्थिति वाला है। वह अपने सामानिक देवों आदि अपने परिवार का और लवण समुद्र की सुस्थिता राजधानी का तथा अन्य बहुत से देव देवियों का आधिपत्य करता हुआ विचरता है। इस कारण हे गौतम! लवण समुद्र, लवण समुद्र कहलाता है। दूसरी बात यह है कि हे गौतम! "लवण समुद्र" यह नाम शाश्वत है यावत् नित्य है।

विवेचन - टीकाकारों ने लवण समुद्र के भी जगती का कथन किया है। परंतु आगमकारों को यदि लवणादि द्वीप समुद्रों के जगती बताना इष्ट होता तो स्पष्ट रूप से जंबू जगती का अतिदेश कर देते जिससे पाठ वृद्धि भी नहीं होती। किंतु ऐसा न करके मात्र वेदिका का ही वर्णन है। अतः सिद्ध होता है कि अनादिकालीन लोकस्थिति ऐसी ही होने से लवणादि के जगती नहीं है। तथा नागराज आदि के द्वारा क्षुभित लवणोदक जंबू में नहीं आता तथा धातकीखंड अति विस्तृत होने से जगती का प्रयोजन ही नहीं है।

द्वार - अन्य द्वीप समुद्रों की दो योजन ऊंची वेदिका में ८ योजन ऊंचे द्वार छोटी भित्तियों में बड़े दरवाजे के समान समझना चाहिये।

शंका - द्वीप समुद्रों की वेदिका ५०० धनुष चौड़ी है फिर भौम प्रासाद आदि कैसे रहेंगे?

समाधान - लवण के पूर्वादि चारों दिशाओं में जहां भौम प्रासाद आदि हैं, वहां लगभग ८ योजन तक भराव समझना चाहिये। (दो योजन में वेदिका वनखंड, चार योजन में भौम, दो योजन में प्रासाद=८ योजन) जहाँ भौम प्रासाद नहीं है। वहां वेदिका वनखंड तो है ही। अतः सर्वत्र दो योजन ठोस भूमि का भराव है।

शंका - लवण समुद्र के यदि ८ योजन भूमि का भराव माना जाय तो "९५ अंगुल जाने पर १ अंगुल ऊंडाई होती है" इस कथन की संगति कैसे होगी?

समाधान - जैसे वनमुख का १ कला जितना भाग जगती के नीचे होने से वृक्षादि नहीं होते हुए भी उसकी क्षेत्र सीमा मान ली जाती है। वैसे ही ८ योजन तक भूमि का भराव होते हुए भी उसकी क्षेत्र सीमा मान लेना चाहिये। फिर ८ योजन में जितनी ऊँडाई होनी चाहिये उतनी एक साथ हो जायेगी।

लवण समुद्र में चन्द्र आदि

लवणे णं भंते! समुद्दे कइ चंदा पभासिंसु वा पभासिंति वा पभासिस्संति वा? एवं पंचण्हवि पुच्छा।

गोयमा! लवणसमुद्दे चत्तारि चंदा पभासिंसु वा ३, चत्तारि सूरिया तविंसु वा ३,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बारसुत्तरं णक्खत्तसयं जोगं जोएंसु वा ३ तिण्णि बावण्णा महग्गहसया चारं चरिंसु वा ३ दुण्णि सयसहस्सा सत्तट्ठिं च सहस्सा णव य सया तारागणकोडाकोडीणं सोभं सोभिंसु वा ३॥ १५५॥

भावार्थ - हे भगवन्! लवण समुद्र में कितने चन्द्र उद्योत करते थे, उद्योत करते हैं और उद्योत करेंगे? इस प्रकार पांचों ज्योतिषियों के विषय में प्रश्न समझने चाहिये?

हे गौतम! लवण समुद्र में चार चन्द्रमा उद्योत करते थे, करते हैं और करेंगे। चार सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे। एक सौ बारह नक्षत्र चन्द्र से योग करते थे, करते हैं और करेंगे। तीन सौ बावन महाग्रह चाल चलते थे, चाल चलते हैं और चाल चलेंगे। दो लाख सडसठ हजार नौ सौ कोडाकोडी तारागण शोभित होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे।

विवेचन - यहां पर जो लवण समुद्र में चार चन्द्र सूर्य आदि का उल्लेख किया गया है उनमें से दो चन्द्रमा व दो सूर्य तथा उनके परिवार भूत ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि लवण समुद्र की उदगशिखा के अन्दर तथा इतने ही चन्द्रमा आदि उदग शिखा से बाहर समझना चाहिए।

लवण समुद्र में जल हानि वृद्धि का कारण

कम्हा णं भंते। लवणसमुद्दे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णिमासिणीसु अइरेगं अइरेगं वड्ढइ वा हायइ वा?

गोयमा! जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स चउद्दिसिं बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ लवणसमुद्दं पंचाणउइ पंचाणउइ जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि महालिंजरसंठाणसंठिया महइमहालया महापायाला पण्णत्ता, तंजहा-वलयामुहे केऊए जूवे ईसरे, ते णं महापायाला एगमेगं जोयणसयसहस्सं उव्वेहेणं मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं मज्झे एगपएसियाए सेढीए एगमेगं जोयणसयसहस्सं विक्खंभेणं उवरिं मुहमूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं॥

तेसि णं महापायालाणं कुड्डा सव्वत्थ समा दसजोयणसयबाहल्ला पण्णत्ता सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा॥ तत्थ णं बहवे जीवा पोग्गला य अवक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति सासया णं ते कुड्डा दव्वट्ठयाए वण्णपज्जवेहिं० असासया॥ तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, तंजहा-काले महाकाले वेलंबे पभंजणे॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णिमासिणीसु - चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा और अमावस्या में, **अतिरेगं** - अतिरेक-अतिशय, **महालिंजरसंठाणसंठिया** - महाकुंभ के आकार का, **महापायाला** - महापाताल कलश, **कुड्डा** - कुड्य (भित्तियां)।

भावार्थ - हे भगवन्! लवण समुद्र का पानी चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा और अमावस्या की तिथियों में अतिशय बढ़ता है और घटता है, इसका क्या कारण है?

हे गौतम! जंबूद्वीप नामक द्वीप की चारों दिशाओं में बाहरी वेदिका के अंत से लवण समुद्र में पिच्यानवें हजार योजन आगे जाने पर महाकुंभ के आकार के चार विशाल महापाताल कलश कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - वड़वामुख, केयूप, यूप और ईश्वर। ये पाताल कलश एक लाख योजन गहरे हैं मूल में इनका विष्कम्भ दस हजार योजन है, वहां से एक-एक प्रदेश की एक-एक श्रेणी से वृद्धिंगत होते हुए मध्य में एक-एक लाख योजन के चौड़े हो गये हैं। फिर एक-एक प्रदेश श्रेणी से हीन होते होते ऊपर मुखमूल में दस हजार योजन के चौड़े हो गये हैं।

इन पाताल कलशों के भित्तियां सर्वत्र समान हैं। ये सब एक हजार योजन की मोटी हैं। ये सर्ववज्ररत्नमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं। इन कुड्यों (भित्तियों) में बहुत से जीव उत्पन्न होते हैं, निकलते हैं तथा बहुत से पुद्गल एकत्रित होते हैं और बिखरते हैं वहां पुद्गलों का चय-उपचय होता रहता है। वे कुड्य (भित्तियां) द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से शाश्वत हैं और वर्णादि पर्यायों से अशाश्वत हैं। उन पाताल कलशों में पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं, वे इस प्रकार हैं - काल, महाकाल, वेलंब और प्रभंजन।

तेसि णं महापायालाणं तओ तिभागा पण्णत्ता, तंजहा-हेट्ठिल्ले तिभागे मज्झिल्ले तिभागे उवरिमे तिभागे॥ ते णं तिभागा तेत्तीसं जोयणसहस्सा तिण्णि य तेत्तीसं जोयणसयं जोयणतिभागं च बाहल्लेणं। तत्थ णं जे से हेट्ठिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाओ संचिट्ठइ, तत्थ णं जे से मज्झिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाए य आउकाए य संचिट्ठइ, तत्थ णं जे से उवरिल्ले तिभागे एत्थ णं आउकाए संचिट्ठइ, अदुत्तरं च णं गोयमा! लवणसमुद्दे तत्थ २ देसे.....बहवे खुड्डालिंजरसंठाणसंठिया खुड्डपायालकलसा पण्णत्ता, ते णं खुड्डा पायाला एगमेगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं मूले एगमेगं जोयणसयं विक्खंभेणं मज्झे एगपएसियाए सेढीए एगमेगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं उप्पिं मुहमूले एगमेगं जोयणसयं विक्खंभेणं॥ तेसि णं खुड्डागपायालाणं कुड्डा सव्वत्थ समा दस जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता, सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा। तत्थ णं बहवे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवा पोग्गला य जाव असासयावि, पत्तेयं पत्तेयं अद्धपलिओवमट्ठिइयाहिं देवयाहिं परिग्गहिया॥

कठिन शब्दार्थ - खुड्डालिंजरसंठाणसंठिया - छोटे घड़े की आकृति वाले, **खुड्डपायालकलसा**- छोटे पाताल कलश।

भावार्थ - उन महापाताल कलशों के तीन त्रिभाग कहे गये हैं। यथा - १. नीचे का त्रिभाग २. मध्य का त्रिभाग और ३. ऊपर का त्रिभाग। ये प्रत्येक त्रिभाग तेतीस हजार तीन सौ तेतीस योजन और एक योजन का त्रिभाग (३३,३३३$\frac{१}{३}$) जितने मोटे हैं। इनके नीचले त्रिभाग में वायुकाय है, मध्यम त्रिभाग में वायुकाय और अप्काय है और ऊपर के त्रिभाग में केवल अप्काय है। इसके अतिरिक्त हे गौतम! लवण समुद्र में इन महापाताल कलशों के बीच में छोटे कुंभ की आकृति के छोटे- छोटे बहुत से पाताल कलश हैं। वे छोटे-छोटे पाताल कलश एक-एक हजार योजन पानी में गहरे हैं, एक-एक सौ योजन की चौड़ाई वाले हैं और एक-एक प्रदेश की श्रेणी से वृद्धिंगत होते हुए मध्य में एक हजार योजन के चौड़े हो गये हैं, फिर एक-एक प्रदेश की श्रेणी से हीन होते हुए मुख मूल में ऊपर एक-एक सौ योजन के चौड़े रह गये हैं।

उन छोटे पाताल कलशों की भित्तियां सर्वत्र समान हैं और दस योजन की मोटी हैं। सर्व वज्ररत्नमय हैं, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं उनमें बहुत से जीव उत्पन्न होते हैं, निकलते हैं बहुत से पुद्गल एकत्रित होते हैं बिखरते हैं उन पुद्गलों का चय-अपचय होता रहता है। वे भित्तियां द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा शाश्वत हैं और वर्णादि पर्यायों की अपेक्षा अशाश्वत हैं। उन छोटे पाताल कलशों में प्रत्येक में अर्द्धपल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं।

तेसिं णं खुड्डागपायालाणं तओ तिभागा पण्णत्ता, तंजहा-हेट्ठिल्ले तिभागे मज्झिल्ले तिभागे उवरिल्ले तिभागे, ते णं तिभागा तिण्णि तेत्तीसे जोयणसए जोयणतिभागं च बाहल्लेणं पण्णत्ते। तत्थ णं जे से हेट्ठिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाओ मज्झिल्ले तिभागे वाउकाए आउकाए य उवरिल्ले आउकाए, एवामेव सपुव्वावरेणं लवणसमुद्दे सत्त पायालसहस्सा अट्ठ य चुलसीया पायालसया भवंतीति मक्खाया॥

तेसि णं महापायालाणं खुड्डागपायालाण य हेट्ठिममज्झिमिल्लेसु तिभागेसु बहवे ओराला वाया संसेयंति संमुच्छिमंति एयंति चलंति कंपंति खुब्भंति घट्टंति फंदंति तं तं भावं परिणमंति तया णं से उदए उण्णामिज्जइ, जया णं तेसिं महापायालाणं खुड्डागपायालाण य हेट्ठिल्लमज्झिमिल्लेसु तिभागेसु णो बहवे ओराला जाव तं तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावं ण परिणमंति तया णं से उदए णो उण्णामिज्जइ अंतरावि य णं ते वायं उदीरेंति अंतरावि य णं से उदगे उण्णामिज्जइ अंतरावि य ते वाया णो उदीरंति अंतरावि य णं से उदगे णो उण्णामिज्जइ, एवं खलु गोयमा! लवणसमुद्दे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु अइरेगं अइरेगं वड्ढइ वा हायइ वा॥ १५६॥

कठिन शब्दार्थ - **ओराला वाया** - उदार-ऊर्ध्वगमन स्वभाव वाले अथवा प्रबल शक्ति वाले वायुकाय, **संसेयंति** - उत्पन्न होने के अभिमुख होते हैं, **संमुच्छिमंति** - संमूर्च्छिन्ति-संमूर्च्छन जन्म से आत्म लाभ करते हैं, **एयंति** - कंपित होते हैं-चलते हैं, **खुब्भंति** - क्षोभित होते हैं, **फंदंति** - उछलते हैं, **उण्णामिज्जइ** - उछाला जाता है।

भावार्थ - उन छोटे पाताल कलशों के तीन त्रिभाग कहे गये हैं यथा - नीचला त्रिभाग २. मध्य का त्रिभाग और ३. ऊपर का त्रिभाग। ये त्रिभाग तीन सौ तेतीस योजन और योजन का त्रिभाग ($३३३\frac{१}{३}$) प्रमाण मोटे हैं। इनमें से नीचले त्रिभाग में वायुकाय है मध्य के त्रिभाग में वायुकाय और अप्काय है और ऊपर के त्रिभाग में अप्काय है। इस प्रकार पूर्वापर सब मिलाकर लवण समुद्र में सात हजार आठ सौ चौरासी (७८८४) पाताल कलश कहे गये हैं।

उन महापाताल कलशों और छोटे पाताल कलशों के नीचले और मध्य के त्रिभागों में बहुत से ऊर्ध्वगमन स्वभाव वाले अथवा प्रबल शक्ति वाले वायुकाय उत्पन्न होने के अभिमुख होते हैं, संमूर्च्छन जन्म से आत्म लाभ करते हैं, कंपित होते हैं, विशेष रूप से कंपित होते हैं, चलते हैं, परस्पर घर्षित होते हैं, शक्तिशाली होकर इधर उधर और ऊपर फैलते हैं, इस प्रकार वे भिन्न-भिन्न भाव में परिणत होते हैं तब वह समुद्र का पानी उनसे क्षुभित होकर ऊपर उछाला जाता है। जब उन महापाताल कलशों और छोटे पाताल कलशों के नीचे के और मध्य के त्रिभागों में बहुत से प्रबल शक्ति वाले वायुकाय उत्पन्न नहीं होते यावत् उस-उस भाव में परिणत नहीं होते तब वह पानी नहीं उछलता है। प्रतिनियतकाल में-अहोरात्र में दो बार और पक्ष में चतुर्दशी आदि तिथियों में तथाविध जगत् स्वभाव से लवण समुद्र का पानी उन वायुकाय से प्रेरित होकर विशेष रूप से उछलता है। प्रतिनियत काल को छोड़कर अन्य समय में नहीं उछलता है। इसलिये हे गौतम! लवण समुद्र का जल चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा और अमावस्या को विशेष रूप से बढ़ता है और घटता है।

विवेचन - लवण समुद्र में कुल सात हजार आठ सौ चौरासी पाताल कलश कहे गये हैं। प्रस्तुत सूत्र में इन पाताल कलशों का वर्णन करते हुए चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा को लवण समुद्र में आने वाले ज्वार और भाटा का कारण बताया गया है। जब पाताल कलशों के नीचले और मध्यम त्रिभागों में उन्नामक वायुकाय का सद्भाव होता तब ज्वार (जल वृद्धि) और जब उन्नामक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वायुकाय का अभाव होता है तब भाटा (जलहानि) होता है। इस तरह लवण समुद्र में प्रतिनियतकाल में ज्वार भाटा का क्रम चलता रहता है।

लवणे णं भंते! समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं कइखुत्तो अइरेगं अइरेगं वड्ढइ वा हायइ वा? गोयमा! लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अइरेगं अइरेगं वड्ढइ वा हायइ वा॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अइरेगं अइरेगं वड्ढइ वा हायइ वा? गोयमा! उड्ढमंतेसु पायालेसु वड्ढइ आपूरिएसु पायालेसु हायइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अइरेगं अइरेगं वड्ढइ वा हायइ वा॥ १५७॥

भावार्थ - हे भगवन्! लवण समुद्र का जल तीस मुहूर्त्तों में कितनी बार विशेष रूप से बढ़ता है या घटता है?

हे गौतम! लवण समुद्र का जल तीस मुहूर्त्तों (एक अहोरात्र) में दो बार विशेष रूप से बढ़ता है और घटता है।

हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि लवण समुद्र का जल तीस मुहूर्त्तों में दो बार विशेष रूप से बढ़ता है और घटता है?

हे गौतम! निचले और मध्य के त्रिभागों में जब वायु के संक्षोभ से पाताल कलशों में से पानी ऊंचा उछलता है तब समुद्र में पानी बढ़ता है और जब वे पाताल कलश वायु के स्थिर होने से जल से आपूरित बने रहते हैं तब पानी घटता है। इस कारण हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि लवण समुद्र का पानी तीस मुहूर्त्तों में दो बार बढ़ता है और घटता है।

विवेचन - तथाविध जगत् स्वभाव होने से एक अहोरात्र (तीस मुहूर्तों) में दो बार लवण समुद्र का पानी ऊंचा उछलता (बढ़ता) है और घटता है।

लवणशिखा का वर्णन

लवणसिहा णं भंते! केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं अइरेगं अइरेगं वड्ढइ वा हायइ वा? गोयमा! लवणसिहाए णं दस जोयणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं देसूणं अद्धजोयणं अइरेगं अइरेगं वड्ढइ वा हायइ वा॥

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स कइ णागसाहस्सीओ अब्भिंतरियं वेलं धारंति? कइ णागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धरंति? कइ णागसाहस्सीओ अग्गोदयं धरेंति?

गोयमा! लवणसमुद्दस्स बायालीसं णागसाहस्सीओ अब्भिंतरियं वेलं धारेंति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बावत्तरिं णागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारेंति, सट्ठिं णागसाहस्सीओ अग्गोदयं धारेंति, एवामेव सपुव्वावरेणं एगा णागसयसाहस्सी चोवत्तरिं च णागसहस्सा भवंतीति मक्खाया॥ १५८॥

कठिन शब्दार्थ - **लवणसिहा** - लवण समुद्र की शिखा, **अब्भिंतरियं** - आभ्यंतर, **वेलं** - वेला को, **धारेंति** - धारण करते हैं, **अग्गोदयं** - अग्रोदक-देशोन अर्द्ध योजन से ऊपर बढ़ने वाले जल को।

भावार्थ - हे भगवन्! लवण समुद्र की शिखा चक्रवाल विष्कम्भ से कितनी चौड़ी है और वह कितनी बढ़ती है और घटती है?

हे गौतम! लवण समुद्र की शिखा चक्रवाल विष्कम्भ की अपेक्षा दस हजार योजन चौड़ी है और कुछ कम आधे योजन तक वह बढ़ती है और घटती है।

हे भगवन्! लवण समुद्र की आभ्यंतर वेला (जंबूद्वीप की ओर बढ़ती हुई शिखा) को कितने हजार नागकुमार देव धारण करते हैं? बाह्य वेला (धातकीखंड की ओर अभिमुख होकर बढ़ने वाली शिखा) को कितने हजार नागकुमार देव धारण करते हैं? कितने हजार नागकुमार देव अग्रोदक को धारण करते हैं?

हे गौतम! लवण समुद्र की आभ्यंतर वेला को बयालीस हजार (४२०००) देव धारण करते हैं, बाह्य वेला को बहत्तर हजार (७२०००) देव धारण करते हैं। अग्रोदक को साठ हजार (६००००) देव धारण करते हैं। इस प्रकार सब मिला कर इन नागकुमार देवों की संख्या एक लाख चौहत्तर हजार (१,७४,०००) कही गई है।

विवेचन - लवण समुद्र की शिखा सब ओर से दस हजार योजन चक्रवाल विस्तार वाली है। वह शिखा कुछ कम दो कोस प्रमाण अतिशय से बढ़ती है और उतनी ही घटती है। इसके स्पष्टीकरण के लिये निम्न संग्रहणी गाथाएं टीका में दी गई हैं -

पंचाणउय सहस्से गोतित्थं उभयओ वि लवणस्स।
जोयणसयाणि सत्त उदग परिवुड्ढी वि उभयो वि॥ १॥
दस जोयणसहस्सा लवणसिहा चक्कवालओ रुंदा।
सोलससहस्स उच्चा सहस्समेगं च ओगाढा॥ २॥
देसूणमद्धजोयण लवण सिहोवरि दुगं दुवे कालो।
अइरेगं अइरेगं परिवुड्ढइ हायए वावि॥ ३॥

- लवण समुद्र में जंबूद्वीप से और धातकीखंड द्वीप से ९५-९५ हजार योजन तक गोतीर्थ (तडाग आदि में प्रवेश करने का क्रमशः नीचे नीचे का भूप्रदेश) है। मध्यभाग का अवगाह दस हजार योजन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का है। जंबूद्वीप की वेदिका और धातकीखंड की वेदिका के पास अंगुल का असंख्यातवां भाग प्रमाण गोतीर्थ है। इसके आगे समतल भूभाग से लेकर क्रमशः प्रदेश हानि से तब तक उत्तरोत्तर नीचा नीचा भूभाग समझना चाहिये जहां तक ९५००० योजन की दूरी आ जाय। ९५००० योजन की दूरी तक समतल भूभाग की अपेक्षा एक हजार योजन की गहराई है। इसलिये जंबूद्वीप वेदिका और धातकीखंड वेदिका के पास उस समतल भूभाग में जल वृद्धि अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है। इससे आगे समतल भूभाग में प्रदेश वृद्धि से जलवृद्धि क्रमशः बढ़ती है, जब तक दोनों ओर ९५००० योजन की दूरी आ जाय। यहां समतल भूभाग की अपेक्षा सात सौ योजन की जलवृद्धि होती है।

उससे आगे मध्यभाग में दस हजार योजन विस्तार में एक हजार योजन की गहराई है और जलवृद्धि सोलह हजार योजन प्रमाण है।

पाताल कलशगत वायु के क्षुभित होने से उनके ऊपर एक अहोरात्र में (३० मुहूर्त्तों में) दो बार कुछ कम दो कोस प्रमाण अतिशय रूप से जल की वृद्धि होती है और जब पाताल कलशगत वायु उपशांत होता है तब वह जलवृद्धि नहीं होती है।

लवण समुद्र की आभ्यंतर वेला अर्थात् जंबूद्वीप की ओर बढ़ती हुई शिखा और उस पर बढ़ते हुए जल को सीमा से आगे बढ़ने से रोकने वाले ४२००० नागकुमार देव हैं। लवण समुद्र की बाह्यवेला-धातकीखंड की ओर बढ़ती शिखा और उसके ऊपर की जलवृद्धि को रोकने वाले ७२००० नागकुमार देव तथा लवण समुद्र के अग्रोदक को रोकने वाले ६०००० नागकुमार देव, इस तरह कुल १,७४,००० एक लाख चौहत्तर हजार वेलंधर नागकुमार देव लवण समुद्र के जल को मर्यादा में रखते हैं।

वेलंधर नागराज का वर्णन

कइ णं भंते! वेलंधरा णागराया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि वेलंधरा णागराया पण्णत्ता, तंजहा-गोथूभे सिवए संखे मणोसिलए॥

एएसि णं भंते! चउण्हं वेलंधरणागरायाणं कइ आवासपव्वया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता, तंजहा-गोथूभे उदगभासे संखे दगसीमाए॥

भावार्थ - हे भगवन्! वेलंधर नागराज कितने कहे गये हैं?

हे गौतम! वेलंधर नागराज चार कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. गोस्तूप २. शिवक ३. शंख और ४. मनःशिलाक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे भगवन्! इन चार वेलंधर नागराजों के कितने आवास पर्वत कहे गये हैं?

हे गौतम! इन चार वेलंधर नागराजों के चार आवास पर्वत कहे गये हैं। यथा - गोस्तूप, उदकभास, शंख और दकसीम।

कहि णं भंते! गोथूभस्स वेलंधरणागरायस्स गोथूभे णामं आवासपव्वए पण्णत्ते?

गोयमा! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स प० पुरत्थिमेणं लवणं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं गोथूभस्स वेलंधरणागरायस्स गोथूभे णामं आवासपव्वए पण्णत्ते सत्तरसए एक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि तीसे जोयणसए कोसं च उव्वेहेणं मूले दसबावीसे जोयणसए आयामविक्खंभेणं मज्झे सत्ततेवीसे जोयणसए उवरिं चत्तारि चउवीसे जोयणसए आयामविक्खंभेणं मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं मज्झे दो जोयणसहस्साइं दोण्णि य छलसीए जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं उवरि एगं जोयणसहस्सं तिण्णि य ईयाले जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं मूले वित्थिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वकणगामए अच्छे जाव पडिरूवे॥

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, दोण्हवि वण्णओ॥

भावार्थ - हे भगवन्! गोस्तूप वेलंधर नागराज का गोस्तूप आवास पर्वत कहां कहा गया है?

हे गौतम! जंबूद्वीप नामक द्वीप के मेरु पर्वत के पूर्व में लवण समुद्र में बयालीस हजार योजन आगे जाने पर गोस्तूप वेलंधर नागराज का गोस्तूप नाम का आवास पर्वत है। वह सतरह सौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊंचा, चार सौ तीस योजन एक कोस पानी में गहरा, मूल में दस सौ बाईस १०२२) योजन लंबा चौड़ा बीच में सात सौ तेईस (७२३) योजन लंबा चौड़ा और ऊपर चार सौ चौबीस (४२४) योजन लंबा चौड़ा है। उसकी परिधि मूल में तीन हजार दो सौ बत्तीस (३२३२) योजन से कुछ कम, मध्य में बाईस सौ चौरासी (२२८४) योजन से कुछ अधिक और ऊपर तेरह सौ इकतालीस (१३४१) योजन से कुछ कम है। यह मूल में विस्तीर्ण मध्य में संक्षिप्त और ऊपर पतला है, गोपुच्छ आकार से संस्थित है। सर्व कनकमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप है।

वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखंड से चारों ओर से घिरा हुआ है। दोनों का वर्णन कह देना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव आसयंति० ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए बावट्ठं जोयणद्धं च उड्ढं उच्चत्तेणं तं चेव पमाणं अद्धं आयामविक्खंभेणं वण्णओ जाव सीहासणं सपरिवारं ॥

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-गोथूभे आवासपव्वए गोथूभे आवासपव्वए?

गोयमा! गोथूभे णं आवासपव्वए तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहूओ खुड्डाखुड्डियाओ जाव गोथूभवण्णाइं बहूइं उप्पलाइं तहेव जाव गोथूभे तत्थ देवे महिड्ढिए जाव पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव गोथूभयस्स आवासपव्वयस्स गोथूभाए रायहाणीए जाव विहरइ, से तेणट्ठेणं जाव णिच्चे ॥

रायहाणि पुच्छा, गोयमा! गोथूभस्स आवासपव्वयस्स पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीइवइत्ता अण्णंमि लवणसमुद्दे तं चेव पमाणं तहेव सव्वं ॥

भावार्थ - गोस्तूप आवास पर्वत के ऊपर बहुसमरमणीय भूमिभाग कहा गया है आदि सारा वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये यावत् वहां बहुत से नागकुमार देव और देवियां स्थित होती हैं। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के बहुमध्य देशभाग में एक बड़ा प्रासादावतंसक है जो साढे बासठ योजन ऊंचा है सवा इकतीस योजन लंबा-चौड़ा है आदि वर्णन विजयदेव के प्रासादावतंसक के समान समझना चाहिये यावत् सपरिवार सिंहासन का कथन कर देना चाहिये।

हे भगवन्! गोस्तूप आवास पर्वत, गोस्तूप आवास पर्वत क्यों कहा जाता है?

हे गौतम! गोस्तूप आवास पर्वत पर बहुत सी छोटी छोटी बावड़ियां आदि हैं, जिनमें गोस्तूप वर्ण के बहुत सारे उत्पल कमल आदि हैं यावत् वहां गोस्तूप नामक महर्द्धिक और एक पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है। वह गोस्तूप देव चार हजार सामानिक देवों यावत् गोस्तूप आवास पर्वत और गोस्तूपा राजधानी का आधिपत्य करता हुआ विचरता है। इस कारण वह गोस्तूप आवास पर्वत कहा जाता है यावत् वह गोस्तूप आवास पर्वत द्रव्य से नित्य है।

हे भगवन्! गोस्तूप देव की गोस्तूपा राजधानी कहां है?

हे गौतम! गोस्तूप आवास पर्वत के पूर्व में तिरछी दिशा में असंख्यात द्वीप समुद्र पार करने के बाद अन्य लवण समुद्र में गोस्तूपा राजधानी है। उसका प्रमाण आदि वर्णन विजया राजधानी की तरह कह देना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहि णं भंते! सिवगस्स वेलंधरणागरायस्स दओभासणामे आवासपव्वए पण्णत्ते? गोयमा! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं सिवगस्स वेलंधरणागरायस्स दओभासे णामं आवासपव्वए पण्णत्ते, तं चेव पमाणं जं गोथूभस्स, णवरि सव्वअंकामए अच्छे जाव पडिरूवे जाव अट्ठो भाणियव्वो, गोयमा! दओभासे णं आवासपव्वए लवणसमुद्दे अट्ठजोयणियखेत्ते दगं सव्वओ समंता ओभासेइ उज्जोवेइ तवेइ पभासेइ सिवए इत्थ देवे महिड्ढिए जाव रायहाणी से दक्खिणेणं सिविगा दओभासस्स सेसं तं चेव॥

भावार्थ - हे भगवन्! शिवक वेलंधर नागराज का दकाभास नामक आवास पर्वत कहां कहा गया है?

हे गौतम! जंबूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में लवण समुद्र में बयालीस हजार (४२०००) योजन आगे जाने पर शिवक वेलंधर नागराज का दकाभास नाम का आवास पर्वत है। गोस्तूप आवास पर्वत के समान ही इसका प्रमाण है। विशेषता यह है कि यह सर्व अंक रत्नमय है, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप है। यावत् यह दकाभास क्यों कहा जाता है?

हे गौतम! लवण समुद्र में दकाभास नामक आवास पर्वत आठ योजन के क्षेत्र में पानी को सब ओर अति विशुद्ध अंक रत्नमय होने से अपनी प्रभा से अवभासित करता है, उद्योतित करता है, तापित करता है, चमकाता है तथा शिवक नाम का महर्द्धिक देव यहां रहता है इसलिये यह दकाभास कहा जाता है यावत् शिवका राजधानी का आधिपत्य करता हुआ विचरता है। वह शिवका राजधानी दकाभास पर्वत के दक्षिण में अन्य लवण समुद्र में है आदि कथन विजया राजधानी की तरह कह देना चाहिये।

कहि णं भंते! संखस्स वेलंधरणागरायस्स संखे णामं आवासपव्वए पण्णत्ते?

गोयमा! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं संखस्स वेलंधरणागरायस्स संखे णामं आवास पव्वए पण्णत्ते। तं चेव पमाणं णवरं सव्वरयणामए अच्छे जाव पडिरूवे। से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं जाव अट्ठो बहूओ खुड्डाखुड्डियाओ जाव बहूइं उप्पलाइं संखप्पभाइं संखवण्णाइं संखवण्णप्पभाइं संखे एत्थ देवे महिड्ढिए जाव रायहाणीए पच्चत्थिमेणं संखस्स आवासपव्वयस्स संखा णाम रायहाणी तं चेव पमाणं॥

भावार्थ - हे भगवन्! शंख नामक वेलंधर नागराज का शंख नामक आवास पर्वत कहां कहा गया है?

हे गौतम! जंबूद्वीप के मेरु पर्वत के पश्चिम में बयालीस हजार योजन आगे जाने पर शंख वेलंधर नागराज का शंख नामक आवास पर्वत है। उसका प्रमाण गोस्तूप की तरह है। विशेषता यह है कि यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्व रत्नमय है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है। वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखंड से घिरा हुआ है यावत् यह शंख नामक आवास पर्वत क्यों कहा जाता है?

हे गौतम! उस शंख आवास पर्वत पर छोटी छोटी बावड़ियां आदि है जिनमें बहुत से उत्पल आदि हैं जो शंख की आभा वाले, शंख के रंग वाले हैं और शंख की आकृति वाले हैं वहां शंख नामक महर्द्धिक देव रहता है। वह शंख नामक राजधानी का आधिपत्य करता हुआ विचरता है। शंख नामक राजधानी शंख आवास पर्वत के पश्चिम में है आदि विजया राजधानी के समान प्रमाण आदि कह देना चाहिये।

कहि णं भंते! मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स उदगसीमाए णामं आवासपव्वए पण्णत्ते?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स उदगसीमाए णामं आवासपव्वए पण्णत्ते तं चेव पमाणं णवरि सव्वफलिहामए अच्छे जाव पडिरूवे अट्ठो, गोयमा! दगसीमंते णं आवासपव्वए सीयासीयोयगाणं महाणईणं तत्थ गओ सोए पडिहम्मइ से तेणट्ठेणं जाव णिच्चे, मणोसिलए एत्थ देवे महिड्ढिए जाव से णं तत्थ चउण्हं सामाणिय साहस्सीणं जाव विहरइ॥

कहि णं भंते! मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स मणोसिला णामं रायहाणी पण्णत्ता?

गोयमा! दगसीमस्स आवासपव्वयस्स उत्तरेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता अण्णंमि लवणे एत्थ णं मणोसिलिया णाम रायहाणी पण्णत्ता तं चेव पमाणं जाव मणोसिलए देवे।

कणगंकरययफालियमया य वेलंधराणमावासा।
अणुवेलंधरराईण पव्वया होंति रयणमया॥ १॥॥ १५९॥

भावार्थ - हे भगवन्! मनःशिलक वेलंधर नागराज का दकसीम नामक आवास पर्वत किस स्थान पर है?

हे गौतम! जंबूद्वीप के मेरु पर्वत की उत्तरदिशा में लवणसमुद्र में बयालीस हजार योजन आगे जाने पर मनःशिलक वेलंधर नागराज का दकसीम नामक आवास पर्वत है। उसका प्रमाण आदि पूर्ववत् कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि यह सर्वात्मना स्फटिक रत्नमय है। स्वच्छ यावत् प्रतिरूप है यावत् यह दकसीम क्यों कहा जाता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे गौतम! इस दकसीम आवास पर्वत से शीता शीतोदा महानदियों का प्रवाह यहां आकर प्रतिहत हो जाता है (लौट जाता है)। इसलिए यह उदक की सीमा करने वाला होने से दकसीम कहलाता है। यह शाश्वत नित्य है। यहां मनःशिलक नाम का महर्द्धिक देव रहता है यावत् वह चार हजार सामानिक देवों का आधिपत्य करता हुआ विचरता है।

हे भगवन्! मनःशिलक वेलंधर नागराज की मनःशिला राजधानी कहां है?

हे गौतम! दकसीम आवास पर्वत के उत्तर में तिरछी दिशा में असंख्यात द्वीप समुद्रों को पार करने पर अन्य लवण समुद्र में मनःशिला नाम की राजधानी है। उसका प्रमाण आदि सारा वर्णन विजया राजधानी के समान कह देना चाहिये यावत् वहां एक पल्योपम की स्थिति वाला मनःशिलक नामक महर्द्धिक देव रहता है।

वेलंधर नागराजाओं के आवास पर्वत क्रमशः कनकमय, अंक रत्नमय, रजतमय और स्फटिकमय हैं। अनुवेलंधर नागराजों के पर्वत रत्नमय ही हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वेलंधर नागराजों के आवास पर्वत, उनके महर्द्धिक देवों और उनकी राजधानियों का वर्णन किया गया है।

अनुवेलंधर नागराज देवों का वर्णन

कइ णं भंते! अणुवेलंधरणागरायाणो पण्णत्ता? गोयमा! चत्तारि अणुवेलंधरणागरायाओ पण्णत्ता, तंजहा-कक्कोडए कद्दमए केलासे अरुणप्पभे। एएसि णं भंते! चउण्हं अणुवेलंधरणागरायाणं कइ आवासपव्वया पण्णत्ता? गोयमा! चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता, तंजहा-कक्कोडए १ कद्दमए २ कइलासे ३ अरुणप्पभे ४॥

भावार्थ - हे भगवन्! अनुवेलंधर नागराज कितने हैं?

हे गौतम! अनुवेलंधर नागराज चार प्रकार के कहे गये हैं। यथा - कर्कोटक, कर्दम, कैलाश और अरुणप्रभ।

हे भगवन्! इन चार अनुवेलंधर नागराजों के कितने आवास पर्वत हैं?

हे गौतम! अनुवेलंधर नागराजों के चार आवास पर्वत हैं। वे इस प्रकार हैं - कर्कोटक, कर्दम, कैलाश और अरुणप्रभ।

विवेचन - वेलंधर नागराजों की आज्ञा में चलने वाले देव अनुवेलंधर नागराज कहलाते हैं।

कहि णं भंते! कक्कोडगस्स अणुवेलंधरणागरायस्स कक्कोडए णामं आवासपव्वए पण्णत्ते? गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं कक्कोडगस्स णागरायस्स कक्कोडए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णामं आवासपव्वए पण्णत्ते सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं तं चेव पमाणं जं गोथूभस्स णवरि सव्वरयणामए अच्छे जाव णिरवसेसं जाव सीहासणं सपरिवारं अट्ठो से बहूइं उप्पलाइं० कक्कोडगप्पभाइं सेसं तं चेव णवरि कक्कोडगपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेणं, एवं तं चेव सव्वं, कद्दमस्सवि सो चेव गमओ अपरिसेसिओ, णवरि दाहिणपुरच्छिमेणं आवासो विज्जुप्पभा रायहाणी दाहिणपुरत्थिमेणं, कइलासेवि एवं चेव, णवरि दाहिणपच्चत्थिमेणं कइलासावि रायहाणी ताए चेव दिसाए, अरुणप्पभेवि उत्तरपच्चत्थिमेणं रायहाणीवि ताए चेव दिसाए, चत्तारि विगप्पमाणा सव्वरयणामया य॥ १६०॥

भावार्थ - हे भगवन्! कर्कोटक अनुवेलंधर नागराज का कर्कोटक नामक आवास पर्वत कहां कहा गया है?

हे गौतम! जंबूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तरपूर्व में लवण समुद्र में बयालीस हजार योजन आगे जाने पर कर्कोटक नागराज का कर्कोटक आवास पर्वत है जो सतरह सौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊंचा है आदि वही प्रमाण कहना चाहिये जो गोस्तूप पर्वत का है। विशेषता यह है कि यह सर्वात्मना रत्नमय है स्वच्छ है यावत् सपरिवार सिंहासन का वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिये। कर्कोटक नाम देने का कारण यह है कि कर्कोटक आवास पर्वत पर छोटी छोटी बावड़ियां है जिनमें कर्कोटक के आकार और वर्ण के उत्पल कमल आदि हैं अतः वह कर्कोटक कहा जाता है शेष सारा वर्णन पूर्वानुसार समझना चाहिये यावत् उसकी राजधानी कर्कोटक पर्वत के उत्तरपूर्व में तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्र पार करने पर अन्य लवण समुद्र में है प्रमाण आदि पूर्ववत् कह देने चाहिये।

कर्दम आवास पर्वत का वर्णन भी पूर्वानुसार है। विशेषता यह है कि मेरु पर्वत के दक्षिण-पूर्व (आग्नेय कोण) में लवण समुद्र में ४२००० योजन आगे जाने पर कर्दम नामक आवास पर्वत है इसकी विद्युत्प्रभा नामक राजधानी कर्दम पर्वत से दक्षिण-पूर्व में असंख्यात द्वीप समुद्र पार करने पर अन्य लवण समुद्र में है आदि सारा वर्णन विजया राजधानी की तरह समझ लेना चाहिये।

कैलाश नामक आवास पर्वत के विषय में सारा वर्णन पूर्वानुसार है। विशेषता यह है कि यह मेरु पर्वत से दक्षिण पश्चिम (नैर्ऋत्य कोण) में है। इसकी कैलाशा नामक राजधानी, कैलाश पर्वत के दक्षिण पश्चिम में असंख्यात द्वीप समुद्र पार करने पर दूसरे लवण समुद्र में है।

अरुणप्रभ नामक आवास पर्वत मेरु पर्वत के उत्तर-पश्चिम (वायव्य कोण) में है। राजधानी इस आवास पर्वत के उत्तर पश्चिम में असंख्य द्वीप समुद्रों को पार करने पर अन्य लवण समुद्र में है। शेष सारा वर्णन विजया राजधानी की तरह है। ये चारों आवास पर्वत एक ही प्रमाण के हैं और सभी रत्नमय हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गौतमद्वीप का वर्णन

कहि णं भंते! सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स गोयमदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स गोयमदीवे णामं दीवे पण्णत्ते, बारसजोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं सत्ततीसं जोयणसहस्साइं णव य अडयाले जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं जंबूदीवंतेणं अद्धेगूणणउए जोयणाइं चत्तालीसं पंचणउइभागे जोयणस्स ऊसिए जलंताओ लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिए जलंताओ॥

कठिन शब्दार्थ - **लवणाहिवइस्स** - लवणाधिपति का, **सुट्ठियस्स** - सुस्थित देव का, **जलंताओ**- जलान्त से।

भावार्थ - हे भगवन्! लवणाधिपति सुस्थित देव का गौतम द्वीप कहां है?

हे गौतम! जंबूद्वीप के मेरु पर्वत के पश्चिम में लवण समुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर लवणाधिपति सुस्थित देव का गौतम द्वीप नाम का द्वीप है। वह गौतम द्वीप बारह हजार योजन लम्बा चौड़ा और सैंतीस हजार नौ सौ अड़तालीस (३७९४८) योजन से कुछ कम परिधि वाला है। यह जंबूद्वीप के अन्त की दिशा में साढ़े अठ्यासी ($८८\frac{१}{२}$) योजन $\frac{४०}{९५}$ योजन जलान्त से ऊपर ऊठा हुआ है तथा लवण समुद्र की ओर जलान्त से दो कोस ऊपर उठा हुआ है।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता तहेव वण्णओ दोण्हवि।

गोयमदीवस्स णं दीवस्स अंतो जाव बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए - आलिंग० जाव आसयंति०। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स एगे महं अइक्कीलावासे णामं भोमेज्जविहारे पण्णत्ते बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं एक्कत्तीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे सव्वो भवणवण्णओ भाणियव्वो।

अइक्कीलावासस्स णं भोमेज्जविहारस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीणं फासो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - यह गौतम द्वीप एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ है। यहां दोनों का वर्णन कह देना चाहिये।

गौतमद्वीप के अंदर यावत् बहुसमरमणीय भूमिभाग है। उस का भूमिभाग मुरज (मृदंग) के मढे हुए चमड़े की तरह समतल है आदि सब वर्णन कहना चाहिये यावत् वहां बहुत से वाणव्यंतर देव और देवियां उठती बैठती है आदि। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्य भाग में लवणाधिपति सुस्थित देव का एक विशाल अतिक्रीडावास नामक भौमेय विहार है जो साढे बासठ योजन ऊंचा और सवा इकतीस योजन चौड़ा है, अनेक सौ स्तंभों पर सुस्थित है आदि भवन का सारा वर्णन कह देना चाहिये।

अतिक्रीडावास नामक भौमेय विहार में बहुसमरमणीय भूमिभाग कहा गया है यावत् मणियों के स्पर्श तक का वर्णन समझना चाहिये।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ एगा मणिपेढिया पण्णत्ता। सा णं मणिपेढिया दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणबाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा जाव पडिरूवा। तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थ णं देवसयणिज्जे पण्णत्ते वण्णओ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-गोयमदीवे दीवे २? गोयमा! गोयमदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहूइं उप्पलाइं जाव गोयमप्पभाइं से एएणट्ठेणं गोयमा! जाव णिच्चे। कहि णं भंते! सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स सुट्ठिया णामं रायहाणी पण्णत्ता? गोयमा! गोयमदीवस्स पच्चत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे जाव अण्णंमि लवणसमुद्दे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एवं तहेव सव्वं णेयव्वं जाव सुट्ठिए देवे॥ १६१॥

भावार्थ - उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्यभाग में एक मणिपीठिका है। वह मणिपीठिका दो योजन लम्बी चौड़ी, एक योजन की मोटी और सर्वात्मना मणिमय है, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक देवशयनीय है। उसका वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये।

हे भगवन्! वह गौतमद्वीप, गौतमद्वीप क्यों कहलाता है?

हे गौतम! गौतमद्वीप में स्थान स्थान पर (यहां वहां) बहुत से उत्पल कमल आदि हैं जो गौतम-गोमेद रत्न की आभा एवं वर्ण वाले हैं इसलिये यह गौतम द्वीप कहलाता है यावत् गौतमद्वीप नाम शाश्वत नित्य है।

हे भगवन्! लवणाधिपति सुस्थित देव की सुस्थिता नामक राजधानी कहां है?

हे गौतम! गौतमद्वीप के पश्चिम में तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों को पार करने पर अन्य लवण समुद्र में सुस्थिता राजधानी है जो बारह हजार योजन आगे जाने पर आती है इत्यादि सारा कथन राजधानी के समान समझना चाहिये यावत् वहां सुस्थित नाम का महर्द्धिक देव है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - गौतमद्वीप का सर्वाग्र ५३७ $\frac{४२}{९५}$ योजन से कुछ कम गणित से निकलता है। जिसमें से समुद्र की तरफ आधा योजन जल से बाहर है और जल की ऊंचाई के कारण १७६ $\frac{८०}{९५}$ योजन जल में डुबा हुआ है। समुद्री गहराई के कारण २५२ $\frac{६०}{९५}$ योजन का भाग भी जल में आया हुआ है। इस प्रकार ४२९ $\frac{४५}{९५}$ योजन जितना समुद्र की तरफ पानी से ढका हुआ है। जमीन के उपरीय भाग का एक चतुर्थांश जमीन में होने से लगभग १०७ $\frac{४४}{९५}$ योजन जमीन में गया हुआ है। इस प्रकार सर्वाग्र ($\frac{४८}{९५}$ + १७६ $\frac{८०}{९५}$ + २५२ $\frac{६०}{९५}$ + १०७ $\frac{४४}{९५}$ = ५३७ $\frac{४२}{९५}$) योजन के लगभग होता है। जम्बूद्वीप की तरह गौतमद्वीप का भाग ८८ $\frac{४०}{९५}$ और आधा योजन अर्थात् $\frac{४८}{९५}$ योजन के लगभग जल से बाहर है। ८८ $\frac{४०}{९५}$ जल में डुबा हुआ, १२६ $\frac{३०}{९५}$ योजन समुद्र की गहराई के कारण पानी में आया हुआ एवं २३३ $\frac{७४}{९५}$ योजन जमीन में आया हुआ। इस प्रकार कुल मिलाकर ५३७ $\frac{४२}{९५}$ योजन (८८ $\frac{४०}{९५}$ + $\frac{४८}{९५}$ + ८८ $\frac{४०}{९५}$ + १२६ $\frac{३०}{९५}$ + २३३ $\frac{७४}{९५}$ = ५३७ $\frac{४२}{९५}$ योजन) सर्वाग्र होता है। **मानचित्र अगले पृष्ठ क्रमांक १६३ पर देखें।**

जंबूद्वीप के चन्द्रद्वीपों का वर्णन

कहि णं भंते! जंबुद्दीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं जंबूदीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता, जंबुद्दीवंतेणं अद्धेगूणणउइजोयणाइं चत्तालीसं पंचाणउइं भागे जोयणस्स ऊसिया जलंताओ लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिया जलंताओ बारस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, सेसं तं चेव जहा गोयमदीवस्स परिक्खेवो पउमवरवेइया पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता दोण्हवि वण्णओ बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा जाव जोइसिया देवा आसयंति०।

भावार्थ - हे भगवन्! जंबूद्वीप के दो चन्द्रमाओं के दो चन्द्रद्वीप कहां हैं?

हे गौतम! जंबूद्वीप के मेरु पर्वत के पूर्व में लवण समुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर वहां जम्बूद्वीप के दो चन्द्रमाओं के दो चन्द्रद्वीप हैं। ये द्वीप जंबूद्वीप की दिशा में साढे अठासी (८८ $\frac{१}{२}$) योजन और $\frac{४०}{९५}$ योजन पानी से ऊपर उठे हुए हैं और लवण समुद्र की दिशा में दो कोस पानी से ऊपर उठे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लवण समुद्र में आये हुए "गौतम द्वीप, चन्द्र द्वीप" आदि का मानचित्र

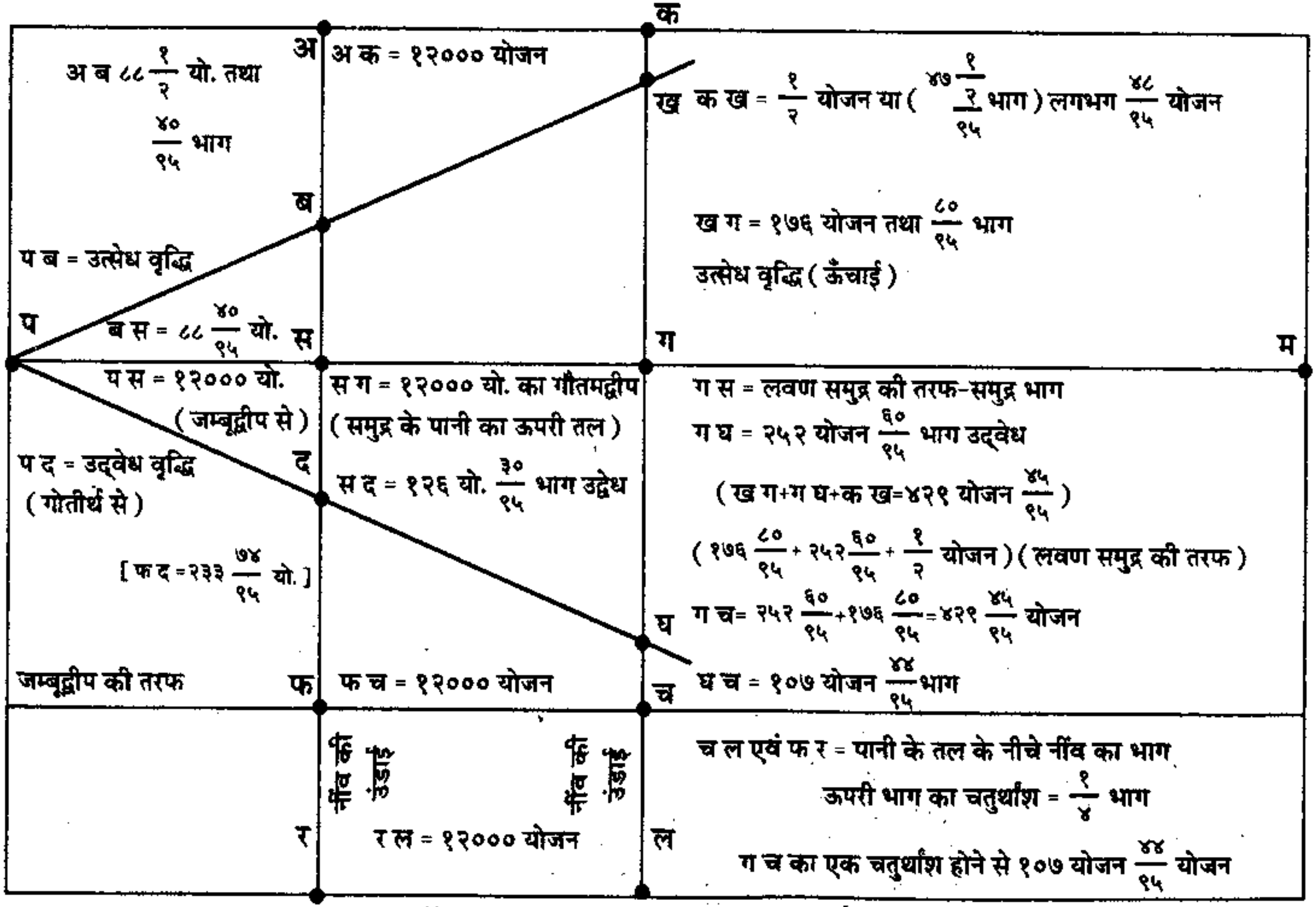

गौतम द्वीप का सर्वाग्र = ५३७ $\frac{४२}{९५}$ योजन (८८ $\frac{४०}{९५}$ + $\frac{४८}{९५}$ + ८८ $\frac{४०}{९५}$ + १२६ $\frac{३०}{९५}$ + २३३ $\frac{७४}{९५}$ = ५३७ $\frac{४२}{९५}$ योजन "जम्बूद्वीप की तरफ")

गौतम द्वीप का सर्वाग्र = ५३७ $\frac{४२}{९५}$ योजन ($\frac{४८}{९५}$ + १७६ $\frac{८०}{९५}$ + २५२ $\frac{६०}{९५}$ + १०७ $\frac{४४}{९५}$ योजन "लवण समुद्र की तरफ")

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुए हैं। ये बारह हजार योजन लम्बे चौड़े हैं शेष परिधि आदि सारा वर्णन गौतमद्वीप के समान समझना चाहिये। ये प्रत्येक पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से घिरे हुए हैं। दोनों का वर्णन कहना चाहिये। उन द्वीपों में बहुसमरमणीय भूमिभाग हैं यावत् वहां बहुत से ज्योतिषी देव उठते-बैठते हैं।

तेसि णं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पासायवडेंसगा बावट्ठि जोयणाइं० बहुमज्झ० मणिपेढियाओ दो जोयणाइं जाव सीहासणा सपरिवारा भाणियव्वा तहेव अट्ठो, गोयमा! बहूसु खुड्डासु खुड्डियासु बहूइं उप्पलाइं० चंदवण्णाभाइं चंदा एत्थ देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, ते णं तत्थ पत्तेयं पत्तेयं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव चंददीवाणं चंदाण य रायहाणीणं अण्णेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! चंददीवा जाव णिच्चा।

कहि णं भंते! जंबुद्दीवगाणं चंदाणं चंदाओ णाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! चंददीवाणं पुरत्थिमेणं तिरियं जाव अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तं चेव पमाणं जाव एमहिड्ढिया चंदा देवा २॥

भावार्थ - उन बहुसमरमणीय भूमिभागों में प्रासादावतंसक हैं जो साढे बासठ योजन ऊंचे हैं आदि वर्णन गौतमद्वीप की तरह समझना चाहिये मध्यभाग में दो योजन लंबी चौड़ी, एक योजन मोटी मणिपीठिकाएं हैं आदि सारा वर्णन सपरिवार सिंहासन तक पूर्वानुसार कह देना चाहिये।

हे भगवन्! ये चन्द्र द्वीप क्यों कहलाते हैं?

हे गौतम! उन द्वीपों की बहुत से छोटी छोटी बावड़ियों आदि में बहुत से उत्पल आदि कमल हैं जो चन्द्रमा के समान आकृति और वर्ण वाले हैं और वहां पल्योपम की स्थिति वाले चन्द्र नामक महर्द्धिक देव रहते हैं। वे वहां अलग अलग चार हजार सामानिक देवों यावत् चन्द्र द्वीपों, चन्द्रा राजधानियों और अन्य बहुत से ज्योतिषी देव देवियों का आधिपत्य करते हुए अपने शुभ कर्मों का अनुभव करते हुए विचरते हैं। इस कारण हे गौतम! वे चन्द्रद्वीप कहलाते हैं। हे गौतम! वे चन्द्रद्वीप शाश्वत नाम वाले हैं, नित्य हैं।

हे भगवन्! जंबूद्वीप के चन्द्रमाओं की चन्द्रा नामक राजधानियां कहां कही गई हैं?

हे गौतम! चन्द्रद्वीपों के पूर्व में तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों को पार करने पर अन्य जंबूद्वीप में बारह हजार योजन आगे जाने पर ये राजधानियां हैं। उनका प्रमाण आदि सारा वर्णन गौतम आदि राजधानियों के समान समझना चाहिये यावत् वहां चन्द्र नामक महर्द्धिक देव हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जंबूद्वीप के सूर्यद्वीपों का वर्णन

कहि णं भंते! जंबुद्दीवगाणं सूराणं सूरदीवाणामं दीवा पण्णत्ता?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तं चेव उच्चत्तं आयामविक्खंभेणं परिक्खेवो वेइया वणसंडा भूमिभागा जाव आसयंति० पासायवडेंसगाणं तं चेव पमाणं मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा अट्ठो उप्पलाइं० सूरप्पभाइं सूरा एत्थ देवा जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे सेसं तं चेव जाव सूरा देवा २॥ १६२॥

भावार्थ - हे भगवन्! जंबूद्वीप के दो सूर्यों के दो सूर्य द्वीप कहां कहे गये हैं?

हे गौतम! जंबूद्वीप के मेरु पर्वत के पश्चिम में लवण समुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर जंबूद्वीप के दो सूर्यों के दो सूर्य द्वीप हैं। उनका उच्चत्व, आयाम-विष्कंभ, परिधि, वेदिका, वनखंड भूमिभाग, वहां देव देवियों का उठना, बैठना, प्रासादावतंसक, उनका प्रमाण, मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन आदि का वर्णन चन्द्रद्वीप की तरह समझना चाहिये।

हे भगवन्! सूर्य द्वीप, सूर्य द्वीप क्यों कहलाते हैं?

हे गौतम! उन द्वीपों की बावड़ियों आदि में सूर्य के समान आकृति और वर्ण वाले बहुत सारे उत्पल आदि कमल हैं इसलिये वे सूर्यद्वीप कहलाते हैं। ये सूर्यद्वीप शाश्वत नाम वाले नित्य हैं। इनमें सूर्यदेव, सामानिक देव आदि का एवं ज्योतिषी देव देवियों का आधिपत्य करते हुए विचरते हैं यावत् इनकी राजधानियां अपने अपने द्वीपों से पश्चिम में असंख्यात द्वीप समुद्रों को पार करने पर अन्य जंबूद्वीपों में बारह हजार योजन आगे जाने पर आती हैं। उनका प्रमाण आदि चन्द्रादि राजधानियों के समान समझना चाहिये यावत् वहां सूर्य नामक महर्द्धिक देव हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जंबूद्वीपगत चन्द्र द्वीपों और सूर्य द्वीपों का वर्णन किया गया है।

लवण समुद्र के चंद्रद्वीप सूर्य द्वीप

कहि णं भंते! अब्भिंतरलावणगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता? गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं अब्भिंतरलावणगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता, जहा जंबुद्दीवगा चंदा तहा भाणियव्वा णवरि रायहाणीओ अण्णंमि लवणे सेसं तं चेव। एवं अब्भिंतरलावणगाणं सूराणवि लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे भगवन्! आभ्यंतर लावणिक (लवण समुद्र में रह कर जंबूद्वीप की दिशा में शिखा से पहले विचरने वाले) चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहां हैं?

हे गौतम! जंबूद्वीप के मेरु पर्वत के पूर्व में लवण समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर आभ्यंतर लावणिक चन्द्रों के चन्द्र नामक द्वीप हैं। इनका सारा वर्णन जंबूद्वीप के चन्द्रद्वीपों की तरह कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि इनकी राजधानियां अन्य लवण समुद्र में हैं। शेष वर्णन पूर्वानुसार समझना चाहिये। इसी तरह आभ्यंतर लावणिक सूर्यों के सूर्यद्वीप लवण समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर स्थित हैं आदि राजधानी पर्यंत सारा वर्णन चन्द्रद्वीपों के समान समझना चाहिये।

कहि णं भंते! बाहिरलावणगाणं चंदाणं चंददीवाणाम दीवा पण्णत्ता?

गोयमा! लवण-समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ लवणसमुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं बाहिरलावणगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता धायइसंडदीवंतेणं अद्धेगूणणवइजोयणाइं चत्तालीसं च पंचणउइभागे जोयणस्स ऊसिया जलंताओ लवणसमुद्दतेणं दो कोसे ऊसिया बारस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पउमवरवेइया वणसंडा बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा मणिपेढिया-सीहासणा सपरिवारा सो चेव अट्ठो रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे० अण्णंमि लवणसमुद्दे तहेव सव्वं।

भावार्थ - हे भगवन्! बाह्य लावणिक (लवण समुद्र में रह कर शिखा से बाहर विचरण करने वाले) चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहां है?

हे गौतम! लवण समुद्र की पूर्वीय वेदिकान्त से लवण समुद्र के पश्चिम में बारह हजार योजन जाने पर बाह्य लावणिक चन्द्रों के चन्द्र नामक द्वीप हैं जो धातकीखंड द्वीप के अन्त की ओर साढे अठ्यासी (८८$\frac{१}{२}$) योजन और $\frac{४०}{९५}$ योजन जलांत से ऊपर हैं और लवण समुद्रान्त की ओर जलांत से दो कोस ऊंचे हैं। ये बारह हजार योजन के लम्बे चौड़े, पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, बहुसमरमणीय भूमिभाग, मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन, नाम का प्रयोजन राजधानियां, जो अपने अपने द्वीप के पूर्व में तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों को पार करने पर अन्य लवणसमुद्र में हैं आदि सारा वर्णन पूर्वानुसार समझना चाहिये।

कहि णं भंते! बाहिरलावणगाणं सूराणं सूरदीवा णामं दीवा पण्णत्ता?

गोयमा! लवणसमुद्दपच्चत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ लवणसमुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं धायइसंडदीवंतेणं अद्धेगूणणउइं जोयणाइं चत्तालीसं च पंचणउइभागे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जोयणस्स दो कोसे ऊसिया सेसं तहेव जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे लवणे चेव बारस जोयणा तहेव सव्वं भाणियव्वं॥ १६३॥

भावार्थ - हे भगवन्! बाह्य लावणिक सूर्यों के सूर्यद्वीप कहां हैं?

हे गौतम! लवण समुद्र की पश्चिमी वेदिकान्त से लवण समुद्र के पूर्व में बारह हजार योजन जाने पर बाह्य लावणिक सूर्यों के सूर्यद्वीप हैं जो धातकीखंड द्वीपांत की ओर साढे अठ्यासी ($८८\frac{१}{२}$) योजन और $\frac{४०}{९५}$ योजन जलांत से ऊपर हैं और लवण समुद्र की तरफ जलांत से दो कोस ऊंचे हैं। शेष सारी वक्तव्यता राजधानी पर्यंत पूर्वानुसार कह देनी चाहिये। ये राजधानियां अपने अपने द्वीपों से पश्चिम में तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्र पार करने के बाद अन्य लवण समुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर स्थित हैं, आदि सारा वर्णन कह देना चाहिये।

विवेचन - सभी चन्द्रमाओं के द्वीप पूर्व दिशा में आये हुए हैं। इसका कारण यह है कि चन्द्रमा महर्द्धिक होने से उसके लिए पूर्व दिशा की व्यवस्था है। सभी सूर्यों के द्वीप पश्चिम दिशा में आये हुए हैं। चन्द्रमा से सूर्य अल्पर्द्धिक होने से उनके लिए पश्चिम दिशा की व्यवस्था है। यहां पर क्षेत्र दिशा (मेरु पर्वत के रुचक प्रदेशों से प्रारम्भ हुई) से उपर्युक्त वर्णन समझना चाहिये।

धातकीखंड के चन्द्र द्वीपों आदि का वर्णन

कहि णं भंते! धायइसंडदीवगाणं चंदाणं चंददीवा० पण्णत्ता?

गोयमा! धायइसंडस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ कालोयं णं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं धायइसंडदीवाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता, सव्वओ समंता दो कोसा ऊसिया जलंताओ बारस जोयणसहस्साइं तहेव विक्खंभपरिक्खेवो भूमिभागो पासायवडिंसया मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा अट्ठो तहेव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं अण्णंमि धायइसंडे दीवे सेसं तं चेव, एवं सूरदीवावि, णवरं धायइसंडस्स दीवस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ कालोयं णं समुद्दं बारस जोयण० तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ सूराणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णंमि धायइसंडे दीवे सव्वं तहेव॥ १६४॥

भावार्थ - हे भगवन्! धातकीखंडद्वीप के चन्द्रों के चन्द्र द्वीप कहां हैं?

हे गौतम! धातकीखंड द्वीप की पूर्वी वेदिकान्त से कालोदधि समुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर धातकीखंड के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप हैं। वे सब ओर से जलांत से दो कोस ऊंचे हैं। ये बारह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हजार योजन के लम्बे चौड़े हैं। इनकी परिधि, भूमिभाग, प्रासादावतंसक, मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन, नाम प्रयोजन, राजधानियां आदि पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये। वे राजधानियां अपने-अपने द्वीपों से पूर्व दिशा में अन्य धातकीखंड द्वीप में हैं। शेष सारी वक्तव्यता पूर्ववत् है। इसी प्रकार धातकीखंड के सूर्यद्वीपों के विषय में भी समझना चाहिये। विशेषता यह है कि धातकीखंड की पश्चिमी वेदिकान्त से कालोदधि समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर ये द्वीप आते हैं। इन सूर्यों की राजधानियां सूर्य द्वीपों के पश्चिम में असंख्य द्वीप समुद्रों को पार करने पर अन्य धातकीखंड द्वीप में हैं आदि सारा वर्णन पूर्वानुसार समझना चाहिये।

विवेचन - धातकीखंड में १२ चन्द्र और १२ सूर्य हैं। अतः इनके चन्द्रद्वीप और सूर्यद्वीप भी इतने ही है। प्रस्तुत सूत्र में धातकीखंड द्वीपगत चन्द्रद्वीपों और सूर्यद्वीपों का वर्णन किया गया है।

कालोदधि समुद्र के चन्द्रद्वीपों आदि का वर्णन

कहि णं भंते! कालोयगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?

गोयमा! कालोयसमुद्दस्स पुरच्छिमिल्लाओ वेइयंताओ कालोयण्णं समुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं कालोयगचंदाणं चंददीवा० सव्वओ समंता दो कोसा ऊसिया जलंताओ सेसं तहेव जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरच्छिमेणं अण्णंमि कालोयगसमुद्दे बारस जोयणसहस्साइं तं चेव सव्वं जाव चंदा देवा २। एवं सूराणवि, णवरं कालोयगपच्चत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ कालोयसमुद्दपुरच्छिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तहेव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णंमि कालोयगसमुद्दे तहेव सव्वं। एवं पुक्खरवरगाणं चंदाणं पुक्खरवरस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ पुक्खरसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता चंददीवा अण्णंमि पुक्खरवरे दीवे रायहाणीओ तहेव। एवं सूराण वि दीवा पुक्खरवरदीवस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ पुक्खरोदं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ दीविल्लागाणं दीवे समुद्दगाणं समुद्दे चेव एगाणं अब्भिंतरपासे एगाणं बाहिरपासे रायहाणीओ दीविल्लगाणं दीवेसु समुद्दगाणं समुद्देसु सरिसणामएसु॥ १६५॥

भावार्थ - हे भगवन्! कालोदधि समुद्र के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहां हैं?

हे गौतम! कालोदधि समुद्र के पूर्वीय वेदिकान्त से कालोदधि समुद्र के पश्चिम में बारह हजार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योजन आगे जाने पर कालोदधि समुद्र के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप हैं। ये सब ओर से जलांत से दो कोस ऊंचे हैं। शेष सारा वर्णन पूर्ववत् कह देना चाहिये यावत् राजधानियां अपने अपने द्वीप के पूर्व में असंख्य द्वीप समुद्रों के बाद अन्य कालोदधि समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर आती है, आदि सारा वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये यावत् वहां चन्द्र देव हैं।

इसी प्रकार कालोदधि समुद्र के सूर्य द्वीपों के विषय में समझना चाहिये। विशेषता यह है कि कालोदधि समुद्र के पश्चिमी वेदिकान्त से और कालोदधि समुद्र के पूर्व में बारह हजार योजन जाने पर ये द्वीप आते हैं। इसी तरह पूर्वानुसार समझना चाहिये यावत् इनकी राजधानियां अपने अपने द्वीपों के पश्चिम में अन्य कालोदधि में हैं आदि सारा वर्णन पूर्ववत् कह देना चाहिये। इसी प्रकार पुष्करवरद्वीप के पूर्वी वेदिकान्त से पुष्करवरसमुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर चन्द्रद्वीप हैं इत्यादि पूर्वानुसार समझना चाहिये। अन्य पुष्करवरद्वीप में उनकी राजधानियां हैं। राजधानियों के विषय में सारा वर्णन पूर्वानुसार है। इसी तरह पुष्करवरद्वीप के सूर्यों के सूर्यद्वीप पुष्करवरद्वीप के पश्चिमी वेदिकान्त से पुष्करवर समुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर आते हैं आदि पूर्वानुसार जानना चाहिये यावत् राजधानियां अपने द्वीपों की पश्चिमी दिशा में तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों को पार करने पर अन्य पुष्करवर द्वीप में बारह हजार योजन की दूरी पर हैं।

इसी प्रकार शेष द्वीपगत चन्द्रों की चन्द्रद्वीपगत पूर्व दिशा की वेदिकान्त से अन्य समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर कहनी चाहिये। शेष द्वीपगत सूर्यों के सूर्यद्वीप अपने द्वीपगत पश्चिमी वेदिकान्त से अन्य समुद्र में है। चन्द्रों की राजधानियां अपने अपने चन्द्रद्वीपों से पूर्व दिशा में अन्य अपने अपने नाम वाले द्वीप में हैं सूर्यों की राजधानियां अपने अपने सूर्य द्वीपों से पश्चिम दिशा में अन्य अपने अपने नाम वाले द्वीप में बारह हजार योजन के बाद हैं।

शेष समुद्र के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप अपने अपने समुद्र के पूर्व वेदिकान्त से पश्चिमी दिशा में बारह हजार योजन के बाद हैं। सूर्यों के सूर्यद्वीप अपने अपने समुद्र के पश्चिमी वेदिकान्त से पूर्व दिशा में बारह हजार योजन के बाद हैं। चन्द्रों की राजधानियां अपने अपने द्वीपों की पूर्व दिशा में अन्य अपने जैसे नाम वाले समुद्रों में हैं। सूर्यों की राजधानियां अपने अपने द्वीपों की पश्चिम दिशा में हैं।

इमे णामा अणुगंतव्वा-

जंबुद्दीवे लवणे धायइ कालोद पुक्खरे वरुणे।
खीर घय इक्खु(वरो य) णंदी अरुणवरे कुंडले रुयगे॥ १॥
आभरण-वत्थ-गंधे उप्पल-तिलए य पुढवि णिहि-रयणे।
वासहर-दह-णईओ विजया वक्खार-कप्पिंदा॥ २॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरमंदरमावासा कूडा णक्खत्तचंदसूरा य।
एवं भाणियव्वं॥ १६६॥

भावार्थ - असंख्यात द्वीप और समुद्रों में से कितनेक द्वीपों और समुद्रों के नाम इस प्रकार हैं -

जंबूद्वीप, लवण समुद्र, धातकीखंडद्वीप, कालोदधि समुद्र, पुष्करवरद्वीप, पुष्करवर समुद्र, वारुणिवरद्वीप, वारुणिवर समुद्र, क्षीरवरद्वीप, क्षीरवर समुद्र, घृतवरद्वीप, घृतवर समुद्र, इक्षुवरद्वीप, इक्षुवर समुद्र, नंदीश्वरद्वीप, नंदीश्वर समुद्र, अरुणवरद्वीप, अरुणवर समुद्र, कुण्डलद्वीप, कुण्डल समुद्र, रुचकद्वीप, रुचक समुद्र, आभरणद्वीप, आभरण समुद्र, वस्त्रद्वीप, वस्त्र समुद्र, गंधद्वीप, गंध समुद्र, उत्पलद्वीप, उत्पल समुद्र, तिलकद्वीप, तिलक समुद्र, पृथ्वीद्वीप, पृथ्वी समुद्र, निधिद्वीप, निधि समुद्र, रत्नद्वीप, रत्न समुद्र, वर्षधरद्वीप, वर्षधर समुद्र, द्रहद्वीप, द्रह समुद्र, नंदीद्वीप, नंदी समुद्र, विजयद्वीप, विजय समुद्र, वक्षस्कारद्वीप, वक्षस्कार समुद्र, कपिद्वीप, कपि समुद्र, इन्द्रद्वीप, इन्द्र समुद्र, पुरद्वीप, पुर समुद्र, मन्दर द्वीप, मन्दर समुद्र, आवास द्वीप, आवास समुद्र, कूट द्वीप, कूट समुद्र, नक्षत्र द्वीप, नक्षत्र समुद्र, चन्द्र द्वीप, चन्द्र समुद्र, सूर्य द्वीप, सूर्य समुद्र इत्यादि अनेक नाम वाले द्वीप और समुद्र हैं।

विवेचन - यहां पर उपर्युक्त मूल गाथाओं में से पहली गाथा में **'कालोद'** शब्द तक तो एक द्वीप एक समुद्र के हिसाब से अनुक्रम से नाम जानना चाहिये। इसके बाद **'पुक्खरे'** शब्द से **'णंदी'** शब्द तक उस उस नाम के क्रमशः एक द्वीप, एक समुद्र (जैसे पुष्करवर द्वीप, पुष्करवर समुद्र इत्यादि) के हिसाब से जानना चाहिये। इसके बाद **'अरुणवरे, कुण्डले, रुयगे'** इन तीन शब्दों से क्रमशः तीनों में त्रिप्रत्ययावतार करके द्वीप समुद्रों के नाम जानने चाहिये। जैसे - अरुण द्वीप, अरुण समुद्र, अरुणवर द्वीप, अरुणवर समुद्र, अरुणवराभास द्वीप, अरुणवराभास समुद्र आदि।

आगे की गाथाओं में जो नाम दिये हैं वे उन उन वस्तुओं के जितने प्रकार होवे उतने प्रकारों को त्रिप्रत्ययावतार करके द्वीप समुद्रों के नाम जानने चाहिये।

एक एक परिपाटी में संख्याता नाम आते हैं उन सब नामों में सबसे अन्त में सूर्य नाम के त्रिप्रत्ययावतार करके सूर्यवराभास द्वीप, सूर्यवराभास समुद्र नाम जानना चाहिये। इस प्रकार की असंख्याता परिपाटियां समझनी चाहिये। सब परिपाटियां पूरी होने के बाद अन्त में पांच नामों वाले द्वीप समुद्रों को एक एक नाम से जानना चाहिये। वे पांच नाम इस प्रकार हैं - देव द्वीप, देव समुद्र, नाग द्वीप, नाग समुद्र, यक्ष द्वीप, यक्ष समुद्र, भूत द्वीप, भूत समुद्र और स्वयंभूरमण द्वीप, स्वयंभूरमण समुद्र।

देवद्वीप आदि में चन्द्र द्वीप आदि

कहि णं भंते! देवद्दीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?

गोयमा! देवदीवस्स देवोदं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तेणेव कमेण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं देवद्दीवं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं देवदीवयाणं चंदाणं चंदाओ णामं रायहाणीओ पण्णत्ताओ, सेसं तं चेव, देवदीवचंदा दीवा, एवं सूराणवि, णवरं पच्चत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ पच्चत्थिमेणं च भाणियव्वा तंमि चेव समुद्दे॥

भावार्थ - हे भगवन्! देव द्वीपगत चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहां कहे गये हैं?

हे गौतम! देवद्वीप की पूर्व दिशा के वेदिकान्त से देवोद समुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर वहां देवद्वीप के चंद्रों के चन्द्रद्वीप हैं इत्यादि वर्णन पूर्वानुसार राजधानी तक कह देना चाहिये। अपने ही चन्द्रद्वीपों की पश्चिम दिशा से उसी देवद्वीप में असंख्यात हजार योजन जाने पर वहां देवद्वीप के चन्द्रों की चन्द्रा नामक राजधानियां हैं। शेष वर्णन विजया राजधानी के अनुसार कह देना चाहिये।

हे भगवन्! देवद्वीपगत सूर्यों के सूर्य द्वीप कहां हैं?

हे गौतम! देवद्वीप के पश्चिमी वेदिकान्त से देवोद समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर देवद्वीप के सूर्यों के सूर्यद्वीप हैं। अपने अपने सूर्यद्वीपों की पूर्व दिशा में उसी देवद्वीप में असंख्यात हजार योजन जाने पर उनकी राजधानियां हैं।

कहि णं भंते! देवसमुद्दगाणं चदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता? गोयमा! देवोदगस्स समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ देवोदगं समुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तेणेव कमेणं जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं देवोदगं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं देवोदगाणं चंदाणं चंदाओ णामं रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं चेव सव्वं एवं सूराणणि, णवरि देवोदगस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ देवादगसमुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता रायहाणीओ सगाणं सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं देवोदगं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं॥ एवं णागे जक्खे भूएवि चउण्हं दीवसमुद्दाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! देव समुद्र के चन्द्रों के चन्द्र नामक द्वीप कहां हैं?

उत्तर - हे गौतम! देवोदक समुद्र के पूर्वी वेदिकान्त से देवोदक समुद्र में पश्चिम दिशा में बारह हजार योजन जाने पर देवसमुद्र के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप है आदि क्रम से राजधानी तक कह देना चाहिये। उनकी राजधानियां अपने अपने द्वीपों के पश्चिम में देवोदक समुद्र में असंख्यात हजार योजन जाने पर आती है। शेष वर्णन विजया राजधानी के समान कह देना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवसमुद्र के सूर्यों के सूर्यद्वीपों के विषय में भी ऐसा ही कहना चाहिये। विशेषता यह है कि देवोदक समुद्र के पश्चिमी वेदिकांत से देवोदक समुद्र में पूर्व दिशा में बारह हजार योजन आगे जाने पर ये द्वीप हैं। इनकी राजधानियां अपने अपने द्वीपों के पूर्व में देवोदक समुद्र में असंख्यात हजार योजन जाने पर आती है। इसी प्रकार नाग, यक्ष, भूत और स्वयंभूरमण चारों द्वीपों और चारों समुद्रों के चन्द्र-सूर्य द्वीपों के विषय में कहना चाहिये।

स्वयंभूरमण द्वीप के चन्द्र सूर्य द्वीप

कहि णं भंते! सयंभूरमणदीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता? गोयमा! सयंभूरमणस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ सयंभूरमणोदगं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं तहेव रायहाणीओ सगाणं सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं सयंभूरमणोदगं समुद्दं पुरत्थिमेणं असंखेज्जाइं जोयण० तं चेव, एवं सूराणवि, सयंभूरमणस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ रायहाणीओ सगाणं सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमिल्लाणं सयंभूरमणोदं समुद्दं असंखेज्जा० सेसं तं चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्वयंभूरमण द्वीप के चन्द्रों के चन्द्र द्वीप नामक द्वीप कहां कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! स्वयंभूरमण द्वीप के पूर्वीय वेदिकान्त से स्वयंभूरमण समुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर स्वयंभूरमण द्वीप के चन्द्रों के चन्द्र नामक द्वीप हैं। उनकी राजधानियां अपने अपने द्वीपों के पूर्व में स्वयंभूरमण समुद्र के पूर्व दिशा की ओर असंख्यात हजार योजन आगे जाने पर आती है आदि वक्तव्यता पूर्ववत् कहनी चाहिये। इसी तरह सूर्यद्वीपों के विषय में भी कहना चाहिये। विशेषता यह है कि स्वयंभूरमण द्वीप की पश्चिमी वेदिकान्त से स्वयंभूरमण समुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर ये द्वीप स्थित हैं। इनकी राजधानियां अपने-अपने द्वीपों के पश्चिम में स्वयंभूरमण समुद्र में पश्चिम की ओर असंख्यात हजार योजन जाने पर आती है, इत्यादि सारा वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिये।

कहि णं भंते! सयंभूरमणसमुद्दगाणं चंदाणं० ?

गोयमा! सयंभूरमणस्स समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ सयंभूरमणं समुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता सेसं तं चेव। एवं सूराणवि, सयंभूरमणस्स पच्चत्थिमिल्लाओ सयंभूरमणोदं समुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं सयंभूरमणं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं सयंभूरमण जाव सूरा देवा २॥ १६७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्वयंभूरमण समुद्र के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहां कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! स्वयंभूरमण समुद्र के पूर्वी वेदिकान्त से स्वयंभूरमण समुद्र में पश्चिम की ओर बारह हजार योजन आगे जाने पर ये द्वीप आते हैं आदि सारा वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये। इसी तरह स्वयंभूरमण समुद्र के सूर्यों के विषय में भी समझना चाहिये। विशेषता यह है कि स्वयंभूरमण समुद्र के पश्चिमी वेदिकान्त से स्वयंभूरमण समुद्र में पूर्व की ओर बारह हजार योजन आगे जाने पर सूर्यों के सूर्यद्वीप आते हैं। इनकी राजधानियां अपने-अपने द्वीपों के पूर्व में स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्यात हजार योजन आगे जाने पर आती है यावत् वहां सूर्यदेव हैं।

अत्थि णं भंते! लवणसमुद्दे वेलंधराइ वा णागरायाइ वा खण्णाइ वा अग्घाइ वा सिंहाइ वा विजाईइ वा हासवट्टीइ वा? हंता अत्थि। जहा णं भंते! लवणसमुद्दे अत्थि वेलंधराइ वा णागराया० अग्घा० सिंहा० विजाईइ वा हासवट्टीइ वा तहा णं बाहिरएसुवि समुद्देसु अत्थि वेलंधराइ वा णागरायाइ वा० अग्घाइ वा सीहाइ वा विजाईइ वा हासवट्टीइ वा? णो इणट्ठे समट्ठे॥ १६८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या लवण समुद्र में वेलंधर नागराज हैं? क्या खन्ना, अग्घा, सीहा, विजाति मच्छप कच्छप हैं? क्या जल की वृद्धि और ह्रास है?

उत्तर - हाँ, गौतम हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! जैसे लवण समुद्र में वेलंधर नागराज हैं, अग्घा, खन्ना, सीहा, विजाति मच्छप कच्छप है, वैसे क्या अढाई द्वीप के बाहर भी ये सब हैं?

उत्तर - हे गौतम! बाह्य समुद्रों में ये सब नहीं है।

विवेचन - उपर्युक्त मूल पाठ में आये हुए अग्घा आदि शब्दों के अर्थ टीका व चूर्णि में 'मच्छ कच्छप विशेष' किया है किन्तु आगम से तो ऐसा अर्थ स्पष्ट नहीं होता है। संभावना है कि लम्बे समय से इन शब्दों के अर्थ की परम्पराएं नष्ट हो गई होगी। यदि इनका अर्थ 'मत्स्य कच्छप विशेष' ही किया जाय तब एक ही कुल के अवान्तर भेद समझने से स्वयंभूरमण समुद्र में भी सभी कुलों के होने पर भी किसी कुल के अवान्तर भेद नहीं होने पर भी आगम से बाधा नहीं आती है।

इस संबंध में गुरु भगवंतों का फरमाना यह है कि - अग्घा, खन्ना आदि नामों को लवण समुद्र में ही बताये हैं अतः अधिक संभावना यह की जाती है कि ये नाम लवण समुद्र के प्रक्षुभितोदक संबंधी ही या वेला से संबंधित ही कोई स्थितियां होना संभव है। क्योंकि स्वयंभूरमण समुद्र में सब जाति (कुल) के मच्छ, कच्छप आदि होते हैं अतः टीका एवं चूर्णि का अर्थ संगत नहीं लगता है। तत्त्व केवली गम्य।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लवणे णं भंते! समुद्दं किं ऊसिओदगे किं पत्थडोदगे किं खुभियजले किं अखुभियजले?

गोयमा! लवणे णं समुद्दे ऊसिओदगे णो पत्थडोदगे खुभियजले णो अक्खुभियजले। जहा णं भंते! लवणे समुद्दे ऊसिओदगे णो पत्थडोदगे खुभियजले णो अक्खुभियजले तहा णं बाहिरगा समुद्दा किं ऊसिओदगा पत्थडोदगा खुभियजला अक्खुभियजला? गोयमा! बाहिरगा समुद्दा णो उस्सिओदगा पत्थडोदगा णो खुभियजला अक्खुभियजला पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठंति॥

कठिन शब्दार्थ - **ऊसिओदगे** - उच्छ्रितोदकः-उछलने वाला जल, **पत्थडोदगे** - प्रस्तटोदकः-प्रस्तट की तरह स्थिर जल अर्थात् सर्वतः सम रहने वाला जल, **खुभियजले** - क्षुभितजलः, **अक्खुभियजले** - अक्षुभित जलः, **पुणप्पमाणा** - पूर्णप्रमाणाः-पूरे पूरे भरे हुए, **वोलट्टमाणा** - बाहर छलकना चाहते हैं, **वोसट्टमाणा** - विशेष रूप से बाहर छलकना चाहते हैं, **समभरघडत्ताए** - लबालब भरे हुए घट के समान जल से परिपूर्ण।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! लवण समुद्र का जल उछलने वाला है या प्रस्तट की तरह स्थिर-सर्वतः सम रहने वाला है? उसका जल क्षुभित रहता है या अक्षुभित?

उत्तर - हे गौतम! लवण समुद्र का जल उछलने वाला है, स्थिर नहीं है, क्षुभित होने वाला है, अक्षुभित रहने वाला नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! जैसे लवण समुद्र का जल उछलने वाला है, स्थिर नहीं है, क्षुभित होने वाला है, अक्षुभित रहने वाला नहीं है वैसे ही क्या बाहर के समुद्र भी उछलते जल वाले हैं, स्थिर जल वाले हैं, क्षुभित जल वाले हैं या अक्षुभित जल वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! बाहर के समुद्र उछलते जल वाले नहीं है, स्थिर जल वाले हैं, क्षुभित जल वाले नहीं है, अक्षुभित जल वाले हैं। वे पूर्ण हैं, पूरे-पूरे भरे हुए हैं, पूर्ण भरे होने से मानो बाहर छलकना चाहते हैं, विशेष रूप से बाहर छलकना चाहते हैं, लबालब भरे हुए घट की तरह जल से परिपूर्ण हैं।

अत्थि णं भंते! लवणसमुद्दे बहवे ओराला बलाहगा संसेयंति संमुच्छंति वा वासं वासंति वा? हंता अत्थि। जहा णं भंते! लवणसमुद्दे बहवे ओराला बलाहगा संसेयंति संमुच्छंति वासं वासंति वा तहा णं बाहिरएसुवि समुद्देसु बहवे ओराला बलाहगा संसेयंति संमुच्छिंति वासं वासंति? णो इणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-बाहिरगा णं समुद्दा पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चिट्ठंति? गोयमा! बाहिरएसु णं समुद्देसु बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ-बाहिरगा समुद्दा पुण्णा पुण्ण० जाव समभरघडत्ताए चिट्ठंति॥ १६९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या लवण समुद्र में बहुत से बड़े मेघ सम्मूर्च्छिम जन्म के अभिमुख होते हैं, पैदा होते हैं अथवा वर्षा वर्षाते हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! लवण समुद्र में बहुत से बड़े मेघ सम्मूर्च्छिम जन्म के अभिमुख होते हैं यावत् वर्षा वर्षाते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! जैसे लवण समुद्र में बहुत से बड़े मेघ पैदा होते हैं और वर्षा बरसाते हैं वैसे बाहर के समुद्रों में भी बहुत से मेघ पैदा होते हैं और वर्षा बरसाते हैं?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि बाहर के समुद्र पूर्ण हैं, पूरे पूरे भरे हुए हैं, मानो बाहर छलकना चाहते हैं, विशेष छलकना चाहते हैं और लबालब भरे हुए घट के समान जल से परिपूर्ण हैं?

उत्तर - हे गौतम! बाहर के समुद्रों में बहुत से उदक योनि के जीव आते जाते हैं और बहुत से पुद्गल उदक के रूप में एकत्रित होते हैं विशेष रूप से एकत्रित होते हैं इसलिये ऐसा कहा जाता है कि बाहर के समुद्र पूर्ण हैं, पूरे पूरे भरे हुए हैं यावत् लबालब भरे हुए घट के समान जल से परिपूर्ण हैं।

लवण समुद्र की उद्वेध परिवृद्धि आदि

लवणे णं भंते! समुद्दे केवइयं उव्वेहपरिवुड्डीए पण्णत्ते?

गोयमा! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओ पासिं पंचाणउइ पंचाणउइ पएसे गंता पएसं उव्वेहपरिवुड्डीए पण्णत्ते, पंचाणउइ पंचाणउइ वालग्गाइं गंता वालग्गं उव्वेहपरिवुड्डीए पण्णत्ते, एवं पं० २ लिक्खाओ गंता लिक्खं उव्वेहपरि० जूया० जवमज्झे० अंगुल० विहत्थि० रयणी० कुच्छी० धणु० उव्वेहपरिवुड्डीए प०, गाउय० जोयण० जोयणसय० जोयणसहस्साइं गंता जोयणसहस्सं उव्वेहपरिवुड्डीए पण्णत्ते॥

कठिन शब्दार्थ - उव्वेहपरिवुड्डीए - उद्वेध परिवृद्धि-गहराई में वृद्धि, **वालग्गाइं** - बालाग्र, **विहत्थि** - वितस्ति (बेंत), **रयणी** - रत्नि (हाथ), **कुच्छी** - कुक्षि, **गाऊय** - गाऊ (कोस)।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लवण समुद्र की उद्वेध परिवृद्धि (गहराई की वृद्धि) किस क्रम से है? अर्थात् कितनी दूर जाने पर कितनी गहराई की वृद्धि होती है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! लवण समुद्र के दोनों तरफ पंचानवे-पंचानवे (९५-९५) प्रदेश (त्रसरेणु) जाने पर एक प्रदेश की उद्वेध-वृद्धि होती है, पंचानवे-पंचानवे (९५-९५) बालाग्र जाने पर एक बालाग्र की उद्वेध वृद्धि होती है, पंचानवे-पंचानवे (९५-९५) लिक्षा जाने पर एक लिक्षा की उद्वेध वृद्धि होती है, पंचानवे-पंचानवे (९५-९५) यवमध्य जाने पर एक यवमध्य की उद्वेध-वृद्धि होती है इसी प्रकार पंचानवे-पंचानवे (९५-९५) अंगुल, बेंत, हाथ, कुक्षि, धनुष, कोस, योजन, सौ योजन, हजार योजन जाने पर एक-एक अंगुल यावत् एक हजार योजन की उद्ववेध-वृद्धि (गहराई की वृद्धि) होती है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में लवण समुद्र की गहराई में वृद्धि को लेकर प्रश्न किया गया है। तात्पर्य यह है कि लवण समुद्र के जंबूद्वीप वेदिकान्त के किनारे से और लवण समुद्र वेदिकान्त के किनारे से दोनों तरफ ९५-९५ प्रदेश (यहां प्रदेश से प्रयोजन त्रसरेणु से है) जाने पर एक प्रदेश की गहराई में वृद्धि होती है। इसी प्रकार ९५-९५ बालाग्र-लिक्षा-यवमध्य-अंगुल-वितस्ति-रत्नि-कुक्षि-धनुष-कोस-योजन-सौ योजन, हजार योजन जाने पर क्रमशः एक बालाग्र प्रमाण यावत् एक हजार योजन की गहराई में वृद्धि होती है।

लवणे णं भंते! समुद्दे केवइयं उस्सेहपरिवुड्डीए पण्णत्ते?

गोयमा! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओ पासिं पंचाणउइं पएसे गंता सोलसपएसे उस्सेहपरिवुड्डीए पण्णत्ते, एएणेव कमेणं जाव पंचाणउइं पंचाणउइं जोयणसहस्साइं गंता सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेहपरिवुड्डीए पण्णत्ते॥ १७०॥

कठिन शब्दार्थ - उस्सेह परिवुड्डीए - उत्सेध परिवृद्धि (ऊंचाई में वृद्धि)।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लवण समुद्र में उत्सेध वृद्धि किस क्रम से होती है?

उत्तर - हे गौतम! लवण समुद्र के दोनों तरफ ९५-९५ प्रदेश जाने पर सोलह प्रदेश प्रमाण उत्सेध-वृद्धि (ऊंचाई में वृद्धि) होती है। इसी क्रम से हे गौतम! यावत् ९५-९५ हजार योजन जाने पर सोलह हजार योजन की उत्सेध वृद्धि होती है।

विवेचन - लवण समुद्र के दोनों किनारों से ९५ प्रदेश (त्रसरेणु) जाने पर १६ प्रदेश की उत्सेध वृद्धि (ऊंचाई में वृद्धि) कही गई है। ९५ बालाग्र जाने पर १६ बालाग्र की उत्सेध-वृद्धि होती है। इसी तरह यावत् ९५ हजार योजन जाने पर १६ हजार योजन की उत्सेध-वृद्धि होती है। ९५ हजार योजन जाने पर १६ हजार योजन की वृद्धि होती है तो त्रैराशिक सिद्धान्त से ९५ योजन पर कितनी वृद्धि होगी, यह जानने के लिए $\frac{१६०००}{९५०००} \times \frac{९५}{१}$ इन तीन राशियों की स्थापना करनी चाहिये। प्रथम और मध्य राशि के तीन तीन शून्य हटाने पर ९५/१६/९५ की राशि रहती है। मध्य राशि को तृतीय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राशि से गुणा करने पर गुणनफल १५२० (१६×९५=१५२०) आते हैं इसमें प्रथम राशि ९५ का भाग देने पर भागफल १६ आता है अर्थात् ९५ योजन जाने पर १६ योजन की जलवृद्धि होती है। यही बात इन गाथाओं में भी कही गई है -

पंचाणउइसहस्से गंतूणं जोयणाणि उभओ वि।
उस्सेहेणं लवणो सोलस साहिस्सओ भणिओ॥ १॥
पंचणउई लवणे गंतूणं जोयणाणि उभओ वि।
उस्सेहेणं लवणो सोलस किल जोयणे होइ॥ २॥

- यदि ९५ योजन जाने पर १६ योजन की उत्सेध-वृद्धि है तो ९५ गाऊ (कोस) जाने पर १६ कोस की, ९५ धनुष जाने पर १६ धनुष की उत्सेध-वृद्धि होती है, यह सहज ही ज्ञात हो जाता है। यह बात लवण समुद्र की ऊंचाई वृद्धि को लेकर कही गई है।

व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र में लवण समुद्र की उदक शिखा-सोलह हजार योजन की ऊंचाई वाली बताई है। उसी शिखा को द्वीप सागर प्रज्ञप्ति में ७०० योजन ऊंचाई की बताई है॥ १॥ सात सौ योजन की ऊंचाई मानने पर गौतम द्वीप आदि जल से जितने ऊंचे हैं-वह त्रैराशिक गणित से स्पष्ट आ जाता है॥ २॥ सोलह हजार योजन ऊंचाई मानने पर गौतम द्वीप आदि डूब जाते हैं। तथापि यह कथन सत्य न हो, ऐसी बात नहीं है। क्योंकि सोलह हजार योजन की ऊंचाई मान कर जीवाभिगम में वृद्धि बताई गई है॥ ३॥

प्रश्न - उपर्युक्त दोनों कथन कैसे सत्य (संगत) होंगे?

उत्तर - सात सौ योजन के ऊपर दस हजार की चौड़ी सोलह हजार योजन पर्यन्त समान रूप से शिखा चली गई है॥ ४॥ जीवाभिगम सूत्र में जो वृद्धि बताई गई है वह क्षेत्र गणित (लवण समुद्र की सीमा क्षेत्र) की अपेक्षा बताई गई है। वह कर्ण गति से लवण समुद्र का आभाव्य क्षेत्र समझना चाहिये॥ ५॥

यदि ९५ हजार योजन जाने पर ७०० योजन की ऊंचाई प्राप्त करते हैं तो बारह हजार योजन जाने पर गौतम द्वीप के पास में कितनी ऊंचाई होगी? उत्तर आया ८८$\frac{४०}{९५}$ योजन (अठ्यासी योजन तथा १ योजन के पंचानुया चालीस भाग) यह जंबूद्वीप की तरफ द्वीप का जल में डूबा हुआ भाग है। ऊपर भी जल से बाहर इतना ही भाग है और आधा योजन खुला भाग है। २४ हजार योजन जाने पर १७६$\frac{८०}{९५}$ योजन (एक सौ छिहत्तर योजन और १ योजन के पंचानुया अस्सी भाग) प्राप्त हुए। लवण समुद्र की तरफ इतना भाग द्वीप का जल में डूबा हुआ है। मात्र दो कोस जल से ऊंचा है। जींवाजीवाभिगम सूत्र में जो पंचानवे-पंचानवे अंगुल जाने पर सोलह-सोलह अंगुल की उत्सेध वृद्धि बताई है-वह तो एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार की (औसतन) वृद्धि है। यदि पंचानु हजार योजन जाने पर १६ हजार योजन की ऊंचाई प्राप्त करते हैं तो १ योजन जाने पर क्या प्राप्त करेंगे? उत्तर आया - $\frac{१६}{९५}$ योजन (१ योजन का पंचानुया सोलह भाग) इसी प्रकार आत्मांगुल आदि के संबंध में भी समझ लेना चाहिए। इस प्रकार जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति की करण गाथाओं में बताया गया है।

लवण समुद्र का गोतीर्थ

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स केमहालए गोतित्थे पण्णत्ते?

गोयमा! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओ पासिं पंचाणउइं पंचाणउइं जोयणसहस्साइं गोतित्थं पण्णत्तं॥

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स केमहालए गोतित्थविरहिए खेत्ते पण्णत्ते?

गोयमा! लवणस्स णं समुद्दस्स दस जोयणसहस्साइं गोतित्थविरहिए खेत्ते पण्णत्ते॥

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स केमहालए उदगमाले पण्णत्ते?

गोयमा! दस जोयणसहस्साइं उदगमाले पण्णत्ते ॥ १७१ ॥

कठिन शब्दार्थ - गोतित्थे - गोतीर्थ-क्रमशः नीचा नीचा गहराई वाला भाग-पशुओं के पानी पीने के घाट के समान, **उदगमाला** - उदकमाला-जलराशि (जितना गहराई रहित भाग है उस पर रही हुई जलराशि को उदकमाला कहते हैं)।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लवण समुद्र का गोतीर्थ भाग कितना बड़ा है?

उत्तर - हे गौतम! लवण समुद्र के दोनों किनारों पर ९५ हजार योजन का गोतीर्थ है।

प्रश्न - हे भगवन्! लवण समुद्र का कितना बड़ा भाग गोतीर्थ से विरहित कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! लवण समुद्र का दस हजार योजन प्रमाण क्षेत्र गोतीर्थ से विरहित है यानी दस हजार योजन प्रमाण क्षेत्र समतल है।

प्रश्न - हे भगवन्! लवण समुद्र की उदकमाला कितनी बड़ी है?

उत्तर - हे गौतम! लवण समुद्र की उदकमाला (समपानी पर सोलह हजार योजन ऊंचाई वाली जलमाला) दस हजार योजन की कही गई है।

लवण समुद्र का संस्थान आदि

लवणे णं भंते! समुद्दे किंसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! गोतित्थसंठिए णावासंठाणसंठिए सिप्पिसंपुडसंठिए आसखंधसंठिए वलभिसंठिए वट्टे वलयागार-संठाणसंठिए पण्णत्ते॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लवणे णं भंते! समुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं? केवइयं परिक्खेवेणं? केवइयं उव्वेहेणं? केवइयं उस्सेहेणं? केवइयं सव्वग्गेणं पण्णत्ते?,

गोयमा! लवणे णं समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, पण्णरस जोयणसयसहस्साइं एक्कासीइं च सहस्साइं सयं च इगुयालं किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेहेणं सत्तरस जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते॥ १७२॥

कठिन शब्दार्थ - सिप्पिसंपुडसंठिए - शुक्तिकासंपुटसंस्थान संस्थित:-सीप के पुट के आकार का, **आसखंधसंठिए** - अश्व स्कन्ध संस्थित:-घोड़े के स्कंध के आकार का, **वलभिसंठिए** - वलभीसंस्थित:-वलभीगृह (छज्जे वाला घर) के आकार का, **सव्वग्गेणं** - समग्र रूप से।

भावार्थ - प्रश्न - - हे भगवन्! लवण समुद्र का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! लवण समुद्र गोतीर्थ के आकार का, नाव के आकार का, सीप के पुट के आकार का, घोड़े के स्कंध के आकार का, वलभी गृह के आकार का, वर्तुल और वलयाकार संस्थान वाला है।

प्रश्न - हे भगवन्! लवण समुद्र का चक्रवाल-विष्कम्भ (गोलाई वाले क्षेत्र की चौड़ाई) कितना है, उसकी परिधि कितनी है? उसकी गहराई कितनी है, उसकी ऊंचाई कितनी है, उसका समग्र प्रमाण कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! लवण समुद्र का चक्रवाल विष्कम्भ दो लाख योजन का है, परिधि पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनचालीस (१५८११३९) योजन से कुछ कम है उसकी गहराई एक हजार योजन, उत्सेध (ऊंचाई) सोलह हजार योजन का है। उद्वेध और उत्सेध दोनों मिलाकर समग्र रूप से उसका प्रमाण सतरह हजार योजन का है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में लवण समुद्र का संस्थान, चक्रवाल विष्कम्भ, परिधि, गहराई, ऊंचाई और समग्र प्रमाण का कथन किया गया है। लवण समुद्र का संस्थान बताने के लिए सूत्रकार ने जो विशेषण दिये हैं वे इस प्रकार हैं -

लवण समुद्र क्रमशः निम्न निम्नतर गहराई बढ़ने के कारण गोतीर्थ के आकार का कहा गया है। दोनों तरफ समतल भूभाग की अपेक्षा क्रम से जलवृद्धि होने के कारण नाव के आकार का कहा गया है। उद्वेध का जल और जलवृद्धि का जल एकत्रित मिलने की अपेक्षा से सीप के पुट के आकार का कहा गया है। दोनों तरफ ९५ हजार योजन पर्यन्त उन्नत होने से सोलह हजार योजन प्रमाण ऊंची

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शिखा होने से अश्व स्कंध की आकृति वाला कहा गया है। दस हजार योजन प्रमाण विस्तार वाली शिखा वलभी-गृहाकार प्रतीत होने से लवण समुद्र वलभी-भवन की अट्टालिका-चांदनी के आकार का कहा गया है। लवण समुद्र गोल है तथा चूडी के आकार का है।

टीकाकार ने लवण समुद्र के घन और प्रतर की गणना भी की है। प्रतर का परिमाण इस प्रकार है -

वित्थाराओ सोहिय दस सहस्साइं सेस अद्धम्मि।
तं चेव पक्खिवित्ता लवसमुद्दस्स सा कोडी॥ १॥
लक्खं पंचसहस्सा कोडीए तीए संगुणेऊणं।
लवणस्स मज्झ परिहि ताहे पयरं इमं होइ॥ २॥
नवनउई कोडिसया एगट्ठी कोडि लक्ख सत्तरसा।
पन्नरस सहस्साणि य पयरं लवणस्स णिद्दिट्ठं॥ ३॥

अर्थात् - लवण समुद्र के दो लाख योजन विस्तार में से दस हजार योजन घटा कर उसका आधा करने पर ९५००० की राशि होती है इस राशि में घटाये हुए दस हजार योजन मिलाने पर १०,५०० होते हैं। इस राशि को कोटि कहा जाता है। इस कोटि को लवण समुद्र की मध्यभागवर्ती परिधि ९४८६८३ से गुणा करने पर लवण समुद्र के प्रतर का परिमाण निकल आता है। वह राशि ९९६११७१५००० है।

लवण समुद्र के घन की गणित इस प्रकार है -

जोयणसहस्स सोलह लवणसिहा अहोगया सहस्सेणं।
पयरं सत्तरसहस्सगुणं लवणघणगणियं॥ १॥
सोलस कोडाकोडी ते णउइ कोडिसयसहस्साओ।
उणयालीसहस्सा नवकोडिसया य पन्नरसा॥ २॥
पन्नास सयसहस्सा जोयणाणं भवे अणूणाइं।
लवणसमुद्दस्सेयं जोयणसंखाए घणगणियं॥ ३॥

- लवण समुद्र की १६००० योजन की शिखा और एक हजार योजन उद्वेध कुल १७००० को लवण समुद्र के प्रतर परिमाण ९९६११७१५००० से गुणा करने पर लवण समुद्र का घन निकल आता है वह है - १७०००×९९६११७१५०००=१६९३३९९१५५०००००० योजन।

शंका - लवण समुद्र सब जगह सतरह हजार योजन प्रमाण नहीं है क्योंकि मध्य भाग में तो इसका विस्तार दस हजार योजन कहा फिर यह घन गणित कैसे सही हो सकती है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाधान - यह शंका उचित है। जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण ने विशेषणवतीग्रंथ में कहा है - **एवं उभयवेइयंताओ सोलससहस्सुस्सेहकन्नगईए जं लवण समुद्दाभव्वं जलसुन्नं पि खेत्तं तस्स गणियं। जहा मंदरपव्वयस्स एक्कारसभागपरिहाणी कण्णगईए आगासस्स वि तदा भव्वंति काउं भणिया तहा लवण समुद्दस्स वि।** जब लवणशिखा के ऊपर दोनों वेदिकान्तों के ऊपर सीधी डोरी डाली जाती है तो जो अपान्तराल में जल शून्य क्षेत्र बनता है वह भी करण गति से सजल मान लिया जाता है इसके लिये मेरु पर्वत का उदाहरण है। वह सर्वत्र एकादश भाग परिहानि रूप कहा जाता है किंतु सर्वत्र इतनी हानि नहीं है। कहीं कितनी है, कहीं कितनी है। केवल मूल से लेकर शिखर तक डोरी डालने पर अपान्तराल में जो आकाश है वह सब मेरु का गिना जाता है। ऐसा मान कर गणितज्ञों ने सर्वत्र एकादश परिभाग हानि का कथन किया है। लवण समुद्र के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिये।

लवणसमुद्र, जंबूद्वीप को जलमग्न क्यों नहीं करता?

जइ णं भंते! लवणसमुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णरस जोयणसयसहस्साइं एक्कासीइं च सहस्साइं सयं इगुयालं किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेहेणं सत्तरस जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते। कम्हा णं भंते! लवणसमुद्दे जंबुद्दीवं दीवं णो उवीलेइ णो उप्पीलेइ णो चेव णं एक्कोदगं करेइ?

गोयमा! जंबूद्दीवे णं दीवे भरहेरवएसु वासेसु अरहंत चक्क-वट्टि बलदेवा वासुदेवा चारणा विज्जाहरा समणा समणीओ सावया सावियाओ मणुया पगइभद्दया पगइविणीया पगइउवसंता पगइपयणुकोहमाणमायालोभा मिउमद्दवसंपण्णा अल्लीणा भद्दगा विणीया, तेसि णं पणिहाए लवणे समुद्दे जंबुद्दीवं दीवं णो उवीलेइ णो उप्पीलेइ णो चेव णं एगोदगं करेइ गंगासिंधुरत्तारत्तवईसु सलिलासु देवयाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठिइयाओ परिवसंति, तासि णं पणिहाए लवणसमुद्दे जाव णो चेव णं एगोदगं करेइ, चुल्लहिमवंतसिहरेसु वासहरपव्वएसु देवा महिड्डिया० तेसि णं पणिहाए० हेमवएरण्णवएसु वासेसु मणुया पगइभद्दगा०, रोहियंससुवण्णकूल-रुप्पकूलासु सलिलासु देवयाओ महिड्डियाओ० तासिं पणि० सद्दावइवियडावइ वट्टवेयड्डपव्वएसु देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिव०, महाहिमवंतरुप्पिसु वासहरपव्वएसु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइया०, हरिवासरम्मयवासेसु मणुया पगइभद्दगा०, गंधावइमालवंतपरियाएसु वट्टवेयड्ढपव्वएसु देवा महिड्डिया०, णिसढणीलवंतेसु वासहरपव्वएसु देवा महिड्डिया०, सव्वाओ दहदेवयाओ भाणियव्वाओ, पउमद्दहतिगिच्छिकेसरिदहावसाणेसु देवयाओ महिड्डियाओ० तासिं पणिहाए० पुव्वविदेहावरविदेहेसु वासेसु अरहंत चक्कवट्टि बलदेव वासुदेवा चारणा विज्जाहरा समणा समणीओ सावया सावियाओ मणुया पगइ० तेसिं पणिहाए लवण० सीयासीओयगासु सलिलासु देवयाओ महिड्डिया०, देवकुरुउत्तरकुरुसु मणुया पगइभद्दगा०, मंदरे पव्वए देवयाओ महिड्डिया०, जंबूए य सुदंसणाए जंबूदीवाहिवई अणाढिए णामं देवे महिड्डिए जाव पलिओवमट्ठिइए परिवसइ तस्स पणिहाए लवणसमुद्दे० णो उवीलेइ णो उप्पीलेइ णो चेव णं एक्कोदगं करेइ, अदुत्तरं च णं गोयमा! लोगट्ठिई लोगाणुभावे जण्णं लवणसमुद्दे जंबुद्दीवं दीवं णो उवीलेइ णो उप्पीलेइ णो चेव णमेगोदगं करेइ॥ १७३॥

॥ मंदरोद्देसो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - **उवीलेइ** - आप्लावित करता है, **उप्पीलेइ** - उत्पीडित करता है, **एक्कोदगं** - जलमग्न करता है, **पगइभद्दया** - प्रकृति से भद्र, **पगइविणीया** - प्रकृति से विनीत, **पगइउवसंता** - प्रकृति से उपशांत, **पगइपयणुकोहमाणमायालोभा** - प्रकृति से मंद क्रोध, मान, माया, लोभ वाले, **मिउमद्दवसंपण्णा** - मृदु मार्दव संपन्न, **अल्लीणा** - आलीन, **भद्दगा** - भद्र, **विणीया** - विनीत।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि लवण समुद्र चक्रवाल विष्कम्भ से दो लाख योजन का है, पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनचालीस योजन से कुछ कम उसकी परिधि है, एक हजार योजन उसकी गहराई है और सोलह हजार योजन उसकी ऊंचाई है कुल मिलाकर सतरह हजार योजन उसका प्रमाण है तो हे भगवन्! वह लवण समुद्र जंबूद्वीप नामक द्वीप को जल से आप्लावित क्यों नहीं करता, क्यों प्रबलता के साथ उत्पीड़ित नहीं करता और क्यों उसे जलमग्न नहीं कर देता?

उत्तर - हे गौतम! जंबूद्वीप नामक द्वीप में भरत ऐरवत क्षेत्रों में अर्हन्त (तीर्थंकर), चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, जंघाचारण आदि विद्याधर मुनि, श्रमण, श्रमणियां, श्रावक और श्राविकाएं हैं। वहां के मनुष्य प्रकृति से भद्र, प्रकृति से विनीत, उपशांत, प्रकृति से मंद क्रोध, मान, माया लोभ वाले, मृदु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मार्दव संपन्न, आलीन, भद्र और विनीत हैं उनके प्रभाव से लवण समुद्र जंबूद्वीप को जल से आप्लावित नहीं करता, उत्पीड़ित नहीं करता और जल मग्न नहीं करता है।

गंगा, सिंधु, रक्ता और रक्तवती नदियों में महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाली देवियां रहती हैं। उनके प्रभाव से लवण समुद्र जंबूद्वीप को जलमग्न नहीं करता है।

चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत और शिखरी पर्वत में महर्द्धिक देव रहते हैं उनके प्रभाव से, हेमवत हेरण्यवत क्षेत्रों में मनुष्य प्रकृति से भद्र यावत् विनीत हैं उनके प्रभाव से, रोहितांश, सुवर्णकूला और रूप्यकूला नदियों में जो महर्द्धिक देवियां हैं उनके प्रभाव से शब्दापाति विकटापाति वृत वैताढ्य पर्वतों में महर्द्धिक पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं उनके प्रभाव से, महाहिमवंत और रुक्मि वर्षधर पर्वतों में महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं उनके प्रभाव से, हरिवर्ष और रम्यक वर्ष क्षेत्रों में मनुष्य प्रकृति से भद्र यावत् विनीत हैं, गंधापति और मालवंत वृत वैताढ्य पर्वतों में महर्द्धिक देव हैं, निषध और नीलवंत वर्षधर पर्वतों में महर्द्धिक देव हैं इसी तरह सब द्रहों की देवियों का कथन करना चाहिये। पद्मद्रह, तिगिंछद्रह, केसरिद्रह आदि द्रहों में महर्द्धिक देव रहते हैं उनके प्रभाव से, पूर्वविदेहों और पश्चिम विदेहों में अर्हन्त (तीर्थंकर) चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, जंघाचारण विद्याधर मुनि, श्रमण श्रमणियां, श्रावक श्राविकाएं एवं मनुष्य प्रकृति से भद्र यावत् विनीत हैं उनके प्रभाव से, मेरु पर्वत के महर्द्धिक देवों के प्रभाव से, उत्तरकुरु में जंबू सुदर्शना में अनादृत नामक जंबूद्वीप का अधिपति महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है, उसके प्रभाव से लवण समुद्र जंबूद्वीप को जल से आप्लावित, उत्पीडित और जलमग्न नहीं करता है।

इसके अलावा हे गौतम! दूसरी बात यह है कि लोकस्थिति और लोकस्वभाव ही ऐसा है कि लवण समुद्र जंबूद्वीप को जल से आप्लावित, उत्पीड़ित और जलमग्न नहीं करता है।

।। मंदरोद्देशक समाप्त ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दीव समुद्दा-द्वीप समुद्र

धातकीखंड द्वीप का वर्णन

लवणसमुद्दं धायइंसंडे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ, धायइसंडे णं भंते! दीवे किं समचक्कवालसंठिए विसमचक्कवालसंठिए?

गोयमा! समचक्कवालसंठिए णो विसमचक्कवालसंठिए॥

भावार्थ - लवण समुद्र को चारों ओर से घेरे हुए धातकीखंड नाम का द्वीप है जो गोल वलयाकार संस्थान से संस्थित है।

प्रश्न - हे भगवन्! धातकीखंड द्वीप समचक्रवाल संस्थान से संस्थित है या विषम चक्रवाल संस्थान से संस्थित है?

उत्तर - हे गौतम! धातकीखंड द्वीप समचक्रवाल संस्थान से संस्थित है, विषम चक्रवाल संस्थान से संस्थित नहीं है।

धायइसंडे णं भंते! दीवे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?

गोयमा! चत्तारि जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं एगयालीसं जोयणसयसहस्साइं दस जोयणसहस्साइं णवएगट्ठे जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते॥

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते दोण्हवि वण्णओ दीवसमिया परिक्खेवेणं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! धातकीखंड द्वीप का चक्रवाल-विष्कम्भ कितना है और उसकी परिधि कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! धातकीखंड द्वीप चार लाख योजन चक्रवाल विष्कम्भ वाला है और उसकी परिधि इकतालीस लाख दस हजार नौ सौ इकसठ योजन से कुछ कम की है।

वह धातकीखंड द्वीप एक पद्मवरवेदिका और वनखंड से चारों ओर से घिरा हुआ है। दोनों का वर्णन कह देना चाहिये। उनकी परिधि धातकीखंड द्वीप के समान ही है।

धायइसंडस्स णं भंते! दीवस्स कइ दारा पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं०-विजए वेजयंते जयंते अपराजिए॥

कहि णं भंते! धायइसंडस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?

गोयमा! धायइसंडपुरत्थिमपेरंते कालोयसमुद्दपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीयाए महाणईए उप्पिं एत्थ णं धायइ० विजए णामं दारे पण्णत्ते तं चेव पमाणं, रायहाणीओ अण्णंमि धायइसंडे दीवे, दीवस्स वत्तव्वया भाणियव्वा, एवं चत्तारि वि दारा भाणियव्वा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! धातकीखंड द्वीप के कितने द्वार कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! धातकीखंड के चार द्वार हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं - विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित।

प्रश्न - हे भगवन्! धातकीखंड का विजयद्वार कहां पर है?

उत्तर - हे गौतम! धातकीखंड के पूर्वी दिशान्त में और कालोद समुद्र के पूर्वार्द्ध के पश्चिम दिशा में शीता महानदी के ऊपर धातकीखंड का विजयद्वार है। जंबूद्वीप के विजयद्वार के समान ही इसका प्रमाण आदि समझना चाहिये। इसकी राजधानी अन्य धातकीखंड द्वीप में है, इत्यादि सारा वर्णन जंबूद्वीप की विजया राजधानी के समान समझ लेना चाहिये। इसी प्रकार विजयद्वार सहित चारों द्वारों की वक्तव्यता समझनी चाहिये।

धायइसंडस्स णं भंते! दीवस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते? गोयमा! दस जोयणसयसहस्साइं सत्तावीसं च जोयणसहस्साइं सत्तपणतीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे दारस्स य दारस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते॥

धायइसंडस्स णं भंते! दीवस्स पएसा कालोयगं समुद्दं पुट्ठा? हंता पुट्ठा॥ ते णं भंते! किं धायइसंडे दीवे कालोए समुद्दे? ते धायइसंडे णो खलु ते कालोयसमुद्दे। एवं कालोयस्सवि। धायइसंडद्दीवे णं भंते! जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता कालोए समुद्दे पच्चायंति? गोयमा! अत्थेगइया पच्चायंति अत्थेगइया णो पच्चायंति। एवं कालोएवि अत्थेगइया पच्चायंति अत्थेगइया णो पच्चायंति॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! धातकीखंड के एक द्वार से दूसरे द्वार का अपान्तराल अंतर कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! धातकीखंड के एक द्वार से दूसरे द्वार का अपांतराल अन्तर दस लाख सत्तावीस हजार सात सौ पैंतीस (१०२७७३५) योजन और तीन कोस का है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! धातकीखंड द्वीप के प्रदेश क्या कालोदधि समुद्र से छुए हुए हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! धातकीखंड द्वीप के प्रदेश कालोदधि समुद्र से छुए हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! वे प्रदेश धातकीखंड के हैं या कालोदधि समुद्र के हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे प्रदेश धातकीखंड के हैं कालोदधि समुद्र के नहीं इसी तरह कालोदधि समुद्र के प्रदेशों के विषय में भी कह देना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या धातकीखंड से निकल कर जीव कालोदधि समुद्र में पैदा होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! धातकीखंड से निकल कर (मर कर) कोई जीव कालोदधि समुद्र में पैदा होते हैं, कोई जीव पैदा नहीं होते। इसी तरह कालोदधि समुद्र से निकल कर कोई जीव धातकीखंड में पैदा होते हैं और कोई जीव पैदा नहीं होते।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में धातकीखंड के एक एक द्वार का अंतर १०२७७३५ योजन और तीन कोस का कहा है वह इस प्रकार समझना चाहिये - धातकीखंड के एक एक द्वार की द्वार शाखा सहित मोटाई ४॥ योजन की है अतः चार द्वारों की कुल मोटाई १८ योजन होती हैं। धातकीखंड की परिधि ४११०९६१ योजन में से ये १८ योजन घटाने पर ४११०९४३ योजन होते हैं इसमें ४ का भाग देने पर एक एक द्वार का उपरोक्त अंतर निकल आता है।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ - धायइसंडे दीवे धायइसंडे दीवे?

गोयमा! धायइसंडे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहवे धायइरुक्खा धायइवण्णा धायइवणसंडा णिच्चं कुसुमिया जाव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति, धायइमहाधायइरुक्खेसु सुदंसणं पियदंसणा दुवे देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति से एएणट्ठेणं०, अदुत्तरं च णं गोयमा! जाव णिच्चे॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! धातकीखंड, धातकीखण्ड है, ऐसा क्यों कहा जाता है?

उत्तर - हे गौतम! धातकीखण्ड द्वीप में स्थान स्थान पर यहां वहां धातकी के वृक्ष, धातकी के वन और धातकी के वनखण्ड नित्य कुसुमित होते हैं यावत् शोभित होते हैं। धातकी, महाधातकी वृक्षों पर सुदर्शन और प्रियदर्शन नाम के दो महर्द्धिक पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं। इस कारण धातकीखंड, धातकीखण्ड कहलाता है। दूसरी बात यह है कि हे गौतम! धातकीखण्ड द्वीप नाम नित्य शाश्वत है।

धायइसंडे णं भंते! दीवे कइ चंदा पभासिंसु वा ३? कइ सूरिया तविंसु वा ३? कइ महग्गहा चारं चरिंसु वा ३? कइ णक्खत्ता जोगं जोइंसु वा ३? कइ तारागणकोडाकोडीओ सोभेंसु वा ३?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! बारस चंदा पभासिंसु वा ३, एवं-

चउवीसं ससिरविणो णक्खत्त सया य तिण्णि छत्तीसा।

एगं च गहसहस्सं छप्पण्णं धायईसंडे॥ १॥

अट्ठेव सयसहस्सा तिण्णि सहस्साइं सत्त य सयाइं।

धायइसंडे दीवे तारागणकोडिकोडीणे॥ २॥ सोभेंसु वा ३॥ १७४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! धातकीखण्ड द्वीप में कितने चन्द्र प्रभासित हुए, होते हैं और होंगे? कितने सूर्य तपित होते थे, होते हैं और होंगे? कितने महाग्रह चलते थे, चलते हैं, चलेंगे? कितने नक्षत्र चन्द्रादि से योग करते थे, करते हैं और करेंगे? और कितने कोडाकोडी तारागण शोभित होते थे, होते हैं और होंगे?

उत्तर - हे गौतम! धातकीखण्ड द्वीप में बारह चन्द्र उद्योत करते थे, करते हैं और करेंगे। बारह सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे। तीन सौ छत्तीस नक्षत्र चन्द्र सूर्य से योग करते थे, करते हैं और करेंगे। एक हजार छप्पन महाग्रह चलते थे, चलते हैं और चलेंगे। आठ लाख तीन हजार सात सौ कोडाकोडी तारागण शोभित होते थे, होते हैं और होंगे।

विवेचन - एक चन्द्र-सूर्य के परिवार में २८ नक्षत्र, ८८ महाग्रह और ६६९७५ कोडाकोडी तारे होते हैं। धातकीखण्ड में १२ चन्द्र और १२ सूर्य हैं। अतः उक्त संख्या को १२ से गुणा करने पर धातकीखण्ड में कुल (२८×१२=३३६) तीन सौ छत्तीस नक्षत्र, एक हजार छप्पन (८८×१२=१०५६) महाग्रह और आठ लाख तीन हजार सात सौ (६६९७५×१२=८०३७००) कोडाकोडी तारे हैं।

कालोदधि समुद्र का वर्णन

धायइसंडं णं दीवं कालोए णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइं, कालोए णं समुद्दे किं समचक्कवालसंठाणसंठिए विसम०? गोयमा! समचक्कवाल संठाणसंठिए णो विसमचक्कवालसंठाणसंठिए॥

कालोए णं भंते! समुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?

गोयमा! अट्ठ जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं एक्काणउइजोयणसय-सहस्साइं सत्तरि सहस्साइं छच्च पंचुत्तरे जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते॥ से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं० दोण्हवि वण्णओ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - धातकीखण्ड द्वीप को चारों ओर से गोल और वलयाकार आकृति का कालोदधि समुद्र घेरे हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! कालोदधि समुद्र समचक्रवाल संस्थान से संस्थित है या विषम चक्रवाल संस्थान से संस्थित है?

उत्तर - हे गौतम! कालोदधि समुद्र समचक्रवाल संस्थान से संस्थित है, विषम चक्रवाल संस्थान से संस्थित नहीं।

प्रश्न - हे भगवन्! कालोदधि समुद्र का चक्रवाल विष्कम्भ कितना है उसकी परिधि कितनी है?

उत्तर - हे गौतम! कालोदधि समुद्र आठ लाख योजन का लम्बा चौड़ा है और इसकी परिधि इक्यानवै लाख सत्तर हजार छह सौ पांच योजन से कुछ अधिक है।

वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखंड से चारों ओर से घिरा हुआ है। दोनों का वर्णन कह देना चाहिये।

कालोयस्स णं भंते! समुद्दस्स कइ दारा पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तंजहा-विजए वेजयंते जयंते अपराजिए॥

कहि णं भंते! कालोयस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?

गोयमा! कालोए समुद्दे पुरत्थिमपेरंते पुक्खरवरदीवपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए उप्पिं एत्थ णं कालोयस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते, अट्ठेव जोयणाइं तं चेव पमाणं जाव रायहाणीओ।

कहि णं भंते! कालोयस्स समुद्दस्स वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते?

गोयमा! कालोयसमुद्दस्स दक्खिणपेरंते पुक्खरवरदीवस्स दक्खिणद्धस्स उत्तरेणं एत्थ णं कालोयसमुद्दस्स वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते।

कहि णं भंते! कालोयसमुद्दस्स जयंते णामं दारे पण्णत्ते?

गोयमा! कालोयसमुद्दस्स पच्चत्थिमपेरंते पुक्खरवरदीवस्स पच्चत्थिमद्धस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महाणईए उप्पिं जयंते णामं दारे पण्णत्ते।

कहि णं भंते! कालोयसमुद्दस्स अपराजिए णामं दारे पण्णत्ते?

गोयमा! कालोयसमुद्दस्स उत्तरद्धपेरंते पुक्खरवरदीवोत्तरद्धस्स दाहिणओ एत्थ णं कालोयसमुद्दस्स अपराजिए णामं दारे०, सेसं तं चेव॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कालोदधि समुद्र के कितने द्वार कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! कालोद (कालोदधि) समुद्र के चार द्वार हैं। यथा - विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित।

प्रश्न - हे भगवन्! कालोद समुद्र का विजयद्वार कहां कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! कालोद समुद्र के पूर्व दिशा के अंत में और पुष्करवर द्वीप के पूर्वार्द्ध के पश्चिम में शीतोदा महानदी के ऊपर कालोद (कालोदधि) समुद्र का विजयद्वार है। वह आठ योजन ऊंचा है आदि प्रमाण पूर्वानुसार यावत् राजधानी तक कह देना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! कालोद समुद्र का वैजयंत द्वार कहां स्थित है?

उत्तर - हे गौतम! कालोद समुद्र के दक्षिण दिशा के अंत में, पुष्करवर द्वीप के दक्षिणार्द्ध भाग के उत्तर में कालोदधि समुद्र का वैजयंत द्वार है।

प्रश्न - हे भगवन्! कालोद समुद्र का जयंत द्वार कहां है?

उत्तर - हे गौतम! कालोद समुद्र के पश्चिम दिशा के अन्त में पुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्द्ध के पूर्व में शीता महानदी के ऊपर जयन्त द्वार है।

प्रश्न - हे भगवन्! कालोद समुद्र का अपराजित द्वार कहां स्थित है?

उत्तर - हे गौतम! कालोद समुद्र के उत्तर दिशा के अन्त में और पुष्कवर द्वीप के उत्तरार्द्ध के दक्षिण में कालोद समुद्र का अपराजित द्वार है। शेष सारा वर्णन जंबूद्वीप के अपराजित द्वार के समान समझ लेना चाहिये। विशेषता यह है कि राजधानी कालोदधि समुद्र में कहनी चाहिये।

कालोयस्स णं भंते! समुद्दस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवइयं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?

गोयमा! बावीस सयसहस्सा बाणउइ खलु भवे सहस्साइं।

छच्च सया बायाला दारंतर तिण्णि कोसा य॥ १॥

दारस्स य दारस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

कालोयस्स णं भंते! समुद्दस्स पएसा पुक्खरवरदीव० तहेव, एवं पुक्खरवरदीवस्सवि जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता तहेव भाणियव्वं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कालोदधि समुद्र के एक द्वार से दूसरे द्वार का अपान्तराल अन्तर कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! कालोदधि समुद्र के एक द्वार से दूसरे द्वार का अंतर बावीस लाख बानवै हजार छह सौ छियालीस योजन और तीन कोस का है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे भगवन्! क्या कालोद समुद्र के प्रदेश पुष्करवर द्वीप से छुए हुए हैं इत्यादि कथन पूर्वानुसार करना चाहिये यावत् पुष्करवरद्वीप के जीव मर कर कालोद समुद्र में कोई उत्पन्न होते हैं और कोई नहीं।

विवेचन - कालोदधि समुद्र के चारों द्वारों की मोटाई १८ योजन को कालोदधि समुद्र की परिधि ९१७०६०५ योजन में से घटाने पर ९१७०५८७ योजन शेष रहते हैं। इनमें ४ का भाग देने पर एक द्वार से दूसरे द्वार का अंतर २२९२६४६ योजन और तीन कोस निकल आता है।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-कालोए समुद्दे कालोए समुद्दे?

गोयमा! कालोयस्स णं समुद्दस्स उदए आसले मासले पेसले कालए मासरासिवण्णाभे पगईए उदगरसेणं पण्णत्ते, कालमहाकाला एत्थ दुवे देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! जाव णिच्चे॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कालोद (कालोदधि) समुद्र, कालोद समुद्र क्यों कहलाता है?

उत्तर - हे गौतम! कालोद समुद्र का पानी आस्वाद्य है, मांसल (भारी होने से) पेशल (मनोज्ञ स्वाद वाला) है, काला है, उड़द की राशि के वर्ण का है और स्वाभाविक उदक रस वाला है, इसलिये वह कालोद कहलाता है। वहां काल और महाकाल नाम के पल्योपम की स्थिति वाले महर्द्धिक दो देव रहते हैं। इसलिये वह कालोद कहलाता है। हे गौतम! दूसरी बात यह है कि कालोद समुद्र का नाम शाश्वत होने से वह नित्य है।

कालोए णं भंते! समुद्दे कइ चंदा पभासिंसु वा ३? पुच्छा, गोयमा! कालोए णं समुद्दे बायालीसं चंदा पभासेंसु वा ३-

बायालीसं चंदा बायालीसं च दिणयरा दित्ता॥
कालोदहिम्मि एए चरंति संबद्धलेसागा॥१॥
णक्खत्ताण सहस्सं एगं छावत्तरं च सयमण्णं।
छच्च सया छण्णउया महागहा तिण्णि य सहस्सा॥ २॥
अट्ठावीसं कालोदहिम्मि बारस य सयसहस्साइं। णव य सया पण्णासा तारागणकोडिकोडीणं॥ ३॥

सोभेंसु वा ३॥ १७५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कालोद समुद्र में कितने चन्द्र उद्योत करते थे आदि प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! कालोद समुद्र में बयालीस चन्द्र उद्योत करते थे, उद्योत करते हैं और उद्योत करेंगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गाथाओं का अर्थ - कालोदधि में बयालीस चन्द्र और बयालीस सूर्य सम्बद्ध लेश्या वाले विचरण करते हैं। एक हजार एक सौ छिहत्तर (११७६) नक्षत्र, तीन हजार छह सौ छियानवे (३६९६) महाग्रह और अट्ठाईस लाख बारह हजार नौ सौ पचास (२८१२९५०) कोडाकोडी तारें शोभित होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे।

पुष्करवर द्वीप का वर्णन

कालोयं णं समुद्दं पुक्खरवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरि० तहेव जाव समचक्कवालसंठाणसंठिए णो विसमचक्कवाल-संठाणसंठिए।

पुक्खरवरे णं भंते! दीवे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?

गोयमा! सोलस जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं-एगा जोयणकोडी बाणउइं खलु भवे सयसहस्सा।

अउणाणउइं अट्ठ सया चउणउया य (परिरओ) पुक्खरवरस्स॥ १॥

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं० संपरि० दोण्हवि वण्णओ॥

भावार्थ - कालोदधि समुद्र को चारों ओर से घेर कर गोल और वलयाकार संस्थान से पुष्करवर द्वीप संस्थित है, उसी प्रकार कह देना चाहिये यावत् वह समचक्रवाल संस्थान से संस्थित है विषम चक्रवाल संस्थान से नहीं।

प्रश्न - हे भगवन्! पुष्करवर द्वीप का चक्रवाल विष्कंभ कितना है और उसकी परिधि कितनी है?

उत्तर - हे गौतम! पुष्करवर द्वीप सोलह लाख योजन का चक्रवाल विष्कम्भ वाला है। इसकी परिधि एक करोड़ बानवै लाख नव्यासी हजार आठ सौ चौरानवे (१,९२,८९,८९४) योजन है।

वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ है। दोनों का वर्णन कह देना चाहिये।

पुक्खरवरस्स णं भंते! दीवस्स कइ दारा पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तंजहा - विजए वेजयंते जयंते अपराजिए॥

कहि णं भंते! पुक्खरवरस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?

गोयमा! पुक्खरवरदीवपुरच्छिमपेरंते पुक्खरोदसमुद्द-पुरच्छिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एत्थ णं पुक्खरवरदीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते तं चेव सव्वं, एवं चत्तारिवि दारा, सीयासीओया णत्थि भाणियव्वाओ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुष्करवर द्वीप के कितने द्वार कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! पुष्करवरद्वीप के चार द्वार हैं। यथा - विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित।

प्रश्न - हे भगवन्! पुष्करवरद्वीप का विजय द्वार कहां स्थित है?

उत्तर - हे गौतम! पुष्करवरद्वीप के पूर्व दिशा के अंत में और पुष्करोद समुद्र के पूर्वार्द्ध के पश्चिम में पुष्करवरद्वीप का विजय द्वार है आदि वर्णन जंबूद्वीप के विजयद्वार के समान कहना चाहिये। इसी प्रकार चारों द्वारों का वर्णन समझना चाहिये किंतु शीता और शीतोदा नदियों का कथन नहीं करना चाहिये।

पुक्खरवरस्स णं भंते! दीवस्स दारस्स य दारस्स एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?

गोयमा!

अडयाल सयसहस्सा बावीसं खलु भवे सहस्साइं।
अगुणुत्तरा य चउरो दारंतर पुक्खरवरस्स॥ १॥

पएसा दोण्हवि पुट्ठा, जीवा दोसु भाणियव्वा॥

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-पुक्खरवरदीवे पुक्खरवरदीवे? गोयमा! पुक्खरवरे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहवे पउमरुक्खा पउमवणा पउमवणसंडा णिच्चं कुसुमिया जाव चिट्ठंति, पउममहापउमरुक्खे एत्थ णं पउमपुंडरीया णामं दुवे देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-पुक्खरवरदीवे पुक्खरवरदीवे जाव णिच्चे॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुष्करवरद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का कितना अंतर कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! पुष्करवरद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का अंतर अड़तालीस लाख बावीस हजार चार सौ उनहत्तर (४८२२४६९) योजन का है।

पुष्करवरद्वीप के प्रदेश पुष्करवर समुद्र से स्पृष्ट हैं इसी तरह पुष्करवर समुद्र के प्रदेश पुष्करवरद्वीप से स्पृष्ट है। पुष्करवरद्वीप और पुष्करवर समुद्र के जीव मरकर कोई उनमें उत्पन्न होते हैं और कोई उनमें उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से पुष्करवरद्वीप, पुष्करवरद्वीप कहलाता है?

उत्तर - हे गौतम! पुष्करवरद्वीप में स्थान स्थान पर यहां वहां बहुत से पद्मवृक्ष, पद्मवन और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पद्मवनखण्ड नित्य कुसुमित रहते हैं। पद्म और महापद्म वृक्षों पर पद्म और पुंडरीक नाम के पल्योपम की *स्थिति वाले दो महर्द्धिक देव रहते हैं। इसलिये पुष्करवरद्वीप पुष्करवरद्वीप कहलाता है यावत् नित्य है।*

पुक्खरवरे णं भंते! दीवे केवइया चंदा पभासिंसु वा ३ ? एवं पुच्छा,

चोयालं चंदसयं चउयालं चेव सूरियाण सयं।

पुक्खरवरदीवंमि चरंति एए पभासेंता॥ १॥

चत्तारि सहस्साइं बत्तीसं चेव होंति णक्खत्ता।

छच्च सया बावत्तर महग्गहा बारह सहस्सा॥ २॥

छण्णउइ सयसहस्सा चत्तालीसं भवे सहस्साइं।

चत्तारि सया पुक्खर(वर) तारागणकोडिकोडीणं॥ ३॥ सोभेंसु वा॥ ३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुष्करवरद्वीप में कितने चन्द्र उद्योत करते थे, उद्योत करते हैं, उद्योत करेंगे? आदि प्रश्न।

उत्तर - हे गौतम! पुष्करवरद्वीप में एक सौ चवालीस (१४४) चन्द्र और एक सौ चवालीस सूर्य प्रभासित होते हुए विचरते हैं॥ १॥ चार हजार बत्तीस (४०३२) नक्षत्र और बारह हजार छह सौ बहत्तर (१२६७२) महाग्रह हैं॥ २॥ छियानवै लाख चवालीस हजार चार सौ (९६४४४००) कोडाकोडी तारागण शोभित होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे॥

मानुषोत्तर पर्वत का वर्णन

पुक्खरवरदीवस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं माणुसुत्तरे णामं पव्वए पण्णत्ते, वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जे णं पुक्खरवरं दीवं दुहा विभयमाणे विभयमाणे चिट्ठइ, तंजहा-अब्भिंतरपुक्खरद्धं च बाहिरपुक्खरद्धं च॥

अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं भंते! केवइयं चक्कवालेणं परिक्खेवेणं पण्णत्ते? गोयमा! अट्ठ जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं कोडी बायालीसा तीसं दोण्णि य सया अगुणवण्णा। पुक्खरअद्धपरिरओ एवं च मणुस्सखेत्तस्स॥ १॥

भावार्थ - पुष्करवरद्वीप के बहुमध्य देशभाग में मानुषोत्तर नामक पर्वत है जो गोल है और वलयाकार संस्थान से संस्थित है। वह पुष्करवरद्वीप को दो भागों में विभाजित करता है। वे इस प्रकार हैं - १. आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध और २. बाह्य पुष्करार्द्ध।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! आभ्यंतर पुष्करार्द्ध का चक्रवाल विष्कम्भ कितना है और उसकी परिधि कितनी है?

उत्तर - हे गौतम! आभ्यंतर पुष्करार्द्ध का चक्रवाल विष्कम्भ आठ लाख योजन का है और उसकी परिधि एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनपचास (१,४२,३०,२४९) योजन की है। मनुष्य क्षेत्र की परिधि भी यही है।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-अब्भिंतरपुक्खरद्धे २? गोयमा! अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं माणुसुत्तरेणं पव्वएणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, से एएणट्ठेणं गोयमा!० अब्भिंतरपुक्खरद्धे २, अदुत्तरं च णं जाव णिच्चे॥

अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं भंते! केवइया चंदा पभासिंसु वा ३ सा चेव पुच्छा जाव तारागणकोडिकोडीओ०?,

गोयमा!

बावत्तरिं च चंदा बावत्तरिमेव दिणयरा दित्ता।
पुक्खरवरदीवड्ढे चरंति एए पभासेंता॥ १॥
तिण्णि सया छत्तीसा छच्च सहस्सा महग्गहाणं तु।
णक्खत्ताणं तु भवे सोलाइं दुवे सहस्साइं॥ २॥
अडयाल सयसहस्सा बावीसं खलु भवे सहस्साइं।
दोण्णि सय पुक्खरद्धे तारागणकोडिकोडीणं॥ ३॥ सोभेंसु वा ३॥ १७६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आभ्यंतर पुष्करार्द्ध, आभ्यंतर पुष्करार्द्ध क्यों कहलाता है?

उत्तर - हे गौतम! आभ्यंतर पुष्करार्द्ध चारों ओर से मानुषोत्तर पर्वत से घिरा हुआ है इसलिये वह आभ्यंतर पुष्करार्द्ध कहलाता है। दूसरी बात यह है कि वह नित्य है।

प्रश्न - हे भगवन्! आभ्यंतर पुष्करार्द्ध में कितने चन्द्र उद्योतित (प्रभासित) होते थे, होते हैं और होंगे आदि प्रश्न तारागण तक कहना चाहिये?

उत्तर - हे गौतम! आभ्यंतर पुष्करार्द्ध में ७२ चन्द्रमा और ७२ सूर्य प्रभासित होते हुए पुष्करवर द्वीपार्द्ध में विचरण करते हैं॥ १॥

छह हजार तीन सौ छत्तीस (६३३६) महाग्रह और दो हजार सोलह (२०१६) नक्षत्र गति करते हैं चन्द्रमादि से योग करते हैं॥ २॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अड़तालीस लाख बावीस हजार दो सौ कोडाकोडी तारे शोभित होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे।

विवेचन - जम्बूद्वीप सभी द्वीप समुद्रों से छोटा होने से वहां के दो चन्द्र सूर्यों का परिवार रूप तारे जम्बूद्वीप में नहीं समा सकते अतः उन्हें लवण समुद्र में रहना पड़ता है। अतः लवण समुद्र में भी ३३ हजार तीन सौ तेतीस योजन तथा एक योजन का तिहाई भाग ($३३३३३\frac{१}{३}$) तक जम्बूद्वीप के चन्द्र सूर्यों का उद्योत आतप पहुंचता है। परन्तु आगे के द्वीप समुद्र विस्तृत होने से वहां के चन्द्र सूर्यों का परिवार वहीं समा जाता है। अतः वहां के चन्द्र सूर्यों के ताप क्षेत्र की सीमा अन्य द्वीप आदि में नहीं है तथा लवण आदि समुद्रों में भी ताप क्षेत्र की सीमा समान नहीं है।

समय क्षेत्र (मनुष्य क्षेत्र) का वर्णन

समयखेत्ते णं भंते! केवइयं आयामविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते? गोयमा! पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं एगा जोयणकोडी जावब्भिंतरपुक्खरद्धपरिरओ से भाणियव्वो जाव अउणपण्णे॥

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-माणुसखेत्ते माणुसखेत्ते? गोयमा! माणुसखेत्ते णं तिविहा मणुस्सा परिवसंति, तंजहा-कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अंतरदीवगा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-माणुसखेत्ते माणुसखेत्ते॥

माणुसखेत्ते णं भंते! कइ चंदा पभासेंसु वा ३? कइ सूरा तविंसु वा ३?० गोयमा!

बत्तीसं चंदसयं बत्तीसं चेव सूरियाण सयं। सयलं मणुस्सलोयं चरेंति एए पभासेंता॥ १॥ एक्कारस य सहस्सा छप्पि य सोला महग्गहाणं तु। छच्च सया छण्णउया णक्खत्ता तिण्णि य सहस्सा॥ २॥ अडसीइ सयसहस्सा चत्तालीस सहस्स मणुयलोगंमि। सत्त य सया अणूणा तारागणकोडिकोडीणं॥ ३॥ सोभं सोभेंसु वा ३॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! समय क्षेत्र का आयाम विष्कम्भ कितना है और परिधि कितनी है?

उत्तर - हे गौतम! समय क्षेत्र (मनुष्य क्षेत्र) का आयाम विष्कम्भ पैंतालीस (४५) लाख योजन का है और परिधि वही है जो आभ्यंतर पुष्करार्द्ध की कही थी अर्थात् एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनपचास (१,४२,३०,२४९) योजन की परिधि है।

प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य क्षेत्र, मनुष्य क्षेत्र क्यों कहलाता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! तीन प्रकार के मनुष्य, मनुष्य क्षेत्र में रहते हैं, वे इस प्रकार हैं - १. कर्मभूमिज २. अकर्मभूमिज और ३. अन्तरद्वीपज। इसलिये वह मनुष्य क्षेत्र कहलाता है।

प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य क्षेत्र में कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, होते हैं और होंगे? कितने सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे आदि प्रश्न।

उत्तर - हे गौतम! समय क्षेत्र में १३२ चन्द्र और १३२ सूर्य प्रभासित होते हुए सकल मनुष्य क्षेत्र में विचरण करते हैं।

ग्यारह हजार छह सौ सोलह महाग्रह यहां अपनी चाल चलते हैं और तीन हजार छह सौ छियानवै (३६९६) नक्षत्र, चन्द्रादि के साथ योग करते हैं।

अठासी लाख, चालीस हजार सात सौ (८८४०७००) कोडाकोडी तारागण मनुष्य लोक में शोभित होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे॥

एसो तारापिंडो सव्वसमासेण मणुयलोगंमि।
बहिया पुण ताराओ जिणेहिं भणिया असंखेज्जा॥ १॥

भावार्थ - इस प्रकार मनुष्य लोक में पूर्वोक्त संख्या प्रमाण तारा पिण्ड है। मनुष्य लोक के बाहर जिनेश्वर देवों ने असंख्यात तारा पिण्ड कहे हैं। क्योंकि असंख्यातद्वीप समुद्र होने से उनकी संख्या असंख्यात हैं।

एवइयं तारग्गं जं भणियं माणुसंमि लोगंमि।
चारं कलंबुयापुप्फसंठियं जोइसं चरइ॥ २॥

कठिन शब्दार्थ - कलंबुया पुप्फसंठियं - कदम्ब के फूल के आकार के-नीचे संक्षिप्त ऊपर विस्तृत उत्तानीकृत अर्द्ध कबीठ के आकार के।

भावार्थ - इस प्रकार तीर्थंकरों ने इस मनुष्य लोक में तारागणों (उपलक्षण से सूर्य आदि का) का जो परिमाण कहा है वे सब ज्योतिषी देवों के विमान रूप है और इनका संस्थान कदम्ब पुष्प जैसा है। तथाविध जगत् स्वभाव से ये गतिशील हैं।

रवि-ससि-गह-णक्खत्ता एवइया आहिया मणुयलोए।
जेसिं णामागोयं ण पागया पण्णवेहिंति॥ ३॥

कठिन शब्दार्थ - पागया - प्राकृता:-वैशिष्ट्य हीना:-सामान्य व्यक्ति (मूर्खजन), **पण्णवेहिंति**-प्रज्ञापयिष्यन्ति-कथन करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र (उपलक्षण से तारागण) इतनी संख्या में मनुष्य लोक में कहे गये हैं। इनके नाम, गोत्र (अन्वर्थयुक्त नाम) आदि तीर्थंकरों के अलावा सामान्य व्यक्ति कदापि नहीं कह सकते हैं अतः इनको सर्वज्ञों द्वारा उपदिष्ट (कथित) मान कर सम्यक् रूप से इन पर श्रद्धा करनी चाहिये।

छावट्ठी पिडगाइं चंदाइच्चाण मणुयलोगंमि।

दो चंदा दो सूरा य होंति एक्केक्कए पिडए॥ ४॥

कठिन शब्दार्थ - पिडगाइं - पिटकों में, **छावट्ठी** - छासठ (६६)।

भावार्थ - इन मनुष्य लोक में चन्द्रों और सूर्यों के ६६-६६ पिटक हैं। एक एक पिटक में दो चन्द्र दो सूर्य होते हैं।

विवेचन - जंबूद्वीप में एक, लवण समुद्र में दो, धातकीखण्ड में छह, कालोदधि में २१, अर्द्धपुष्करवरद्वीप में ३६, इस तरह कुल मिला कर (१+२+६+२१+३६=६६) छासठ पिटक चन्द्रों एवं छासठ पिटक सूर्यों के होते हैं।

क्षेत्र रूपी पेटी अर्थात् दो चन्द्र दो सूर्य के फिरने का चक्रवाल क्षेत्र अथवा उन चन्द्र सूर्य आदि के समूह को भी पिटक कहते हैं।

छावट्ठी पिडगाइं णक्खत्ताणं तु मणुयलोगंमि।

छप्पण्णं णक्खत्ता य होंति एक्केक्कए पिडए॥ ५॥

भावार्थ - मनुष्य लोक में नक्षत्रों के ६६ पिटक हैं। एक एक पिटक में छप्पन-छप्पन नक्षत्र हैं।

छावट्ठी पिडगाइं महागहाणं तु मणुयलोगंमि।

छावत्तरं गहसयं च होइ एक्केक्कए पिडए॥ ६॥

भावार्थ - मनुष्य लोक में महाग्रहों के ६६ पिटक हैं। एक एक पिटक में १७६-१७६ महाग्रह हैं।

चत्तारि य पंतीओ चंदाइच्चाण मणुयलोगंमि।

छावट्ठिय छावट्ठिय होइ य एक्केक्कया पंती॥ ७॥

भावार्थ - इस मनुष्य लोक में चन्द्रों और सूर्यों की चार चार पंक्तियां हैं। एक एक पंक्ति में ६६-६६ चन्द्र सूर्य हैं।

छप्पण्णं पंतीओ णक्खत्ताणं तु मणुयलोगंमि।

छावट्ठी छावट्ठी हवइ य एक्केक्कया पंती॥ ८॥

भावार्थ - इस मनुष्य लोक में नक्षत्रों की ५६ पंक्तियां हैं। एक एक पंक्ति में ६६ -६६ नक्षत्र हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छावत्तरं गहाणं पंतिसयं होइ मणुयलोगंमि।

छावट्ठी छावट्ठी य होइ एक्केक्कया पंती॥ ९॥

भावार्थ - इन मनुष्य लोक में ग्रहों की १७६ पंक्तियां हैं। एक एक पंक्ति में ६६-६६ ग्रह हैं।

ते मेरु परियडंता पयाहिणावत्तमंडला सव्वे। अणवट्ठियजोगेहिं चंदा सूरा गहगणा य॥ १०॥

कठिन शब्दार्थ - **परियडंता** - प्रदक्षिणा करते हैं, **पयाहिणावत्तमंडला** - प्रदक्षिणा वर्तमण्डल, **अणवट्ठियजोगेहिं** - अनवस्थित-यथायोग रूप से।

भावार्थ - ये चन्द्र सूर्यादि सब ज्योतिषी मेरु पर्वत के चारों ओर प्रदक्षिणा करते हैं। प्रदक्षिणा करते हुए इन चन्द्रादि के दक्षिण में ही मेरु होता है अतएव इन्हें प्रदक्षिणावर्तमण्डल कहा है। मनुष्य लोक के सभी चन्द्र सूर्य आदि प्रदक्षिणावर्तमण्डल गति से ही परिभ्रमण करते हैं। चन्द्र सूर्य और ग्रहों के मण्डल अनवस्थित हैं क्योंकि यथायोग रूप से अन्य मण्डल पर ये परिभ्रमण करते रहते हैं।

विवेचन - ज्योतिषी के सभी विमान पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होते हैं। अतः पूर्व से दक्षिण में होते हुए गमन करते हैं। इसलिए प्रदक्षिणावर्त से मेरु की प्रदक्षिणा करना बताया है। यहां सर्वत्र मेरु शब्द से जम्बूद्वीप के मध्यवर्ती मेरु पर्वत को ही समझना चाहिए।

णक्खत्ततारगाणं अवट्ठिया मंडला मुणेयव्वा।

तेऽविय पयाहिणावत्तमेव मेरुं अणुचरंति॥ ११॥

भावार्थ - नक्षत्र और ताराओं के मण्डल अवस्थित हैं अर्थात् ये नियतकाल तक एक मण्डल में रहते हैं। ये भी मेरु पर्वत के चारों ओर प्रदक्षिणावर्तमण्डल गति से परिभ्रमण करते हैं।

विवेचन - नक्षत्रों के आठ मंडल है। उसमें से जो नक्षत्र जिस मंडल पर रहता है उस नक्षत्र का विमान हमेशा उसी मंडल पर चलता रहने के कारण इन मण्डलों को अवस्थित कहा है। लेकिन देव तो सभी के अनवस्थित हैं। जितने तारे हैं उतने ही तारा मंडल हैं। वे सभी (ग्रह नक्षत्र तारा) दक्षिणायन उत्तरायण भ्रमण नहीं करने के कारण इनको अवस्थित कहे हैं। यहां '**णक्खत्त तारगाणं**' शब्द से नक्षत्रों के तारे ऐसा अर्थ समझना चाहिए। ग्रहों के आठ और तारा के दो मंडलों का उल्लेख आगम में नहीं आया है। टीकाकार का कथन है कि - ग्रह आदि की वक्रानुवक्र गति होने से इनके भी वक्रानुरूप मंडल होना संभव है। जिनके आधार से ही ग्रहण आदि का ज्ञान किया जाता है किन्तु आठ या दो मंडलों का होना नहीं समझा जाता है। कुछ तारे एक स्थान पर ही घुमते हैं जैसे ध्रुव तारा आदि। अन्य सभी मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं। ताराओं के चाल की नियतता आगमों में नहीं मिलती है। इनकी वक्र गति भी होती है किन्तु जम्बू द्वीप की सीमा में रहे हुए तारा लवण समुद्र की सीमा में जाना संभव नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। ग्रह आदि की चाल नियत होती है। तारे वक्रानुवक्र चारी होने से इनके मंडल गोल नहीं है। अतः इनके मंडल अवस्थित नहीं बताए हैं।

रयणियरदिणयराणं उड्ढे व अहे व संकमो णत्थि।

मंडलसंकमणं पुण अब्भिंतरबाहिरं तिरिए॥ १२॥

भावार्थ - चन्द्र और सूर्य का ऊपर और नीचे संक्रम नहीं होता क्योंकि ऐसा ही जगत् स्वभाव है। इनका विचरण तिरछी दिशा में सर्व आभ्यंतर मंडल से सर्व बाह्यमंडल तक और सर्व बाह्य मंडल से सर्व आभ्यंतर मण्डल तक होता रहता है।

रयणियरदिणयराणं णक्खत्ताणं महग्गहाणं च।

चारविसेसेण भवे सुहदुक्खविही मणुस्साणं॥ १३॥

भावार्थ - चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, महाग्रह और ताराओं की गति विशेष रूप से मनुष्यों के सुख दुःख प्रभावित होते हैं।

विवेचन - मनुष्यों के कर्म दो प्रकार के होते हैं - १. शुभ वेद्य और २. अशुभ वेद्य। इनके सामान्यतः विपाक के कारण द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव के पांच भेद माने गये हैं। कहा भी है -

उदयक्खयखओवसमोवसमा जं च कम्मुणो भणिया

दव्वं खेत्तं कालं भावं भवं च संपण्ण॥ १॥

- शुभ वेद्य कर्मों के विपाक के कारण शुभ द्रव्य, शुभ क्षेत्र आदि होते हैं और अशुभ वेद्य कर्मों के विपाक के कारण अशुभ द्रव्य, अशुभ क्षेत्र आदि होते हैं अतः जिनके जन्म, नक्षत्र आदि के अनुकूल चन्द्रादिकों की चाल है तब उनके प्रायः जो शुभ वेद्य कर्म हैं वे तथाविध विपाक समाग्री को प्राप्त कर जब विपाक में आते हैं तब वे जीव शरीर में नीरोगता, धनवृद्धि, वैर शांति, आप्त संयोग आदि के निमित्त से सुखी होते हैं।

जीवों का सुख दुःख तो कर्मानुसार ही होता है। ग्रह नक्षत्र आदि से तो शुभाशुभ का ज्ञान मात्र होता है। जैसे अंग स्फुरण सुख दुःख का कारण नहीं हैं पर इसके द्वारा सुख दुःख के अनुमान का ज्ञान मात्र होता है। इसी प्रकार आते समय काक पक्षी का, रवाना होते समय चिड़ीया, गर्दभ आदि को भी शाकुनिकों, आनुमानिकों, विशेषज्ञों एवं विभंगज्ञानियों द्वारा भी इन चिन्ह आदि को शुभाशुभ का मार्ग बोधक माना गया है। सुख दुःख आदि निर्मित के कारण महाग्रहों में चन्द्र सूर्य को लिया गया है क्योंकि चन्द्र सूर्य ही इन्द्र कहलाते हैं।

तेसि पविसंताणं तावक्खेत्तं तु वड्ढए णियमा।

तेणेव कमेण पुणो परिहायइ णिक्खमंताणं॥ १४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **पविसंताणं** - प्रवेश करते हुए, **तावक्खेत्तं** - ताप क्षेत्र, **णिक्खमंताणं** - बाहर निकलते हुए।

भावार्थ - सर्व बाह्यमंडल से आभ्यंतर मंडल में प्रवेश करते हुए चन्द्र और सूर्य का तापक्षेत्र नियम से क्रमशः बढ़ता जाता है और जिस क्रम से बढ़ता है उसी क्रम से सर्व आभ्यंतर मंडल से बाहर निकलने पर चन्द्र और सूर्य का तापक्षेत्र प्रतिदिन क्रमशः घटता जाता है।

तेसिं कलंबुयापुप्फसंठिया होइ तावखेत्तपहा।
अंतो य संकुया बाहिं वित्थडा चंदसूरगणा॥ १५॥

भावार्थ - उन चन्द्र सूर्यों के ताप क्षेत्र का मार्ग कदंब पुष्प के आकार जैसा है। यह मेरु की दिशा में संकुचित है और लवण समुद्र की दिशा में विस्तृत है।

केणं वड्ढइ चंदो परिहाणी केण होइ चंदस्स।
कालो वा जोण्हो वा केणऽणुभावेण चंदस्स?॥ १६॥

भावार्थ - **प्रश्न** -हे भगवन्! चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में क्यों बढ़ता है और कृष्णपक्ष में क्यों घटता है? किस कारण से कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष होते हैं?

किण्हं राहुविमाणं णिच्चं चंदेण होइ अविरहियं।
चउरंगुलमप्पत्तं हिट्ठा चंदस्स तं चरइ॥ १७॥

भावार्थ - **उत्तर** - हे गौतम! कृष्ण वर्ण का राहुविमान चन्द्रमा से सदैव चार अंगुल दूर रह कर चन्द्र विमान के नीचे चलता है। इस तरह चलता हुआ वह शुक्ल पक्ष में धीरे धीरे चन्द्रमा को प्रकट करता है और कृष्ण पक्ष में धीरे धीरे उसे ढक लेता है।

विवेचन - राहु दो प्रकार का होता है - १. पर्व राहु और २. नित्य राहु। जो राहु कदाचित् अकस्मात् आ कर अपने विमान से चन्द्र विमान को या सूर्य विमान को ढक लेता है वह पर्व राहु है। इस पर्व राहु को ही लोक में ग्रहण कहा जाता है। उसका यहां ग्रहण नहीं है। यहां तो नित्य राहु का ग्रहण किया गया है जिसका विमान काला है और जो चन्द्र विमान के नीचे चार अंगुल की दूरी पर उसके साथ सदा चलता रहता है। जब यह उसके विमान को ढक लेता है तो कृष्ण पक्ष कहलाता है और जब यह उसके विमान को नहीं ढकता है तो शुक्ल पक्ष कहलाता है। शुक्लपक्ष में धीरे धीरे चन्द्र का विमान उसके आवरण से रहित होता है और कृष्ण पक्ष में धीरे धीरे वह उसके आवरण से युक्त होता है।

बावट्ठिं बावट्ठिं दिवसे दिवसे उ सुक्कपक्खस्स।
जं परिवड्ढइ चंदो खवेइ तं चेव कालेणं॥ १८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - शुक्लपक्ष में चन्द्रमा प्रतिदिन ६२ भाग तक बढ़ता है और कृष्णपक्ष में चन्द्रमा ६२ भाग प्रमाण घटता है।

विवेचन - बासठ भाग से आशय यहां ४ भाग से हे जो इस प्रकार समझना चाहिये - चन्द्र विमान के ६२ भाग करने चाहिये। वे यहाँ भव में समुदाय के उपचार से ६२ शब्द से कहे गये हैं। शुक्लपक्ष में चन्द्रमा प्रतिदिन ६२ भाग तक बढ़ता है इसका तात्पर्य है कि वह ४-४ झाझेरा भाग तक बढ़ता है इसी तरह कृष्णपक्ष में चन्द्रमा ६२ भाग तक घटता है इसका तात्पर्य है कि वह ४-४ झाझेरा भाग तक घटता है।

आगम (चन्द्र प्रज्ञप्ति) में - **'सव्व रत्ते सव्व विरत्ते'** पाठ आया है अर्थात् पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रमा की बासठ ही कलाएं पूर्ण रूप से खुली रहती है। अमावस्या की रात्रि में चन्द्रमा की बासठ ही कलाएं आवृत (ढकी) रहती है दो कलाएं भी खुली नहीं रहती हैं। तथा समवायांग सूत्र के १५ वें समवाय में भी चन्द्रमा की १५ कलाएं (प्रतिदिन की एक एक कला गिनने से) ही बताई है।

उत्तराध्ययन सूत्र के ९वें अध्ययन में -**'कलं अग्घइ सोलसिं'** पाठ बताया है वहां पर लोक व्यवहार की दृष्टि से १६ वीं कला खुला रहना बता दिया है। जैसे उसी अध्ययन में आगे **'केलाससमा असंखया'** पाठ में लोक में प्रचलित कैलाश पर्वत (हिमालय पर्वत पर शिवजी के रहने की पर्वतमाला) की उपमा दी गई है। वैसे ही यहां पर भी समझना चाहिए। चन्द्रमा का ६२ कलाओं में से प्रति दिन रात ४-४ झाझेरी कलाओं का ढकना समझना चाहिए।

पण्णरसइभागेण य चंदं पण्णरसमेव तं वरइ।
पण्णरसइभागेण य पुणोवि तं चेव तिक्कमइ॥ १९॥

भावार्थ - कृष्णपक्ष में चन्द्र विमान के पन्द्रहवें भाग को राहु विमान अपने पन्द्रहवें भाग से ढंक लेता है और शुक्लपक्ष में उसी पन्द्रहवें भाग को मुक्त कर देता है।

विवेचन - यहां चन्द्र विमान के और राहु विमान के १५-१५ भाग कर लेना चाहिये। कृष्णपक्ष में राहु विमान चन्द्रबिमान के एक-एक भाग को ढकता है तो शुक्लपक्ष में राहु विमान चन्द्रविमान के एक-एक भाग को खुला कर देता है। कृष्णपक्ष में एक-एक भाग ढकते जाने से अमावस्या तक उसके सब भाग ढक जाते हैं और शुक्लपक्ष में पूर्णिमा तक एक-एक भाग खुला होते होते सब भाग खुले हो जाते हैं।

एवं वड्ढइ चंदो परिहाणी एव होइ चंदस्स।
कालो वा जोण्हा वा तेणणुभावेण चंदस्स॥ २०॥

भावार्थ - इस प्रकार चन्द्रमा की वृद्धि और हानि होती है। इसी कारण कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष होते हैं। (शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बढ़ता है और कृष्णपक्ष में चन्द्रमा घटता है।)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतो मणुस्सखेत्ते हवंति चारोवगा य उववण्णा।

पंचविहा जोइसिया चंदा सूरा गहगणा य॥ २१॥

भावार्थ - मनुष्य क्षेत्र के अंदर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा गण, ये पांच प्रकार के ज्योतिषी चर-गतिशील हैं।

तेण परं जे सेसा चंदाइच्चगहतारणक्खत्ता।

णत्थि गई णवि चारो अवट्ठिया ते मुणेयव्वा॥ २२॥

भावार्थ - अढाई द्वीप के बाहर जो पांच प्रकार के ज्योतिषी (चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा) हैं वे अचर (गति नहीं करते) हैं, मण्डल गति से परिभ्रमण नहीं करते अतएव अवस्थित (स्थित) हैं।

दो चंदा इह दीवे चत्तारि य सागरे लवणतोए।

धायइसंडे दीवे बारस चंदा य सूरा य॥ २३॥

भावार्थ - इस जंबूद्वीप में दो चन्द्र दो सूर्य है। लवण समुद्र में चार चन्द्र और चार सूर्य हैं। धातकीखण्ड में १२ चन्द्र और १२ सूर्य हैं।

दो दो जंबुद्दीवे ससिसूरा दुगुणिया भवे लवणे।

लावणिगा य तिगुणिया ससिसूरा धायईसंडे॥ २४॥

भावार्थ - जंबूद्वीप में दो चन्द्र दो सूर्य हैं। इनसे दुगुने लवण समुद्र में हैं और लवण समुद्र से तिगुने चन्द्रसूर्य धातकीखण्ड में हैं।

धायइसंडप्पभिई उद्दिट्ठतिगुणिया भवे चंदा।

आइल्लचंद सहिया अणंतराणंतरे खेत्ते॥ २५॥

भावार्थ - धातकीखण्ड के आगे के समुद्र और द्वीपों में चन्द्रों और सूर्यों का प्रमाण, पूर्व के द्वीप या समुद्र के प्रमाण को तिगुना करके उसमें पूर्व-पूर्व के सब चन्द्रों और सूर्यों को जोड़ देना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में आगे के द्वीपों और समुद्रों में चन्द्रों और सूर्यों की संख्या जानने की विधि बताई गई है। जैसे धातकीखण्ड द्वीप में १२ चन्द्र और १२ सूर्य कहे हैं तो कालोदधि समुद्र में १२×३=३६ तथा पूर्व पूर्व के ६ (जंबूद्वीप के २ और लवण समुद्र के चार) चन्द्र सूर्य जोड़ने पर कुल संख्या ४२ आती है। इस प्रकार कालोदधि समुद्र में ४२ चन्द्र और ४२ सूर्य है। इसी विधि से आगे के द्वीप समुद्रोंमें चन्द्रों और सूर्यों की संख्या जानी जा सकती है।

रिक्खग्गहतारग्गं दीवसमुद्दे जहिच्छसे णाउं।

तस्स ससीहिं गुणियं रिक्खग्गहतारगाणं तु॥ २६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - जिन द्वीपों और समुद्रों में नक्षत्र, ग्रह एवं ताराओं की संख्या जानने की इच्छा हो तो उन द्वीपों और समुद्रों के चन्द्र सूर्यों की संख्या को एक एक चन्द्र सूर्य परिवार से गुणा करना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में द्वीप समुद्रों में नक्षत्र, ग्रह एवं ताराओं का प्रमाण जानने की विधि बताई गई है। जैसे - लवण समुद्र में ४ चन्द्रमा है। एक एक चन्द्र परिवार में २८ नक्षत्र, ८८ ग्रह और ६६९७५ कोडाकोडी तारे हैं। अतः लवण समुद्र में नक्षत्रों की संख्या २८×४=११२, ग्रहों की संख्या ८८×४=३५२ और तारों की संख्या ६६९७५×४=२,६७,९०० कोडाकोडी है। अन्य द्वीपों एवं समुद्रों के लिये भी इसी विधि से गणना करने पर उन द्वीपों एवं समुद्रों में नक्षत्र, ग्रह एवं ताराओं की संख्या ज्ञात की जा सकती है।

चंदाओ सूरस्स य सूरा चंदस्स अंतरं होइ।
पण्णास सहस्साइं तु जोयणाणं अणूणाइं॥ २७॥

भावार्थ - चन्द्र से सूर्य का और सूर्य से चन्द्र का अन्तर पचास पचास हजार योजन का है। यह अंतर मनुष्य क्षेत्र के बाहर के चन्द्र और सूर्य का है।

सूरस्स य सूरस्स य ससिणो ससिणो य अंतर होइ।
बहियाओ मणुस्सणगस्स जोयणाणं सयसहस्सं॥ २८॥

भावार्थ - सूर्य से सूर्य का और चन्द्र से चन्द्र का अन्तर मानुषोत्तर पर्वत के बाहर एक लाख योजन का है।

सूरंतरिया चंदा चंदंतरिया य दिणयरा दित्ता।
चित्तंतरलेसागा सुहलेसा मंदलेसा य॥ २९॥

भावार्थ - मनुष्य लोक के बाहर पंक्ति रूप में अवस्थित सूर्यान्तरित चन्द्र और चन्द्रान्तरित सूर्य अपने तेजःपुंज से प्रकाशित होते हैं। इनका अंतर और प्रकाश रूप लेश्या विचित्र प्रकार की है। अर्थात् चन्द्रमा का प्रकाश शीतल है और सूर्य का प्रकाश उष्ण है। इन चन्द्र सूर्यों का प्रकाश एक दूसरे से अन्तरित होने से न तो मनुष्य लोक की तरह अति शीतल होता है और न अति उष्ण होता है किंतु सुख रूप होता है।

अट्ठासीइं च गहा अट्ठावीसं च होंति णक्खत्ता।
एगससीपरिवारो एत्तो ताराण वोच्छामि॥ ३०॥

भावार्थ - एक चन्द्रमा के परिवार में ८८ ग्रह और २८ नक्षत्र होते हैं। ताराओं का प्रमाण आगे की गाथाओं में कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छावट्ठिसहस्साइं णव चेव सयाइं पंचसयराइं।
एगससीपरिवारो तारागण-कोडिकोडीणं॥ ३१॥

भावार्थ - एक चन्द्रमा के परिवार में ६६ हजार नौ सौ ७५ कोडाकोडी तारे हैं।

विवेचन - यहां पर कोटाकोटि शब्द की व्याख्या करते हुए टीकाकार ने विशेषणवती ग्रन्थ (आचार्य जिन भद्रगणि क्षमाश्रमण द्वारा रचित) की गाथा को बताकर अर्थ किया है। यथा - कितनेक आचार्य कोटाकोटि को संज्ञान्तर (अन्य संख्या के अर्थ में) मानते हैं। अतः ज्योतिष्क विमान थोड़े ही हैं। अन्य आचार्य-तारा विमानों का माप उत्सेध अंगुल से करके तारा विमानों की आगमिक संख्या को इतने क्षेत्र में समावेश होना बताते हैं। जम्बूद्वीप सबसे छोटा होने से उसके तारा विमान सभी जंबूद्वीप में समावेश नहीं होते हैं अतः उनको लवण समुद्र के विस्तार के छट्ठे हिस्से तक में (३३३३३ $\frac{१}{३}$ योजन में) समावेश होना बताया गया है।

बहियाओ माणुसणगस्स चंदसूराणऽवट्ठिया जोगा।
चंदा अभीइजुत्ता सूरा पुण होंति पुस्सेहिं॥ ३२॥ १७७॥

भावार्थ - मानुषोत्तर पर्वत के बाहर के चन्द्र और सूर्य अवस्थित योग वाले हैं। चन्द्र अभिजित् नक्षत्र से और सूर्य पुष्य नक्षत्र से युक्त रहते हैं।

माणुसुत्तरे णं भंते! पव्वए केवइयं उड्ढं उच्चत्तेणं? केवइयं उव्वेहेणं? केवइयं मूले विक्खम्भेणं? केवइयं मज्झे विक्खंभेणं? केवइयं सिहरे विक्खंभेणं? केवइयं अंतो गिरिपरिरएणं? केवइयं बाहिं गिरिपरिरएणं? केवइयं मज्झे गिरिपरिरएणं? केवइयं उवरि गिरिपरिरएणं?,

गोयमा! माणुसुत्तरे णं पव्वए सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि तीसे जोयणसए कोसं च उव्वेहेणं मूले दसबावीसे जोयणसए विक्खंभेणं मज्झे सत्ततेवीसे जोयणसए विक्खंभेणं उवरि चत्तारिचउवीसे जोयणसए विक्खंभेणं अंतो गिरिपरिरएणंएगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं। तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं, बाहिरगिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं छत्तीसं च सहस्साइं सत्तचोद्दसोत्तरे जोयणसए परिक्खेवेणं, मज्झे गिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं चोत्तीसं च सहस्सा अट्ठतेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं, उवरि गिरिपरिरएणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं बत्तीसं च सहस्साइं णव य बत्तीसे जोयणसए परिक्खेवेणं, मूले विच्छिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए अंतो सण्हे मज्झे उदग्गे बाहिं दरिसणिज्जे ईसिं सण्णिसण्णे सीहणिसाई अवद्धजवरासिसंठाणसंठिए सव्वजंबूणयामए अच्छे सण्हे जाव पडिरूवे, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहि य वणसंडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते वण्णओ दोण्हवि॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मानुषोत्तर पर्वत की ऊंचाई कितनी है? उसकी जमीन में गहराई कितनी है? वह मूल में कितना चौड़ा है? मध्य में कितना चौड़ा है और शिखर पर कितना चौड़ा है? उसकी अंदर की परिधि कितनी है? बाहर की परिधि कितनी है? मध्य की परिधि कितनी है? और ऊपर की परिधि कितनी है?

उत्तर - हे गौतम! मानुषोत्तर पर्वत एक हजार सात सौ इक्कीस (१७२१) योजन पृथ्वी से ऊंचा है। चार सौ तीस (४३०) योजन और एक कोस पृथ्वी में गहरा है। यह मूल में एक हजार बाईस (१०२२) योजन चौड़ा हैं, मध्य में सात सौ तेईस (७२३) योजन चौड़ा है और ऊपर चार सौ चौबीस (४२४) योजन चौड़ा है। पृथ्वी के भीतर इसकी परिधि एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनपचास (१४२३०२४९) योजन है। बाह्य भाग में नीचे की परिधि एक करोड़ बयालीस लाख छत्तीस हजार सात सौ चौदह (१४२३६७१४) योजन है। मध्य में एक करोड़ बयालीस लाख चौंतीस हजार आठ सौ तैईस (१४२३४८२३) योजन की परिधि है। ऊपर की परिधि एक करोड़ बयालीस लाख बत्तीस हजार नौ सौ बत्तीस (१४२३२९३२) योजन की है।

यह पर्वत मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर संकुचित (पतला) है। यह भीतर से चिकना है, मध्य में प्रधान (श्रेष्ठ) और बाहर से दर्शनीय है। यह पर्वत कुछ बैंठा हुआ है अर्थात् जैसे सिंह अपने आगे के दोनों पैरों को लम्बा करके पीछे के दोनों पैरों को सिकोड़ कर बैठता है। उसी प्रकार से बैठा हुआ है। यह पर्वत आधे यव की राशि के आकार में रहा हुआ है, ऊर्ध्व अधोभाग से छिन्न और मध्यभाग में उन्नत है। यह पर्वत पूर्ण रूप से जांबूनद (स्वर्ण) मय है, आकाश और स्फटिक मणि की तरह निर्मल है चिकना है यावत् प्रतिरूप है। इसके दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाएं और दो वनखण्ड सब ओर से घिरे हुए हैं। दोनों का वर्णन कह देना चाहिये।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ माणुसुत्तरे पव्वए माणुसुत्तरे पव्वए?

गोयमा! माणुसुत्तरस्स णं पव्वयस्स अंतो मणुया उप्पिं सुवण्णा बाहिं देवा अदुत्तरं च णं गोयमा! माणुसुत्तरपव्वयं मणुया ण कयाइ वीइवइंसु वा वीइवयंति वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लीइवइस्संति वा णण्णत्थ चारणेहिं वा विज्जाहरेहिं वा देवकम्मुणा वावि, से तेणट्ठेणं गोयमा!० अदुत्तरं च णं जाव णिच्चे त्ति॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यह मानुषोत्तर पर्वत क्यों कहलता है?

उत्तर - हे गौतम! मानुषोत्तर पर्वत के अंदर-अंदर मनुष्य रहते हैं, इसके ऊपर सुपर्णकुमार देव रहते हैं और इससे बाहर देव रहते हैं। हे गौतम! दूसरा कारण यह है कि इस पर्वत के बाहर मनुष्य न तो कभी गये हैं, न कभी जाते हैं और न कभी जाएंगे, केवल जंघाचारण और विद्याचारण मुनि तथा देवों द्वारा संहरण किये मनुष्य ही इस पर्वत से बाहर जा सकते हैं इसलिये यह पर्वत मानुषोत्तर पर्वत कहलाता है अथवा हे गौतम! यह नाम शाश्वत होने से नित्य है।

जावं च णं माणुसुत्तरे पव्वए तावं च णं अस्सिं लोएत्ति पवुच्चइ, जावं च णं वासाइं वा वासहराइं वा तावं च णं अस्सिं लोएत्ति पवुच्चइ, जावं च णं गेहाइ वा गेहावयणाइ वा तावं च णं अस्सिं लोए त्ति पवुच्चइ, जावं च णं गामाइ वा जाव रायहाणीइ वा तावं च णं अस्सिं लोएत्ति पवुच्चइ, जावं च णं अरहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा पडिवासुदेवा चारणा विज्जाहरा समणा समणीओ सावया सावियाओ मणुया पगइभद्दगा विणीया तावं च ण अस्सिं लोएत्ति पवुच्चइ।

जावं च णं समयाइ वा आवलियाइ वा आणापाणूइ वा थोवाइ वा लवाइ वा मुहुत्ताइ वा दिवसाइ वा अहोरत्ताइ वा पक्खाइ वा मासाइ उऊइ वा अयणाइ वा संवच्छराइ वा जुगाइ वा वाससयाइ वा वाससहस्साइ वा वाससयसहस्साइ वा पुव्वंगाइ वा पुव्वाइ वा तुडियंगाइ वा, एवं पुव्वे तुडिए अडडे अववे हुहुए उप्पले पउमे णलिणे अच्छिणिउरे अउए पउए णउए चूलिया सीस पहेलिया जाव सीसपहेलियंगेइ वा सीसपहेलियाइ वा पलिओवमेइ वा सागरोवमेइ वा अवसप्पिणीइ वा ओसप्पिणीइ वा तावं च णं अस्सिं लोएत्ति पवुच्चइ।

जावं च णं बायरे विज्जुयारे बायरे थणियसद्दे तावं च ण अस्सिं०, जावं च णं बहवे ओराला बलाहगा संसेसंति संमुच्छंति वासं वासंति तावं च णं अस्सिं लोए०, जावं च णं बायरे तेउकाए तावं च णं अस्सिं लोए०, जावं च णं आगाराइ वा णईउइ वा णिहीइ वा तावं च णं अस्सिं लोएत्ति पवुच्चइ, जाव च णं अगडाइ णईइ वा तावं च णं अस्सिं लोए०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जावं च णं चंदोवरागाइ वा सूरोवरागाइ वा चंदपरिवेसाइ वा सूरपरिवेसाइ वा पडिचंदाइ वा पडिसूराइ वा इंदधणूइ वा उदगमच्छेइ वा कविहसिवाइ वा तावं च णं अस्सिं लोएत्ति प०, जावं च णं चंदिमसूरियगहणक्खत्ततारारूवाणं अभिगमण-णिग्गमण-वुड्डि-णिवुड्डि-अणवट्टियसंठाणसंठिई आघविजइ तावं च ण अस्सिं लोएत्ति पवुच्चइ॥ १७८॥

कठिन शब्दार्थ - **आणापाणूइ** - आनप्राण (श्वासोच्छ्वास), **थोवाइ** - स्तोक (सात श्वासोच्छ्वास प्रमाण), **लवाइ** - लव (सात स्तोक), **उऊइ** - ऋतु, **अयणाइ** - अयन ((छह मास), **संवच्छराइ** - संवत्सर (वर्ष), **जुगाइ** - युग (पांच वर्ष), **पुव्वंगाइ** - पूर्वांग, **तुडियंगाइ** - त्रुटितांग, **सीसपहेलियंगेइ** - शीर्ष प्रहेलिकांग, **सीसपहेलियाइ** - शीर्ष प्रहेलिका, **विज्जुयारे** - विद्युत, **थणियसद्दे**- स्तनित-मेघगर्जन, **चंदोवरागाइ** - चन्द्रोपराग-चन्द्रग्रहण, **सूरोवरागाइ** - सूर्य ग्रहण, **चंदपरिवेसाइ** - चन्द्र परिवेष, **पडिसूराइ** - प्रतिसूर्य, **उदगमच्छेइ** - उदक मत्स्य, **कविहसिवाइ** - कपिहसित।

भावार्थ - जहां तक यह मानुषोत्तर पर्वत है वहीं तक यह मनुष्य लोक है अर्थात् मनुष्य लोक में ही वर्ष, वर्षधर, गृह आदि हैं इससे बाहर नहीं आगे सर्वत्र ऐसा ही समझना चाहिये जहां तक भरत आदि क्षेत्र और वर्षधर पर्वत हैं वहां तक मनुष्य लोक है। जहां तक घर या दुकान आदि हैं वहां तक मनुष्य लोक है जहां तक ग्राम यावत् राजधानी है वहां तक मनुष्य लोक है। जहां तक अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, जंघाचारण मुनि, विद्याचारण मुनि, श्रमण, श्रमणियां, श्रावक श्राविकाएं और प्रकृति से भद्र विनीत मनुष्य हैं वहां तक मनुष्य लोक है।

जहां तक समय, आवलिका, आनप्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त्त, दिन, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, सौ वर्ष, हजार वर्ष, लाख वर्ष, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, इसी क्रम से अड्ड, अवव, हुहूक, उत्पल, पद्म, नलिन, अर्थनिकुर, अयुत, प्रयुत, नयुत, चूलिका, शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल है वहां तक मनुष्य लोक है।

जहां तक बादर विद्युत और बादर स्तनित (मेघ-गर्जन) है जहां तक बहुत से उदार-बड़े मेघ उत्पन्न होते हैं, सम्मूर्च्छित होते हैं-बनते हैं बिखरते हैं, वर्षा बरसाते हैं वहां तक मनुष्य लोक है। जहां तक बादर अग्नि है वहां तक मनुष्य लोक है। जहां तक खान, नदियां और निधियां हैं, कुएं, तालाब आदि हैं, वहां तक मनुष्य लोक है।

जहां तक चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, चन्द्रपरिवेष, सूर्य परिवेष, प्रतिचन्द्र, प्रतिसूर्य, इन्द्रधनुष, उदकमत्स्य और कपिहसित आदि हैं वहां तक मनुष्य लोक है। जहां तक चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं का अभिगमन, निर्गमन, चन्द्र की वृद्धि हानि तथा चन्द्र आदि की सतत गतिशीलता रूप स्थिति कही जाती है वहां तक मनुष्य लोक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - मनुष्य लोक की सीमा करने वाला होने से मानुषोत्तर पर्वत, मानुषोत्तर पर्वत कहलाता है। जहां तक भरतादि क्षेत्र, वर्षधर पर्वत, घर, दुकान मकान, ग्राम, नगर, राजधानी, अरिहंत आदि श्लाघनीय पुरुष, प्रकृति से भद्र विनीत मनुष्य आदि, समय आदि का व्यवहार, विद्युत, मेघगर्जन, मेघोत्पत्ति, बादर अग्नि, खान, नदियां, निधियां, कुएं, तालाब तथा आकाश में चन्द्र सूर्य आदि का गमन आदि है वहां तक मनुष्य लोक है। मनुष्य लोक से बाहर इन सब का अस्तित्व नहीं है अर्थात् मानुषोत्तर पर्वत से परे-बाहर की ओर इन सब पदार्थों और व्यवहारों का सद्भाव नहीं है।

प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त समय, आवलिका आदि शब्दों का अर्थ इस प्रकार है -

समय - काल का सबसे सूक्ष्म अंश जिसका फिर विभाग न हो सके वह 'समय' कहलाता है। समय की सूक्ष्मता को समझने के लिये आगमकारों ने जो स्थूल उदाहरण दिया है वह इस प्रकार है - जैसे कोई तरुण, बलवान्, हृष्ट पुष्ट, स्वस्थ और निपुण कलाकुशल दर्जी का पुत्र किसी जीर्ण शीर्ण साड़ी को हाथ में लेते ही शीघ्र ही फाड़ देता है। देखने वालों को ऐसा प्रतीत होता है कि इसने पल भर में साड़ी को फाड़ दिया है परंतु तत्त्वदृष्टि से उस साड़ी को फाड़ने में असंख्यात समय लगे हैं क्योंकि साड़ी में अगणित तंतु हैं। ऊपर का तंतु फटे बिना नीचे का तंतु फट नहीं सकता है अतएव यह मानना पड़ता है कि प्रत्येक तंतु के फटने का काल अलग अलग है। वह तंतु भी कई रेशों से बना हुआ है वे रेशे भी क्रम से फटते हैं। अतएव साड़ी के उपरि तंतु के उपरितन रेशे के फटने में जितना समय लगा उससे भी बहुत सूक्ष्मतर समय कहा गया है।

जघन्ययुक्त असंख्यात समयों की एक **आवलिका** होती है।

संख्यात आवलिकाओं का एक **उच्छ्वास** होता है।

संख्यात आवलिकाओं का एक **निःश्वास** होता है।

एक उच्छ्वास और एक निःश्वास मिल कर एक **आनप्राण** होता है।

सात आनप्राणों का एक स्तोक, सात स्तोकों का एक **लव** होता है।

७७ लवों का एक **मुहूर्त्त** होता है।

(१,६७,७७,२१६) एक करोड़ सडसठ लाख सत्तत्तर हजार दो सौ सोलह आवलिकाओं का एक **मुहूर्त्त** होता है और एक मुहूर्त्त में तीन हजार सात सौ त्रयोतर उच्छ्वास होते हैं।

तीस मुहूर्त्तों का एक **अहोरात्र,** पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्षों का एक मास, दो मास की एक **ऋतु** होती है। तीन ऋतुओं का एक **अयन,** दो अयन का एक संवत्सर (वर्ष), पांच संवत्सर का एक **युग,** बीस युग का **सौ वर्ष**। दस सौ वर्ष का **हजार वर्ष**, १०० हजार वर्ष का **एक लाख वर्ष,** ८४ लाख वर्ष का एक **पूर्वांग,** ८४ लाख पूर्वांग का एक **पूर्व,** ८४ लाख पूर्वों का एक **त्रुटितांग**, ८४ लाख त्रुटितांगों का एक **त्रुटित,** ८४ लाख त्रुटितों का एक **अड्डांग**, ८४ लाख अड्डांगों का एक **अड्ड,** ८४ लाख

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अड्डों का एक **अववांग** ८४ लाख अववांगों का एक **अवव,** ८४ लाख अववों का एक **हूहूकांग,** ८४ लाख हुहूकांगों का एक **हुहुक**, ८४ लाख हुहुकों का एक उत्पलांग, ८४ लाख उत्पलांगों का एक **उत्पल,** ८४ लाख उत्पलों का एक **पद्मांग,** ८४ लाख पद्मांगों का एक **पद्म,** ८४ लाख पद्मों का एक **नलिनांग,** ८४ लाख नलिनांगों का एक अर्थ **निकुरांग,** ८४ लाख अर्थ निकुरांगों का एक **नलिन,** ८४ लाख नलिनों का एक **अर्थनिकुर,** ८४ लाख अर्थनिकुरों का एक **अयुतांग,** ८४ लाख अयुतांगों का एक **अयुत,** ८४ लाख अयुतों का एक **प्रयुतांग,** ८४ लाख प्रयुतांगों का एक **प्रयुत,** ८४ लाख प्रयुतों का एक **नयुतांग,** ८४ लाख नयुतांगों का एक **नयुत,** ८४ लाख नयुतों का एक **चूलिकांग**, ८४ लाख चूलिकांगों की एक **चूलिका,** ८४ लाख चूलिकाओं की एक **शीर्ष प्रहेलिकांग,** ८४ लाख शीर्ष प्रहेलिकांगों की एक **शीर्ष प्रहेलिका** होती है।

इस तरह जैन सिद्धान्तानुसार समय से लगा कर शीर्ष प्रहेलिका पर्यन्त काल की गणना की गयी है। इससे आगे का काल उपमा से जाना जाता है। पल्योपम और सागरोपम औपमिक काल है। दस कोडाकोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। दस कोडाकोडी सागरोपम का एक अवसर्पिणी काल और दस कोडाकोडी सागरोपम का ही एक उत्सर्पिणी काल होता है। एक अवसर्पिणी और एक उत्सर्पिणी काल का एक कालचक्र होता है। कालद्रव्य मनुष्य क्षेत्र में ही है अतः उपरोक्त कालों का व्यवहार मनुष्य लोक में ही होता है।

अंतो णं भंते! मणुस्सखेत्तस्स जे चंदिमसूरियगहगणणक्खत्ततारारूवा ते णं भंते! देवा किं उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठिइया गइरइया गइसमावण्णगा?

गोयमा! ते णं देवा णो उड्ढोववण्णगा णो कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा णो चारट्ठिइया गइरइया गइसमावण्णगा उड्ढमुहकलंबुयपुप्फसंठाण-संठिएहिं जोयणसाहस्सिएहिं तावखेत्तेहि साहस्सियाहिं बाहिरियाहिं वेउव्वियाहिं परिसाहिं महया हयणट्टगीयवाइयतंती-तलतालतुडिय घणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा महया महया उक्किट्ठसीहणायबोलकलकलसद्देणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा अच्छयपव्वयरायं पयाहिणावत्तमंडलयारं मेरुं अणुपरियडंति॥

कठिन शब्दार्थ- उड्ढोववण्णगा - ऊर्ध्वोपपन्नकाः-ऊर्ध्व विमानों में उत्पन्न हुए, **कप्पोववण्णगा-** *कल्पोपपन्नकाः-कल्पों में उत्पन्न हुए,* **चारोववण्णगा** - चारोपपन्नकाः-ज्योतिषी विमानों में उत्पन्न हुए, **चारट्ठिईया** - चारस्थितिकाः-गति रहित, **गइरइया** - गतिरतिक-गति में रति वाले, **गइसमावण्णगा** - गति समापन्नाः-गति को प्राप्त, **उड्ढमुहकलंबुयपुप्फसंठाणसंठिएहिं** - ऊर्ध्वमुख कदम्ब पुष्प की तरह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोलाकार संस्थित, **महया हयणट्टगीयवाइयतंतीतलताल तुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं**- जोर से बजने वाले वाद्यों, नृत्यों, गीतों, वादिन्त्रों, तंत्री, ताल, त्रुटित, मृदंग आदि की मधुर ध्वनि से युक्त, **उक्किट्ठसीहणायबोलकलकलसद्देणं** - महतोत्कृष्ट सिंहनादबोलकलकलशब्देन-हर्ष से सिंहनाद, बोल मुख से सीटी बजाते हुए और कल कल ध्वनि करते हुए, **पव्वयरायं** - पर्वतराज मेरु, **पयाहिणावत्तमंडलयारं** - प्रदक्षिणावर्तमंडल गति से, **अणुपरियडंति** - परिक्रमा करते हैं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य क्षेत्र के अंदर जो चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारागण हैं वे ज्योतिषी देव क्या ऊर्ध्व विमानों में उत्पन्न हुए हैं, सौधर्म आदि कल्पों में उत्पन्न हुए हैं, विमानों में उत्पन्न हुए हैं, गति शील हैं या गति रहित हैं, गति में रति करने वाले हैं और गति को प्राप्त हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे देव ऊर्ध्व विमानों में उत्पन्न नहीं हुए हैं, बारह देवलोकों में उत्पन्न नहीं हुए हैं किंतु ज्योतिषी विमानों में उत्पन्न हुए हैं। वे गतिशील है, स्थितिशील नहीं हैं, गति में उनकी रति है और वे गति प्राप्त हैं। वे ऊर्ध्वमुख कदम्बपुष्प की तरह गोल आकृति से संस्थित हैं हजारों योजन प्रमाण उनका तापक्षेत्र है, विक्रिया द्वारा नाना रूपधारी बाह्य परिषद् के देवों से युक्त हैं। जोर से बजने वाले वाद्यों, नृत्यों, गीतों, वादिन्त्रों, तंत्री, ताल, त्रुटित, मृदंग आदि की मधुर ध्वनि के साथ दिव्य भोग भोगते हुए हर्ष से सिंहनाद, बोल और कलकल ध्वनि करते हुए स्वच्छ पर्वतराज मेरु की प्रदक्षिणावर्त मंडलगति से परिक्रमा करते रहते हैं।

जया णं भंते! तेसिं देवाणं इंदे चवइ से कहमिदाणिं पकरेंति?

गोयमा! ताहे चत्तारि पंच सामाणिया तं ठाणं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति जाव तत्थ अण्णे इंदे उववण्णे भवइ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जब उन ज्योतिषी देवों का इन्द्र चवता है तब वे देव क्या करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जब उन ज्योतिषी देवों का इन्द्र चवता है तब इन्द्र के विरह में चार-पांच सामानिक देव सम्मिलित रूप से उस इन्द्र के स्थान पर तब तक कार्यरत रहते हैं जब तक वहां दूसरा इन्द्र उत्पन्न नहीं होता है।

इंदट्ठाणे णं भंते! केवइयं कालं विरहिए उववाएणं पण्णत्ते?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा॥

बहिया णं भंते! मणुस्सखेत्तस्स जे चंदिमसूरियगहणक्खत्तताराख्वा ते णं भंते! देवा किं उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठिइया गइरइया गइसमावण्णगा?

गोयमा! ते णं देवा णो उड्ढोववण्णगा णो कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा णो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चारोववण्णगा चारट्ठिइया णो गइरइया णो गइसमावण्णगा पक्किट्टगसंठाणसंठिएहिं जोयणसय-साहस्सिएहिं तावक्खेत्तेहिं साहस्सियाहि य बाहिराहिं वेउव्वियाहिं परिसाहिं महया हयणट्टगीयवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा जाव सुहलेस्सा सीयलेस्सा मंदलेस्सा मंदायवलेस्सा चित्तंतरलेसागा कूडा इव ठाणट्ठिया अण्णोण्णसमोगाढाहिं लेसाहिं ते पएसे सव्वओ समंता ओभासेंति उज्जोवेंति तवेंति पभासेंति॥

जया णं भंते! तेसिं देवाणं इंदे चयइ से कहमिदाणिं पकरेंति?

गोयमा! जाव चत्तारि पंच सामाणिया तं ठाणं उवसंपरिज्जत्ताणं विहरंति जाव तत्थ अण्णे इंदे उववण्णे भवइ।

इंदट्ठाणे णं भंते! केवइयं कालं विरहिए उववाएणं प० ?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा॥ १७९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन्द्र का स्थान कितने समय तक इन्द्र की उत्पत्ति से रहित रहता है?

उत्तर - हे गौतम! इन्द्र का स्थान जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक खाली रहता है।

प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य क्षेत्र से बाहर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा रूप ये ज्योतिषी देव क्या ऊर्ध्वोपपन्न हैं, कल्पोपपन्न हैं, विमानोपपन्न हैं गतिशील हैं या गति स्थिर हैं, गति में रति करने वाले हैं या गति प्राप्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य क्षेत्र से बाहर के ज्योतिषी देव ऊर्ध्वोपपन्नक नहीं हैं, कल्पोपपन्नक नहीं है किन्तु विमानोपपन्नक हैं। वे गतिशील नहीं हैं गति स्थिर हैं। गतिरतिक नहीं हैं, गति प्राप्त नहीं है। वे पकी हुई ईंट के आकार के हैं। लाखों योजन का उनका तापक्षेत्र है। वे विक्रिया किये हुए हजारों बाह्य परिषद् के देवों के साथ जोर से बजने वाले वाद्यों, नृत्यों, गीतों और वादिन्त्रों की मधुर ध्वनि के साथ दिव्य भोगोपभोग करते हुए रहते हैं। वे शुभ प्रकाश वाले हैं, उनकी किरणें शीतल और मंद हैं उनका आतप और प्रकाश उग्र नहीं है उनका प्रकाश विचित्र प्रकार का है। कूट--शिखर की तरह ये एक स्थान पर स्थित हैं। इन चन्द्रों और सूर्यों का प्रकाश एक दूसरे से मिश्रित है। वे अपनी सम्मिलित किरणों से उस प्रदेश को सब ओर से अवभासित, उद्योतित, तापित और प्रभासित करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! जब इन ज्योतिषी देवों का इन्द्र चवता है तो वे देव क्या करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! यावत् चार पांच सामानिक देव उसके स्थान पर सम्मिलित रूप से तब तक कार्यरत रहते हैं जब तक कि दूसरा इन्द्र वहां उत्पन्न न हो।

प्रश्न - हे भगवन्! उस इन्द्र स्थान का विरह कितने काल का है?

उत्तर - हे गौतम! उस इन्द्र स्थान का विरह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास का होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुष्करोद समुद्र का वर्णन

पुक्खरवरण्णं दीवं पुक्खरोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ॥

पुक्खरोदे णं भंते! समुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?

गोयमा! संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते॥

भावार्थ - पुष्करवरद्वीप को गोल और वलयाकार संस्थान से संस्थित पुष्करोद नामक समुद्र सब ओर से घेरे हुए स्थित है।

प्रश्न - हे भगवन्! पुष्करोद समुद्र का चक्रवाल विष्कंभ कितना है और उसकी कितनी परिधि है?

उत्तर - हे गौतम! पुष्करोद समुद्र का चक्रवाल विष्कंभ संख्यात लाख योजन का है और उसकी परिधि भी संख्यात लाख योजन की है।

पुक्खरोदस्स णं भंते! समुद्दस्स कइ दारा पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता तहेव सव्वं पुक्खरोदसमुद्दपुरत्थिमपेरंते वरुणवरदीवपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं पुक्खरोदस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते, एवं सेसाणवि। दारंतरंमि संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। पएसा जीवा य तहेव।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-पुक्खरोदे समुद्दे पुक्खरोदे समुद्दे?

गोयमा! पुक्खरोदस्स णं समुद्दस्स उदगे अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फलिहवण्णाभे पगईए उदगरसेणं सिरिधरसिरिप्पभा य० दो देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, से एएणट्ठेणं जाव णिच्चे।

पुक्खरोदे णं भंते! समुद्दे केवइया चंदा पभासिंसु वा ३?० संखेज्जा चंदा पभासेंसु वा ३ जाव तारागणकोडिकोडीओ सोभेंसु वा ३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुष्करोद समुद्र के कितने द्वार कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! पुष्करोद समुद्र के चार द्वार कहे गये हैं इत्यादि वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये यावत् पुष्करोद समुद्र के पूर्व दिशा के अन्त में और वरुणवरद्वीप के पूर्वार्द्ध के पश्चिम में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुष्करोद समुद्र का विजय द्वार हैं। शेष सारा कथन जंबूद्वीप के विजय द्वार की तरह कह देना चाहिये। इन द्वारों का परस्पर अंतर संख्यात लाख योजन का है। प्रदेश स्पर्श और जीवों की उत्पत्ति का कथन पूर्ववत् समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! पुष्करोद समुद्र, पुष्करोद समुद्र क्यों कहलाता है?

उत्तर - हे गौतम! पुष्करोद समुद्र का पानी स्वच्छ, पथ्यकारी, जातिवंत हल्का, स्फटिक रत्न की आभा वाला तथा स्वभाव से ही उदक रस वाला है। श्रीधर और श्रीप्रभ नाम के दो महर्द्धिक देव यावत् पल्योपम की स्थिति वाले वहां रहते हैं। इसलिये पुष्करोद समुद्र पुष्करोद कहलाता है यावत् नित्य एवं शाश्वत नाम वाला है।

प्रश्न - हे भगवन्! पुष्करोद समुद्र में कितने चन्द्र उद्योतित होते थे, होते हैं और होंगे आदि प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! पुष्करोद समुद्र में संख्यात चन्द्र प्रभासित होते थे, होते हैं और होंगे इत्यादि सारा वर्णन पूर्ववत् कर देना चाहिये यावत् संख्यात कोटाकोटि तारें वहां शोभित होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे।

वरुणवर द्वीप वर्णन

पुक्खरोदे णं समुद्दे वरुणवरेणं दीवेणं संपरिक्खित्ते वट्टे वलयागारे जाव चिट्ठइ, तहेव समचक्कवालसंठिए० केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते? गोयमा! संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, पउमवरवेइयावणसंडवण्णओ दारंतरं पएसा जीवा तहेव सव्वं॥

भावार्थ - गोल और वलयाकार पुष्करोद नाम का समुद्र वरुणवरद्वीप से चारों ओर से घिरा हुआ स्थित है। इत्यादि पूर्वानुसार कह देना चाहिये यावत् वह समचक्रवाल संस्थान से संस्थित है।

प्रश्न - हे भगवन्! वरुणवरद्वीप का चक्रवाल विष्कंभ कितना है और उसकी कितनी परिधि है?

उत्तर - हे गौतम! वरुणवरद्वीप का चक्रवाल विष्कंभ लाख योजन का है और उसकी परिधि संख्यात लाख योजन की है। उसके चारों ओर पद्मवरवेदिका और वनखण्ड है। दोनों का वर्णन कह देना चाहिये। द्वारों का अंतर, प्रदेश स्पर्श, जीवोत्पत्ति आदि सारा वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-वरुणवरे दीवे वरुणवरे दीवे?

गोयमा! वरुणवरे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहूओ खुड्डाखुड्डियाओ जाव बिलपंतियाओ अच्छाओ० पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरि० वण०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वारुणिवरोदगपडिहत्थाओ पासाइयाओ ४, तासु णं खुड्डाखुड्डियासु जाव बिलपंतियासु बहवे उप्पायपव्वया जाव खडहडगा सव्वफलिहामया अच्छा तहेव वरुणवरुणप्पभा य एत्थ दो देवा महिड्ढिया० परिवसंति, से तेणट्ठेणं जाव णिच्चे। जोइसं सव्वं संखेज्जएणं जाव तारागणकोडिकोडीओ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वरुणवरद्वीप, वरुणवरद्वीप क्यों कहलाता है?

उत्तर - हे गौतम! वरुणवरद्वीप में स्थान-स्थान पर यहां, वहां बहुत सी छोटी-छोटी बावड़ियां यावत् बिल पंक्तियां हैं जो स्वच्छ हैं, प्रत्येक पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से चारों ओर से घिरी हुई हैं। श्रेष्ठ वारुणी के समान जल से परिपूर्ण हैं यावत् प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है। उन छोटी छोटी बावड़ियों में यावत् बिल पंक्तियों में बहुत से उत्पात पर्वत यावत् खडहडग हैं जो सर्व स्फटिक मय स्वच्छ हैं आदि सारा वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिये। वहां वरुण और वरुणप्रभ नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं इसलिये वरुणवरद्वीप कहलाता है यावत् वह नित्य शाश्वत है। वहां चन्द्र सूर्य आदि ज्योतिषी देव संख्यात-संख्यात कहने चाहिये यावत् वहां संख्यात तारागण शोभित होते थे, होते हैं और होंगे।

वरुणवरण्णं दीवं वारुणोदे णामं समुद्दे वट्टे वलया० जाव चिट्ठइ, समचक्क० विसमचक्कवालवि० तहेव सव्वं भाणियव्वं, विक्खंभपरिक्खेवो संखिज्जाइं जोयणसहस्साइं दारंतरं च पउमवर० वणसंडे पएसा जीवा अट्ठो-

गोयमा! वारुणोदस्स णं समुद्दस्स उदए से जहा णामए चंदप्पभाइ वा मणिसिलागाइ वा वरसीहू वरवारुणीइ वा पत्तासवेइ वा पुप्फासवेइ वा चोयासवेइ वा फलासवेइ वा महुमेरएइ वा जंबूफलपुट्ठवण्णाइ वा जाइप्पसण्णाइं वा खज्जूरसारेइ वा मुद्दियासारेइ वा कापिसायणाइ वा सुपक्कखोयरसेइ वा पभूयसंभारसंचिया पोसमाससयभिसयजोगवत्तिया णिरुवहयविसिट्ठदिण्णकालोवयारा सुधोया उक्कोसमयपत्ता अट्ठपिट्ठणिट्ठिया (मुरवइंतवरकिमदिण्णकद्दमा कोपसण्णा अच्छा वरवारुणी अतिरसा जंबूफलपुट्ठवण्णा सुजाया ईसिउट्ठावलंबिणी अहियमधुरपेज्जा ईसीसिरत्तणेत्ता कोमलकवोलकरणी जाव आसाइया विसाइया अणिहुयसंलावकरण-हरिसपीइजणणी संतोसततबिबोक्कहाव-विब्भमविलासवेल्लहलगमणकरणी विरणमधियसत्तजलणाणी य होई संगामदेस-कालेकयरणसमरपसरकरणी कढियाणविज्जुपयतिहिययाण मउयकरणी य होति उववेसिया समाणा गइं खलावेइ

य सयलंमिवि सुभासवुप्पालिया समरभग्गवणोसहयार-सुरभिरसदीविया सुगंधा आसायणिज्जा विस्सायणिज्जा पीणणिज्जा दप्पणिज्जा मयणिज्जा सव्विंदियगायपल्हायणिज्जा) आसवा मासला पेसला (ईसी ओट्ठावलंबिणी ईसी तंबच्छिकरणी ईसी वोच्छेया कडुआ) वण्णेणं उववेया गंधेणं उववेया रसेणं उववेया फासेणं उववेया, भवे एयारूवे सिया? गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, वारुणस्स णं समुद्दस्स उदए एत्तो इट्ठतरे जाव आसाएणं पण्णत्ते, तत्थ णं वारुणिवारुणकंता दो देवा महिड्डिया जाव परिवसंति, से एएणट्ठेणं जाव णिच्चे, वारुणिवरेणं दीवे कइचंदा पभासिंसु वा ३? सव्वं जोइसं संखिज्जगेण णायव्वं॥ १८०॥

कठिन शब्दार्थ - चंदप्पभाइ - चन्द्रप्रभा नामक सुरा, **मणिसिलागाइ** - मणिशलाका सुरा, **वरवारुणीइ** - श्रेष्ठ वारुणी सुरा, **खज्जुरसारेइ** - खजूर का सार, **मुद्दियासारेइ** - मृद्धिका (द्राक्षा) का सार, **पोसमाससयभिसयजोगवत्तिया** - पौष मास में सैकडों वैद्यों द्वारा तैयार की गई, **णिरुवहयविसिट्ठदिण्णकालोवयारा** - निरुपहत और विशिष्ट कालोपचार से निर्मित, **उक्कोसगमयपत्ता**- उत्कृष्ट मादक शक्ति से युक्त, **अट्ठपिट्ठणिट्ठिया** - आठ बार पिष्ट (आटा) प्रदान से निष्पन्न, **आसला** - आस्वाद वाली, **मासला** - प्रकृष्ट रसास्वाद वाली, **पेसला** - पेशल (मनोज्ञ)।

भावार्थ - वरुणवरद्वीप को गोल और वलयाकार रूप से संस्थित वरुणोद नामक समुद्र चारों ओर से घेर कर स्थित है। वह वरुणोद समुद्र चक्रवाल संस्थान से संस्थित है, विषम चक्रवाल संस्थान से संस्थित नहीं है इत्यादि सारा वर्णन पूर्ववत् कह देना चाहिये। विष्कम्भ और परिधि संख्यात लाख योजन की है। पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, द्वार, द्वारों का अंतर, प्रदेश स्पर्श, जीवोत्पत्ति आदि और अर्थ संबंधी प्रश्नोत्तर पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये।

हे गौतम! वरुणोद समुद्र का पानी लोकप्रसिद्ध चन्द्रप्रभा नामक सुरा, मणिशलाका सुरा श्रेष्ठ सिधुसुरा, श्रेष्ठ वारुणी सुरा, पत्रासव, पुष्पासव, चोयासव, फलासव, मधु, मेरक, जम्बूफल प्रसन्न नामक सुरा, जातिपुष्प से वासित सुरा, खजूर का सार, द्राक्षासार, कापिशायन सुरा, भलीभांति पकाया हुआ इक्षु रस, बहुत सी सामग्रियों से युक्त पौष मास में सैकड़ों वैद्यों द्वारा तैयार की गई निरुपहत और विशिष्ट कालोपचार से निर्मित पुनः पुनः धोकर उत्कृष्ट मादक शक्ति से युक्त आठ बार पिष्ट प्रदान से निष्पन्न, आस्वाद वाली गाढ पेशल अति प्रकृष्ट रसास्वाद वाली होने से शीघ्र ही ओठ को छू कर आगे बढ़ जाने वाली, नेत्रों को कुछ कुछ लाल करने वाली, इलाइची आदि से मिश्रित होने के कारण पीने के बाद तीखी (थोड़ी कटुक) लगने वाली वर्ण युक्त, सुगंध युक्त सुस्वाद युक्त सुस्पर्श युक्त सुरा आदि के समान क्या वरुणोद समुद्र का पानी है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। वरुणोद समुद्र का पानी इससे भी अधिक इष्टतर यावत् मनोज्ञ स्वाद वाला कहा गया है। वहां वारुणि और वारुणकांत नामक दो महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं, इसलिये वह वरुणोद समुद्र कहलाता है अथवा हे गौतम! वरुणोद समुद्र यावत् नित्य और शाश्वत नाम वाला है। हे भगवन्! वरुणोद समुद्र में कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, होते हैं और होंगे आदि प्रश्न? हे गौतम! वरुणोद समुद्र में चन्द्र सूर्य आदि सभी ज्योतिषी देव संख्यात संख्यात कह देने चाहिये।

क्षीरवरद्वीप और क्षीरोद समुद्र

वारुणोदण्णं समुद्दं खीरवरे णामं दीवे वट्टे जाव चिट्ठइ सव्वं संखेज्जगं विक्खंभे य परिक्खेवो य जाव अट्ठो० बहूओ खुड्डा० वावीओ जाव बिलपंतियाओ खीरोदगपडिहत्थाओ पासाइयाओ ४, तासु णं० खुड्डियासु जाव बिलपंतियासु बहवे उप्पायपव्वयगा सव्वरयणामया जाव पडिरूवा, पुंडरीगपुप्फदंता एत्थ दो देवा महिड्डिया जाव परिवसंति, से एएणट्ठेणं जाव णिच्चे जोइसं सव्वं संखेज्जं॥

भावार्थ - वरुणवर समुद्र को गोल और वलयाकार क्षीरवर नामक द्वीप चारों ओर से घेर कर रहा हुआ है। उसका विष्कम्भ और परिधि संख्यात लाख योजन की है आदि वर्णन पूर्ववत् कह देना चाहिये। क्षीरवर द्वीप में बहुत सी छोटी छोटी बावड़ियां यावत् बिल पंक्तियां हैं जो क्षीरोदक से परिपूर्ण हैं यावत् प्रतिरूप हैं। पुण्डरीक और पुष्करदन्त नाम के दो महर्द्धिक देव यावत् वहां रहते हैं इसलिये उसे क्षीरवर द्वीप कहते हैं यावत् वह नित्य शाश्वत है। उस क्षीरवर द्वीप में चन्द्र सूर्य आदि सभी ज्योतिषियों की संख्या संख्यात संख्यात कहनी चाहिये।

खीरवरण्णं दीवं खीरोए णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव परिक्खित्ताणं चिट्ठइ समचक्कवालसंठिए णो विसमचक्कवालसंठिए, संखेज्जाइं जोयणस० विक्खंभपरिक्खेवो तहेव सव्वं जाव अट्ठो,

गोयमा! खीरोयस्स णं समुद्दस्स उदगं (से जहा णामए-सुउसुहीमारुपण्ण-अज्जुणतरुणसरसपत्तकोमलअत्थिग्गत्तणग्गपोंडग-वरुच्छुचारिणीणं लवंगपत्तपुप्फ-पल्लवकक्कोलगसफलरुक्खबहुगुच्छगुम्मकलियम-लट्ठिमहुपउरपिप्पलीफलिय-वल्लिवरविवरचारिणीणं अप्पोदगपिइरइसरसभूमिभागणि-भयसुहोसियाणं सुपोसिय-सुहायारोगपरिवज्जियाणं णिरुवहयसरीराणं कालप्पसविणीणं बिइयतइयसामप्पसूयाणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंजणवरगवलवलयजलधरजच्चंजणरिट्ठभ-मरपभूयसमप्पभाणं गावीणं कुंडदोहणाणं वद्धत्थीपत्थुयाणं रूढाणं मधुमासकाले संगहिए होज्ज चाउरक्केव होज्ज तासिं खीरे महुररसविवगच्छबहुदव्वसंपउत्ते पत्तेयं मंदग्गिसुकढिए आउत्ते) खंडगुडमच्छंडिओववेए रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स उवट्ठविए आसायणिज्जे विस्सायणिज्जे पीणणिज्जे जाव सव्विंदियागायपल्हायणिज्जे वण्णेणं उववेए जाव फासेणं उववेए, भवे एयारूवे सिया?, णो इणट्ठे समट्ठे, खीरोदस्स णं समुद्दस्स उदए एत्तो इट्ठयराए चेव जाव आसाएणं पण्णत्ते, विमलविमलप्पभा एत्थ दो देवा महिड्डिया जाव परिवसंति, से तेणट्ठेणं० संखेज्जा चंदा जाव तारा॥ १८१॥

भावार्थ - क्षीरवर नामक द्वीप को क्षीरोद नामक समुद्र चारों ओर से घेर कर रहा हुआ है। वह वर्त्तुल और गोलाकार है, समचक्रवाल संस्थान से संस्थित है, विषमचक्रवाल संस्थान से संस्थित नहीं है। संख्यात लाख योजन का उसका विष्कंभ एवं परिधि है आदि सारा वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये यावत् नाम संबंधी प्रश्न करना चाहिये।

हे गौतम! क्षीरोद समुद्र का पानी चक्रवर्ती राजा के लिये तैयार की गयी खीर जो चतुःस्थान परिणाम से परिणत है, शक्कर, गुड़, मिश्री आदि से स्वादिष्ट बनाई गई है, जो मंद अग्नि पर पकाई गई है जो आस्वादनीय, विस्वादनीय, प्रीणनीय, यावत् सर्व इन्द्रियों और शरीर को आह्लादित करने वाली है जो वर्ण से सुंदर यावत् स्पर्श से मनोज्ञ है, क्या ऐसा क्षीरोद समुद्र का पानी है ?

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। क्षीरोद समुद्र का पानी इससे भी अधिक इष्टतर यावत् मन को तृप्ति देने वाला कहा गया है। विमल और विमलप्रभ नाम के दो महर्द्धिक देव यावत् वहां निवास करते हैं इसलिये वह क्षीरोद समुद्र कहलाता है। उसमें चन्द्र, सूर्य यावत् तारा आदि ज्योतिषी संख्यात-संख्यात हैं।

घृतवर आदि द्वीप समुद्रों का वर्णन

खीरोदण्णं समुद्दं घयवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव परि० चिट्ठइ, समचक्कवाल० णो विसम० संखेज्जविक्खंभपरि० पएसा जाव अट्ठो,

गोयमा! घयवरे णं दीवे तत्थ तत्थ.....बहूओ खुड्डाखुड्डीओ वावीओ जाव घयोदगपडिहत्थाओ उप्पायपव्वयगा जाव खडहड० सव्वकंचणमया अच्छा जाव पडिरूवा, कणय-कणयप्पभा एत्थ दो देवा महिड्डिया० चंदा संखेज्जा०॥

भावार्थ - क्षीरोद नामक समुद्र को घृतवर नाम का द्वीप चारों ओर से घेर कर रहा हुआ है। वह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्त्तुल और वलयाकार है, समचक्रवाल संस्थान से संस्थित है, विषमचक्रवाल संस्थान से नहीं। उसका विष्कम्भ और परिधि संख्यात लाख योजन की है। प्रदेश स्पर्श आदि सारा वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये यावत् नाम संबंधी प्रश्न करना चाहिये।

हे गौतम! घृतवरद्वीप में स्थान-स्थान पर बहुत सी छोटी-छोटी बावड़ियां आदि हैं जो घृतोदक से भरी हुई हैं। वहां उत्पात पर्वत यावत् खडहड आदि पर्वत हैं वे सर्वकंचनमय स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। वहां कनक और कनकप्रभ नाम के दो महर्द्धिक रहते हैं। उस द्वीप में चन्द्र आदि ज्योतिषी की संख्या संख्यात संख्यात है।

घयवरण्णं दीवं घओदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव चिट्ठइ, समचक्क० तहेव दारपएसा जीवा य अट्ठो, गोयमा! घओदस्स णं समुद्दस्स उदए से जहा० सेजवग्ग पप्फुल्लसल्लइविमुकुलकण्णियारसरसवसुविसुद्धकोरेंटदामपिंडियतरस्स णिद्धगुणतेयदीवियणिरुवहयविसिट्ठसुंदरतरस्स सुजायदहिमहियतद्दिवसगहियणवणीय-पडुवणावियमुक्कड्डियउद्दावसज्जवीसंदियस्स अहियं पीवरसुरहिगंधमणहरमहुर-परिणामदरिसणिज्जस्स पत्थणिम्मलसुहोवभोगस्स सरयकालंमि होज्ज गोघयवरस्स मंडए, भवे एयारूवे सिया?, णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा! घओदस्स णं समुद्दस्स एत्तो इट्ठयराए जाव आसाएणं प० कंतसुकंता एत्थ दो देवा महिड्डिया जाव परिवसंति सेसं तं चेव जाव तारागणकोडिकोडीओ॥

कठिन शब्दार्थ - पप्फुल्लसल्लइ विमुकुल कण्णियार सरसव सुविसुद्ध कोरेंटदाम पिंडियतरस्स - प्रफुल्ल-पुलकित शल्लकी विमुत्कल कर्णिकार सर्षप सुविबुद्ध कोरण्ट दाम पिण्डित-तरस्य-शल्लकी विमुक्त फूले हुए कनेर के पुष्प जैसा, सरसों के फूल जैसा तथा कोरण्ट की माला जैसा कुछ कुछ पीत (पीले) वर्ण का, **णिद्धगुणतेयदीवियणिरुवहयविसिट्ठसुंदरतरस्स** - स्निग्ध गुणतेजो दीप्तस्य निरुपहत विशिष्ट सुंदरतरस्य-स्निग्ध गुण वाला, अग्नि के संयोग से दीप्त होने वाला, निरुपहत विशिष्ट और सुंदर, **सुजायदहिमहियतद्दिवसगहीय णवणीयपडुवणा वियमुक्कड्डियउद्दाव-सज्जवीसंदियस्स** - सुजातदधिमथित तद्दिवस गृहीत नवनीत पटुसंगृहीतोत्क्वथित उद्दामसद्योविस्यन्दितस्य-अच्छी तरह जमाये हुए दही को सुंदर रीति से उसी दिन मथित करने पर प्राप्त मक्खन (नवनीत) को तपाये जाने पर उसी स्थान पर छानने से उस घृत पर जमी हुई थर, **गोघयवरस्स मंडए** - गो घृत के मंड (सार) जैसा, घी के ऊपर जमे हुए थर को मंड कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - गोल और वलयाकार संस्थान से संस्थित घृतोद नामक समुद्र घृतवरद्वीप को चारों ओर से घेर कर स्थित है। वह समचक्रवाल संस्थान से संस्थित है। इस प्रकार सारा वर्णन द्वार, प्रदेश स्पर्श, जीवोत्पत्ति और नाम का प्रयोजन आदि प्रश्न पूर्ववत् कह देने चाहिये।

हे गौतम! घृतोद समुद्र का पानी, फूले हुए शल्लकी, कनेर के फूल, सरसों के फूल, कोरण्ट की माला की तरह पीले वर्ण का, स्निग्ध गुण वाला, अग्नि के संयोग से दीप्त गुण वाला, निरुपहत, विशिष्ट सुदंरता युक्त, अच्छी तरह जमाये हुए दही को सुंदर रीति से मथ कर प्राप्त नवनीत को अच्छी तरह तपाये जाने पर, उसे अन्यत्र नहीं ले जाते हुए उसी स्थान पर तत्काल छानने के बाद उस घी पर जो मंड-थर जम जाती है और वह जैसे अधिक सुगंध से सुगंधित, मनोहर, मधुर परिणाम वाली और दर्शनीय होती है, पथ्य रूप निर्मल और सुखोपभोग्य होती है क्या ऐसे शरत्कालीन गोघृत के मंड जैसा घृतोद समुद्र का पानी होता है?

हे गौतम! वह घृतोद का पानी इससे भी अधिक इष्टतर यावत् मन को तृप्त करने वाला है। वहां कांत और सुकांत नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष सारा वर्णन पूर्ववत् कह देना चाहिये यावत् वहां संख्यात तारागण शोभित होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे।

घओदण्णं समुद्दं खोयवरे णामं दीवे वट्टे वलयागार जाव चिट्ठइ तहेव जाव अट्ठो, खोयवरे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं खुड्डा० वावीओ जाव खोदोदग-पडिहत्थाओ० उप्पायपव्वयगा सव्ववेरुलियामया जाव पडिरूवा, सुप्पभमहप्पभा य एत्थ दो देवा महिड्डिया जाव परिवसंति, से एएण० सव्वं जोइसं तं चेव जाव तारा०॥

भावार्थ - घृतोद समुद्र को चारों ओर से क्षोदवर नामक द्वीप घेर कर रहा हुआ है। जो गोल और वलयाकार है। इत्यादि नाम के प्रयोजन तक सारा वर्णन कह देना चाहिये। क्षोदवर द्वीप में स्थान स्थान पर यहां वहां छोटी छोटी बावड़ियां आदि हैं जो क्षोदोदग से परिपूर्ण है, वहां उत्पात पर्वत आदि है जो सर्व वैडूर्यरत्नमय यावत् प्रतिरूप है। वहां सुप्रभ और महाप्रभ नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। इस कारण वह क्षोदवरद्वीप कहा जाता है। उसमें संख्यात संख्यात चन्द्र यावत् तारागण हैं।

खोयवरण्णं दीवं खोदोदे णामं समुद्दे वट्टे वलया० जाव संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं जाव अट्ठो, गोयमा! खोदोदस्स णं समुद्दस्स उदए से जहा० आसलमासलपसत्थवीसंतणिद्धसुकुमालभूमिभागे सुच्छिण्णे सुकट्ठलट्ठविसिट्ठ-णिरुवहयाजीयवावीतसुकासजपयत्तणिउण परिकम्मअणुपालियसुवुड्डिवुड्डाणं सुजायाणं लवणतणदोसवज्जियाणं णयायपरिवड्डियाणं णिम्मायसुंदराणं रसेणं परिणयमउपीणपोर-भंगुरसुजायमहुररसपुप्फविरइयाणं उवद्दवविवज्जियाणं सीयपरिफासियाणं अभिणव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भग्गाणं अपालियाणं तिभायणिच्छोडियवाडिगाणं अवणियमूलाणं गंठियपरिसोहियाणं कूसलणरकप्पियाणं उच्छूढाणं जाव पोडियाणं बलवगणरजत्तजंतपरिगालियमेत्ताणं खोयरसे होज्जा वत्थपरिपूए चाउज्जायगसुवासिए अहियपत्थलहुए वण्णोववेए तहेव, भवे एयारूवे सिया?, णो इणट्ठे समट्ठे, खोदोदस्स णं समुद्दस्स उदए एत्तो इट्ठयराए चेव जाव आसाएणं पण्णत्ते पुण्णभद्दमाणिभद्दा य (पुण्णपुण्णभद्दा) इत्थ दुवे देवा जाव परिवसंति, सेसं तहेव, जोइसं संखेज्जं चंदा० ॥ १८२ ॥

कठिन शब्दार्थ - आसल मासल पसत्थ वीसंत णिद्ध सुकुमाल भूमिभागे - आसल-मांसल-प्रशस्त-विश्रांत-स्निग्ध सुकुमाल भूमिभागे-मनोहर प्रशस्त विश्रांत स्निग्ध और सुकुमार भूमिभाग में, **सुच्छिण्णे-सुकट्ठ लट्ठ-विसिट्ठ णिरुवहयाजीयवावीतसुकासजपयत्तणिउण परिकम्म अणुपालियसुवुड्ढि वुड्ढाणं** - सुच्छिन्ने सुकाष्ठ लष्ट विशिष्ट णिरुपहत बीजोप्तेष्टकाशकपत्रपत्रक निपुणपरिकर्माऽनुपालित सुवृद्धि वृद्धानाम्-निपुण कृषिकार द्वारा काष्ठ के सुंदर विशिष्ट हल से जोती गई भूमि में जिस इक्षु का आरोपण किया गया है और निपुण पुरुष के द्वारा जिसका संरक्षण हुआ है।

भावार्थ - गोल और वलयाकार क्षोदोद नामक समुद्र क्षोदवरद्वीप को चारों ओर से घेरे हुए स्थित हैं यावत् संख्यात लाख योजन का विष्कंभ और परिधि है आदि सब वर्णन अर्थ संबंधी प्रश्न तक कह देना चाहिये।

हे गौतम! क्षोदोद समुद्र का पानी श्रेष्ठ इक्षुरस जैसा है वह इक्षुरस-स्वादिष्ट, गाढ, प्रशस्त, विश्रान्त, स्निग्ध और सुकुमार भूमिभाग में निपुण कृषिकार द्वारा काष्ठ के सुंदर विशिष्ट हल से जोती गई भूमि में जिस इक्षु का आरोपण किया गया है और निपुण पुरुष के द्वारा जिसका संरक्षण किया गया हो, तृण रहित भूमि में जिसकी वृद्धि हुई हो इससे जो निर्मल एवं पक कर विशेष रूप से मोटी हो गई हो और मधुर रस से जो युक्त बन गई हो, शीतकाल के जंतुओं के उपद्रव से रहित हो, ऊपर और नीचे की जड़ का भाग निकाल कर और उसकी गांठों को भी अलग कर बलवंत बैलों द्वारा यंत्र से निकाला गया हो तथा वस्त्र से छाना गया हो और चार प्रकार के सुगंधित द्रव्यों से युक्त किया गया हो, अधिक पथ्यकारी और पचने में हलका हो तथा शुभ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श से युक्त हो, क्या ऐसे इक्षु रस के समान क्षोदोद समुद्र का पानी है?

हे गौतम! क्षोदोद समुद्र का पानी इससे भी अधिक इष्टतर यावत् मन को तृप्ति करने वाला है। यहां पूर्णभद्र और मणिभद्र (पूर्ण और पूर्णभद्र) नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं इसलिये वह क्षोदोद समुद्र कहा जाता है। शेष सारा वर्णन पूर्वानुसार समझना चाहिये यावत् वहां संख्यात संख्यात चन्द्र, सूर्य, ग्रह नक्षत्र और कोडाकोडी तारे शोभित होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नंदीश्वर द्वीप का वर्णन

खोदोदण्णं समुद्दं णंदीसरवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए तहेव जाव परिक्खेवो। पउमवर० वणसंडपरि० दारा दारंतरप्पएसे जीवा तहेव॥

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-णंदीसरवरदीवे णंदीसरवरदीवे? गोयमा! णंदीसरवरदीवे णंदीसरवरदीवे तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहूओ खुड्डा० वावीओ जाव बिलपंतियाओ खोदोदगपडिहत्थाओ० उप्पायपव्वयगा सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा॥

भावार्थ - क्षोदोद नामक समुद्र को गोल और वलयाकार संस्थान से संस्थित नंदीश्वर द्वीप चारों ओर से घेर कर रहा हुआ है। इस प्रकार परिधि आदि से लेकर जीवोत्पत्ति तक सारा वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से नंदीश्वर द्वीप, नंदीश्वर द्वीप कहलाता है?

उत्तर - हे गौतम! नंदीश्वरद्वीप में स्थान स्थान पर यहां-वहां बहुत सी छोटी-छोटी बावड़ियां यावत् बिल पंक्तियां हैं जो इक्षुरस के समान जल से परिपूर्ण है। उसमें अनेक उत्पात पर्वत हैं जो सर्ववज्रमय हैं स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

अदुत्तरं च णं गोयमा! णंदीसरवरदीवचक्कवालविक्खंभबहुमज्झदेसभागे एत्थ णं चउद्दिसिं चत्तारि अंजणगपव्वया पण्णत्ता, ते णं अंजणगपव्वया चउरासीइ-जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं एगमेगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं मूले साइरेगाइं दस जोयणसहस्साइं धरणियले दस जोयणसहस्साइं आयामविक्खभेणं तओऽणंतरं च णं मायाए मायाए पएसपरिहाणीए परिहायमाणा परिहायमाणा उवरिं एगमेगं जोयणसहस्सं आयामविक्खंभेणं मूले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए किंचिविसेसाहिया परिक्खेवेणं धरणियले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए देसूणे परिक्खेवेणं सिहरतले तिण्णि जोयणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोयणसयं किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ता मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुया गोपुच्छसंठाणसंठिया सव्वंजणामया अच्छा जाव पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरि० पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता वण्णओ॥

भावार्थ - हे गौतम! दूसरी बात यह है कि नंदीश्वर द्वीप के चक्रवाल विष्कंभ के मध्यभाग में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चारों दिशाओं में चार अंजनक पर्वत हैं। वे चौरासी हजार योजन ऊंचे, एक हजार योजन गहरे, मूल में दस हजार योजन से अधिक लम्बे चौड़े, धरणितल में दस हजार योजन लंबे चौड़े हैं। इसके बाद एक एक प्रदेश कम होते होते ऊपरी भाग में एक हजार योजन लंबे चौड़े हैं। इनकी परिधि मूल में इकतीस हजार छह सौ तेवीस योजन (३१६२३) से कुछ अधिक, धरणितल में इकतीस हजार छह सौ तेवीस योजन से कुछ कम और शिखर में तीन हजार एक सौ बासठ योजन से कुछ अधिक है। ये मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर तनु (पतले) हैं अतः गोपुच्छ आकार के कहे गये हैं। ये सर्व अंजनरत्नमय हैं स्वच्छ हैं यावत् प्रत्येक पर्वत पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से चारों ओर से घिरे हुए हैं। यहां पद्मवरवेदिका और वनखंड का वर्णन कह देना चाहिये।

तेसि णं अंजणगपव्वयाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं बहुसमरमणिज्जो भूमिभागो पण्णत्तो, से जहाणामए-आलिंगपुक्खरेइ वा जाव सयंति॥ तेसिणं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं सिद्धाययणा, एगमेगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, बावत्तरिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसयसण्णिविट्ठा वण्णओ॥

भावार्थ - उन अंजनक पर्वतों में से प्रत्येक पर बहुत सम और रमणीय भूमिभाग है। वह भूमिभाग मृदंग के मढे हुए चर्म के समान समतल है यावत् वहां बहुत से वाणव्यंतर देव देवियां निवास करते हैं यावत् अपने पुण्यफल का अनुभव करते हुए विचरते हैं।

उन समरमणीय भूमिभागों के मध्यभाग में अलग अलग सिद्धायतन हैं जो एक सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े और बहत्तर योजन ऊंचे हैं, सैकड़ों स्तंभों पर टिके हुए हैं आदि सारा वर्णन सुधर्मा सभा की तरह समझ लेना चाहिये।

तेसिणं सिद्धाययणाणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि दारा पण्णत्ता देवदारे असुरदारे णागदारे सुव्वणदारे, तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया, जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति तंजहा-देवे असुरे णागे सुव्वणे ते णं दारा सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं सेया वरकणग० वण्णओ जाव वणमाला। तेसिणं दाराणं चउद्दिसिं चत्तारि मुहमंडवा पण्णत्ता, ते णं मुहमंडवा एगमेगं जोयणसयं आयामेणं पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं साइरेगाणं सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं वण्णओ॥

तेसिणं मुहमंडवाणं चउद्दि(तिदि)सिं चत्तारि(तिण्णि)दारा पण्णत्ता, तेणं दारा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं सेसं तं चेव जाव वणमालाओ॥ एवं पेच्छाघरमण्डवावि तं चेव पमाणं जं मुहमंडवाणं दारा वि तहेव णवरि बहुमज्झदेसभाए पेच्छाघरमंडवाणं अक्खाडगा मणिपेढियाओ अद्धजोयणप्पमाणाओ, सीहासणा अपरिवारा जाव दामा थूभाइं चउद्दिसिं तहेव णवरि सोलसजोयणप्पमाणा साइरेगाइं सोलसजोयणाइं उच्चा सेसं तहेव जाव जिणपडिमा। चेइयरुक्खा तहेव चउद्दिसिं तं चेव पमाणं जहा विजयाए रायहाणीयाए, णवरि मणिपेढियाए सोलसजोयणप्पमाणाओ, तेसिणं चेइयरुक्खाणं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढियाओ अट्ठजोयणविक्खंभाओ, चउजोयणबाहल्लाओ महिंदज्झया चउसट्ठि-जोयणुच्चा, जोयणोव्वेधा जोयणविक्खंभा सेसं तं चेव॥

भावार्थ - उन प्रत्येक सिद्धायतनों की चारों दिशाओं में चार द्वार कहे गये हैं उनके नाम इस प्रकार हैं - १. देवद्वार २. असुरद्वार ३. नागद्वार और ४. सुपर्णद्वार। उनमें महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाले चार देव रहते हैं। यथा - देव, असुर, नाग और सुपर्ण। वे द्वार सोलह योजन ऊंचे, आठ योजन चौड़े और उतने ही प्रमाण के प्रवेश वाले हैं। ये द्वार सफेद हैं, कनकमय इनके शिखर हैं आदि सारा वर्णन जियद्वार के समान वनमाला तक समझना चाहिये। उन द्वारों की चारों दिशाओं में चार मुखमंडप हैं। वे मुखमंडप एक सौ योजन विस्तार वाले, पचास योजन चौड़े और सोलह योजन से कुछ अधिक ऊंचे हैं। विजयद्वार के समान सारा वर्णन कह देना चाहिये।

उस मुखमंडप की चारों (तीनों) दिशाओं में चार (तीन) द्वार कहे गये हैं। वे द्वार सोलह योजन ऊंचे, आठ योजन चौड़े और आठ योजन प्रवेश वाले हैं आदि वर्णन विजय द्वार के समान वनमाला तक समझना चाहिये। इसी तरह प्रेक्षागृह मंडपों के विषय में समझना चाहिये। मुखमंडपों के समान ही उनका प्रमाण एवं द्वार हैं। विशेषता यह है कि बहुमध्य भाग में प्रेक्षागृहमंडपों के अखाडे, मणिपीठिका आठ योजन प्रमाण, परिवार रहित सिंहासन यावत् मालाएं, स्तूप आदि चारों दिशाओं में उसी प्रकार कह देने चाहिये। विशेषता यह है कि वे सोलह योजन से कुछ अधिक प्रमाण वाले और कुछ अधिक सोलह योजन ऊंचे हैं शेष सारा वर्णन जिन प्रतिमा तक करना चाहिये। चारों दिशाओं में चैत्यवृक्ष हैं। उनका प्रमाण विजया राजधानी के चैत्यवृक्षों के समान है। विशेषता यह है कि मणिपीठिका सोलह योजन प्रमाण है। उन चैत्य वृक्षों की चारों दिशाओं में चार मणिपीठिकाएं हैं जो आठ योजन चौड़ी, चार योजन मोटी है। उन पर चौसठ योजन ऊंची, एक योजन गहरी, एक योजन चौड़ी महेन्द्रध्वजा है। शेष सारा वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं चउद्दिसिं चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ णवरि खोयरसपडिपुण्णाओ जोयणसयं आयामेणं पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, पण्णासं जोयणाइं उव्वेहेणं सेसं तं चेव, मणुगुलियाणं गोमाणसीण य, अडयालीसं अडयालीसं सहस्साइं पुरच्छिमेणवि सोलस पच्चत्थिमेणवि सोलस दाहिणेणवि, अट्ठ उत्तरेणवि अट्ठ साहस्सीओ तहेव सेसं उल्लोया भूमिभागा जाव बहुमज्झदेसभाए मणिपेढिया सोलसजोयणा आयामविक्खंभेणं अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं तारिसं मणिपेढियाणं उप्पिं देवच्छंदगा सोलसजोयणाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं सोलसजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं सव्वरयण० अट्ठसयं जिणपडिमाणं सव्वो सो चेव गमो जहेव वेमाणिय सिद्धाययणस्स॥

भावार्थ - इसी तरह चारों दिशाओं में चार नंदा पुष्करिणियां हैं। विशेषता यह है कि वे इक्षुरस से भरी हुई है। उनकी लम्बाई सौ योजन, चौड़ाई पचास योजन और गहराई पचास योजन है। शेष सारा वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये।

उन सिद्धायतनों में प्रत्येक दिशा में - पूर्व दिशा में सोलह हजार, पश्चिम दिशा में सोलह हजार,दक्षिण में आठ हजार और उत्तर में आठ हजार - यों कुल ४८ हजार मनोगुलिकाएं-पीठिका विशेष-हैं और इतनी ही गोमानुषी-शय्या रूप स्थान विशेष-हैं। उसी तरह उल्लोक (ऊपरी छत, चंदेवा) और भूमिभाग का वर्णन समझ लेना चाहिये यावत् मध्य भाग में मणिपीठिका है जो सोलह योजन लम्बी चौड़ी और आठ योजन मोटी है। उन मणिपीठिकाओं के ऊपर देवच्छंदक हैं जो सोलह योजन लम्बे चौड़े, कुछ अधिक सोलह योजन ऊंचे हैं, सर्वरत्नमय हैं। इन देवच्छंदकों में एक सौ आठ जिनप्रतिमाएं हैं। जिनका सारा वर्णन वैमानिक की विजया राजधानी के सिद्धायतनों के समान समझना चाहिये।

तत्थ णं जे से पुरच्छिमिल्ले अंजणगपव्वए तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-णंदुत्तरा य णंदा आणंदा णंदिवद्धणा। (णंदिसेणा अमोघा य गोथूभा य सुदंसणा) ताओ णं णंदापुक्खरिणीओ एगमेगं जोयणसय-सहस्सं आयामविक्खंभेणं, दसजोयणाइं उव्वेहेणं अच्छाओ सण्हाओ० पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइया० पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता० तत्थ तत्थ जाव सोवाणपडिरूवगा तोरणा॥

भावार्थ - उनमें से जो पूर्व दिशा का अजंन पर्वत है,उसकी चारों दिशाओं में चार नंदा पुष्करिणियां हैं। वे इस प्रकार हैं- १.नंदुत्तरा २. नंदा ३. आनंदा और ४. नंदिवर्द्धना (नंदीसेना, अमोघा, गोस्तूपा और सुदर्शना)ये नंदा पुष्करिणियां एक लाख योजन की लम्बी चौड़ी हैं इनकी गहराई दस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योजन की है। ये स्वच्छ हैं, मृदु हैं। प्रत्येक के आसपास चारों ओर पद्मवर वेदिका और वनखण्ड हैं। इनमें त्रिसोपान-पंक्तियाँ और तोरण हैं।

तासि णं पुक्खरिणीणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं दहिमुहपव्वया चउसट्ठि जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं सव्वत्थसमापल्लग-संठाणसंठिया दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा, तहा पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइया० वणसंडवण्णओ बहुसम० जाव आसयंति सयंति०। सिद्धाय-यणस्स तं चेव पमाणं अंजणपव्वएसु सच्चेव वत्तव्वया, णिरवसेसं भाणियव्वं जाव उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा॥

भावार्थ - उन प्रत्येक पुष्करिणियों के मध्य भाग में दधिमुख पर्वत हैं जो चौसठ हजार योजन ऊंचे, एक हजार योजन जमीन में गहरे और सब जगह समान हैं। ये पल्यंक के आकार के हैं। दस हजार योजन की इनकी चौड़ाई है। इकतीस हजार छह सौ तेवीस योजन (३१६२३) इनकी परिधि है। ये सर्वरत्नमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। इनके प्रत्येक के चारों ओर पद्मवरवेदिका और वनखण्ड हैं। उनका वर्णन कह देना चाहिये। उनमें बहुसमरमणीय भूमिभाग है यावत् वहां बहुत से वाणव्यंतर देव देवियां उठते हैं बैठते हैं और अपने पुण्यफल का अनुभव करते हुए विचरते हैं। सिद्धायतनों का प्रमाण अंजन पर्वत के सिद्धायतनों के समान समझ लेना चाहिये। सारा वर्णन उसी प्रकार कहना चाहिये यावत् आठ आठ मंगल कह देने चाहिये।

तत्थ णं जे से दक्खिणिल्ले अंजणगपव्वए तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-भद्दा य विसाला य कुमुया पुंडरीगिणी, (णंदुत्तरा य णंदा य आणंदा णंदिवद्धणा) तं चेव दहिमुहा पुव्वया तं चेव पमाणं जाव सिद्धायणा॥

भावार्थ - उनमें जो दक्षिण दिशा का अंजन पर्वत है उसकी चारों दिशाओं में चार नंदा पुष्करिणियां हैं। यथा - भद्रा, विशाला, कुमुदा और पुंडरिकिणी (अथवा नंदोत्तरा, नंदा, आनंदा और नंदिवर्द्धना) उसी तरह दधिमुख पर्वता का वर्णन उतना ही प्रमाण आदि सिद्धायतन तक कह देना चाहिये।

तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए तस्स णं चउदिसिं चत्तारि णंदा पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-णंदिसेणा अमोहा य गोथूभा य सुदंसणा, (भद्दा य विसाला य कुमुया पुंडरीगिणी) तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव सिद्धाययणा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - उनमें जो पश्चिम दिशा का अंजन पर्वत है उसकी चारों दिशाओं में चार नंदा पुष्करिणियां हैं। उनके नाम - नंदिसेना, अमोघा, गोस्तूफा और सुदर्शना (अथवा भद्रा, विशाला, कुमुदा और पुंडरिकिणी) सिद्धायतन तक सारा वर्णन कह देना चाहिये।

तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले अंजणगपव्वए तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ तंजहा-विजया वेजयंती जयंती अपराजिया सेसं तहेव जाव सिद्धाययणा सव्वा ते चिय वण्णणा णायव्वा, तत्थणं बहवे भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया देवा, चाउमासियापडिवएसु संवच्छरिएसु, वा अण्णेसु बहुसु जिणजम्मणणिक्खमणणाणुप्पत्तिपरिणिव्वाणमाइएसु य, देवकज्जेसु य, देवसमुदएसु य, देवसमिइसु य, देवसमवाएसु य देवपओयणेसु य एगंतओ, सहिया समुवागया समाणा, पमुइयपक्कीलिया, अट्ठाहियारूवाओ महामहिमाओ करेमाणा, पालेमाणा सुहंसुहेणं विहरंति*। कइलासहरिवाहणा य तत्थ दुवे देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, से एएणट्ठेणं गोयमा! जाव णिच्चा जोइसं संखेज्जं॥ १८३॥

भावार्थ - उनमें जो उत्तरदिशा का अंजन पर्वत है उसकी चारों दिशाओं में चार नंदा पुष्करिणियां हैं। यथा - विजया, वैजयंती, जयंती और अपराजिता। शेष सारा वर्णन सिद्धायतन तक कह देना चाहिये।

---

* पाठान्तर - (तहेव दहिमुहगपव्वया तहेव जाव वणखंडा बहु० जाव विहरंति। अदुत्तरं च णं गोयमा! णंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवालविक्खंभस्स बहुमज्झदेसभाए चउसु विदिसासु चत्तारि रइकरगपव्वया प० तं० - उत्तरपुरच्छिमिल्ले रइकरगपव्वए दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए दाहिणपच्चत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए उत्तरपच्चत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए, ते णं रइकरगपव्वया दसजोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दसगाउयसयाइं उव्वेहेणं, सव्वत्थसमा झल्लरिसंठाणसंठिया, दसजोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्चतेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा। तत्थ णं जे से उत्तरपुरच्छिमिल्ले रइकरगपव्वए तस्स णं चउद्दिसिमीसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवप्प-माणमेत्ताओ चत्तारि रायहाणीओ प० तं० - णंदोत्तरा णंदा उत्तरकुरा देवकुरा, कण्हाए कण्हराईए कामाए कामरक्खियाए। तत्थ णं जे से दाहिणपुरच्छिमिल्ले रइकरगपव्वए तस्स णं चउद्दिसिं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवप्पमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ प० तं०-सुमणा सोमणसा अच्चिमाली मणोरमा, पउमाए सिवाए सईए अंजूए। तत्थ णं जे से दाहिणपच्चत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए तस्स णं चउद्दिसिं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवप्पमाणमेत्ताओ चत्तारि रायहाणीओ प० तं०-भूया भूयवडिंसा गोथूभा सुदंसणा, अमलाए अच्छराए णवमियाए रोहिणीए। तत्थ णं जे से उत्तरपच्चत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए तस्स णं चउद्दिसिमीसाणस्स देविंदस्सदेवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवप्पमाणमेत्ताओ चत्तारि रायहाणीओ प० तं०-रयणा रयणोच्चया सव्वरयणा रयणसंचया, वसूए वसुगुत्ताए वसुमित्ताए वसुंधराए।)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उन सिद्धायतनों में बहुत से भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देव, चातुर्मासिक प्रतिपदा आदि पर्व दिनों में, सांवत्सरिक उत्सव के दिनों में तथा अन्य बहुत से जिनेश्वर देवों के जन्म, दीक्षा, ज्ञानोत्पत्ति और निर्वाण कल्याणकों के अवसर पर देवकार्यों में, देवमेलों में, देवगोष्ठियों में, देव सम्मेलनों में और देवों के जीत व्यवहार संबंधी प्रयोजनों के लिये एकत्रित होते हैं, सम्मिलित होते हैं आनंद विभोर हो कर महामहिमाशाली अष्टाह्निका पर्व मनाते हुए सुखपूर्वक विचरते हैं।

वहाँ कैलाश और हरिवाहन नाम के दो महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं। इस कारण हे गौतम! उसका नाम नंदीश्वरद्वीप कहा गया है। यह शाश्वत और नित्य है। यहां सभी ज्योतिषी (चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारागण) संख्यात संख्यात कहे हैं।

णंदीसरवरण्णं दीवं णंदीसरोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव सव्वं तहेव अट्ठो जो खोदोदगस्स जाव सुमणसोमणसभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया जाव परिवसंति सेसं तहेव जाव तारग्गं॥ १८४॥

भावार्थ - नंदीश्वरद्वीप को गोल और वलयाकार संस्थान से संस्थित नंदीश्वर समुद्र चारों ओर से घेर कर रहा हुआ है। इत्यादि सारा वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि वहां सुमनस और सौमनसभद्र नामक दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष सारा वर्णन यावत् तारागण की संख्या तक पूर्ववत् कह देना चाहिये।

अरुणद्वीप, अरुणोदक समुद्र वर्णन

णंदीसरोदं णं समुद्दं अरुणे णामं दीवे वट्टे वलयागार जाव संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ। अरुणे णं भंते! दीवे किं समचक्कवालसंठिए विसमचक्कवालसंठिए? गोयमा! समचक्कवालसंठिए णो विसमचक्कवालसंठिए, केवइयं चक्कवालवि० ? गोयमा! संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, पउमवर० वणसंडदारा दारंतरा य तहेव संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं दारंतरं जाव अट्ठो, वावीओ० खोदोदगपडिहत्थाओ उप्पायपव्वयगा सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा, असोगवीयसोगा य एत्थ दुवे देवा महिड्डिया जाव परिवसंति, से तेण० जाव संखेज्जं सव्वं॥

भावार्थ - नंदीश्वर समुद्र को चारों ओर से घेरे हुए अरुण नामक द्वीप है जो गोल है और वलयाकार संस्थान से संस्थित है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! अरुणद्वीप समचक्रवाल विष्कम्भ वाला है या विषम चक्रवाल संस्थान संस्थित है?

उत्तर - हे गौतम! अरुणद्वीप समचक्रवाल विष्कम्भ वाला है विषम चक्रवाल विष्कम्भ वाला नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! उसका चक्रवाल विष्कम्भ कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अरुणद्वीप का चक्रवाल विष्कम्भ संख्यात लाख योजन का है और संख्यात लाख योजन की उसकी परिधि है। पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, द्वार, द्वारों का अंतर भी संख्यात लाख योजन प्रमाण है। यहां पर बावड़ियां इक्षुरस जैसे पानी से भरी हुई है। इसमें उत्पात पर्वत हैं जो वज्रमय हैं, स्वच्छ हैं। यहां अशोक और वीतशोक नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं इस कारण इसका नाम अरुणद्वीप है। यहां ज्योतिषियों की संख्या संख्यात-संख्यात है।

अरुणण्णं दीवं अरुणोदे णामं समुद्दे तस्सवि तहेव परिक्खेवो अट्ठो खोदोदगे णवरं सुभद्दसुमणभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया सेसं तहेव॥ अरुणोदगं णं समुद्दं अरुणवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाण० तहेव संखेज्जगं सव्वं जाव अट्ठो खोदोदगपडिहत्थाओ उप्पायपव्वयया सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा, अरुणवरभद्दअरुणवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया० एवं अरुणवरोदेवि समुद्दे जाव अरुणवरअरुणमहावरा य एत्थ दो देवा सेसं तहेव॥

भावार्थ - अरुणद्वीप को चारों ओर से घेर कर अरुणोद नाम का समुद्र स्थित है उसका विष्कम्भ, परिधि, अर्थ, इक्षुरस जैसा पानी आदि सारा वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये। विशेषता यह है कि यहां सुभद्र और सुमनभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं शेष सारा वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये।

अरुणोद समुद्र को अरुणवर नामक द्वीप चारों ओर से घेर कर रहा हुआ है। वह गोल और वलयाकार संस्थान वाला है यावत् वहां अरुणवरभद्र और अरुणवर महाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। इत्यादि सारी वक्तव्यता कह देनी चाहिये। इसी प्रकार अरुणवरोद नामक समुद्र का वर्णन भी समझना चाहिये यावत् वहां अरुणवर और अरुणमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष सारा वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिये।

अरुणवरोदण्णं समुद्दं अरुणवरावभासे णामं दीवे वट्टे जाव अरुणवरावभास-भद्दारुणवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया०। एवं अरुणवरावभासे समुद्दे णवरि अरुणवरावभासवरारुणवरावभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुंडले दीवे कुंडलभद्दकुंडलमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया०, कुंडलोदे समुद्दे चक्खुसुभचक्खुकंता एत्थ दो देवा महिड्डिया०। कुंडलवरे दीवे कुंडलवरभद्दकुंडलवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया०, कुंडलवरोदे समुद्दे कुंडलवर(वर) कुंडलवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया० ॥

कुंडलवरावभासे दीवे कुंडलवरावभासभद्दकुंडलवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा० ॥ कुंडलवरोभासोदे समुद्दे कुंडलवरोभासवरकुंडलवरोभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया० जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति० ॥

भावार्थ - अरुणवरोद समुद्र को अरुणवरावभास नामक द्वीप चारों ओर से घेर कर रहा हुआ है यावत् वहां अरुणवरावभासभद्र एवं अरुणवरावभासमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। इसी तरह अरुणवरावभास समुद्र में अरुणवरावभासवर एवं अरुणवरावभासमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव वहां रहते हैं। शेष वर्णन पूर्वानुसार कह देना चाहिये।

कुण्डलद्वीप में कुण्डलभद्र एवं कुण्डलमहाभद्र नाम के दो देव रहते हैं और कुण्डलोद समुद्र में चक्षुशुभ और चक्षुकांत नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत्।

कुंडलवरद्वीप में कुण्डलवरभद्र और कुण्डलवरमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। कुण्डलवरोद समुद्र में कुण्डलवर और कुण्डलवरमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं।

कुण्डलवरावभास द्वीप में कुण्डलवरावभासभद्र और कुण्डलवरावभास महाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। कुण्डलवरावभासोदक समुद्र में कुण्डलवरोभासवर एवं कुण्डलवरोभासमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। ये देव पल्योपम की स्थिति वाले हैं आदि वर्णन कह देना चाहिये।

कुंडलवरोभासोदं णं समुद्दं रुयगे णामं दीवे वट्टे वलया० जाव चिट्ठइ, किं समचक्क० विसमचक्कवाल० ? गोयमा! समचक्कवाल० णो विसमचक्कवालसंठिए, केवइयं चक्कवाल० पण्णत्ते?० सव्वट्ठमणोरमा एत्थ दो देवा सेसं तहेव। रुयगोदे णामं समुद्दे जहा खोदोदे समुद्दे संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं दारा दारंतरंपि संखेज्जाइं जोइसंपि सव्वं संखेज्जं भाणियव्वं, अट्ठो वि जहेव खोदोदस्स णवरि सुमणसोमणसा एत्थ दो देवा महिड्डिया तहेव रुयगाओ आढत्तं असंखेज्जं विक्खंभो परिक्खेवो दारा दारंतरं च जोइसं च सव्वं असंखेज्जं भाणियव्वं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रुयगोदण्णं समुद्दं रुयगवरे णं दीवे वट्टे० रुयगवरभद्दरुयगवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा० रुयगवरोदे स० रुयगवररुयगवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया०। रुयगवरावभासे दीवे रुयगवरावभासभद्दरुयगवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया०। रुयगवरावभासे समुद्दे रुयगवरावभासवररुयगवरावभासमहावरा एत्थ०॥

भावार्थ - कुण्डलवराभास समुद्र को चारों ओर से घेर कर रुचक नामक द्वीप स्थित है। जो गोल और वलयाकार है।

प्रश्न - हे भगवन्! वह रुचकद्वीप समचक्रवाल विष्कम्भ वाला है या विषम चक्रवाल विष्कंभ वाला है?

उत्तर - हे गौतम! वह रुचकद्वीप समचक्रवाल संस्थान से संस्थित है विषम चक्रवाल संस्थान से संस्थित नहीं।

हे भगवन्! उसका चक्रवाल विष्कंभ कितना है? आदि सारा वर्णन पूर्वानुसार समझना चाहिये यावत् वहां सर्वार्थ और मनोरम नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष सारा वर्णन पूर्ववत्। रुचकोदक नामक समुद्र क्षोदोद समुद्र की तरह संख्यात लाख योजन चक्रवाल विष्कंभ वाला, संख्यात लाख योजन की परिधि वाला, द्वार और द्वारान्तर भी संख्यात लाख योजन वाले हैं। वहां ज्योतिषियों की संख्या भी संख्यात कहनी चाहिये। क्षोदोद समुद्र की तरह अर्थ आदि का वर्णन कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि यहां सुमन और सौमनस नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष सारा वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये।

रुचकद्वीप के आगे के सब द्वीप समुद्रों का विष्कंभ, परिधि, द्वार, द्वारान्तर, ज्योतिषियों की संख्या आदि सभी असंख्यात कहने चाहिये।

रुचकोद समुद्र को चारों ओर से घेर कर रुचकवर नाम का द्वीप स्थित है जो गोल और वलयाकार है यावत् वहां रुचकवरभद्र और रुचकवरमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। रुचकवरोद समुद्र में रुचकवर और रुचकमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं।

रुचकवरावभासद्वीप में रुचकवरावभासभद्र और रुचकवरावभास महाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। रुचकवरावभास समुद्र में रुचकवरावभासवर और रुचकवरावभासमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं आदि वर्णन समझना चाहिये।

विवेचन - यहां रुचक समुद्र के आगे के द्वीप समुद्रों की परिधि, द्वारों का अन्तर, ज्योतिषियों की संख्या आदि असंख्य बताई हैं। वह इस प्रकार समझना चाहिए - जैसे आगमों में एक करोड़ पूर्व से एक समय भी अधिक आयु वाले संज्ञी मनुष्यों एवं संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रियों को असंख्य वर्षायुष्क बताया गया है वैसे ही यहां भी असंख्य का सांकेतिक अर्थ समझना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हारद्दीवे हारभद्दहारमहाभद्दा एत्थ०। हारसमुद्दे हारवरहारवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया०। हारवरोदे दीव हारवरभद्दहारवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया०। हारवरोदे समुद्दे हारवरहारवरमहावरा एत्थ०। हारवरावभासे दीवे हारवरावभासभद्दहारवराव-भासमहाभद्दा एत्थ०। हारवरावभासोदे समुद्दे हारवरावभासवरहारवराव भास महावरा एत्थ०। एवं सव्वेवि तिपडोयारा णेयव्वा जाव सूरवरोभासोदे समुद्दे, दीवेसु भद्दणामा वरणामा होंति उदहीसु, जाव पच्छिमभावं खोयवराईसु सयंभूरमणपज्जंतेसु वावीओ० खोदोदगपडिहत्थाओ पव्वयगा य सव्ववइरामया०।

भावार्थ - हारद्वीप में हारभद्र और हारमहाभद्र नाम के दो देव हैं। हार समुद्र में हारवर और हारवरमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव हैं। हारवरद्वीप में हारवरभद्र और हारवरमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव हैं। हारवरोद समुद्र में हारवर और हारवरमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव हैं। हारवरावभासद्वीप में हारवरावभासभद्र और हारवरावभास महाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव हैं। हारवरावभासोद समुद्र में हारवरावभासवर और हारवरावभासमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव हैं।

इसी तरह से समस्त द्वीप और समुद्र त्रिप्रत्यवतार वाले समझना चाहिये यावत् सूर्यवरावभास समुद्र तक कह देना चाहिये। द्वीपों के नाम के साथ भद्र और महाभद्र तथा समुद्र के नामों के साथ वर और महावर शब्द लगाने से उन उन द्वीपों और समुद्रों के देवों के नाम बन जाते हैं। क्षोदवरद्वीप से लेकर स्वयंभूरमण तक के द्वीप और समुद्रों में वापिकाएं यावत् बिलपंक्तियां हैं और ये सब क्षोदोदक-इक्षुरस जैसे जल से भरी हुई हैं और जितने भी पर्वत हैं वे सब सर्वात्मना वज्रमय हैं।

विवेचन - यहां पर मूल पाठ में **सयंभूरमणपज्जंतेसु**-**'स्वयंभूरमण पर्यन्त'** शब्द दिया है। उसका आशय- 'स्वयंभूरमण द्वीप समुद्र के पूर्व तक के द्वीप समुद्र तक' समझना चाहिये। स्वयंभूरमण द्वीप में आई हुई बावड़ियों आदि का पानी तथा स्वयंभूरमण समुद्र का पानी तो स्वाभाविक उदक रस जैसा बताया है।

अरुणद्वीप से लगा कर सूर्य द्वीप तक त्रिप्रत्यवतार (अरुण, अरुणवर, अरुणवराभास, इस तरह तीन तीन) समझना चाहिये। इससे आगे नहीं। द्वीपों के नामों के साथ भद्र और महाभद्र तथा समुद्रों के नामों के साथ वर और महावर लगाने से उन उन द्वीपों के देवों के नाम बन जाते हैं। जैसे सूर्य द्वीप के दो देव सूर्यभद्र और सूर्य महाभद्र तथा सूर्य समुद्र के दो देव सूर्यवर और सूर्यमहावर है। इसी तरह आगे के द्वीपों और समुद्रों के विषय में समझ लेना चाहिये।

देवदीवे दीवे देवभद्ददेवमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया०, देवोदे समुद्दे देववरदेवमहावरा एत्थ० जाव सयंभूरमणे दीवे सयंभूरमणभद्दसयंभूरमणमहाभद्दा एत्थ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दो देवा महिड्डिया०। सयंभूरमणण्णं दीवं सयंभूरमणोदे णामं समुद्दे वट्टे वलया० जाव असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं जाव अट्ठो, गोयमा! सयंभूरमणोदए उदए अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फलिहवण्णाभे पगईए उदगरसेणं पण्णत्ते, सयंभूरमण-वरसयंभूरमणमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया सेसं तहेव जाव असंखेज्जाओ तारागणकोडिकोडीओ सोभेंसु वा ३॥ १८५॥

भावार्थ - देवद्वीप नामक द्वीप में देवभद्र और देवमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। देवोद समुद्र में दो महर्द्धिक देव हैं - देववर और देवमहावर यावत् स्वयंभूरमण द्वीप में दो महर्द्धिक देव हैं- स्वयंभूरमणभद्र और स्वयंभूरमणमहाभद्र।

स्वयंभूरमण द्वीप को गोल और वलयाकार संस्थान वाला स्वयंभूरमण समुद्र चारों ओर से घेर कर रहा हुआ है यावत् असंख्यात लाख योजन की उसकी परिधि है यावत् वह स्वयंभूरमण समुद्र क्यों कहा जाता है?

उत्तर - हे गौतम! स्वयंभूरमण समुद्र का पानी स्वच्छ है, पथ्य है, निर्मल है, हल्का है, स्फटिक मणि की कांति जैसा है और स्वाभाविक जल के रस से परिपूर्ण है। यहां स्वयंभूरमणवर और स्वयंभूरमणमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष सारा वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये यावत् वहां असंख्यात कोटाकोटि तारे शोभित हुए थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे।

विवेचन - सबसे पहले जंबूद्वीप नामक द्वीप है उसको चारों ओर से घेरे हुए लवण समुद्र है। इस तरह एक द्वीप एक समुद्र है। इसी प्रकार असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र एक दूसरे को घेरे हुए हैं। सबसे अंत में स्वयंभूरमण द्वीप है और उसको चारों ओर से घेरे हुए स्वयंभूरमण समुद्र है।

जंबूद्वीप आदि नाम वाले द्वीपों की संख्या

केवइया णं भंते! जंबुद्दीवा दीवा णामधेज्जेहिं पण्णत्ता?

गोयमा! असंखेज्जा जंबुद्दीवा दीवा णामधेज्जेहिं पण्णत्ता,

केवइया णं भंते! लवणसमुद्दा समुद्दा णामधेज्जेहिं पण्णत्ता?

गोयमा! असंखेज्जा लवणसमुद्दा णामधेज्जेहिं पण्णत्ता, एवं धायइसंडावि, एवं जाव असंखेज्जा सूरदीवा णामधेज्जेहिं०। एगे देव दीवे पण्णत्ते एगे देवोदे समुद्दे पण्णत्ते, एवं णागे जक्खे भूए जाव एगे सयंभूरमणे दीवे एगे सयंभूरमणसमुद्दे णामधेज्जेणं पण्णत्ते ॥ १८६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जंबूद्वीप नाम वाले कितने द्वीप कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! जंबूद्वीप नाम के असंख्यात द्वीप कहे गये हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! लवण समुद्र नाम के कितने समुद्र कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! लवण समुद्र नाम के असंख्यात समुद्र कहे गये हैं।

इसी प्रकार धातकीखंड नाम के भी असंख्यात द्वीप हैं यावत् सूर्यद्वीप नाम के द्वीप असंख्यात कहे गये हैं।

देवद्वीप नामक द्वीप एक ही है। देवोद समुद्र भी एक ही है। इसी तरह नागद्वीप, यक्षद्वीप, भूतद्वीप यावत् स्वयंभूरमण द्वीप भी एक ही है। स्वयंभूरमण नामक समुद्र भी एक ही है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जम्बूद्वीप आदि नाम वाले द्वीपों की संख्या बताई गयी है। अरुणद्वीप से सूर्य द्वीप तक त्रिप्रत्यवतार है। सूर्यद्वीप के बाद दो दो है। सूर्यद्वीप सूर्यसमुद्र, देवद्वीप देवोदसमुद्र, नागद्वीप नागोद समुद्र, यक्षद्वीप यक्षोद समुद्र इस प्रकार सबसे अंत में स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र है। जंबूद्वीप नाम वाले यावत् सूर्य द्वीप वाले असंख्यात द्वीप हैं। इसी तरह लवण समुद्र वाले यावत् सूर्योद समुद्र वाले असंख्यात समुद्र हैं। देवद्वीप यावत् स्वयंभूरमण समुद्र तक एक द्वीप एक समुद्र है।

समुद्रों के पानी का स्वाद

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स उदए केरिसए आसाएणं पण्णत्ते?

गोयमा! लवणस्स० उदए आइले रइले लिंदे लवणे कडुए अपेज्जे बहूणं दुपयचउप्पयमिगपसुपक्खिसरी-सिवाणं णण्णत्थ तज्जोणियाणं सत्ताणं॥

कालोयस्स णं भंते! समुद्दस्स उदए केरिसए आसाएणं पण्णत्ते?

गोयमा! आसले पेसले मासले कालए मासरासिवण्णाभे पगईए उदगरसेणं पण्णत्ते॥

पुक्खरोदस्स णं भंते! समुद्दस्स उदए केरिसए आसाएणं पण्णत्ते?

गोयमा! अच्छे जच्चे तणुए फालियवण्णाभे पगईए उदगरसेणं पण्णत्ते॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लवण समुद्र के पानी का स्वाद कैसा है?

उत्तर - हे गौतम! लवण समुद्र का पानी मलिन, रजवाला, शैवाल रहित चिरसंचित जल जैसा, खारा कडुआ है अतः बहुसंख्यक द्विपद-चतुष्पद मृग-पशु-पक्षी सरीसृपों के लिए पीने योग्य नहीं है किंतु उसी जल में उत्पन्न और संवर्धित जीवों के लिये पेय-पीने योग्य है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! कालोदधि समुद्र के पानी का स्वाद कैसा है?

उत्तर - हे गौतम! कालोदधि समुद्र के पानी का स्वाद पेशल-मनोज्ञ, मांसल-परिपुष्ट करने वाला, काला, उडद राशि की तरह कृष्णकांति वाला है और प्रकृति से अकृत्रिम रस वाला है।

प्रश्न - हे भगवन्! पुष्करोद समुद्र के जल का स्वाद कैसा है?

उत्तर - हे गौतम! पुष्करोद समुद्र का जल स्वच्छ है, उत्तम जाति का है, हल्का है, स्फटिक मणि जैसी कांतिवाला और प्रकृति से अकृत्रिम रस वाला है।

वरुणोदस्स णं भंते!० ? गोयमा! से जहा णामए-पत्तासवेइ वा चोयासवेइ वा खज्जूरसारेइ वा मुद्दियासारेइ वा सुपक्कखोयरसेइ वा मेरएइ वा काविसायणेइ वा चंदप्पभाइ वा मणसिलाइ वा वरसीहूइ वा पवरवारुणीइ वा अट्ठपिट्ठपरिणिट्ठियाइ वा जंबूफलकालियाइ वा वरप्पसण्णा उक्कोसमयप्पत्ता ईसिउट्ठावलंबिणी ईसितंबच्छिकरणी ईसिवोच्छेयकरणी आसला मासंला पेसला वण्णेणं उववेया जाव भवे एयारूवे सिया? णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा! वारुणोदए० इत्तो इट्ठतराए चेव जाव आसाएणं प०।

खीरोदस्स णं भंते!० उदए केरिसए आसाएणं पण्णत्ते?

गोयमा! से जहा णामए-रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चाउरक्के गोखीरे पयत्तमंदग्गिसुकढिए आउत्तरखंडमच्छंडिओववेए वण्णेणं उववेए जाव फासेणं उववेए, भवे एयारूवे सिया? णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा! खीरोयस्स० एतो इट्ठ जाव आसाएणं पण्णत्ते। घओदस्स णं० से जहा णामए-सारइयस्स गोघयवरस्स मंडे सल्लइकण्णि-यारपुप्फवण्णाभे सुकड्ढियउदारसज्झवीसंदिए वण्णेणं उववेए जाव फासेणं उववेए, भवे एयारूवे सिया?, णो इणट्ठे समट्ठे, इत्तो इट्ठयरा०, खोदोदस्स० से जहा णामए उच्छूणं जच्चापुंडगाणं हरियालपिंडराणं भेरुंडछणाण वा कालपोराणं तिभागणिव्वाडियवाडगाणं बलवगणरजंतपरिगालियमित्ताणं जे य रसे होज्जा वत्थपरिपुए चाउज्जायगसुवासिए अहियपत्थे लहुए वण्णेणं उववेए जाव भवेयारूवे सिया?, णो इणट्ठे समट्ठे, एत्तो इट्ठयरा०, एवं सेसगाणवि समुद्दाणं भेदो जाव सयंभूरमणस्स, णवरि अच्छे जच्चे पत्थे जहा पुक्खरोदस्स॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वरुणोद समुद्र के पानी का स्वाद कैसा है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार पत्रासव, त्वचासव, खजूर का सार, भलीभांति पकाया हुआ इक्षुरस, मेरक, कापिशायन, चन्द्रप्रभा, मनःशिला, वरसीधु, वरवारुणी तथा आठ बार पीसने से तैयार की गई जंबूफल मिश्रित वरप्रसन्ना जाति की मदिराएं उत्कृष्ट नशा देने वाली होती है, ओठों पर लगते ही आनंद देने वाली, कुछ कुछ आंखें लाल कर देने वाली, शीघ्र नशा देने वाली होती है तथा जो आस्वाद्य, पुष्टिकारक, मनोज्ञ और शुभ वर्णादि से युक्त है, क्या वरुणोद समुद्र का जल ऐसा ही है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। वरुणोद समुद्र के पानी का स्वाद इससे भी इष्टतर यावत् स्वादयुक्त होता है।

प्रश्न - हे भगवन्! क्षीरोद समुद्र के जल का स्वाद कैसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे चातुरन्त चक्रवर्ती के लिए चतुःस्थान परिणत गाय का दूध (खीर) जो मंद मंद अग्नि पर पकाया गया हो आदि और अंत में मिश्री मिला हुआ हो जो वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से श्रेष्ठ हो, क्या ऐसे दूध के समान क्षीरोद समुद्र का जल है?

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। क्षीरोद समुद्र का जल इससे भी इष्टतर है।

प्रश्न - हे भगवन्! घृतोद समुद्र का जल का आस्वाद कैसा है?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार शरद ऋतु के गाय के घी के मंड (थर), सल्लकी और कनेर के फूल जैसा वर्णवाला, भलीभांति गर्म किया हुआ, तत्काल नितारा (छाना) हुआ तथा श्रेष्ठ वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाला होता है, क्या घृतोद समुद्र का जल ऐसा ही है?

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है, इससे भी अधिक इष्टतर घृतोद समुद्र का जल का आस्वाद है।

प्रश्न - हे भगवन्! क्षोदोद समुद्र के पानी का स्वाद कैसा है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे भेरुण्ड देश में उत्पन्न जातिवंत उन्नत पौंड्रक जाति का ईख होता है जो पकने पर हरिताल के समान पीला हो जाता है, जिसके पर्व काले हैं, ऊपर और नीचे के भाग को छोड़ कर केवल बिचले त्रिभाग को ही बलिष्ठ बैलों द्वारा चलाये गये यंत्र से रस निकाला गया हो जो वस्त्र से छाना हुआ हो, जिसमें चार प्रकार की वस्तुएं (दालचीनी, इलाइची, केसर और कालीमिर्च) मिलाये जाने पर सुगंधित हो, जो बहुत पथ्य, पाचक, शुभवर्णादि से युक्त हो क्या ऐसे इक्षुरस जैसा क्षोदोद समुद्र के पानी का स्वाद है?

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। क्षोदोद समुद्र का पानी इससे भी इष्टतर है।

इसी प्रकार स्वयंभूरमण समुद्र के पूर्व तक के शेष समुद्रों का पानी का स्वाद भी समझ लेना चाहिये। विशेषता यह है स्वयंभूरमण समुद्र का जल वैसा ही स्वच्छ, जातिवंत और पथ्य रूप है जैसा कि पुष्करोद समुद्र का जल कहा गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कइ णं भंते! समुद्दा पत्तेगरसा पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि समुद्दा पत्तेयरसा पण्णत्ता, तंजहा-लवणे वरुणोदे खीरोदे घओदे॥

कई णं भंते! समुद्दा पगईए उदगरसेणं पण्णत्ता?

गोयमा! तओ समुद्दा पगईए उदगरसेणं पण्णत्ता, तंजहा-कालोए पुक्खरोए सयंभूरमणे, अवसेसा समुद्दा उस्सण्णं खोयरसा पण्णत्ता समणाउसो!॥ १८७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कितने समुद्र प्रत्येक रस वाले कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! चार समुद्र प्रत्येक रस वाले हैं अर्थात् वैसा रस अन्य किसी दूसरे समुद्र का नहीं है। यथा - लवण, वरुणोद, क्षीरोद, घृतोद।

प्रश्न - हे भगवन्! कितने समुद्र प्रकृति से उदग रस वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! तीन समुद्र प्रकृति से उदग रस वाले हैं अर्थात् इनका जल स्वाभाविक पानी जैसा ही हैं। वे हैं - कालोद (कालोदधि), पुष्करोद और स्वयंभूरमण समुद्र।

हे आयुष्मन् श्रमण! शेष सभी समुद्र प्रायः क्षोद रस-इक्षुरस वाले कहे गये हैं।

विवेचन - उपर्युक्त मूल पाठ में **'उस्सण्णं'** शब्द आया है। जिसका अर्थ - प्रायः (बहुलता से) किया गया है। इस शब्द से यह ध्वनित होता है कि - अधिकांश समुद्रों का पानी इक्षुरस जैसा होता हैं किन्तु उन समुद्रों में भी देवों के क्रीड़ा करने की बावड़ियों आदि में रहा हुआ पानी तो स्वाभाविक उदक रस जैसा ही होना चाहिए। क्योंकि इक्षुरस जैसा पानी क्रीड़ा आदि के योग्य नहीं होता है। तथा किसी किसी समुद्र का अधिकांश पानी भी स्वाभाविक उदक रस जैसा हो सकना संभव है।

समुद्रों में मच्छ-कच्छ आदि

कइ णं भंते! समुद्दा बहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता?

गोयमा! तओ समुद्दा बहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता, तंजहा-लवणे कालोदे सयंभूरमणे, अवसेसा समुद्दा अप्पमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता समणाउसो!॥

लवणे णं भंते! समुद्दे कइ मच्छजाइकुलकोडिजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता?

गोयमा! सत्त मच्छजाइकुल-कोडीजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता॥

कालोए णं भंते! समुद्दे कइ मच्छजाइ० पण्णत्ता? गोयमा! णव मच्छ जाइकुलकोडीजोणी०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सयंभूरमणे णं भंते! समुद्दे० ? गोयमा! अद्धतेरस मच्छजाइकुलकोडी-जोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता॥

लवणे णं भंते! समुद्दे मच्छाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता? गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं पंचजोयणसयाइं॥ एवं कालोए उ० सत्त जोयणसयाइं॥ सयंभूरमणे जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं दस जोयणसयाइं॥ १८८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कितने समुद्र बहुत मत्स्य-कच्छपों वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! तीन समुद्र बहुत मत्स्य-कच्छपों वाले हैं वे हैं - लवण, कालोद और स्वयंभूरमण समुद्र। हे आयुष्मन् श्रमण! शेष सभी समुद्र अल्प मत्स्य कच्छपों वाले कहे गये हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! लवण समुद्र में मत्स्यों की कितनी लाख जाति प्रधान कुल कोड़ियों की योनियां कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सात लाख मत्स्य जाति कुलकोड़ी योनियां कही है।

प्रश्न - हे भगवन्! कालोद समुद्र में मत्स्यों की कितनी लाख जाति प्रधान कुलकोडियों की योनियां है?

उत्तर - हे गौतम! नव लाख मत्स्य जाति कुलकोडी योनियां कही है।

प्रश्न - हे भगवन्! स्वयंभूरमण समुद्र में मत्स्यों की कितनी लाख जाति प्रधान कुल कोड़ियों की योनियां है?

उत्तर - हे गौतम! साढे बारह लाख मत्स्य जाति कुलकोडी योनियां हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! लवण समुद्र में मत्स्यों के शरीर की अवगाहना कितनी है?

उत्तर - हे गौतम! लवण समुद्र में मत्स्यों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट पांच सौ योजन की है। इसी तरह कालोद समुद्र में उत्कृष्ट सात सौ योजन की अवगाहना है। स्वयंभूरमण समुद्र में मत्स्यों की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन प्रमाण है।

द्वीप समुद्रों की संख्या

केवइया णं भंते! दीवसमुद्दा णामधेज्जेहिं पण्णत्ता?

गोयमा! जावइया लोगे सुभा णामा सुभा वण्णा जाव सुभा फासा एवइया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दीवसमुद्दा णामधेज्जेहिं पण्णत्ता। केवइया णं भंते! दीवसमुद्दा उद्धारसमएणं पण्णत्ता? गोयमा! जावइया अड्ढाइज्जाणं सागरोवमाणं उद्धारसमया एवइया दीवसमुद्दा उद्धारसमएणं पण्णत्ता॥ १८९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नामों की अपेक्षा द्वीप और समुद्र कितने हैं?

उत्तर -हे गौतम! लोक में जितने शुभ नाम हैं, शुभ वर्ण हैं यावत् शुभ स्पर्श हैं उतने ही नामों वाले द्वीप और समुद्र हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! उद्धार समयों की अपेक्षा द्वीप और समुद्र कितने हैं?

उत्तर - हे गौतम! अढाई सागरोपम के जितने उद्धार समय हैं उतने द्वीप और सागर हैं।

द्वीप समुद्र के परिणाम

दीवसमुद्दा णं भंते! किं पुढविपरिणामा आउपरिणामा जीवपरिणामा पुग्गलपरिणामा?

गोयमा! पुढविपरिणामावि आउपरिणामावि जीवपरिणामावि पुग्गलपरिणामावि॥

दीवसमुद्देसु णं भंते! सव्वपाणा सव्वभूया सव्वजीवा सव्वसत्ता पुढविकाइयत्ताए जाव तसकाइयत्ताए उववण्णपुव्वा?

हंता गोयमा! असइं अदुवा अणंतखुत्तो॥ १९०॥

॥ इइ दीव समुद्दा समत्ता॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या द्वीप समुद्र पृथ्वी के परिणाम हैं, अप् के परिणाम हैं, जीव के परिणाम हैं और पुद्गल के परिणाम है?

उत्तर - हे गौतम! द्वीप समुद्र पृथ्वी परिणाम भी हैं, अप् परिणाम भी हैं, जीव परिणाम भी हैं और पुद्गल परिणाम भी हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या इन द्वीप समुद्रों में सब प्राणी, सब भूत, सब जीव और सब सत्त्व पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय के रूप में पहले उत्पन्न हुए हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! कई बार अथवा अनंतबार इन द्वीप समुद्रों में सर्व प्राणी, सर्वभूत, सर्वजीव और सर्व सत्त्व पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय के रूप में उत्पन्न हो चुके हैं।

इस प्रकार द्वीप समुद्र का वर्णन समाप्त हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जोइसुद्देसओ

ज्योतिषी उद्देशक

इन्द्रिय पुद्गल परिणाम

कइविहे णं भंते! इंदियविसए पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे इंदियविसए पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, तंजहा-सोइंदियविसए जाव फासिंदियविसए।

सोइंदियविसए णं भंते! पोग्गलपरिणामे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-सुब्भिसद्दपरिणामे य दुब्भिसद्दपरिणामे य, एवं चक्खिंदियविसयाइएहिवि सुरूवपरिणामे य दुरूवपरिणामे य, एवं सुरभिगंधपरिणामे य दुरभिगंधपरिणामे य, एवं सुरसपरिणामे य दुरसपरिणामे य, एवं सुफासपरिणामे य दुफासपरिणामे य॥

कठिन शब्दार्थ - **इंदिय विसए** - इन्द्रिय-विषय, **पोग्गल परिणामे** - पुद्गल परिणाम।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! इन्द्रियों का विषयभूत पुद्गल परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! इन्द्रियों का विषयभूत पुद्गल परिणाम पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - श्रोत्रेन्द्रिय विषय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय विषय।

प्रश्न - हे भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय का विषयभूत पुद्गल परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! श्रोत्रेन्द्रिय का विषयभूत पुद्गल परिणाम दो प्रकार का कहा है। यथा - शुभ शब्द परिणाम और अशुभ शब्द परिणाम। इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय आदि के विषयभूत पुद्गल परिणाम दो-दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - सुरूप परिणाम, कुरूप परिणाम, सुरभिगंध परिणाम, दुरभिगंध परिणाम, सुरस परिणाम एवं दुरस परिणाम, सुस्पर्श परिणाम और दुःस्पर्श परिणाम।

से णूणं भंते! उच्चावएसु सद्दपरिणामेसु उच्चावएसु रूवपरिणामेसु एवं गंधपरिणामेसु रसपरिणामेसु फासपरिणामेसु परिणममाणा पोग्गला परिणमंतीति वत्तव्वं सिया? हंता गोयमा! उच्चावएसु सद्दपरिणामेसु जाव परिणममाणा पोग्गला परिणमंतित्ति वत्तव्वं सिया, से णूणं भंते! सुब्भिसद्दा पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति दुब्भिसद्दा पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हंता गोयमा! सुब्भिसद्दा पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति दुब्भिसद्दा पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, से णूणं भंते! सुरूवा पुग्गला दुरूवत्ताए परिणमंति दुरूवा पुग्गला सुरूवत्ताए परिणमंति? हंता गोयमा!०, एवं सुब्भिगंधा पोग्गला दुब्भिगंधत्ताए परिणमंति दुब्भिगंधा पोग्गला सुब्भिगंधत्ताए परिणमंति? हंता गोयमा!०, एवं सुफासा दुफासत्ताए? सुरसा दुरसत्ताए० ?, हंता गोयमा!० ॥ १९१ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या ऐसा कहा जा सकता है कि उत्तम-अधम (ऊंच-नीच) शब्द परिणामों में, उत्तम-अधम रूप परिणामों में, इसी तरह गंध परिणामों में, रस परिणामों में और स्पर्श परिणामों में परिणत होते हुए पुद्गल परिणत होते हैं।

उत्तर - हाँ गौतम! उत्तम-अधम (ऊंच-नीच) रूप में बदलने वाले शब्दादि परिणामों के कारण पुद्गलों का बदलना कहा जा सकता है। यानी पर्यायों के बदलने पर द्रव्य का बदलना कहा जा सकता है।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या उत्तम शब्द अधम शब्द के रूप में और अधम शब्द उत्तम शब्द के रूप में बदलते हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! उत्तम शब्द अधम शब्द के रूप में और अधम शब्द उत्तम शब्द के रूप में बदलते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या शुभ रूप वाले पुद्गल अशुभ रूप में और अशुभ रूप वाले पुद्गल शुभ रूप में परिणत होते हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! शुभ रूप वाले पुद्गल अशुभ रूप में और अशुभ रूप वाले पुद्गल शुभ रूप में बदलते हैं। इसी प्रकार सुरभिगंध के पुद्गल दुरभिगंध के पुद्गल रूप में और दुरभिगंध के पुद्गल सुरभिगंध के पुद्गल के रूप में बदलते हैं। शुभ स्पर्श पुद्गल अशुभ स्पर्श के पुद्गल के रूप में, अशुभ स्पर्श के पुद्गल शुभ स्पर्श पुद्गल के रूप में बदलते हैं। शुभ रस के पुद्गल अशुभ रस के रूप में और अशुभ रस के पुद्गल शुभ रस के पुद्गल में परिणत होते हैं।

देव शक्ति विषयक वर्णन

देवे णं भंते! महिड्ढिए जाव महाणुभागे पुव्वामेव पोग्गलं खवित्ता पभू तमेव अणुपरियट्टित्ताणं गिण्हित्तए?

हंता पभू, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-देवे णं महिड्ढिए जाव गिण्हित्तए? गोयमा! पोग्गले खित्ते समाणे पुव्वामेव सिग्घगई भवित्ता तओ पच्छा मंदगई भवइ, देवे णं महिड्ढिए जाव महाणुभागे पुव्विंपि पच्छावि सीहे सीहगई तुरिए तुरियगई चेव से तेणट्ठेमं गोयमा! एवं वुच्चइ जाव अणुपरियट्टित्ताणं गेण्हित्तए॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कोई महर्द्धिक यावत् महाप्रभावशाली देव पहले किसी वस्तु को फेंके और फिर वह गति करता हुआ उस वस्तु को बीच में ही पकड़ना चाहे तो क्या वह ऐसा करने में समर्थ है?

उत्तर - हाँ गौतम! वह ऐसा करने में समर्थ है।

प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि वह ऐसा करने में समर्थ है?

उत्तर - हे गौतम! फैंकी हुई वस्तु पहले शीघ्र गति वाली होती है और बाद में उसकी गति मंद हो जाती है जबकि उस महर्द्धिक और महाप्रभावशाली देव की गति पहले भी शीघ्र होती है और बाद में भी शीघ्र होती है इसलिये ऐसा कहा जाता है कि वह देव उस वस्तु को पकड़ने में समर्थ है।

देवे णं भंते! महिड्डिए० बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पुव्वामेव बालं अच्छित्ता अभेत्ता पभू गंठित्तए? णो इणट्ठे समट्ठे१, देवे णं भंते! महिड्डिए० बाहिरए पुग्गले अपरियाइत्ता पुव्वामेव बालं छित्ता भित्ता पभू गंठित्तए? णो इणट्ठे समट्ठे २, देवे णं भंते! महिड्डिए० बाहिरए पुग्गले परियाइत्ता पुव्वामेव बालं अच्छित्ता अभित्ता पभू गंठित्तए? णो इणट्ठे समट्ठे ३, देवे णं भंते! महिड्डिए जाव महाणुभागे बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पुव्वामेव बालं छेत्ता भेत्ता पभू गंठित्तए? हंता पभू ४, तं चेव णं गंठिं छउमत्थे ण जाणइ ण पासइ एवं सुहुमं च णं गंठिया ३, देवे णं भंते! महिड्डिए० पुव्वामेव बालं अच्छेत्ता अभेत्ता पभू दीहीकरित्तए वा हस्सीकरित्तए वा? णो इणट्ठे समट्ठे ४, एवं चत्तारिवि गमा, पढमबिइयभंगेसु अपरियाइत्ता एगंतरियगा अच्छित्ता अभित्ता, सेसं तहेव, तं चेव सिद्धिं छउमत्थे ण जाणइ ण पासइ एसुहुमं च णं दीहीकरेज्ज वा हस्सीकरेज्ज वा॥ १९२॥

कठिन शब्दार्थ - अपरियाइत्ता - ग्रहण किये बिना, **अच्छित्ता** - छेदे बिना, **अभित्ता** - भेदे बिना, **गंठित्तए** - सांधने में, **दीहीकरित्तए** - दीर्घ (बड़ा) करने में, **हस्सीकरित्तए** - ह्रस्व (छोटा) करने में।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कोई महर्द्धिक यावत् महाप्रभावशाली देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किये बिना और किसी बाल (केश) को पहले छेदे भेदे बिना क्या उसके बाल को सांधने में समर्थ है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं अर्थात् ऐसा नहीं हो सकता।

प्रश्न - हे भगवन्! कोई महर्द्धिक यावत् महाप्रभावशाली देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके और बाल को पहले छेदे भेदे बिना क्या उसे सांधने में समर्थ है?

उत्तर - हे गौतम! वह समर्थ नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! कोई महर्द्धिक एवं महाप्रभावशाली देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण कर और बाल को पहले छेद भेद कर क्या उसे फिर से सांधने में समर्थ है?

उत्तर - हाँ गौतम! वह ऐसा करने में समर्थ है। वह ऐसी कुशलता से उसे सांधता है कि उस संधि-ग्रंथि को छद्मस्थ न देख सकता है और न जान सकता है। ऐसी सूक्ष्म ग्रंथि वह होती है।

प्रश्न - हे भगवन्! कोई महर्द्धिक देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किये बिना पहले बाल को छेदे भेदे बिना क्या उसे बड़ा छोटा करने में समर्थ है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है (ऐसा नहीं हो सकता है)। इस प्रकार चारों भंग कह देने चाहिये। पहले दूसरे भंगों में बाह्य पुद्गलों का ग्रहण नहीं है और प्रथम भंग में बाल का छेदन भेदन भी नहीं है। दूसरे भंग में छेदन भेदन है। तीसरे भंग में बाह्य पुद्गलों का ग्रहण है और बाल का छेदन भेदन करना नहीं है। चौथे भंग में बाह्य पुद्गलों का ग्रहण भी है और पहले बाल का छेदन भेदन भी है। इस छोटे बड़े करने की सिद्धि को छद्मस्थ नहीं जान सकता और नहीं देख सकता क्योंकि छोटे बड़े करने की यह विधि बहुत सूक्ष्म होती है।

चन्द्र सूर्य वर्णन

अत्थि णं भंते! चंदिमसूरियाणं हिट्ठिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि समंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि उप्पिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि?

हंता अत्थि, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-अत्थि णं चंदिमसूरियाणं जाव उप्पिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि?

गोयमा! जहा जहा णं तेसिं देवाणं तवणियमबंभचेरवासाइं (उक्कडाइं) उस्सियाइं भवंति तहा तहा णं तेसिं देवाणं एयं पण्णायइ अणुत्ते वा तुल्लत्ते वा, से एएणट्ठेणं गोयमा!० अत्थि णं चंदिमसूरियाणं० उप्पिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि॥ १९३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चन्द्र और सूर्यों के क्षेत्र की अपेक्षा नीचे रहे हुए जो तारा रूप देव हैं वे क्या हीन भी हैं और बराबर भी हैं? चन्द्र सूर्यों के क्षेत्र की समश्रेणी में रहे हुए तारा रूप देव चन्द्र सूर्यों से द्युति आदि में हीन भी हैं और बराबर भी हैं? जो तारा रूप देव चन्द्र और सूर्यों के ऊपर अवस्थित हैं वे क्या हीन भी हैं और बराबर भी हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! तारा रूप देव द्युति, वैभव, लेश्या आदि की अपेक्षा कोई हीन भी हैं और कोई बराबर भी हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि कोई तारा देव हीन भी हैं और कोई तारा देव बराबर भी हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जैसे जैसे उन तारा रूप देवों के पूर्व भव में किये हुए तप, नियम, ब्रह्मचर्य आदि में उत्कृष्टता या अनुत्कृष्टता (हीनता) होती है उसी अनुपात में उनमें अणुत्व या तुल्यत्व होता है इसलिये हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि चन्द्र सूर्यों के नीचे समश्रेणी में या ऊपर जो तारा रूप देव हैं वे हीन भी हैं और बराबर भी हैं।

एगमेगस्स णं भंते! चंदिमसूरियस्स केवइओ णक्खत्तपरिवारो पण्णत्तो केवइओ महग्गहपरिवारो पण्णत्तो केवइओ तारागणकोडाकोडीओ परिवारो प०? गोयमा! एगमेगस्स णं चंदिमसूरियस्स-

अट्ठासीइं च गहा अट्ठावीसं च होइ णक्खत्ता।
एगससीपरिवारो एत्तो ताराण वोच्छामि॥ १॥
छावट्ठिसहस्साइं णवचेव सयाइं पंचसयराइं।
एगससीपरिवारो तारागणकोडिकोडीणं॥ २॥ १९४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक चन्द्र और सूर्य के कितने नक्षत्र, कितने महाग्रह और कितने कोटाकोटि तारागणों का परिवार कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! प्रत्येक चन्द्र सूर्य के परिवार में अठ्यासी (८८) ग्रह, अट्ठाईस (२८) नक्षत्र होते हैं और ताराओं की संख्या छियासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर (६६९७५) कोडाकोडी होती हैं।

जंबूद्दीवे णं भंते! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ केवइयं अबाहाए जोइसं चारं चरइ?

गोयमा! एक्कारसहिं एक्कवीसेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसं चारं चरइ, एवं दक्खिणिल्लाओ पच्चत्थिमिल्लाओ उत्तरिल्लाओ एक्कारसहिं एक्कवीसेहिं जोयण० जाव चारं चरइ॥

लोगंताओ भंते! केवइयं अबाहाए जोइसे पण्णत्ते?

गोयमा! एक्कारसहिं एक्कारेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसे पण्णत्ते॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जंबूद्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व चरमान्त से ज्योतिषी देव कितनी दूर रह कर उसकी प्रदक्षिणा करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जंबूद्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व चरमान्त से ग्यारह सौ इक्कीस (११२१) योजन दूरी से ज्योतिषी देव प्रदक्षिणा करते हैं। इसी तरह दक्षिण चरमांत, पश्चिम चरमांत और उत्तर चरमांत से भी ग्यारह सौ इक्कीस-ग्यारह सौ इक्कीस (११२१-११२१) योजन दूरी से ज्योतिषी देव मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! लोकान्त से कितनी दूरी पर ज्योतिषी चक्र कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! लोकान्त से ग्यारह सौ ग्यारह (११११) योजन की दूरी पर ज्योतिषी चक्र कहा गया है।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ केवइयं अबाहाए सव्वहेट्ठिल्ले चारं चरइ? केवइयं अबाहाए सूरविमाणे चारं चरइ? केवइयं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ? केवइयं अबाहाए सव्वउवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ?,

गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणि० सत्तहिं णउएहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसं सव्वहेट्ठिल्ले तारारूवे चारं चरइ, अट्ठहिं जोयणसएहिं अबाहाए सूरविमाणे चारं चरइ, अट्ठहिं असीएहिं जोयणसएहिं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ, णवहिं जोयणसएहिं अबाहाए सव्वउवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसमरमणीय भूमिभाग से कितनी दूरी पर सबसे नीचला तारा रूप विमान गति करता है कितनी दूरी पर सूर्य विमान गति करता है? कितनी दूरी पर चन्द्र विमान गति करता है? कितनी दूरी पर सबसे ऊपर का तारा चलता है?

उत्तर - हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसमरमणीय भूमिभाग में सात सौ नब्बे (७९०) योजन दूरी पर सबसे नीचला तारा गति करता है। आठसौ (८००) योजन की दूरी पर सूर्य विमान चलता है। आठ सौ अस्सी योजन पर चल विमान चलता है। नौ सौ योजन दूरी पर सबसे ऊपर वाला तारा गति करता है।

सव्वहेट्ठिमिल्लाओ णं भंते! तारारूवाओ केवइयं अबाहाए सूरविमाणे चारं चरइ? केवइयं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ? केवइयं अबाहाए सव्वउवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ?,

गोयमा! सव्वहेट्ठिल्लाओ णं दसहिं जोयणेहिं सूरविमाणे चारं चरइ णउईए जोयणेहिं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ दसुत्तरे जोयणसए अबाहाए सव्वोवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ॥

सूरविमाणाओ णं भंते! केवइयं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ? केवइयं० सव्वउवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सूरविमाणाओ णं असीए जोयणेहिं चंदविमाणे चारं चरइ, जोयणसयअबाहाए सव्वोवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ॥

चंदविमाणाओ णं भंते! केवइयं अबाहाए सव्वउवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ?

गोयमा! चंदविमाणाओ णं वीसाए जोयणेहिं अबाहाए सव्व उवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ, एवामेव सपुव्वावरेणं दसुत्तरसयजोयणबाहल्ले तिरियमसंखेज्जे जोइसविसए पण्णत्ते॥ १९५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सबसे नीचले तारा से कितनी दूर सूर्य विमान चलता है? कितनी दूरी पर चन्द्र विमान चलता है? कितनी दूरी पर सबसे ऊपर का तारा चलता है?

उत्तर - हे गौतम! सबसे नीचले तारा से दस योजन दूरी पर सूर्य विमानचलता है, नब्बे (९०) योजन दूरी पर चन्द्र विमान चलता है। एक सौ दस (११०) योजन दूरी पर सबसे ऊपर का तारा चलता है।

प्रश्न - हे भगवन्! सूर्य विमान से कितनी दूरी पर चन्द्र विमान चलता है? कितनी दूरी पर सबसे ऊपर का तारा चलता है?

उत्तर - हे गौतम! सूर्य विमान से अस्सी (८०) योजन की दूरी पर चन्द्र विमान चलता है और एक सौ योजन पर सबसे ऊपर का तारा चलता है।

प्रश्न - हे भगवन्! चन्द्र विमान से कितनी दूरी पर सबसे ऊपर का तारा चलता है?

उत्तर - हे गौतम! चन्द्र विमान से बीस योजन की दूरी पर सबसे ऊपर का तारा चलता है। इस प्रकार सब मिला कर एक सौ दस (११०) योजन की मोटाई में तिरछी दिशा में असंख्यात योजन तक ज्योतिषी चक्र कहा गया है।

जंबूदीवे णं भंते! दीवे कयरे णक्खत्ते सव्वब्भिंतरिल्लं चारं चरइ? कयरे णक्खत्ते सव्वबाहिरिल्लं चारं चरइ? कयरे णक्खत्ते सव्वउवरिल्लं चारं चरइ? कयरे णक्खत्ते सव्वहिट्ठिल्लं चारं चरइ?

गोयमा! जंबूदीवे णं दीवे अभीइणक्खत्ते सव्वब्भिंतरिल्लं चारं चरइ मूले णक्खत्ते सव्वबाहिरिल्लं चारं चरइ साई णक्खत्ते सव्वोवरिल्लं चारं चरइ भरणी णक्खत्ते सव्वहेट्ठिल्लं चारं चरइ॥ १९६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जंबूद्वीप में कौनसा नक्षत्र सब नक्षत्रों के भीतर गति करता है? कौनसा नक्षत्र सब नक्षत्रों के बाहर गति करता है? कौनसा नक्षत्र सब नक्षत्रों के ऊपर गति करता है और कौनसा नक्षत्र सब नक्षत्रों के नीचे गति करता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जंबूद्वीप नामक द्वीप में अभिजित नक्षत्र सब से भीतर गति करता है। मूल नक्षत्र सब नक्षत्रों के बाहर गति करता है। स्वाति नक्षत्र सब नक्षत्रों के ऊपर गति करता है और भरणी नक्षत्र सबसे नीचे चलता है।

विवेचन - जंबूद्वीप में नक्षत्रों की मण्डल गति के विषय में टीका में भी यह गाथा दी है -

सव्वब्भिंतराऽभीई, मूलो पुण सव्व बाहिरो होई।

सव्वोवरिं तु साई भरणी, पुण सव्व हेट्ठिलिया॥

चंदविमाणे णं भंते! किंसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! अद्धकविट्ठगसंठाणसंठिए सव्वफालियामए अब्भुग्गयमूसियपहसिए वण्णओ, एवं सूरविमाणेवि गहविमाणे वि, णक्खत्तविमाणेवि, ताराविमाणेवि अद्धकविट्ठसंठाणसंठिए॥

चंदविमाणे णं भंते! केवइयं आयाम-विक्खंभेणं? केवइयं परिक्खेवेणं? केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते?,

गोयमा! छप्पण्णे एगसट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं अट्ठावीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं पण्णत्ते॥

सूरविमाणस्सवि सच्चेव पुच्छा?

गोयमा! अडयालीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं चउवीस एगसट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं पण्णत्ते॥

एवं गहविमाणेवि अद्धजोयणं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं कोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते॥ णक्खत्तविमाणे णं कोसं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं अद्धकोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते,

ताराविमाणे णं अद्धकोसं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं पंचधणुसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते॥ १९७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चन्द्र विमान किस आकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! चन्द्र विमान अर्द्ध कबीठ के आकार का है। वह सर्वात्मना स्फटिकमय है। चन्द्रविमान की कांति सब दिशा-विदिशा में फैलती है जिससे यह सफेद, प्रभासित है आदि वर्णन कर देना चाहिये। इसी प्रकार सूर्य विमान, ग्रह विमान और तारा विमान भी अर्द्ध कबीठ के आकार के हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! चन्द्र विमान का आयाम विष्कंभ, परिधि और बाहल्य (मोटाई) कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! चन्द्र विमान एक योजन के ६१ भागों में से ५६ भाग ($\frac{५६}{६१}$) आयाम विष्कंभ (लंबाई चौड़ाई) वाला है। इससे तीन गुनी से कुछ अधिक परिधि है और एक योजन के ६१ भागों में से २८ भाग ($\frac{२८}{६१}$) प्रमाण उसका बाहल्य (मोटाई) है।

प्रश्न - हे भगवन्! सूर्य विमान की लम्बाई चौड़ाई, परिधि और मोटाई कितनी है?

उत्तर - हे गौतम! सूर्य विमान एक योजन के ६१ भागों में से ४८ भाग ($\frac{४८}{६१}$) लम्बा चौड़ा, तीन गुणी से अधिक उसकी परिधि तथा एक योजन के ६१ भागों में से २४ भाग ($\frac{२४}{६१}$) प्रमाण उसकी मोटाई है।

ग्रह विमान आधा योजन लम्बा चौड़ा, इससे तीन गुणी से कुछ अधिक परिधि वाला और एक कोस की मोटाई वाला है।

नक्षत्र विमान एक कोस लम्बा चौड़ा, इससे तीन गुणी से कुछ अधिक परिधि वाला और आधे कोस की मोटाई वाला है।

तारा विमान आधे कोस का लम्बा चौड़ा, इससे तीन गुणी से कुछ अधिक परिधि वाला और ५०० धनुष की मोटाई वाला है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में ज्योतिषी विमानों का आकार, लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई और परिधि का कथन किया गया है। चन्द्र आदि विमानों का आकार अर्द्ध कबीठ जैसा कहा गया है।

शंका - जब चन्द्र आदि का आकार अर्द्ध कबीठ जैसा कहा है तो उदय के समय, पूर्णमासी के समय जब वह तिरछा गमन करता है तब उस आकार का क्यों नहीं दिखाई देता है?

समाधान - इसका समाधान करते हुए टीकाकार कहते हैं -

अद्धं कविट्ठागारा उदयत्थमणम्मि कहं न दीसंति?
ससिसूराण विमाणा तिरियखेत्तट्ठियाणं च।
उत्ताणद्धकविट्ठागारं पीठं तदुवरिं च पासाओ।
वट्टालेखेण ततो समवट्टं दूरभावाओ॥

- यहां रहने वाले मनुष्यों द्वारा अर्द्ध कबीठ आकार वाले चन्द्र विमान की केवल गोल पीठ ही दिखाई देती है, हस्तामलकवत् उसका समतल भाग नहीं देखा जाता। गोल पीठ के ऊपर चन्द्र देव का प्रासाद है जो दूर रहने के कारण चर्मचक्षुओं द्वारा साफ-साफ नहीं दिखाई देता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्योतिषियों में जितनी-जितनी अपनी-अपनी पीठिका की ऊंचाई बताई है उतनी-उतनी अपने-अपने विमानों की ऊंचाई समझना चाहिए। $\frac{२८}{६१}$ भाग की जो ऊंचाई बताई वह सबसे मध्य वाले प्रासाद की समझना चाहिए। बाद में चारों तरफ ऊंचाई कम-कम होती जाती है जिससे मिलकर वह विमान अर्द्ध कविट्ठ के आकार का अर्द्ध गोलाकार जैसा हो जाता है। इसी प्रकार सूर्यादि सभी ज्योतिषी विमानों को समझना चाहिए।

चंदविमाणे णं भंते! कइ देवसाहस्सीओ परिवहंति?

गोयमा! चंदविमाणस्स णं पुरच्छिमेणं सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं संखतल-विमल-णिम्मल-दहिघणगोखीर-फेणरययणियरप्पगासाणं (महुगुलियपिंगलक्खाणं) थिरलट्ठ(पउट्ट)वट्टपीवरसुसिलिट्ठविसिट्ठतिक्खदाढाविडंबियमुहाणं रत्तुप्पल-पत्तमउयसुकुमालतालुजीहाणं (पसत्थसत्थ-वेरुलियभिसंतकक्कडणहाणं) विसालपीवरोरु-पडिपुण्णविउलखंधाणं मिउविसय-पसत्थसुहुमलक्खण-विच्छिण्ण-केसरसडोवसोभियाणं चंकमियललियपुलियधवलगव्वियगईणं उस्सिय-सुणिम्मिय-सुजाय-अप्फोडिय-णंगूलाणं वइरामयणक्खाणं वइरामयदंताणं वइरामयदाढाणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जतालुयाणं तवणिज्जजोत्तग-सुजोइयाणं कामगमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं मणोहराणं अमियगईणं अमियबलवीरियपुरिसक्कारपरक्कमाणं महया अप्फोडिय-सीहणाइय-बोलकलकलरवेणं महुरेणं मणहरेण य पूरिंता अंबरं दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ सीहरूवधारीणं देवाणं पुरच्छिमिल्लं बाहं परिवहंति।

चंदविमाणस्स णं दक्खिणेणं सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं संखतलविमल-णिम्मलदहिघणगोखीरफेणरययणियरप्पगासाणं वइरामयकुंभजुयलसुट्ठिय-पीवरवरवइरसोंडवट्टियदित्त-सुरत्तपउमप्पगासाणं अब्भुण्णयगुणा(महा)णं तवणिज्ज-विसालचंचल-चलंतचवलकण्णविमलुज्जलाणं मधुवण्णभिसंतणिद्धपिंगलपत्तल-तिवण्णमणिरयणलोयणाणं अब्भुग्गयमउलमल्लियाणं धवलसरिस-संठिय-णिव्वणदढकसिण-फालिया-मयसुजायदंत-मुसलोवसोभियाणं कंचणकोसीपविट्ठ-दंतग्गविमलमणिरयणरुइलपेरंतचित्तरूवगविराइयाणं तवणिज्जविसालतिलगपमुह-परिमंडियाणं णाणामणिरयणगुलियगेवेज्जबद्धगलयवरभूसणाणं वेरुलियविचित्तदंड-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिम्मलवाल-गंडाणं वइरामयतिक्खलट्ठ-अंकुसकुंभजुयलंतरोदियाणं तवणिज्ज-सुबद्धकच्छ-दप्पियबलुद्धराणं जंबूणयविमलघणमंडलवइरामयलीलाललिय-ताल-णाणा-मणिरयणघंटपासगरययामय-रज्जूबद्धलंबियघंटाजुयलमहुरसर-मणहराणं अल्लीणपमाणजुत्तवट्टियसुजायलक्खणपसत्थतवणिज्जवालगत्तपरिपुच्छणाणं उवचियपडिपुण्णकुम्मचलणलहुविक्कमाणं अंकामयणक्खाणं तवणिज्जतालुयाणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइयाणं कामगमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं मणोहराणं अमियगईणं अमियबलवीरियपुरिसक्कारपरक्कमाणं महया गंभीरगुलगुलाइयरवेणं महुरेणं मणहरेणं पुरेंता अंबरं दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ गयरूवधारीणं देवाणं दक्खिणिल्लं बाहं परिवहंति।

चंदविमाणस्स णं पच्चत्थिमेणं सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं चंकमियललिय-पुलियचलचवलककुदसालीणं सण्णयपासाणं संगयपासाणं सुजायपासाणं मियमाइयपीणरइयपासाणं झसविहग-सुजायकुच्छीणं पसत्थणिद्धमधुगुलियभिसंत-पिंगलक्खाणं विसालपीवरोरुपडिपुण्णविउलखंधाणं वट्टपडिपुण्णविउलकण्णपासाणं घणणिचियसुबद्धलक्खणुण्णयई-सिआणयवसभोट्ठाणं चंकमियललियपुलिय-चक्कवालचवलगव्वियगईणं पीवरोरुवट्टियसुसंठियकडीणं ओलंबपलंबलक्खणप-माणजुत्तपसत्थरमणिज्ज-वालगंडाणं समखुरवालधाराणं समलिहियतिक्खग्गसिंगाणं तणुसुहुमसुजायणिद्धलोमच्छविधराणं उवचियमंसलविसालपडिपुण्णखुद्दपमुहसुंदराणं (खंधपएससुंदराणं) वेरुलियभिसंतकडक्खसुणिरिक्खणाणं जुत्तप्पमाणप्पहाण-लक्खणपसत्थरमणिज्जगग्गरगलसोभियाणं घग्घरगसुबद्धकंठपरिमंडियाणं णाणामणि-कणगरयणघंटवेयच्छग-सुकयरइय-मालियाणं वरघंटागलगलिय-सोभंतसस्सिरीयाणं पउमुप्पलभसलसुरभि-मालाविभूसियाणं वइरखुराणं विविहविखुराणं फालियामयदंताणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जतालुयाणं तवणिज्जजोत्तगसुजोत्तियाणं कामगमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं मणोहराणं अमियगईणं अमियबलवीरियपुरिसक्कारपरक्कमाणं महया गंभीरगज्जियरवेणं महुरेणं मणहरेण य पूरेंता अंबरं दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ वसभरूवधारीणं देवाणं पच्चत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चंदविमाणस्स णं उत्तरेणं सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं जच्चाणं वरमल्लिहायणाणं हरिमेलामदुलमल्लियच्छाणं घणणिचिय-सुबद्धलक्खणुण्णाया-चंकमि(चंचुच्चि) यललियपुलिय-चल-चवल-चंचल-गईणं लंघणवग्गणधावणधारणतिवइजइण-सिक्खियगईणं ललंतलामगलायवरभूसणाणं संणयपासाणं संगयपासाणं सुजायपासाणं मियमाइयपीणरइयपासाणं झसविहगसुजायकुच्छीणं पीणपीवरवट्टिय-सुसंठियकडीणं ओलंबपलंबलक्खणपमाण-जुत्तपसत्थरमणिज्जवालगंडाणं तणुसुहुमसुजायणिद्ध-लोमच्छविधराणं मिउविसयपसत्थसुहुमलक्खणविकिण्णकेसरवालिधराणं ललियलासगगइ(ललंतथासगल)लाडवरभूसणाणं मुहमंडगोचूल-चमरथासग-परिमंडियकडीणं तवणिज्जखुराणं तवणिज्ज-जीहाणं तवणिज्जतालुयाणं तवणिज्जजोत्तग-सुजोइयाणं कामगमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं मणोहराणं अमियगईणं अमियबलवीरियपुरिसक्कारपरक्कमाणं महया हयहेसियकिलकिलाइयरवेणं महुरेणं मणहरेण य पूरेंता अंबरं दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ हयरूवधारीणं देवाणं उत्तरिल्लं बाहं परिवहंति॥

कठिन शब्दार्थ - संखतलविमल-णिम्मल-दहिघणगोखीर-फेण-रययणियरप्पगासाणं - शंख के तल के समान विमल और निर्मल, जमे हुए दही गाय का दूध, फेन, रजतनिकर (चांदी के समूह) के समान श्वेत प्रभा वाले, **मधुगुलियपिंगलक्खाणं** - मधुगुलितपिंगलाक्षाणां-शहद की गोली के समान पीली आंखें, **थिरलट्ठ(पउट्ठ)वट्टपीवरसुसिलिट्ठविसिट्ठतिक्खदाढा-विडंबियमुहाणं** - स्थिरलष्ट (प्रजुष्ट)वृत्तपीवरसुश्लिष्ट सुविशिष्ट तीक्ष्ण दंष्ट्र विडम्बित मुखानां-उनके मुख में स्थित सुदर प्रकोष्टों से युक्त गोल, मोटी, परस्पर जुडी हुई विशिष्ट और तीखी दाढाएं, **रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालतालुजीहाणं**-ताल कमल के पत्ते के समान मृदु एवं सुकोमल तालु और जीभ, **पसत्थ सत्थ वेरुलियभिसंत-कक्कडणहाणं** - प्रशस्त और शुभ वैडूर्य मणि की तरह चमकते हुए, कर्कश नख, **विसाल-पीवरोरुपडिपुण्णविउलखंधाणं** - विशाल और मोटे उरु, प्रतिपूर्ण, विपुल खंधे, **मिउविसय-पसत्थसुहुम-लक्खण विच्छिण्ण-केसरसडोव सोभियाणं** - मृदुविशद प्रशस्त सूक्ष्म लक्षण विस्तीर्ण केसर सटोप शोभितानाम्-केसरसटा मृदु, विशद, प्रशस्त, सूक्ष्म लक्षण युक्त विस्तृत होती है, **चंकमियललियपुलियधवलगव्वियगईणं** - चंक्रमितललितपुलित धवल गर्वित गतिनाम्-चंक्रमित और उछलने कूदने से साफ सुथरी गर्वित (मस्तानी) गति वाले, **उस्सिय सुणिम्मिय सुजायअप्फोडियणंगूलाणं** - उच्छ्रित सुनिर्मित सुजाताऽऽस्फालितलांगूलानां-ऊंची उठी हुई सुनिर्मित सुजात और फटकार युक्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूंछें, **अप्फोडियसीहणाइयबोलकलकलरवेणं** - आस्फोटित सिंहनाद बोलकलकल रवेण-जोर जोर से सिंहनाद करते हुए और उस सिंहनाद से, **वइरामयकुंभजुयलसुट्ठिय पीवरवरवइरसोंडवट्टियदित्त-सुरत्तपउमप्पगासाणं** - वज्रमय कुंभ युगल सुस्थित पीवरवर वज्र शुण्डवर्तित दीप्त सुरक्त पद्म प्रकाशानां-वज्रमय कुम्भ युगल के नीचे रही हुई सुंदर मोटी सूंड में जिन्होंने क्रीडार्थ लाल पद्मों के प्रकाश को ग्रहण किया हुआ है यानी जब हाथी युवावस्था में वर्तमान रहता है तो उसके कुंभस्थल से लेकर शुण्डादण्ड तक स्वतः ही पद्मप्रकाश के समान बिंदु उत्पन्न हो जाया करते हैं, **मधुवण्ण-भिसंतणिद्धपिंगलपत्तलतिवण्णमणिरयणलोयणाणं** - मधुवर्ण भासमान स्निग्ध पिंगल पत्रल त्रिवर्ण मणि रत्न लोचनानाम्-शहद वर्ण के चमकते हुए स्निग्ध पीले और पक्ष्म युक्त मणिरत्न की तरह त्रिवर्ण (श्वेत, कृष्ण, पीत) वाले नेत्र, **धवलसरिससंठियणिव्वणदढकसिण फालियामयसुजाय-दंतमुसलोवसोभियाणं** - धवल सदृश संस्थित निर्व्रण दृढ कृत्स्न स्फटिकमय सुजातदंत मुसलोपशोभितानां-सफेद, एक सरीखे, मजबूत, परिणत अवस्था वाले सुदृढ संपूर्ण स्फटिकमय सुजात और मूसल की उपमा से सुशोभित दांत वाले, **कंचणकोसीपविट्ठदंतग्ग विमलमणिरयणरुइलपेरंत चित्तरुवग-विराइयाणं** - कांचनकोशी प्रविष्ट दन्ताग्रविमल मणिरत्न रुचिर पर्यन्त चित्ररूपक विराजितानां-दांतों के अग्रभाग में स्वर्ण वलय पहनाये गये हैं अतएव ये दांत ऐसे मालूम होते हैं जैसे विमल मणियों के बीच चांदी का ढेर लगा हो, **तवणिज्जविसालतिलगपमुहपरिमंडियाणं** - मस्तक पर तपनीय स्वर्ण के विशाल तिलक आदि आभूषण पहनाये हुए हैं, **णाणामणिरयण गुलियगेवेज्जबद्धगलपवर भूसणाणं** - नाना मणियों से निर्मित ऊर्ध्व ग्रैवेयक कंठ के आभरण गले में पहनाये हुए हैं, **वइरामयतिक्खलट्ठ-अंकुसकुंभजुयलंतरोदियाणं** - वज्रमय तीक्ष्णलष्टः अंकुश युगलान्तरोदितानाम्-वज्रमय तीक्ष्ण एवं सुंदर अंकुश गंडस्थलों के मध्य सथापित किये हुए हैं, **जंबूणय विमलघण मंडलवइरामयलीला-ललियताल-णाणामणिरयण घंटपासगरययामयरज्जूबद्धलंबियघंटाजुयलमहुरसरमणहराणं** - जम्बूनद विमल घन मण्डल वज्रमय लालाललितताल नानामणिरत्न घण्टा पार्श्वगरजतमय रज्जूबद्धावलम्बित घण्टा युगल मधुर स्वरहराणाम्-जम्बूनद स्वर्ण के बने घनमंडल वाले और वज्रमय लाला से ताडित तथा आसपास नाना मणियों की छोटी छोटी घंटिकाओं से युक्त रजतमयी रज्जू में लटके दो बड़े घंटों के मधुर स्वर से जो मनोहर लगते हैं, **अल्लीणपमाणजुत्तवट्टिय सुजायलक्खणपसत्थतवणिज्जवालगत्त-परिपुच्छणाणं** - आलीनप्रमाणयुक्तवर्तितसुजात लक्षण प्रशस्त तपनीयवालगात्रपरिपुञ्छनानाम्-पूंछें चरणों तक लटकती हुई है गोल है इनमें सुजात और प्रशस्त लक्षण वाले रमणीय बाल हैं जिनसे हाथी अपने शरीर को पोंछते रहते हैं, **घणणिचियसुबद्धलक्खणुण्णयईसिआणयवसभोट्ठाणं** - घननिचितसुबद्धलक्ष-णोन्नत ईषदानतवृषभौष्ठानां-घन के समान निचित-मांसयुक्त जबड़ों से अच्छी तरह बद्ध, लक्षणोपेत उन्नत एवं थोड़े झुके हुए ओष्ठ, **जुत्तप्पमाणप्पहाणलक्खणपसत्थ रमणिज्जगग्गरगलसोभियाणं** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

युक्तप्रमाण प्रधान लक्षण प्रशस्त रमणीय गग्गरगल शोभितानां-युक्तप्रमाण प्रधान लक्षण युक्त प्रशस्त रमणीय गर्गर नामक आभूषणों से सुशोभित, **लंघणवग्गणधावण धारणतिवइजइण सिक्खियगईणं** - लंघन वल्गन धावन धारण त्रिपदीजयि शिक्षितगतिनां-लांघना, उछलना, दौड़ना, स्वामी को धारण किये रखना त्रिपदी (लगाम) के चलाने के अनुसार चलना इन सब बातों की शिक्षा के अनुसार गति करने वाले, **ललियलासगगइ (ललंतथासगल) लाडवर भूसणाणं** - सुंदर और विलास पूर्ण गति से हिलते हुए दर्पणाकार स्थासक-आभूषणों से भूषित ललाट वाले, **मुहमंडगोचूलचमरथासगपरिमंडियकडीणं** - उनकी कटि मुखमंडप, अवचूल, चमर स्थासक आदि आभूषणों से परिमंडित हैं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चन्द्र विमान को कितने हजार देव वहन करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! चन्द्र विमान को सोलह हजार देव वहन करते हैं। उनमें से चार हजार देव सिंह का रूप धारण कर पूर्व दिशा से उठाते हैं। उन सिंहों का वर्णन इस प्रकार है - वे श्वेत हैं, सुंदर हैं, श्रेष्ठ कांति वाले हैं, शंख तल के समान विमल और निर्मल तथा जमे हुए दही, गाय का दूध, फेन, चांदी के समूह के समान श्वेत प्रभा वाले हैं, उनकी आंखे शहद की गोली के समान पीली हैं, उनके मुख में स्थित दाढाएं सुंदर प्रकोष्ठों से युक्त, गोल, मोटी, परस्पर जुड़ी हुई विशिष्ट और तीखी हैं, उनके तालु और जीभ लाल कमल के पत्ते के समान मृदु एवं सुकोमल हैं, उनके नख प्रशस्त और शुभ वैडूर्य मणि की तरह चमकते हुए और कर्कश हैं, उनके उरु विशाल और मोटे हैं, उनके कंधे पूर्ण और विपुल हैं, उनके गले की केसर सटा मृदु, स्वच्छ (विशद) प्रशस्त सूक्ष्म लक्षण युक्त और विस्तीर्ण है उनकी गति चंकमणों-लीलाओं और उछलने कूदने से गर्वभरी (मस्तानी) और साफ सुथरी होती है, उनकी पूंछें ऊंची उठी हुईं, सुनिर्मित सुजात और फटकार युक्त होती है। उनके नख वज्र के समान कठोर हैं, उनके दांत वज्र के समान मजबूत हैं, उनकी दाढाएं वज्र के समान सुदृढ़ हैं, उनकी जीभ तपे हुए सोने के समान है, तपे हुए सोने की तरह उनके तालु हैं, सोने के जोतों से वे जोते हुए हैं, ये इच्छानुसारगति करने वाले हैं, इनकी गति प्रीतिपूर्वक होती है, ये मन को रुचिकर लगने वाले हैं, मनोरम है, मनोहर हैं इनकी गति अमित-अवर्णनीय है इनका बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम अपरिमित है। ये जोर जोर से सिंहनाद करते हुए और उस सिंहनाद से आकाश तथा चारों दिशाओं को गुंजाते हुए और सुशोभित करते हुए चलते रहते हैं। इस प्रकार चार हजार देव सिंह का रूप धारण कर चन्द्र विमान को पूर्व दिशा की ओर से वहन करते चलते हैं।

चन्द्र विमान को दक्षिण तरफ से चार हजार देव हाथी का रूप धारण करके उठाते हैं। हाथियों का वर्णन इस प्रकार हैं - वे हथी श्वेत हैं, सुंदर हैं, सुप्रभा वाले हैं। शंख तल के समान विमल, निर्मल, जमे हुए दही, गाय के दूध, फेन और चांदी के समूह के समान वे श्वेत कांति वाले हैं। उनके वज्रमय कुम्भ युगल के नीचे रही हुई सुंदर मोटी सूण्ड में जिन्होंने क्रीडार्थ रक्तपद्मों के प्रकाश को ग्रहण किया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुआ (कहीं कहीं ऐसा देखा जाता है कि जब हाथी युवावस्था में वर्तमान रहता है तो उसके कुंभस्थल से शुण्डादण्ड तक स्वतः पद्मप्रकाश के समान बिंदु उत्पन्न हो जाया करते हैं-उसका यहां उल्लेख है) उनके मुख ऊंचे उठे हुए हैं वे तपनीय स्वर्ण के विशाल, चंचल और चपल-हिलते हुए विमल कानों से सुशोभित हैं, शहद वर्ण के चमकते हुए स्निग्ध पीले और पक्ष्मयुक्त तथा मणि रत्न की तरह त्रिवर्ण (श्वेत, कृष्ण, पीत) वाले उनके नेत्र हैं अतएव वे नेत्र उन्नत मृदुल मल्लिका के कोरक जैसे प्रतीत होते हैं, उनके दांत सफेद, एक सरीखे, मजबूत, परिणत अवस्था वाले सुदृढ़, संपूर्ण एवं स्फटिकमय होने से सुजात हैं और मूसल की उपमा से सुशोभित हैं, इनके दांतों के अग्रभाग पर स्वर्ण के वलय पहनाये गये हैं अतएव ये दांत ऐसे मालूम होते हैं मानो विमल मणियों के बीच चांदी का ढेर हों। इनके मस्तक पर तपनीय स्वर्ण के विशाल तिलक आदि आभूषण पहनाये हुए हैं, नाना मणियों से निर्मित ऊर्ध्व ग्रैवेयक-कंठ के आभरण गले में पहनाये हुए हैं। जिनके गंड स्थलों के मध्य में वैडूर्य रत्न के विचित्र दण्ड वाले निर्मल वज्रमय तीक्ष्ण एवं सुंदर अंकुश स्थापित किये हुए हैं। तपनीय स्वर्ण की रस्सी से पीठ के झूले बहुत ही अच्छी तरह सजा कर एवं कस कर बांधे गये हैं अतएव ये दर्प से युक्त और बल से उद्धत बने हुए हैं। जंबूनद स्वर्ण के बने घनमंडल वाले और वज्रमय लाला से ताडित तथा आसपास नाना मणि रत्नों की छोटी छोटी घंटिकाओं से युक्त रत्नमयी रज्जु में लटके दो बड़े घंटों के मधुर स्वर से वे मनोहर लगते हैं। उनकी पूंछें चरणों तक लटकती हुई हैं, गोल हैं तथा उनमें सुजात और प्रशस्त लक्षण वाले बाल हैं जिनसे वे हाथी अपने शरीर को पौंछते रहते हैं। मांसल अवयवों के कारण परिपूर्ण कच्छप की तरह उनके पांव होते हुए भी वे शीघ्र गति वाले हैं। अंक रत्न के उनके नख हैं, तपनीय स्वर्ण के जोतों से वे जुते हुए हैं। वे इच्छानुसार गति करने वाले, प्रीतिपूर्वक गति करने वाले हैं। मन को अच्छे लगने वाले हैं, मनोरम हैं, मनोहर हैं, अपरिमित गति वाले हैं, अपरिमित बल वीर्य-पुरुषकार पराक्रम वाले हैं। अपने बहुत गंभीर एवं मनोहर गुलगुलाने की ध्वनि से आकाश को पूरित करते हैं और दिशाओं को शोभित करते हैं। इस प्रकार चार हजार हाथी रूपधारी देव चन्द्र विमान को दक्षिण दिशा से उठाते हैं।

चन्द्र विमान को पश्चिम दिशा से चार हजार बैल रूपधारी देव उठाते हैं। उन बैलों का वर्णन इस प्रकार हैं - वे श्वेत हैं, सुंदर हैं, सुप्रभा वाले हैं, उनके ककुद (स्कंध पर उठा हुआ भाग) कुछ कुछ कुटिल हैं, ललित (विलास युक्त) और पुष्ट हैं तथा दोलायमान हैं, उनके दोनों पार्श्व भाग सम्यग् नीचे की ओर झुके हुए हैं, सुजात हैं, श्रेष्ठ हैं, प्रमाणोपेत हैं परिमित मात्रा में ही मोटे होने से सुहावने लगने वाले हैं, मछली और पक्षी के समान पहली कुक्षिवाले हैं, इनके नेत्र प्रशस्त, स्निग्ध, शहद की गोली के समान चमकते पीले वर्ण के हैं, इनकी जंघाएं विशाल मोटी और मांसल हैं, इनके स्कंध विपुल और परिपूर्ण हैं इनके कपोल गोल और विपुल हैं, इनके ओष्ठ घन के समान निचित-मांस युक्त और जबड़ों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से अच्छी तरह संबद्ध हैं, लक्षणोपेत उन्नत एवं अल्प झुके हुए हैं। वे चंक्रमित (बांकी) ललित (विलासयुक्त) पुलित (उछलती हुई) और चक्रवाल की तरह चपल गति से गर्वित है। उनकी कटि मोटी, स्थूल, गोल और सुसंस्थित है। उनके दोनों कपोलों (गालों) के बाल ऊपर से नीचे तक अच्छी तरह लटकते हुए, लक्षण और प्रमाण युक्त, प्रशस्त और रमणीय हैं। उनके खुर और पूंछ एक समान हैं, उनके सींग एक समान पतले और तीक्ष्ण अग्रभाग वाले हैं। उनकी रोमराशि पतली सूक्ष्म, सुंदर और स्निग्ध है, उनके स्कंध प्रदेश उपचित, परिपुष्ट, मांसल और विशाल होने से सुंदर हैं इनकी चितवन वैडूर्य मणि जैसे चमकीले कटाक्षों से युक्त अतएव प्रशस्त और रमणीय गर्गर नामक आभूषणों से सुशोभित हैं, घग्घर नामक आभूषण से उनका कंठ परिमंडित हैं, अनेक मणियों स्वर्ण और रत्नों से निर्मित छोटी छोटी घंटियों की मालाएं उनके उर पर तिरछे रूप में पहनाई गई हैं। उनके गले में श्रेष्ठ घंटियों की मालाएं पहनाई गई हैं। उनसे निकलने वाली कांति से उनकी शोभा में वृद्धि हो रही है। ये पद्मकमल की परिपूर्ण सुगंधियुक्त मालाओं से सुगंधित हैं। इनके खुर वज्र जैसे और विविध विशिष्टता वाले हैं। उनके दांत स्फटिक रत्नमय हैं। तपनीय स्वर्ण के समान उनकी जिह्वा और तालु है। तपनीय स्वर्ण के जोतों से वे जोते हुए हैं। वे अपनी इच्छानुसार चलने वाले, प्रीतिपूर्वक चलने वाले हैं। मन को लुभावने, मनोहर और मनोरम हैं, उनकी गति अपरिमित है, वे अपरिमित बलवीर्य पुरुषकार पराक्रम वाले हैं, वे जोरदार गंभीर गर्जना के मधुर एवं मनोहर स्वर से आकाश को गुंजाते हुए और दिशाओं को सुशोभित करते हुए चलते हैं। इस प्रकार चार हजार बैल रूपधारी देव चन्द्र विमान को पश्चिम दिशा से उठाते हैं।

उस चन्द्र विमान को उत्तर दिशा से चार हजार अश्वरूपधारी देव उठाते हैं। उन अश्वों (घोड़ों) का वर्णन इस प्रकार हैं - वे श्वेत हैं, सुंदर हैं, सुप्रभा वाले हैं, उत्तम जाति के हैं, पूर्ण बल और वेग प्रकट होने की वय वाले हैं, हरिमेलक वृक्ष की कोमल कली के समान धवल आंख वाले हैं, घन की तरह दृढीकृत, सुबद्ध, लक्षणोन्नत, कुटिल (बांकी) ललित, उछलती चंचल और चपल चाल वाले हैं। लांघना, उछलना, दौड़ना, स्वामी को धारण किये रखना, त्रिपदी-लगाम के चलाने के अनुसार चलना, इन सब बातों की शिक्षा के अनुसार ही वे गति करने वाले हैं। हिलते हुए रमणीय आभूषण उनके गले में धारण किये हुए हैं, उनके पार्श्व भाग सम्यक् प्रकार से झुके हुए, संगत-प्रमाणोपेत और सुंदर हैं, यथोचित मात्रा में मोटे और रति पैदा करने वाले हैं, मछली और पक्षी के समान उनकी कुक्षि है, उनकी कटि पीन-पीवर, गोल और सुंदर आकार वाली है। दोनों कपोलों के बाल ऊपर से नीचे तक अच्छी तरह से लटकते हुए हैं, लक्षण और प्रमाण से युक्त हैं, प्रशस्त हैं, रमणीय हैं। उनकी रोमराशि पतली, सूक्ष्म, सुजात और स्निग्ध है। उनकी गर्दन के बाल मृदु, विशद, प्रशस्त, सूक्ष्म, सुलक्षणोपेत और सुलझे हुए हैं। सुंदर और विलासपूर्ण गति से हिलते हुए दर्पणाकार स्थासक-आभूषणों से उनके ललाट भूषित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं, मुखमण्डप, अवचूल, चमर-स्थासक आदि आभूषणों से उनकी कटि परिमंडित है, तपनीय स्वर्ण के उनके खुर हैं। तपनीय स्वर्ण की उनकी जिह्वा व तालु हैं। तपनीय स्वर्ण के जोतों से वे जुते हुए हैं। वे इच्छापूर्वक गमन करने वाले, प्रीतिपूर्वक गमन करने वाले, मन को लुभावने और मनोहर हैं। वे अपरिमित गति वाले, अपरिमित बलवीर्य पुरुषाकार पराक्रम वाले हैं। वे जोरदार हिनहिनाने की मधुर और मनोहर ध्वनि से आकाश को गुंजाते हुए और दिशाओं को शोभित करते हुए गति करते हैं, इस प्रकार चार हजार अश्वरूपधारी देव चन्द्र विमान को उत्तर दिशा की ओर से उठाते हैं।

एवं सूरविमाणस्सवि पुच्छा, गोयमा! सोलस देवसाहस्सीओ परिवहंति पुव्वकमेणं॥ एवं गहविमाणस्सवि पुच्छा, गोयमा! अट्ठ देवसाहस्सीओ परिवहंति पुव्वकमेणं, दो देवाणं साहस्सीओ पुरत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति दो देवाणं साहस्सीओ दक्खिणिल्लं, दो देवाणं साहस्सीओ पच्चत्थिमं, दो देवसाहस्सीओ हयरूवधारीणं उत्तरिल्लं बाहं परिवहंति॥ एवं णक्खत्तविमाणस्सवि पुच्छा, गोयमा! चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति, तंजहा-सीहरूवधारीणं देवाणं एगा देवसाहस्सी पुरत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति, एवं चउद्दिसिंपि, एवं तारगाणवि णवरं दो देवसाहस्सीओ परिवहंति, तंजहा-सीहरूवधारीणं देवाणं पंचदेवसया पुरत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति, एवं चउद्दिसिंपि॥ १९८॥

भावार्थ - इसी प्रकार सूर्य विमान के विषय भी पृच्छा करनी चाहिये। हे गौतम! सोलह हजार देव चन्द्र विमान की तरह ही सूर्य विमान को वहन करते (उठाते) हैं। इसी प्रकार ग्रह विमान विषयक पृच्छा। हे गौतम! आठ हजार देव ग्रह विमान को उठाते हैं-दो हजार देव पूर्व दिशा से, दो हजार देव दक्षिण दिशा से, दो हजार देव पश्चिम दिशा से और दो हजार देव उत्तर दिशा से। नक्षत्र विमान की पृच्छा? हे गौतम! चार हजार देव नक्षत्र विमान को वहन करते हैं। एक हजार देव सिंह का रूप धारण कर पूर्व दिशा से, एक हजार देव हाथी का रूप धारण कर दक्षिण दिशा से, एक हजार देव बैल का रूप धारण कर पश्चिम दिशा से और एक हजार देव अश्व का रूप धारण कर उत्तर दिशा से नक्षत्र विमान को उठाते हैं। इसी प्रकार तारा विमान को दो हजार देव वहन करते हैं। पांच सौ-पांच सौ देव चारों दिशाओं से तारा विमान को उठाते हैं।

विवेचन - उपर्युक्त आगम पाठ के अनुसार चन्द्र आदि ज्योतिषी देवों के आभियोगिक देव ही सिंह आदि के रत्नादिमय रूप विकुर्वित करके विमान को वहन करते हैं। इस विषय में ऐसा भी सुना जाता है कि - विमानों के चारों ओर शाश्वत रूप से सिंह आदि की रत्नमयी आकृतियें बनी हुई हैं, उनमें आभियोगिक देव विकुर्वणा करके प्रविष्ट हो जाते हैं और वे विमान को वहन करते हैं। दोनों मान्यता के अनुसार विकुर्वणा तो होती ही हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एएसि णं भंते! चंदिमसूरियगह गणणक्खत्ततारारूवाणं कयरे कयरेहिंतो सिग्घगई वा मंदगई वा?

गोयमा! चंदेहिंतो सूरा सिग्घगई सूरेहिंतो गहा सिग्घगई गहेहिंतो णक्खत्ता सिग्घगई णक्खत्तेहिंतो तारा सिग्घगई, सव्वप्पगई चंदा सव्वसिग्घगईओ तारारूवा॥ १९९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं में कौन किससे शीघ्र गति वाले और कौन किससे मंद गति वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! चन्द्र से सूर्य तेज गति वाले हैं, सूर्य से ग्रह तीव्र गति वाले, ग्रह से नक्षत्र तीव्र गति वाले और नक्षत्रों से तारे शीघ्र गति वाले हैं। सबसे मंद गति चन्द्रों की है और सबसे तीव्र गति ताराओं की है।

एएसि णं भंते! चंदिम जाव तारारूवाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पिड्ढिया वा महिड्ढिया वा?

गोयमा! तारारूवेहिंतो णक्खत्ता महिड्ढिया णक्खत्तेहिंतो गहा महिड्ढिया गहेहिंतो सूरा महिड्ढिया सूरेहिंतो चंदा महिड्ढिया, सव्वप्पड्ढिया तारारूवा सव्वमहिड्ढिया चंदा ॥ २००॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं में कौन किससे अल्पऋद्धि वाले हैं और कौन महाऋद्धि वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! ताराओं से नक्षत्र महर्द्धिक-महाऋद्धि वाले हैं, नक्षत्र से ग्रह महर्द्धिक हैं, ग्रहों से सूर्य महर्द्धिक हैं और सूर्यों से चन्द्रमा महर्द्धिक हैं। सबसे अल्प ऋद्धि वाले तारे हैं और सबसे महाऋद्धिवाले चन्द्रमा हैं।

जंबूदीवे णं भंते! दीवे तारारूवस्स तारारूवस्स य एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते? गोयमा! दुविहे अंतरे पण्णत्ते, तंजहा-वाघाइमे य णिव्वाघाइमे य, तत्थ णं जे से वाघाइमे से जहण्णेणं दोण्णि य छावट्ठे जोयणसए उक्कोसेणं बारस जोयणसहस्साइं दोण्णि य बायाले जोयणसए तारारूवस्स तारारूवस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। तत्थ णं जे से णिव्वाघाइमे से जहण्णेणं पंचधणुसयाइं उक्कोसेणं दो गाउयाइं तारारूव जाव अंतरे पण्णत्ते॥ २०१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - वाघाइमे - व्याघातिम (कृत्रिम), **णिव्वाघाइमे** - निर्व्याघातिम (स्वाभाविक)।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जंबूद्वीप में एक तारे से दूसरे तारे का कितना अंतर कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अंतर दो प्रकार का कहा गया है। यथा - व्याघातिम (कृत्रिम) और निर्व्याघातिम (स्वाभाविक)। व्याघातिम अंतर जघन्य दो सौ छियासठ योजन (२६६) का और उत्कृष्ट बारह हजार दो सौ बयालीस (१२,२४२) योजन का है। निर्व्याघातिम अंतर जघन्य पांच सौ धनुष और उत्कृष्ट दो कोस का समझना चाहिये।

विवेचन - व्याघात की अपेक्षा एक तारे से दूसरे तारे का जघन्य और उत्कृष्ट अंतर इस प्रकार समझना चाहिये -

नीषध और नीलवंत पर्वत के कूट ऊपर से दो सौ पचास (२५०) योजन लम्बे चौड़े हैं। कूट की दोनों ओर से आठ आठ योजन को छोड़कर तारा मंडल चलता है अतः दो सौ छियासठ (२६६) योजन (२५०+१६) का जघन्य अंतर कहा है। उत्कृष्ट अंतर मेरु पर्वत की अपेक्षा कहा है-मेरु पर्वत की चौड़ाई दस हजार योजन की है। मेरु पर्वत के दोनों ओर से ग्यारह सौ इक्कीस-ग्यारह सौ इक्कीस ११२१-११२१ योजन को छोड़कर तारा मंडल चलता है अतः उत्कृष्ट अंतर बारह हजार दो सौ बयालीस १२२४२ (१०,०००+२२४२) योजन का आ जाता है।

चंदस्स णं भंते! जोइसिंदस्स जोइसरण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ? गोयमा! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-चंदप्पभा दोसिणाभा अच्चिमाली पभंकरा, एत्थ णं एगमेगाए देवीए चत्तारि चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवारे य, पभू णं तओ एगमेगा देवी अण्णाइं चत्तारि चत्तारि देविसहस्साइं परिवारं विउव्वित्तए, एवामेव सपुव्वावरेणं सोलस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, से तं तुडिए॥ २०२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे *भगवन्! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र की कितनी अग्रमहिषियां हैं?*

उत्तर - हे गौतम! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं वे इस प्रकार हैं - चन्द्रप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चिमाली और प्रभंकरा। इनमें से प्रत्येक अग्रमहिषी अन्य चार हजार देवियों की विकुर्वणा कर सकती हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर सोलह हजार देवियों का परिवार है। यह चन्द्रदेव के तुटिक अन्तःपुर का वर्णन हुआ।

पभू णं भंते! चंदे जोइसिंदे जोइसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए चंदंसि सीहासणंसि तुडिएण सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णो इणट्ठे समट्ठे। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ णो पभू चंदे जोइसराया चंदवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए चंदंसि सीहासणंसि तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए? गोयमा! चंदस्स जोइसिंदस्स जोइसरण्णो चंदवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए माणवगंसि चेइयखंभंसि वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहुयाओ जिणसकहाओ सण्णिक्खित्ताओ चिट्ठंति, जाओ णं चंदस्स जोइसिंदस्स जोइसरण्णो अण्णेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ, तासिं पणिहाए णो पभू चंदे जोइसराया चंदवडिं० जाव चंदंसि सीहासणंसि जाव भुंजमाणे विहरित्तए, से एएणट्ठेणं गोयमा! णो पभू चंदे जोइसराया चंदवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए चंदंसि सीहासणंसि तुडिएण सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए।

अदुत्तर च णं गोयमा! पभू चंदे जोइसिंदे जोइसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए चंदंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव सोलसहिं आयरक्खदेवाणं साहस्सीहिं अण्णेहिं बहूहिं जोइसिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे महया हयणट्टगीइवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए, केवलं परियारतुडिएण सद्धिं भोगभोगाइं बुद्धिए णो चेव णं मेहुणवत्तियं॥ २०३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में चन्द्र नामक सिंहासन पर अपने अन्तःपुर के साथ दिव्य भोग भोगने में समर्थ है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है ज्योतिषराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में सुधर्मासभा में चन्द्र नामक सिंहासन पर अपने अन्तःपुर के साथ दिव्य भोग भोगने में समर्थ नहीं है?

उत्तर - हे गौतम! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र के चन्द्रावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में माणवक चैत्यस्तंभ में वज्रमय गोल मंजूषाओं में बहुत सी जिनसक्थाएं (पृथ्वीकायिक उस आकार की दाढाएं-जो वहां पर सदाकाल शाश्वत होती है।) रखी हुई हैं जो ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र और अन्य बहुत से ज्योतिष देवों और देवियों के लिये अर्चनीय यावत् पर्युपासनीय हैं। उनके कारण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्योतिषराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में यावत् चन्द्र सिंहासन पर यावत् भोगोपभोग भोगने में समर्थ नहीं है। इसलिये ऐसा कहा गया है कि ज्योतिषराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में चन्द्रसिंहासन पर अपने अन्तःपुर के साथ दिव्य भोगोपभोग भोगने में समर्थ नहीं है।

हे गौतम! दूसरी बात यह है कि ज्योतिषराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में चन्द्र सिंहासन पर अपने चार हजार सामानिक देवों यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा अन्य बहुत से ज्योतिषी देवों और देवियों के साथ घिरा हुआ जोर जोर से बजाये गये नृत्य में, गीत में, वादिन्त्रों के तन्त्री, तल, ताल के त्रुटित, घन और मृदंग के बजाने से उत्पन्न शब्दों से दिव्य भोगों को भोगने में समर्थ हैं किंतु अपने अन्तःपुर के साथ मैथुन बुद्धि से भोग भोगने में वह समर्थ नहीं है।

सूरस्स णं भंते! जोइसिंदस्स जोइसरण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-सूरप्पभा आयवाभा अच्चिमाली पभंकरा, एवं अवसेसं जहा चंदस्सं णवरिं सूरवडिंसए विमाणे सूरंसि सीहासणंसि, तहेव सव्वेसिंपि गहाईणं चत्तारि अग्गमहिसीओ० तंजहा-विजया वेजयंती जयंती अपराजिया तेसिंपि तहेव॥ २०४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज सूर्य की कितनी अग्रमहिषियां हैं?

उत्तर - हे गौतम! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज सूर्य की चार अग्रमहिषियां हैं वे इस प्रकार हैं - सूर्यप्रभा, आतपाभा, अर्चिमाली और प्रभंकरा। शेष सारा वर्णन चन्द्र के समान समझ लेना चाहिये किंतु विशेषता यह है कि यहां सूर्यावतंसक विमान में सूर्य सिंहासन कहना चाहिये। उसी प्रकार ग्रह आदि की भी चार अग्रमहिषियां हैं। यथा - विजया, वेजयंती, जयंती और अपराजिता। शेष सारी वक्तव्यता पूर्ववत् कहनी चाहिये।

चंदविमाणे णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? एवं जहा ठिईपए तहा भाणियव्वा जाव ताराणं॥ २०५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चन्द्र विमान में देवों की स्थिति कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! प्रज्ञापना सूत्र के स्थिति पद के अनुसार तारारूप तक सभी की स्थिति का कथन कर देना चाहिये।

विवेचन - प्रज्ञापना सूत्र के स्थिति पद में ज्योतिषी देवों की स्थिति इस प्रकार कही गयी है -

चन्द्र विमान में चन्द्र, सामानिक देव तथा आत्मरक्षक देवों की जघन्य स्थिति पाव पल्योपम और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्कृष्ट स्थिति एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की है। उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट पांच सौ वर्ष अधिक आधे पल्योपम की है।

सूर्य विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की है। उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम और उत्कृष्ट पांच सौ वर्ष अधिक आधा पल्योपम की है।

ग्रह विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट एक पल्योपम की, उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट आधा पल्योपम की है।

नक्षत्र विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट आधा पल्योपम और उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट कुछ अधिक पाव पल्योपम की है।

तारा विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की, उत्कृष्ट पाव पल्योपम की। उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की, उत्कृष्ट कुछ अधिक पल्योपम के आठवें भाग की है।

एएसि णं भंते! चंदिमसूरियगहणक्खत्ततारारूवाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! चंदिमसूरिया एए णं दोण्णिवि तुल्ला सव्वत्थोवा, संखेज्जगुणा णक्खत्ता, संखेज्जगुणा गहा, संखेज्जगुणाओ तारगाओ ॥ २०६॥

॥ जोइसुद्देसओ समत्तो॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! चन्द्र सूर्य दोनों तुल्य और सबसे थोड़े हैं। उनसे नक्षत्र संख्यातगुण हैं, उनसे ग्रह संख्यातगुण हैं और उनसे तारें संख्यातगुण हैं। इस प्रकार ज्योतिषीदेवों का वर्णन पूरा हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चन्द्र आदि का अल्पबहुत्व कहा गया है जो इस प्रकार समझना चाहिये - सबसे थोड़े चन्द्र सूर्य हैं और आपस में बराबर है क्योंकि प्रत्येक द्वीप और समुद्र में चन्द्र सूर्यों की संख्या समान है और ये ग्रह, नक्षत्र और ताराओं की अपेक्षा अल्प हैं। चन्द्र और सूर्यों से नक्षत्र संख्यात गुणा अधिक हैं क्योंकि ये २८ गुणे होते हैं। नक्षत्रों से ग्रह संख्यात गुणे अधिक हैं क्योंकि कुछ अधिक तिगुणे कहे गये हैं। ग्रहों की अपेक्षा तारें संख्यात गुण अधिक हैं क्योंकि ये प्रभूत कोटीकोटि कहे गये हैं।

॥ ज्योतिषी उद्देशक समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पढमो वेमाणिय उद्देसो

प्रथम वैमानिक उद्देशक

कहि णं भंते! वेमाणियाणं देवाणं विमाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! वेमाणिया देवा परिवसंति?

जहा ठाणपए तहा सव्वं भाणियव्वं णवरं परिसाओ भाणियव्वाओ जाव सक्के० अण्णेसिं च बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं देवाण य देवीण य जाव विहरंति॥ २०७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वैमानिक देवों के विमान कहां कहे गये हैं? हे भगवन्! वैमानिक देव कहां रहते हैं?

उत्तर - प्रज्ञापना सूत्र के स्थान पद के अनुसार यहां सारा वर्णन कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि अच्युत विमान तक परिषदाओं का भी कथन करना चाहिये यावत् बहुत से सौधर्म कल्पवासी देव और देवियों का आधिपत्य करते हुए सुखपूर्वक विचरण करते हैं।

विवेचन - प्रज्ञापना सूत्र के स्थान पद में वैमानिक देवों का वर्णन इस प्रकार किया गया है -

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसमरमणीय भूमिभाग से ऊपर चन्द्र सूर्य ग्रह नक्षत्र तथा तारा रूप ज्योतिषी देवों के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, अनेक करोड़ योजन और बहुत कोटाकोटि योजन ऊपर जाने पर सौधर्म-ईशान-सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मलोक-लान्तक-महाशुक्र-सहस्रार-आणत-प्राणत-अच्युत, ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों में वैमानिक देवों के चौरासी लाख सत्तानवे हज़ार तेवीस (८४९७०२३) विमान एवं विमानावास हैं।

ये विमान सर्वरत्नमय, स्फटिक के समान स्वच्छ, चिकने, कोमल, घिसे हुए, चिकने बनाये हुए, रज रहित्त, निर्मल, पंक रहित, निरावरण कांति वाले, प्रभायुक्त, श्रीसंपन्न, उद्योत सहित, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले दर्शनीय, रमणीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं। उनमें बहुत से वैमानिक देव निवास करते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं-१. सौधर्म २. ईशान ३. सनत्कुमार ४. माहेन्द्र ५. ब्रह्मलोक ६. लान्तक ७. महाशुक्र ८. सहस्रार ९. आनत १०. प्राणत ११. आरण १२. अच्युत, नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तरोपपातिक देव।

वे सौधर्म से अच्युत तक के देव क्रमशः १. मृग २. महिष ३. वराह ४. सिंह ५. बकरा (छगल) ६. दर्दुर ७. हय ८. गजराज ९. भुजंग १०. खड्ग (गेंडा) ११. वृषभ और १२. विडिम के प्रकट चिह्न से युक्त मुकुट वाले, शिथिल और श्रेष्ठ मुकुट और किरीट के धारक, श्रेष्ठ कुण्डलों से उद्योतित मुख वाले, मुकुट के कारण शोभा युक्त, रक्त आभा युक्त, कमल पत्र के समान गौरे, श्वेत सुखद वर्ण गंध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रस स्पर्श वाले, उत्तम वैक्रिय शरीरधारी, श्रेष्ठ वस्त्र गंध माल्य और लेपन के धारक, महर्द्धिक, महाद्युतिमान, महायशस्वी, महाबली, महानुभाग, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले हैं। कड़े और बाजूबंदों से मानो भुजाओं को उन्होंने स्तब्ध कर रखी हैं, अंगद कुण्डल आदि आभूषण उनके कपोल को सहला रहे हैं, कानों में कर्णफूल और हाथों में विचित्र करभूषण धारण किये हुए हैं। विचित्र पुष्पमालाएं मस्तक पर शोभायमान हैं वे कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए हैं तथा कल्याणकारी श्रेष्ठमाला और अनुलेपन धारण किये हुए हैं। उनका शरीर देदीप्यमान होता है। वे लंबी वनमाला धारण किये हुए हैं। दिव्य वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से, दिव्य संहनन से, दिव्य संस्थान से, दिव्य ऋद्धि, दिव्य द्युति, दिव्य प्रभा, दिव्य छाया, दिव्य अर्चि, दिव्य तेज और दिव्य लेश्या से दशों दिशाओं को उद्योतित एवं प्रभासित करते हुए वे वहां अपने-अपने लाखों विमानावासों का, अपने अपने हजारों सामानिक देवों का, त्रायस्त्रिंशक देवों का, लोकपालों का, अपनी-अपनी सपरिवार अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सेनाधिपति देवों का, अपने-अपने हजारों आत्मरक्षक देवों का तथा बहुत से वैमानिक देवों और देवियों का आधिपत्य, अग्रेसरत्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञा ऐश्वर्यत्व तथा सेनापतित्व करते-कराते और पालते पलाते हुए निरन्तर होने वाले महान् नाट्य गीत तथा कुशल वादकों द्वारा बजाये जाते हुए वीणा, तल, ताल, त्रुटित, घन, मृदंग आदि वाद्यों से उत्पन्न ध्वनि के साथ दिव्य शब्दादि कामभोगों को भोगते हुए विचरते हैं।

जंबूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसमरमणीय भूमिभाग से ऊपर ज्योतिषियों से अनेक कोटाकोटि योजन ऊपर जाने पर सौधर्म नामक कल्प (देवलोक) है। यह पूर्व पश्चिम में लम्बा, उत्तर दक्षिण में चौड़ा, अर्द्धचन्द्र के आकार में संस्थित, अर्चिमाला और दीप्तियों की राशि के समान कांति वाला, असंख्यात कोटाकोटि योजन की लम्बाई चौड़ाई और परिधि वाला तथा सर्वरत्नमय है। इस सौधर्म विमान में बत्तीस लाख विमानावास हैं इन विमानों के मध्य देशभाग में पांच अवतंसक कहे गये हैं - १. अशोकावतंसक २. सप्तपर्णावतंसक ३. चंपकावतंसक ४. चूतावतंसक और इन चारों के मध्य में पांचवां सौधर्मावतंसक है। ये अवतंसक रत्नमय है स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। इन सब बत्तीस लाख विमानों में सौधर्म कल्प के देव रहते हैं जो महर्द्धिक हैं यावत् दसो दिशाओं को उद्योतित करते हुए आनंद से सुखोपभोग करते हैं और अपने सामानिक आदि देवों का आधिपत्य करते हुए विचरते हैं।

सक्कस्स णं भंते! देविंदस्स देवरण्णो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा - समिया चंडा जाया, अब्भिंतरिया समिया मज्झिमिया चंडा बाहिरिया जाया॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सक्कस्स णं भंते! देविंदस्स देवरण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ?

मज्झिमियाए परि० तहेव बाहिरियाए पुच्छा, गोयमा! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ मज्झिमियाए परिसाए चउद्दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ बाहिरियाए परिसाए सोलस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तहा अब्भिंतरियाए परिसाए सत्त देवीसयाणि मज्झिमियाए० छच्च देवीसयाणि बाहिरियाए० पंच देवीसयाणि पण्णत्ताणि॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र की कितनी परिषदाएं कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! देवेन्द्र देवराज शक्र की तीन परिषदाएं कही गई हैं यथा - समिता, चण्डा और जाया। आभ्यंतर परिषदा समिता, मध्यम परिषदा चण्डा और बाह्य परिषदा जाया कहलाती है।

प्रश्न - हे भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र की आभ्यंतर परिषद् में कितने हजार देव हैं, मध्यम परिषद् में कितने हजार देव हैं और बाह्य परिषद् में कितने हजार देव हैं?

उत्तर - हे गौतम! देवेन्द्र देवराज शक्र की आभ्यंतर परिषद् में बारह हजार देव हैं, मध्यम परिषद् में चौदह हजार देव हैं और बाह्य परिषद् में सोलह हजार देव हैं। आभ्यंतर परिषद् में सात सौ देवियां, मध्यम परिषद् में छह सौ देवियां और बाह्य परिषद् में पांच सौ देवियां हैं।

सक्कस्स णं भंते! देविंदस्स देवरण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? एवं मज्झिमियाए बाहिरियाएवि, गोयमा! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए० चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, देवीणं ठिई-अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए० दुण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए० एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, अट्ठो सो चेव जहा भवणवासीणं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र की आभ्यंतर परिषद् के देवों की, मध्यम परिषद् के देवों और बाह्य परिषद् के देवों की कितने काल की स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! देवेन्द्र देवराज शक्र की आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति पांच पल्योपम की, मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति चार पल्योपम की और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है। आभ्यंतर परिषद् की देवियों की स्थिति तीन पल्योपम की, मध्यम परिषद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की देवियों की स्थिति दो पल्योपम की और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति एक पल्योपम की है। समिता, चण्डा और जाया परिषद् का अर्थ वही है जो भवनवासी देवों के चमरेन्द्र के विषय में कहा है।

कहि णं भंते! ईसाणगाणं देवाणं विमाणा पण्णत्ता? तहेव सव्वं जाव ईसाणे एत्थ देविंदे देव० जाव विहरइ। ईसाणस्स णं भंते! देविंदस्स देवरण्णो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा - समिया चंडा जाया, तहेव सव्व णवरं अब्भिंतरियाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ०, बाहिरियाए० चउद्दस देवसाहस्सीओ०, देवीणं पुच्छा, अब्भिंतरियाए० णव देवीसया पण्णत्ता मज्झिमियाए परिसाए अट्ठ देवीसया पण्णत्ता बाहिरियाए परिसाए सत्त देवीसया पण्णत्ता, देवाणं ठिईपुच्छा, अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता मज्झिमियाए० छ पलिओवमाइं० बाहिरियाए० पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। देवीणं पुच्छा, अब्भिंतरियाए० साइरेगाइं पंचपलिओवमाइं०, मज्झिमियाए परिसाए चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, अट्ठो तहेव भाणियव्वाओ॥

भावार्थ - हे भगवन्! ईशान कल्प के देवों के विमान कहां कहे गये हैं आदि सारी वक्तव्यता सौधर्म कल्प के समान समझना चाहिये। विशेषता यह है कि वहां ईशान नामक देवेन्द्र देवराज आधिपत्य करता हुआ विचरता है।

प्रश्न - हे भगवन्! देवेन्द्र देवराज ईशान की कितनी परिषदाएं कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! ईशानेन्द्र की तीन प्रकार की परिषदाएं कही गई हैं। यथा - समिता, चंडा और जाया। शेष कथन पूर्वानुसार कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि आभ्यंतर परिषद् में दस हजार देव, मध्यम परिषद् में बारह हजार देव और बाह्य परिषद् में चौदह हजार देव हैं। आभ्यंतर परिषद् में नौ सौ देवियां, मध्यम परिषद् में आठ सौ देवियां और बाह्य परिषद् में सात सौ देवियां होती हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! ईशान कल्प के देवों की स्थिति कितनी कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! ईशान कल्प के आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति सात पल्योपम की, मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति छह पल्योपम की और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति पांच पल्योपम की हैं।

देवियों की स्थिति विषयक प्रश्न?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे गौतम! आभ्यंतर परिषद् की देवियों की स्थिति कुछ अधिक पांच पल्योपम की, मध्यम परिषद् की देवियों की स्थिति चार पल्योपम की और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति तीन पल्योपम की होती है। इन तीन परिषदाओं का अर्थ आदि कथन चमरेन्द्र के समान समझना चाहिये।

सणंकुमाराणं पुच्छा तहेव ठाणपयगमेणं जाव सणंकुमारस्स तओ परिसाओ समियाई तहेव, णवरं अब्भिंतरियाए परिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमियाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए० अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए० अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं तिण्णि पलिओवमाइं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, अट्ठो सो चेव॥

भावार्थ - सनत्कुमार देवों के विषयक पृच्छा? प्रज्ञापना सूत्र के स्थान पद के अनुसार कथन करना चाहिये यावत् वहां सनत्कुमार देवेन्द्र देवराज है। उसकी तीन परिषदाएं कही गयी हैं। यथा - समिता, चंडा और जाया। आभ्यंतर परिषद् में आठ हजार देव, मध्यम परिषद् में दस हजार देव और बाह्य परिषद् में बारह हजार देव हैं। आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति साढे चार सागरोपम और पांच पल्योपम की, मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति साढे चार सागरोपम और चार पल्योपम की और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति साढे चार सागरोपम और तीन पल्योपम की है। परिषदों का अर्थ चमरेन्द्र के समान पूर्ववत् समझना चाहिये।

विवेचन - दूसरे देवलोक से आगे देवियां नहीं होती हैं। अतः प्रस्तुत सूत्र में देवियों का कथन नहीं किया गया है।

एवं माहिंदस्सवि तहेव तओ परिसाओ णवरं अब्भिंतरियाए परिसाए छद्देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमियाए परिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरियाए० दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, ठिई देवाणं-अब्भिंतरियाए परिसाए अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं सत्त य पलिओ० ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं छच्च पलिओवमाइं०, बाहिरियाए परिसाए अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं पंच य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, तहेव सव्वेसिं इंदाणं ठाणपयगमेणं विमाणा णेयव्वा तओ पच्छा परिसाओ पत्तेयं पत्तेयं वुच्चंति॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसी प्रकार माहेन्द्र देवलोक के विमानों और माहेन्द्र देवराज देवेन्द्र का कथन करना चाहिये। वैसी ही तीन परिषदाएं कह देनी चाहिये।

विशेषता यह है कि आभ्यंतर परिषद् में छह हजार, मध्यम परिषद् में आठ हजार और बाह्य परिषद् में दस हजार देव हैं। आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति साढे चार सागरोपम और सात पल्योपम की है। मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति साढे चार सागरोपम और छह पल्योपम की और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति साढे चार सागरोपम और पांच पल्योपम की है। इसी प्रकार स्थान पद के अनुसार पहले सब इन्द्रों के विमानों का कथन करने के बाद प्रत्येक की परिषदाओं का कथन कर देना चाहिए।

बंभस्सवि तओ परिसाओ पण्णत्ताओ० अब्भिंतरियाए चत्तारि देवसाहस्सीओ मज्झिमियाए छ देवसाहस्सीओ बाहिरियाए अट्ठ देवसाहस्सीओ, देवाणं ठिई- अब्भिंतरियाए परिसाए अद्धणवमाइं सागरोवमाइं पंच य पलिओवमाइं, मज्झिमियाए परिसाए अद्धणवमाइं सागरोवमाइं चत्तारि पलिओवमाइं, बाहिरियाए० अद्धणवमाइं सागरोवमाइं तिण्णि य पलिओवमाइं, अट्ठो सो चेव॥

भावार्थ - ब्रह्म देवेन्द्र देवराज की भी तीन परिषदाएं हैं। आभ्यंतर परिषद् में चार हजार, मध्यम परिषद् में छह हजार और बाह्य परिषद् में आठ हजार देव हैं। आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति साढे आठ सागरोपम और पांच पल्योपम है। मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति साढे आठ सागरोपम और चार पल्योपम की है। बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति साढे आठ सागरोपम और तीन पल्योपम की है। परिषदों का अर्थ पूर्वानुसार ही है।

लंतगस्सवि जाव तओ परिसाओ जाव अब्भिंतरियाए परिसाए दो देव साहस्सीओ० मज्झिमियाए० चत्तारि देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ बाहिरियाए० छद्देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, ठिई भाणियव्वा-अब्भिंतरियाए परिसाए बारस सागरोवमाइं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए बारस सागरोवमाइं छच्च पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए बारस सागरोवमाइं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, अट्ठो सो चेव॥

भावार्थ - लंतक इन्द्र की भी तीन परिषदाएं हैं यावत् आभ्यंतर परिषद् में दो हजार देव, मध्यम परिषद् में चार हजार देव और बाह्य परिषद् में छह हजार देव हैं। आभ्यंतर परिषह के देवों की स्थिति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बारह सागरोपम और सात पल्योपम की, मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति बारह सागरोपम और छह पल्योपम की, बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति बारह सागरोपम और पांच पल्योपम की है।

महासुक्कस्सवि जाव तओ परिसाओ जाव अब्भिंतरियाए एग देवसहस्सं मज्झिमियाए दो देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ बाहिरियाए चत्तारि देवसाहस्सीओ, अब्भिंतरियाए परिसाए अद्धसोलस सागरोवमाइं पंच पलिओवमाइं, मज्झिमियाए अद्धसोलस सागरोवमाइं चत्तारि पलिओवमाइं, बाहिरियाए अद्धसोलस सागरोवमाइं तिण्णि पलिओवमाइं, अट्ठो सो चेव॥

भावार्थ - महाशुक्र इन्द्र की भी तीन परिषदाएं हैं यावत् आभ्यंतर परिषद् में एक हजार देव, मध्यम परिषद् में दो हजार देव और बाह्य परिषद् में चार हजार देव हैं। आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति साढे पन्द्रह सागरोपम और पांच पल्योपम की, मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति साढे पन्द्रह सागरोपम और चार पल्योपम की तथा बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति साढे पन्द्रह सागरोपम और तीन पल्योपम की है। परिषदों का अर्थ पूर्वानुसार है।

सहस्सारे पुच्छा जाव अब्भिंतरियाए परिसाए पंच देवसया, मज्झिमियाए परि० एगा देवसाहस्सी, बाहिरियाए० दो देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, ठिई-अब्भिंतरियाए० अद्धट्ठारस सागरोवमाइं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता एवं मज्झिमियाए अद्धट्ठारस सागरोवमाइं छप्पलिओवमाइं बाहिरियाए अद्धट्ठारस सागरोवमाइं पंच पलिओवमाइं, अट्ठो सो चेव॥

भावार्थ - सहस्रार इन्द्र विषयक पृच्छा यावत् आभ्यंतर परिषद् में पांच सौ देव, मध्यम परिषद् में एक हजार देव और बाह्य परिषद् में दो हजार देव हैं। आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति साढे सतरह सागरोपम और सात पल्योपम की, मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति साढे सतरह सागरोपम और छह पल्योपम की तथा बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति साढे सतरह सागरोपम और पांच पल्योपम की है।

आणयपाणयस्सवि पुच्छा जाव तओ परिसाओ णवरि अब्भिंतरियाए अड्ढाइज्जा देवसया मज्झिमियाए पंच देवसया बाहिरियाए एगा देवसाहस्सी, ठिई-अब्भिंतरियाए० एगूणवीसं सागरोवमाइं पंच य पलिओवमाइं एवं मज्झि० एगूणवीसं सागरोवमाइं चत्तारि य पलिओवमाइं बाहिरियाए परिसाए एगूणवीसं सागरोवमाइं तिण्णि य पलिओवमाइं ठिई, अट्ठो सो चेव॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - आणत प्राणत देवलोक विषयक पृच्छा। प्राणत देव की तीन परिषदाएं हैं। आभ्यंतर परिषद् में अढ़ाई सौ (२५०) देव हैं। मध्यम परिषद् में पांच सौ (५००) देव हैं और बाह्य परिषद् में एक हजार (१०००) देव हैं। आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति उन्नीस सागरोपम और पांच पल्योपम है, मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति उन्नीस सागरोपम और चार पल्योपम है, बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति उन्नीस सागरोपम और तीन पल्योपम की है। परिषदाओं का अर्थ पूर्वानुसार समझ लेना चाहिए।

कहि णं भंते! आरणअच्चुयाणं देवाणं तहेव अच्चुए सपरिवारे जाव विहरइ, अच्चुयस्स णं देविंदस्स तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, अब्भिंतरपरि० देवाणं पणवीसं सयं मज्झिम० अड्ढाइज्जा सया बाहिरिय० पंचसया, अब्भिंतरियाए एक्कवीसं सागरोवमा सत्त य पलिओवमाइं मज्झि० एक्कवीससागरो० छप्पलि० बाहिरि० एगवीसं सागरो० पंच य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

भावार्थ - हे भगवन्! आरण अच्युत देवों के विमान कहां हैं इत्यादि कथन करना चाहिए यावत् अच्युत नामक देवेन्द्र देवराज सपरिवार रहता है। देवेन्द्र देवराज अच्युत की तीन परिषदाएं हैं। आभ्यंतर परिषद् में एक सौ पच्चीस (१२५) देव है, मध्यम परिषद् में दो सौ पचास (२५०) देव हैं और बाह्य परिषद् में पांच सौ (५००) देव हैं। आभ्यंतर परिषद् के देवों की स्थिति इक्कीस सागरोपम और सात पल्योपम की, मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति इक्कीस सागरोपम और छह पल्योपम की और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति इक्कीस सागरोपम और पांच पल्योपम की कही गई है।

विवेचन - तीनों परिषदाओं वाली देवियाँ अपरिगृहीता होने की संभावना है। अपरिगृहीता का अर्थ स्वयं के विमान आदि पर स्वतंत्र हुकुमत वाली देवियाँ। जैसे इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया थी।

कहि णं भंते! हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं विमाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति?, जहेव ठाणपए तहेव, एवं मज्झिमगेवेज्जा उवरिमगेविज्जगा अणुत्तरा य जाव अहमिंदा णामं ते देवा पण्णत्ता समणाउसो!॥ २०८॥

॥ पढमो वेमाणिय उद्देसो समत्तो॥

भावार्थ - हे भगवन्! अधस्तन ग्रैवेयक देवों के विमान कहाँ कहे गये हैं, अधस्तन ग्रैवेयक देव कहां रहते हैं?

जैसा स्थानपद में कहा है वैसा ही यहा समझ लैना चाहिए। इसी तरह मध्यम ग्रैवेयक, उपरितन ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानवासी देवों का कथन कर देना चाहिए यावत् हे आयुष्मन श्रमण! ये सब अहमिन्द्र हैं-वहाँ छोटे बड़े का कोई भेद नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वैमानिक देवों के विमानों का परिषदाओं के देव देवियों की संख्या और उनकी स्थिति का कथन किया गया है। ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों के देव अहमिन्द्र होने से उनमें परिषदाएं नहीं हैं। कौन से देवलोक में कितने विमानावास हैं, इसके लिए टीकाकार ने निम्न संग्रहणी गाथाएं दी हैं -

बत्तीस अट्ठावीसा बारस अट्ठ चउरो सयसहस्सा।
पन्ना चत्तालीसा छच्च सहस्सा सहस्सारे॥१॥
आणय पाणय कप्पे चत्तारि सया आरण अच्चुए तिण्णि।
सत्त विमाणसयाइं चउसु वि एसु कप्पेसु॥२॥

अर्थ - सौधर्म कल्प में ३२ लाख, ईशान में २८ लाख, सनत्कुमार में १२ लाख, माहेन्द्र में ८ लाख, ब्रह्मलोक में ४ लाख, लान्तक में ५०,०००, महाशुक्र में ४० हजार, सहस्रार में ६ हजार, आनत प्राणत में ४००, आरण अच्युत में ३०० विमानावास हैं। नवग्रैवेयक में ३१८ (प्रथमत्रिक में १११ द्वितीय त्रिक में १०७ और तृतीय त्रिक में १००) विमानावास हैं तथा अनुत्तर विमान में ५ विमानावास हैं। इस तरह वैमानिक देवों के कुल मिलाकर चौरासी लाख सत्तानवें हजार तेइस (८४,९७,०२३) विमानावास हैं।

इसी तरह सामानिक देवों की संख्या के लिए निम्न संग्रहणी गाथा दी गई है -

चउरासीइ असीइ बावत्तरी सत्तरिय सट्ठी य।
पण्णा चत्तालीसा तीसा वीसा दस सहस्सा॥१॥

अर्थ - सौधर्म देवलोक में ८४ हजार सामानिक देव, ईशान देवलोक में ८०००० सनत्कुमार में ७२०००, माहेन्द्र में ७०,०००, ब्रह्मलोक में ६०,००० लान्तक में ५०,००० महाशुक्र में ४०,००० सहस्रार में ३०,००० आनत प्राणत में २०,००० आरण अच्युत में १०००० सामानिक देव हैं।

॥ प्रथम वैमानिक उद्देशक समाप्त ॥

बीओ वेमाणिय उद्देसो

द्वितीय वैमानिक उद्देशक

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणपुढवी किंपइट्ठिया पण्णत्ता? गोयमा! घणोदहिपइट्ठिया प०। सणंकुमारमाहिंदेसु० कप्पेसु विमाणपुढवी किंपइट्ठिया पण्णत्ता? गोयमा! घणवायपइट्ठिया पण्णत्ता। बंभलोए णं भंते! कप्पे विमाणपुढवीणं पुच्छा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! घणवायपइट्ठिया पण्णत्ता। लंतए णं भंते! पुच्छा, गोयमा! तदुभयपइट्ठिया०। महासुक्कसहस्सारेसुवि तदुभयपइट्ठिया। आणय जाव अच्चुएसु णं भंते! कप्पेसु पुच्छा, गोयमा! ओवासंतरपइट्ठिया०। गेविज्जविमाणपुढवीणं पुच्छा, गोयमा! ओवासंतरपइट्ठिया०। अणुत्तरोववाइयपुच्छा, ओवासंतरपइट्ठिया॥ २०९॥

कठिन शब्दार्थ - **किंपइट्ठिया** - किसके आधार पर रही हुई, **घणोदहिपइट्ठिया** - घनोदधि प्रतिष्ठित, **घणवायपइट्ठिया** - घनवात प्रतिष्ठित, **ओवासंतर पइट्ठिया** - आकाश प्रतिष्ठित।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! सौधर्म और ईशान कल्प की विमान पृथ्वी किसके आधार पर रही हुई है?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म और ईशान कल्प की विमान पृथ्वी घनोदधि के आधार पर रही हुई है। सनत्कुमार और माहेन्द्र की विमान पृथ्वी किस आधार पर रही हुई है? हे गौतम! सनत्कुमार और माहेन्द्र की विमान पृथ्वी घनवात पर टिकी हुई है। ब्रह्मलोक विमान पृथ्वी किस पर प्रतिष्ठित है? हे गौतम! घनवात पर प्रतिष्ठित है। लान्तक विमान पृथ्वी विषयक पृच्छा? हे गौतम! लान्तक विमान पृथ्वी घनोदधि और घनवात पर प्रतिष्ठित है। महाशुक्र और सहस्रार विमान पृथ्वी भी घनोदधि और घनवात दोनों के आधार पर रही हुई है।

प्रश्न - हे भगवन्! आनत यावत् अच्युत विमान पृथ्वी किस पर टिकी हुई है?

उत्तर - हे गौतम! नौवें से लगा कर बारहवें देवलोक तक चारों देवलोक आकाश पर प्रतिष्ठित हैं। ग्रैवेयक विमान पृथ्वी विषयक पृच्छा? हे गौतम! ग्रैवेयक विमान आकाश प्रतिष्ठित हैं। अनुत्तर विमान विषयक प्रश्न? अनुत्तर विमान भी आकाश प्रतिष्ठित हैं।

विवेचन - इन देवलोकों के विमान किस आधार पर रहे हुए हैं। इसके लिए संग्रहणी गाथा में कहा है -

घणोदहि पइट्ठाणा सुरभवणा दोसु कप्पेसु।
तिसुवायपइट्ठाणा तदुभय पइट्ठिया तिसु॥ १॥
तेण परं उवरिमगा आगासंतर पइट्ठिया सव्वे।
एस पइट्ठाण विही उड्ढं लोए विमाणाणं॥ २॥

- पहला दूसरा देवलोक घनोदधि पर, तीसरा चौथा पांचवां देवलोक घनवात पर, छठा सातवां आठवां देवलोक घनोदधि-घनवात उभय प्रतिष्ठित, नौवां, दसवां ग्यारहवां बारहवां देवलोक, नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमान आकाश प्रतिष्ठित हैं।

देवलोक के प्रत्येक प्रतर के नीचे अलग-अलग घनोदधि आदि है। अतः पांचवें देवलोक के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्य प्रतर तो घनवात प्रतिष्ठित हैं एवं तीसरा रिष्ट प्रतर तदुभय प्रतिष्ठित हैं। क्योंकि भगवती सूत्र में पांचवें देवलोक के प्रतरों के लिए वायु प्रतिष्ठित तथा तदुभय प्रतिष्ठित दोनों प्रकार बताए हैं अतः पहले घनवात फिर घनोदधि समझना चाहिए। नौवें देवलोक के आगे के देवलोकों को मात्र घनोदधि आदि का अभाव बताने के लिए ही आकाश प्रतिष्ठित बताया है अन्यथा तो सभी देवलोक आकाश प्रतिष्ठि ही हैं। जिस प्रकार बादल भी तथाविध पुद्गल परिणाम से आकाश में अधर रहते हैं ऐसे ही यहाँ भी समझना चाहिए। सिद्धशिला के लिए भी ऐसा ही समझना चाहिए।

विमानों की मोटाई और ऊँचाई

सोहम्मीसाणकप्पेसु० विमाणपुढवी केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ता? गोयमा! सत्तावीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता, एवं पुच्छा, सणंकुमारमाहिंदेसु छव्वीसं जोयणसयाइं। बंभलंतए पंचवीसं। महासुक्कसहस्सारेसु चउवीसं। आणय-पाणयारणाच्चुएसु तेवीसं सयाइं। गेविज्जविमाणपुढवी बावीसं। अणुत्तरविमाणपुढवी एक्कवीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं प०॥॥ २१०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म और ईशान कल्प में विमान पृथवी का बाहल्य (मोटाई) कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म और ईशान कल्प में विमान पृथ्वी दो हजार सात सौ में (२७००) योजन मोटाई वाली हैं। इसी प्रकार सब देवलोकों के विषय में प्रश्न कर लेना चाहिए। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में विमान पृथ्वी दो हजार छह सौ (२६००) योजन मोटी है। ब्रह्मलोक और लांतक में विमान पृथ्वी दो हजार पांच सौ (२५००) योजन मोटी, महाशुक्र और सहस्रार में दो हजार चार सौ (२४००) योजन मोटी तथा आणत-प्राणत आरण और अच्युत कल्प में दो हजार तीन सौ (२३००) योजन मोटी विमान पृथ्वी है। ग्रैवेयकों को दो हजार दो सौ (२२००) योजन मोटी विमान पृथ्वी है तथा अनुत्तर विमान में दो हजार एक सौ (२१००) योजन मोटी विमान पृथ्वी कही गई है।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा केवइयं उड्ढं उच्चत्तेणं०?

गोयमा! पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०। सणंकुमारमाहिंदेसु छजोयणसयाइं बंभलंतएसु सत्त, महासुक्कसहस्सारेसु अट्ठ, आणयपाणएसु ४, णव गेवेज्जविमाणा णं भंते! केवइयं उड्ढं उ०? गोयमा! दस जोयणसयाइं, अणुत्तरविमाणा णं० एक्कारस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०॥ २११॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प में विमान कितने ऊँचे कहे गये हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म और ईशान कल्प में विमानों की ऊँचाई पांच सौ योजन है। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में छह सौ योजन, ब्रह्मलोक और लांतक में सात सौ योजन, महाशुक्र और सहस्रार में आठ सौ योजन, आणत प्राणत आरण और अच्युत में नौ सौ योजन ऊंचे विमान हैं। ग्रैवेयक विमान दस सौ (१०००) योजन ऊँचे हैं तथा अनुत्तर विमान ग्यारह सौ (११००) योजन ऊँचे कहे गये हैं।

विवेचन - प्रत्येक प्रतर की अंगडाई २५००-२७०० योजन आदि है। वह महल सहित-प्रत्येक प्रतर ३२०० योजन के बाहल्य वाला है फिर खुला आकाश है। सभी प्रतर स्थावर नाली में बहुत दूर तक गये हुए हैं। एक प्रतर से दूसरे प्रतर का अंतर संख्यात योजन से ज्यादा होने की संभावना नहीं है तथा प्रत्येक प्रतर के नीचे रहे हुए घनोदधि, घनवात आदि को भी संख्यात योजन के ही समझना चाहिए। क्योंकि देवलोक भी संख्यात योजन का ही ऊँचा है। महलों की पांच सौ योजन आदि की ऊँचाई पीठिका सहित समझना चाहिए।

विमानों का संस्थान

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा किंसंठिया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-आवलियपविट्ठा य आवलियबाहिरा य, तत्थ णं जे ते आवलियपविट्ठा ते तिविहा पण्णत्ता, तंजहा-वट्टा तंसा चउरंसा, तत्थ णं जे ते आवलियबाहिरा ते णं णाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता, एवं जाव गेविज्जविमाणा, अणुत्तरोववाइयविमाणा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-वट्टे य तंसा य ॥ २१२ ॥

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म और ईशान कल्प में विमानों का आकार कैसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म और ईशान कल्प में विमान दो तरह के कहे गये हैं। यथा - १. आवलिका प्रविष्ट और २. आवलिका बाह्य। जो आवलिका प्रविष्ट विमान हैं वे तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. वृत्त (गोल) २ त्रिकोण और ३. चतुष्कोण। जो आवलिका बाह्य विमान हैं वे नाना प्रकार के हैं। इसी प्रकार ग्रैवेयक विमान तक समझना चाहिए। अनुत्तरोपपातिक विमान दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - १. गोल और २. त्रिकोण।

विमानों की लम्बाई-चौड़ाई (विस्तार)

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा केवइयं आयामविक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-संखेज्जवित्थडा य असंखेज्जवित्थडा य, जहा णरगा तहा जाव अणुत्तरोववाइया संखेज्जवित्थडे य असंखेज्जवित्थडा य, तत्थ णं जे से संखेज्जवित्थडे से जंबुद्दीवप्पमाणे असंखेज्जवित्थडा असंखेज्जाइं जोयणसयाइं जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ता॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म-ईशान कल्प में विमानों की लम्बाई-चौड़ाई कितनी है? उनकी परिधि कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! विमान दो तरह के हैं - १. संख्यात योजन विस्तार वाले और २. असंख्यात योजन विस्तार वाले। जिस प्रकार नरकों का कथन किया गया है उसी प्रकार यहाँ भी समझ लेना चाहिये यावत् अनुत्तरोपपातिक विमान दो प्रकार कहे हैं - १. संख्यात योजन विस्तार वाले और २. असंख्यात योजन विस्तार वाले। जो संख्यात योजन विस्तार वाले हैं वे जंबूद्वीप प्रमाण हैं और जो असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं वे असंख्यात हजार योजन प्रमाण और परिधि वाले कहे गये हैं।

विमानों के वर्ण

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा कइवण्णा पण्णत्ता?

गोयमा! पंचवण्णा पण्णत्ता, तंजहा-किण्हा णीला लोहिया हालिद्दा सुक्किल्ला, सणंकुमारमाहिंदेसु चउवण्णा णीला जाव सुक्किल्ला, बंभलोगलंतएसु तिवण्णा-लोहिया जाव सुक्किला, महासुक्कसहस्सारेसु दुवण्णा-हालिद्दा य सुक्किल्ला य, आणयपाणयारणाच्चुएसु सुक्किल्ला, गेविज्जविमाणा सुकिल्ला, अणुत्तरोववाइय-विमाणा परमसुक्किल्ला वण्णेणं पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प में विमान कितने रंग के कहे हैं?

उत्तर - हे गौतम! पांचों वर्णों के विमान कहे गये हैं। यथा-काला, नीला, लाल, पीला और सफेद। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में विमान चार वर्ण के हैं - नीला यावत् सफेद। ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प में विमान तीन वर्ण के हैं - लाल यावत् सफेद। महाशुक्र और सहस्रार कल्प में विमान दो वर्ण के हैं-पीला और सफेद। आनंत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों में विमान सफेद रंग के हैं। ग्रैवेयक के विमान भी सफेद रंग के और अनुत्तरौपपातिक विमान परम शुक्ल रंग के हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विमानों की प्रभा

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा केरिसया पभाए पण्णत्ता?

गोयमा! णिच्चालोया णिच्चुज्जोया सयं पभाए पण्णत्ता जाव अणुत्तरोववाइय-विमाणा णिच्चालोया णिच्चुज्जोया सयं पभाए पण्णत्ता॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प में विमानों की प्रभा कैसी है?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म और ईशान कल्प में विमान नित्य स्वयं की प्रभा से प्रकाशमान और नित्य उद्योत वाले हैं यावत् अनुत्तरौपपातिक विमान भी स्वयं की प्रभा से नित्य आलोक और नित्य उद्योत वाले कहे गये हैं।

विमानों की गंध

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा केरिसया गंधेणं पण्णत्ता?

गोयमा! से जहा णामए-कोट्ठपुडाण वा एवं जाव एत्तो इट्ठतरागा चेव जाव गंधेणं पण्णत्ता, जाव अणुत्तरविमाणा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म-ईशान कल्प में विमानों की गंध कैसी है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोष्ट पुडादि सुगंधित पदार्थों की गंध होती है उसमें भी इष्टतर गंध सौधर्म ईशान कल्प के विमानों की है। अनुत्तर विमान तक इसी प्रकार समझना चाहिये।

विमानों का स्पर्श

सोहम्मीसाणेसु० विमाणा केरिसया फासेणं पण्णत्ता?

गोयमा! से जहा णामए-आइणेइ वा रूएइ वा सव्वो फासो भाणियव्वो जाव अणुत्तरोववाइयविमाणा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प में विमानों का स्पर्श कैसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे आजीनचर्म, रूई आदि का मृदु स्पर्श होता है वैसा स्पर्श उन विमानों का है यावत् अनुत्तरौपपातिक विमान तक इसी प्रकार कह देना चाहिए।

विमानों का स्वरूप

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा केमहालया पण्णत्ता?

गोयमा! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सो चेव गमो जाव छम्मासे वीइवएज्जा जाव अत्थेगइया विमाणावासा वीइवएज्जा अत्थेगइया विमाणावासा णो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीइवएज्जा जाव अणुत्तरोववाइयविमाणा अत्थेगइयं विमाणं वीइवएज्जा अत्थेगइए० णो वीइवएज्जा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प में विमान कितने बड़े हैं?

उत्तर - हे गौतम! कोई देव जो चुटकी बजाते ही इस एक लाख योजन के लम्बे-चौड़े और तीन लाख योजन से अधिक की परिधि वाले जंबूद्वीप की इक्कीस (२१) बार प्रदक्षिणा कर आवे ऐसी शीघ्र आदि विशेषणों वाली गति से निरन्तर छह मास तक चलता रहे तब वह कितनेक विमानों के पास पहुँच सकता है, उन्हें लांघ सकता है और कितनेक विमानों को नहीं लांघ सकता है, इतने बड़े वे विमान कहे गये हैं। इसी प्रकार अनुत्तरौपपातिक विमान तक समझना चाहिए कि कितनेक विमानों को लांघ सकता है और कितनेक विमानों को नहीं लांघ सकता है।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते!० विमाणा किंमया पण्णत्ता?

गोयमा! सव्वरयणामया पण्णत्ता, तत्थ णं बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति, सासया णं ते विमाणा दव्वट्ठयाए जाव फासपज्जवेहिं असासया जाव अणुत्तरोववाइया विमाणा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प के विमान किसके बने हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म और ईशान कल्प के विमान सर्व रत्न मय हैं। उनमें बहुत से जीव और पुद्गल पैदा होते हैं चवते हैं इकट्ठे होते हैं और वृद्धि को प्राप्त होते हैं। वे विमान द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा शाश्वत हैं और पर्यायों की अपेक्षा अशाश्वत है। इसी प्रकार का कथन अनुत्तरौपपातिक विमानों तक करना चाहिये।

वैमानिक देवों में उत्पाद

सोहम्मीसाणेसु णं० देवा कओहिंतो उववज्जंति? उववाओ णेयव्वो जहा वक्कंतीए तिरियमणुएसु पंचेंदिएसु संमुच्छिमवज्जिएसु, उववाओ वक्कंतीगमेणं जाव अणुत्तरो०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म और ईशान कल्प में देव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम जीवों को छोड़ कर शेष पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और मनुष्यों में से आकर जीव सौधर्म और ईशान में देव रूप से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार प्रज्ञापना सूत्र के छठे व्युत्क्रांति पद के अनुसार यावत् अनुत्तरौपपातिक विमानों तक यहाँ कह देना चाहिये।

विवेचन - सहस्रार देवलोक से आगे केवल मनुष्यों से ही आकर उत्पन्न होते हैं। अतः उत्कृष्ट भी संख्याता जीवों का ही उपपात बताया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक समय में देवोत्पत्ति

सोहम्मीसाणेसु० देवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जंति, एवं जाव सहस्सारे, आणयाई गेवेज्जा अणुत्तरा य एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा उववज्जंति॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प में एक समय में कितने देव उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म ईशान कल्प में जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट संख्यात और असंख्यात जीव उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार यावत् सहस्रार देवलोक तक कह देना चाहिये। आनत आदि चार देवलोकों में, नवग्रैवेयकों में और अनुत्तर विमानों में जघन्य एक, दो, तीन यावत् उत्कृष्ट संख्यात जीव उत्पन्न होते हैं।

वैमानिक देवों में से अपहार

सोहम्मीसाणेसु णं भंते!० देवा समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा केवइएणं कालेणं अवहिया सिया? गोयमा! ते णं असंखेज्जा समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा असंखेज्जाहिं ओसप्पिणीहिं उस्सप्पिणीहिं अवहीरंति णो चेव णं अवहिया सिया जाव सहस्सारो, आणयाइएसु चउसुवि, गेवेज्जेसु अणुत्तरेसु य समए समए जाव केवइयकालेणं अवहिया सिया? गोयमा! ते णं असंखेज्जा समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमेत्तेणं अवहीरंति, णो चेव णं अवहिया सिया॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प के देवों में से यदि प्रत्येक समय में एक एक का अपहार किया जाये-निकाला जाये तो कितने समय में वे खाली हो सकेंगे?

उत्तर - हे गौतम! वे देव असंख्यात हैं अतः यदि एक समय में एक देव का अपहार किया जाये तो असंख्यात उत्सर्पिणियों अवसर्पिणियों तक अपहार करते रहें तो भी वे कल्प खाली नहीं हो सकते। यावत् सहस्रार कल्प तक समझना चाहिये। आगे के आनत आदि चार देवलोकों में ग्रैवेयकों में तथा अनुत्तर विमानों के देवों के अपहार संबंधी प्रश्न के उत्तर में कहना चाहिये कि वे असंख्यात हैं अतः समय-समय में एक-एक का अपहार करने का क्रम पल्योपम के असंख्यातवें भाग तक चलता रहे तो भी उनका अपहार पूरा नहीं हो सकता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - इस प्रकार देवलोकों में देवों का अपहार कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा नहीं, केवल संख्या बताने के लिए ही यह कल्पना मात्र है।

वैमानिक देवों की शरीरावगाहना

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु देवाणं केमहालया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा सरीरा पण्णत्ता, तंजहा-भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे से जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागो उक्कोसेणं सत्त रयणीओ, तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागो उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं, एवं एक्केक्का ओसारेत्ताणं जाव अणुत्तराणं एक्का रयणी, गेविज्जणुत्तराणं एगे भवधारणिज्जे सरीरे उत्तरवेउव्विया णत्थि॥ २१३॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! सौधर्म और ईशान कल्प में देवों के शरीर की कितनी अवगाहना कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! देवों के शरीर दो प्रकार के होते हैं। यथा - भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। उनमें से जो भवधारणीय शरीर वाले हैं उनकी अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट सात हाथ है। उत्तरवैक्रिय शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का संख्यातवां भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन की है। इस प्रकार आगे-आगे के कल्पों में एक-एक हाथ कम करते रहना चाहिए यावत् अनुत्तरौपपातिक देवों के शरीर की अवगाहना एक हाथ की होती है। ग्रैवेयकों और अनुत्तर विमानवासी देवों के एक भवधारणीय शरीर ही होता है वे देव उत्तरविक्रिया नहीं करते हैं।

विवेचन - देवों के भवधारणीय शरीर की अवगाहना इस प्रकार होती है।

देवलोक के नाम	**जघन्य अवगाहना**	**उत्कृष्ट अवगाहना**
१-२. सौधर्म ईशान	ज० अंगुल का असंख्यातवां भाग	उ० सात हाथ
३-४. सनत्कुमार माहेन्द्र	" "	उ० छह हाथ
५-६. ब्रह्मलोक लान्तक	" "	उ० पांच हाथ
७-८. महाशुक्र-सहस्रार	" "	उ० चार हाथ
९-१२. आनत प्राणत आरण अच्युत	" "	उ० तीन हाथ
नवग्रैवेयक	" "	उ० दो हाथ
अनुत्तरविमान	" "	उ० एक हाथ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैमानिक देवों में संहनन

सोहम्मीसाणेसु णं० देवाणं सरीरगा किंसंघयणी पण्णत्ता?

गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणी पण्णत्ता, णेवट्ठी णेव छिरा णवि ण्हारू णेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव ते तेसिं संघायत्ताए परिणमंति जाव अणुत्तरोववाइया॥

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प में देवों के शरीर का संहनन कौनसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! छह संहननों में से उनमें एक भी संहनन नहीं होता क्योंकि उनके शरीर में न हड्डियाँ होती हैं, न शिराएं होती है और न ही नसें होती हैं। अतः वे असंहननी हैं। जो पुद्गल इष्ट कांत यावत् मनोज्ञ होते हैं वे उनके शरीर रूप में एकत्रित होकर तथारूप परिणत होते हैं। इसी प्रकार यावत् अनुत्तरौपपातिक देवों तक समझना चाहिए।

वैमानिक देवों में संस्थान

सोहम्मीसाणेसु० देवाणं सरीरगा किंसंठिया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा सरीरा पण्णत्ता तंजहा - भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते समचउरंससंठाणसंठिया पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया ते णाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता जाव अच्चुओ, अवेउव्विया गेविज्जणुत्तरा, भवधारणिज्जा समचउरंस-संठाणसंठिया उत्तरवेउव्विया णत्थि॥ २१४॥

भावार्थ-प्रश्न- हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प में देवों के शरीर का संस्थान कैसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! उनके शरीर दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. भवधारणीय और २. उत्तरवैक्रिय। जिनका भवधारणीय शरीर है उनका संस्थान समचतुरस्र है और जो उत्तर वैक्रिय शरीरधारी है उनका संस्थान नाना प्रकार का होता है। यह कथन अच्युत देवलोक तक कहना चाहिये। ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देव उत्तरविक्रिया नहीं करते। उनका भवधारणीय शरीर समचतुरस्रसंस्थान वाला है। वहाँ उत्तर विक्रिया नहीं है।

विवेचन - देव उत्तर वैक्रिय द्वारा ६ संस्थानों के अतिरिक्त स्तिबुक आदि संस्थान भी बना सकते हैं। इस अपेक्षा से इनके लिए नाना संस्थान संस्थित बताया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैमानिक देवों के शरीर का वर्ण

सोहम्मीसाणेसु० देवा केरिसया वण्णेणं पण्णत्ता?

गोयमा! कणगत्तयरत्ताभा वण्णेणं पण्णत्ता। सणंकुमारमाहिंदेसु णं० पउमपम्हगोरा वण्णेणं पण्णत्ता। बंभलोगे णं भंते!० ? गोयमा! अल्लमधुगवण्णाभा वण्णेणं पण्णत्ता, एवं जाव गेवेज्जा, अणुत्तरोववाइया परमसुक्किल्ला वण्णेणं पण्णत्ता॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म-ईशान के देवों के शरीर का वर्ण कैसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! तपे हुए स्वर्ण के समान लाल आभा युक्त उनके शरीर का वर्ण है। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के देवों का वर्ण पद्म, कमल के पराग के समान गौर है। ब्रह्मलोक कल्प के देवों का वर्ण गीले महुए जैसा सफेद है। इसी प्रकार यावत् ग्रैवेयक तक के देवों का वर्ण कह देना चाहिए अनुत्तरौपताकि देव परम शुक्ल वर्ण के हैं।

वैमानिक देवों के शरीर की गंध

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु देवाणं सरीरगा केरिसया गंधेणं पण्णत्ता?

गोयमा! से जहा णामए-कोट्ठपुडाण वा तहेव सव्वं जाव मणामतरगा चेव गंधेणं पण्णत्ता जाव अणुत्तरोववाइया॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म-ईशान कल्प के देवों के शरीर की गंध कैसी है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोष्ठपुट आदि सुगंधित द्रव्यों की सुगंध होती है उससे भी अधिक इष्ट कांत यावत् मनाम गंध उनके शरीर की होती है यावत् अनुत्तरौपपातिक देवों तक ऐसी ही समझना चाहिये।

वैमानिक देवों के शरीर का स्पर्श

सोहम्मीसाणेसु० देवाणं सरीरगा केरिसया फासेणं पण्णत्ता?

गोयमा! थिरमउयणिद्धसुकुमालच्छवि फासेणं पण्णत्ता, एवं जाव अणुत्तरोववाइया॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प के देवों के शरीर का स्पर्श कैसा कहा है?

उत्तर - हे गौतम! उनके शरीर का स्पर्श स्थिर रूप से मृदु स्निग्ध और मुलायम छवि वाला कहा गया है। इसी प्रकार यावत् अनुत्तरौपपातिक देवों तक कह देना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैमानिक देवों में श्वासोच्छ्वास

सोहम्मीसाणदेवाणं० केरिसया पुग्गला उस्सासत्ताए परिणमंति?

गोयमा! जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव ते तेसिं उस्सासत्ताए परिणमंति जाव अणुत्तरोववाइया, एवं आहारत्ताएवि जाव अणुत्तरोववाइया॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म-ईशान कल्पों के देवों के श्वास रूप में कैसे पुद्गल परिणत होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जो पुद्गल इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ और मनाम होते हैं वे उनके श्वास के रूप में परिणत होते हैं। इसी प्रकार यावत् अनुत्तरौपपातिक देवों के विषय में समझ लेना चाहिए। श्वास के समान ही आहार के पुद्गल भी समझना चाहिये। इसी प्रकार अनुत्तरौपपातिक देवों तक कह देना चाहिए।

वैमानिक देवों में लेश्या

सोहम्मीसाणदेवाणं० कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! एगा तेउलेस्सा पण्णत्ता। सणंकुमारमाहिंदेसु एगा पम्हलेस्सा, एवं बंभलोएवि पम्हा, सेसेसु एक्का सुक्कलेस्सा, अणुत्तरोववाइयाणं० एक्का परमसुक्कलेस्सा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म और ईशान कल्प के देवों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म और ईशान देवों में एक तेजोलेश्या होती है। सनत्कुमार और माहेन्द्र में एक पद्मलेश्या होती है। ब्रह्मलोक में पद्म लेश्या होती है शेष सभी में एक शुक्ल लेश्या होती है। अनुत्तरौपपातिक देवों में परमशुक्ल लेश्या होती है।

वैमानिक देवों में दृष्टि

सोहम्मीसाणदेवा० किं सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी?

गोयमा! तिण्णिवि, जाव अंतिमगेवेज्जा देवा सम्मदिट्ठीवि मिच्छादिट्ठीवि सम्मामिच्छादिट्ठीवि, अणुत्तरोववाइया सम्मदिट्ठी णो मिच्छादिट्ठी णोसम्मामिच्छादिट्ठी॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म-ईशान कल्प के देव सम्यग् दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि हैं या सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म ईशान कल्प के देव तीनों प्रकार के हैं यावत् ग्रैवेयक तक समझ लेना चाहिये। अनुत्तर विमान के देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं वे मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि नहीं होते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैमानिक देवों में ज्ञान-अज्ञान आदि

सोहम्मीसाणा० किं णाणी अण्णाणी?

गोयमा! दोवि, तिण्णि णाणा तिण्णि अण्णाणा णियमा जाव गेवेज्जा, अणुत्तरोववाइया णाणी णो अण्णाणी तिण्णि णाणा णियमा। तिविहे जोगे, दुविहे उवओगे सव्वेसिं जाव अणुत्तरोववाइया॥ २१५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प के देव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे दोनों प्रकार के हैं। उनमें जो ज्ञानी हैं वे नियम से तीन ज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं वे नियम से तीन अज्ञान वाले हैं। यह कथन ग्रैवेयक देवों तक कह देना चाहिये। अनुत्तरौपपातिक देव ज्ञानी ही हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें तीन ज्ञान नियम से होते हैं। इसी प्रकार देवों में तीन योग और दो उपयोग समझने चाहिये। यह कथन सौधर्म से अनुत्तरौपपातिक पर्यंत तक कह देना चाहिये।

वैमानिक देवों का अवधि क्षेत्र

सोहम्मीसाणदेवा० ओहिणा केवइयं खेत्तं जाणंति पासंति?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं अहे जाव रयणप्पभा पुढवी उड्ढं जाव साइं विमाणाइं तिरियं जाव असंखेज्जा दीवसमुद्दा एवं-

सक्कीसाणा पढमं दोच्चं च सणंकुमारमाहिंदा।
तच्चं च बंभलंतग सुक्कसहस्सारग चउत्थी॥ १॥
आणयपाणयकप्पे देवा पासंति पंचमिं पुढविं।
तं चेव आरणच्चुय ओहीणाणेण पासंति॥ २॥
छट्ठिं हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जा सत्तमिं च उवरिल्ला।
संभिण्णलोगणालिं पासंति अणुत्तरा देवा॥ ३॥ २१६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प के देव अवधिज्ञान के द्वारा कितने क्षेत्र को जानते देखते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म और ईशान कल्प के देव अवधिज्ञान के द्वारा जघन्य से अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र को और उत्कृष्ट से नीची दिशा में रत्नप्रभा पृथ्वी तक ऊँची दिशा में अपने अपने विमानों के ऊपरी भाग ध्वजा पताका तक और तिरछी दिशा में असंख्यात द्वीप समुद्रों को जानते देखते हैं। आगे के देवों का अवधि क्षेत्र इन तीन गाथाओं में कहा गया है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सौधर्म और ईशान कल्प के देव पहली रत्नप्रभा नरक पृथ्वी के चरमान्त तक, सनत्कुमार और माहेन्द्र दूसरी शर्करा प्रभा पृथ्वी के चरमान्त तक, ब्रह्म और लांतक तीसरी नरक पृथ्वी तक, शुक्र और सहस्रार चौथी नरक पृथ्वी तक, आणत प्राणत आरण अच्युत कल्प के देव पांचवीं नरक पृथ्वी तक अवधिज्ञान के द्वारा जानते देखते हैं॥ १-२॥

अधस्तन ग्रैवेयक, मध्यम ग्रैवेयक देव छठी नरक पृथ्वी के चरमान्त तक और उपरितन ग्रैवेयक देव सातवीं नरक पृथ्वी तक देखते हैं अनुत्तर विमानवासी देव सम्पूर्ण चौदह राजू प्रमाण लोकनाली को अवधिज्ञान से जानते देखते हैं।

विवेचन - शंका - सौधर्म और ईशान कल्प के देवों का जघन्य अवधिज्ञान अंगुल का असंख्यातवां भाग कैसे कहा गया है? क्योंकि इतना जघन्य अवधिज्ञान तो मनुष्य और तिर्यंचों में ही होता है, देवों में तो मध्यम अवधिज्ञान होता है?

समाधान - इस शंका के समाधान में टीकाकार ने निम्न गाथा दी है -

वेमाणियाणमंगुलभागमसंखं जहण्णओ ओही।
उववाए परभविओ तब्भवओ होइ तो पच्छा॥ १॥

अर्थात् - यहाँ जिस जघन्य अवधिज्ञान को देवों में होना बतलाया है वह उन सौधर्म आदि देवों के उपपात काल में पारभविक अवधिज्ञान को लेकर बतलाया गया है, तद्भवज अवधिज्ञान को लेकर नहीं।

नरक देवों आदि के अवधिज्ञान का क्षेत्र प्रमाण अंगुल के माप से जानना चाहिए। अवधिज्ञान सम्बन्धित विशेष वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के ३३ वें पद में बताया गया है।

वैमानिक देवों में समुद्घात

सोहम्मीसाणेसु णं भंते!० देवाणं कइ समुग्घाया पण्णत्ता?

गोयमा! पंच समुग्घाया पण्णत्ता, तंजहा-वेयणासमुग्घाए कसाय० मारणंतिय० वेउव्विय० तेयासमुग्घाए०, एवं जाव अच्चुए। गेवेज्जअणुत्तराणं आइल्ला तिण्णि समुग्घाया पण्णत्ता॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प के देवों में कितने समुद्घात कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म ईशान कल्प के देवों के पांच समुद्घात कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १. वेदनीय समुद्घात २ कषाय समुद्घात ३. मारणान्तिक समुद्घात ४. वैक्रिय समुद्घात और ५. तैजस समुद्घात। इसी प्रकार अच्युत कल्प के देवों तक पांच समुद्घात कह देने चाहिए। ग्रैवेयक और अनुत्तर देवों में आदि के (प्रारंभ के) तीन समुद्घात होते हैं। यथा-वेदनीय, कषाय और मारणांतिक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - नवग्रैवेयक एवं पांच अनुत्तर विमान के देवों में प्रयोग की अपेक्षा तीन समुद्घात बताई गई है। इनमें से वेदनीय समुद्घात असाता वेदनीय की अपेक्षा ही होने से इन देवों के पर्याप्त अवस्था में मानसिक असाता वेदना की अपेक्षा वेदनीय समुद्घात समझना चाहिए। पांच अनुत्तर विमान देवों के अपर्याप्तों में वेदनीय समुद्घात नहीं समझी जाती है। वेदनीय समुद्घात प्रमत्त अवस्था के तथाप्रकार के अध्यवसायों में ही होने से एवं इनमें अप्रमत्त साधकों का ही उपपात होने से वेदनीय समुद्घात नहीं होती है।

वैमानिक देवों में क्षुधा-पिपासा

सोहम्मीसाणदेवा० केरिसयं खुहप्पिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?

गोयमा! णत्थि खुहापिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति जाव अणुत्तरोववाइया॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प के देव कैसी भूख-प्यास का अनुभव करते हुए विचरते हैं?

उत्तर - हे गौतम! उन देवों को भूख और प्यास की वेदना होती ही नहीं है। इसी प्रकार अनुत्तरौपपातिक देवों तक कह देना चाहिए।

वैमानिक देवों में विकुर्वणा

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु देवा एगत्तं पभू विउव्वित्तए पुहुत्तं पभू विउव्वित्तए? हंता पभू, एगत्तं विउव्वेमाणा एगिंदियरूवं वा जाव पंचिंदियरूवं वा पुहुत्तं विउव्वेमाणा एगिंदियरूवाणि वा जाव पंचिंदियरूवाणि वा, ताइं संखेज्जाइंपि अंखेज्जाइंपि सरिसाइंपि असरिसाइंपि संबद्धाइंपि असंबद्धाइंपि रूवाइं विउव्वंति विउव्वित्ता अप्पणा जहिच्छियाइं कज्जाइं करेंति जाव अच्चुओ, गेवेज्जणुत्तरोववाइया० देवा किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए पुहुत्तं पभू विउव्वित्तए? गोयमा! एगत्तंपि पुहुत्तंपि, णो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा विउव्वंति वा विउव्विस्संति वा॥

कठिन शब्दार्थ - **एगत्तं** - एकत्व (एक), **पुहुत्तं** - पृथक्त्व (अनेक-बहुत सारे), **पभू** - समर्थ, **सरिसाइं** - समान (सरीखे), **असरिसाइं** - भिन्न भिन्न, **संबद्धाइं** - सम्बद्ध-आत्मप्रदेशों से समवेत, **असंबद्धाइं** - असम्बद्ध-आत्म प्रदेशों से भिन्न, **जहिच्छियाइं** - इच्छानुसार।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प के देव एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं या बहुत सारे रूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म ईशान कल्प के देव दोनों प्रकार की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं। एक ही विकुर्वणा करते हुए वे एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय रूपों की विकुर्वणा कर सकते हैं और बहुत सारे रूपों की विकुर्वणा करते हुए वे बहुत एकेन्द्रिय रूपों की या पंचेन्द्रिय रूपों की विकुर्वणा कर सकते हैं। वे संख्यात या असंख्यात सरीखे या भिन्न-भिन्न, संबद्ध और असंबद्ध नाना रूप बना कर इच्छानुसार कार्य करते हैं। इसी प्रकार यावत् अच्युत कल्प के देवों तक कह देना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों के देव क्या एक रूप बनाने में समर्थ हैं या बहुत सारे रूप बनाने में समर्थ हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे एक रूप भी बना सकते हैं और बहुत सारे रूप भी बना सकते हैं किन्तु उन्होंने ऐसी विकुर्वणा न तो पहले कभी की है, न वर्तमान में करते हैं और न ही भविष्य में कभी करेंगे।

विवेचन - ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देवों में उत्तरवैक्रिय करने की शक्ति तो होती है किन्तु प्रयोजन के अभाव तथा प्रकृति की उपशांतता के कारण उत्तर वैक्रिय नहीं करते हैं।

आत्म-प्रदेशों से घुले मिले रूपों को **'सम्बद्ध'** कहा गया है तथा आत्म-प्रदेशों से रहित रूपों को **'असम्बद्ध'** कहा गया है। वैक्रिय बनाते समय तो असम्बद्ध रूपों में भी आत्म-प्रदेशों का प्रयोग होता ही है। असम्बद्ध रूपों को बनाने में ज्यादा शक्ति चाहिए। आगम में नैरयिकों के सम्बद्ध विकुर्वणा बताई है। उसका अर्थ भी उपर्युक्त प्रकार से करने में कोई बाधा नहीं आती है। स्थानांग सूत्र (स्थान ४ उद्देशक ३) में जो औदारिक के सिवाय चार शरीरों को **'जीवेणफुडा'** बताया गया है। उसका आशय 'मूल शरीर' समझना चाहिए। उत्तरवैक्रिय शरीर भी आत्म-प्रदेशों के निकलते ही बिखर जाता है, किन्तु उत्तर वैक्रिय रूप १५ दिन तक रह सकता है। वैक्रिय से बनाए हुए घट पट आदि पदार्थों को उत्तर वैक्रिय रूप कहा जाता है एवं वैक्रिय से मूल शरीर को छोटा बड़ा आदि करना उत्तर वैक्रिय शरीर कहा जाता है। नारक देवों के मूल शरीर वैक्रिय होने से वैक्रिय लब्धि के द्वारा उसमें कुछ भी परिवर्त्तन करने को उत्तर वैक्रिय कहा जाता है। वायुकाय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय एवं मनुष्य के मूल शरीर औदारिक होने से वैक्रिय लब्धि से बनाए गये शरीर को वैक्रिय शरीर ही कहा जाता है। उत्तर वैक्रिय नहीं कहा जाता है।

वैमानिक देवों में साता-सौख्य

सोहम्मीसाणदेवा० केरिसयं सायासोक्खं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?

गोयमा! मणुण्णा सद्दा जाव मणुण्णा फासा जाव गेविज्जा, अणुत्तरोववाइया अणुत्तरा सद्दा जाव फासा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म-ईशान कल्प के देव किस प्रकार सातासुख का अनुभव करते हुए विचरते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे देव मनोज्ञ शब्द यावत् मनोज्ञ स्पर्शों द्वारा सुख का अनुभव करते हुए विचरते हैं यावत् ग्रैवेयक देवों तक इसी प्रकार समझना चाहिए। अनुत्तरौपपातिक देव अनुत्तर (सर्वश्रेष्ठ) शब्द यावत् मनोज्ञ स्पर्शजन्य सुखों का अनुभव करते हुए विचरते हैं।

वैमानिक देवों की ऋद्धि

सोहम्मीसाणेसु० देवाणं केरिसया इड्डी पण्णत्ता?

गोयमा! महिड्डिया महज्जुइया जाव महाणुभागा इड्डीए पण्णत्ता जाव अच्चुओ, गेवेज्जणुत्तरा य सव्वे महिड्डिया जाव सव्वे महाणुभागा अणिंदा जाव अहमिंदा णामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो! ॥ २१७॥

भावार्थ-प्रश्न- हे भगवन्! सौधर्म-ईशान कल्प के देवों की ऋद्धि किस प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! वे देव महान् ऋद्धि वाले, महान् द्युति वाले यावत् महाप्रभावशाली ऋद्धि से युक्त है। इस प्रकार अच्युत कल्प के देवों तक समझ लेना चाहिये।

ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों में सभी देव महान् ऋद्धि वाले यावत् महाप्रभावशाली हैं। वहाँ कोई इन्द्र नहीं हैं। वे सब अहमिन्द्र हैं, वहाँ छोटे बड़े का कोई भेद नहीं हैं। हे आयुष्मन् श्रमण! वे देव अहमिन्द्र कहलाते हैं।

वैमानिक देवों की विभूषा

सोहम्मीसाणा० देवा केरिसया विभूसाए पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-वेउव्वियसरीरा य अवेउव्वियसरीरा य, तत्थ णं जे ते वेउव्वियसरीरा ते हारविराइयवच्छा जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा जाव पडिरूवा, तत्थ णं जे ते अवेउव्वियसरीरा ते णं आभरणवसणरहिया पगइत्था विभूसाए पण्णत्ता॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प के देव विभूषा से कैसे लगते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म ईशान कल्प के देव दो प्रकार के कहे गये हैं - १. वैक्रिय शरीर (उत्तर वैक्रिय) वाले और २. अवैक्रिय शरीर (भवधारणीय शरीर) वाले। उनमें जो वैक्रिय शरीरी हैं वे हारों से सुशोभित वक्षस्थल वाले यावत् प्रतिरूप हैं, जो अवैक्रिय शरीर वाले हैं वे आभरण और वस्त्रों से रहित हैं और स्वाभाविक विभूषा से संपन्न हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - यहाँ मनुष्य लोक में मनुष्यों के जैसे घर में साधारण वेश होता है किन्तु घर से बाहर जाने के लिए सुन्दर अलंकार युक्त वेश होता है उसी प्रकार देवों के भी जिस किसी प्रयोजन से वैक्रिय शरीर करने पर वह अलंकार आभूषण से युक्त सुन्दर होता है किन्तु जो भवधारणीय शरीर होता है वह विभूषा से रहित प्रकृतिस्थ (अश्रृंगारिक) होता है।

वैमानिक देवियों की विभूषा

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु देवीओ केरिसियाओ विभूसाए पण्णत्ताओ?

गोयमा! दुविहाओ पण्णत्ताओ, तंजहा-वेउव्वियसरीराओ य अवेउव्विय सरीराओ य, तत्थ णं जाओ वेउव्वियसरीराओ ताओ सुवण्णसद्दालाओ सुवण्णसद्दालाइं वत्थाइं पवरपरिहियाओ चंदाणणाओ चंदविलासिणीओ चंदद्धसमणिडालाओ सिंगारागार-चारुवेसाओ संगय जाव पासाइयाओ जाव पडिरूवाओ, तत्थ णं जाओ अवेउव्विय-सरीराओ ताओ णं आभरणवसणरहियाओ पगइत्थाओ विभूसाए पण्णत्ताओ, सेसेसु देवा देवीओ णत्थि जाव अच्चुओ, गेवेज्जगदेवा० केरिसया विभूसाए०? गोयमा! आभरणवसणरहिया, एवं देवी णत्थि भाणियव्वं, पगइत्था विभूसाए पण्णत्ता, एवं अणुत्तरावि॥ २१८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प की देवियाँ विभूषा से कैसी लगती हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे दो प्रकार की हैं - १. वैक्रिय शरीर वाली और २. अवैक्रिय शरीर वाली। उनमें जो वैक्रिय शरीर वाली हैं वे सोने के नूपुर आदि आभूषणों की ध्वनि से युक्त हैं तथा सोने की बजती हुई किंकिणियों वाले सुंदर वस्त्रों को पहनी हुई हैं, चन्द्रमा के समान उनका मुख मण्डल है, वे चन्द्र के समान विलास वाली और अर्द्ध चन्द्र के समान भाल वाली हैं वे शृंगार की साक्षात् मूर्ति हैं और सुन्दर परिधान वाली है वे सुन्दर यावत् दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं। उनमें जो अवैक्रिय शरीर वाली हैं वे आभूषणों और वस्त्रों से रहित स्वाभाविक विभूषा से संपन्न कही गई है। सौधर्म और ईशान को छोड़ कर शेष देवलोकों में देव ही हैं, देवियाँ नहीं, अतः अच्युत कल्प तक के देवों की विभूषा का वर्णन उपरोक्तानुसार ही समझना चाहिए।

प्रश्न - हे भगवन्! ग्रैवेयक देवों की विभूषा कैसी है?

उत्तर - हे गौतम! ग्रैवेयक देव आभरण और वस्त्रों की विभूषा से रहित हैं किन्तु स्वाभाविक विभूषा से संपन्न हैं। वहाँ देवियाँ नहीं हैं। इसी प्रकार अनुत्तर विमान के देवों की विभूषा का कथन कर लेना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैमानिक देवों में कामभोग

सोहम्मीसाणेसु० देवा केरिसए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?

गोयमा! इट्ठा सद्दा इट्ठा रूवा जाव फासा, एवं जाव गेवज्जा, अणुत्तरोववाइयाणं अणुत्तरा सद्दा जाव अणुत्तरा फासा॥ २१९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म ईशान कल्प में देव कैसे कामभोगों का अनुभव करते हुए विचरते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म ईशान कल्प में देव इष्ट शब्द, इष्ट रूप यावत् इष्ट स्पर्श जन्य सुखों का अनुभव करते हुए विचरते हैं। इसी प्रकार यावत् ग्रैवेयक देवों तक कह देना चाहिए। अनुत्तर विमान के देव अनुत्तर शब्द यावत् अनुत्तर स्पर्शजन्य सुख का अनुभव करते हैं।

वैमानिक देवों की स्थिति और उद्वर्तना

ठिई सव्वेसिं भाणियव्वा, देवित्ताएवि, अणंतरं चयंति चइत्ता जे जहिं गच्छंति तं भाणियव्वं॥ २२०॥

भावार्थ - सभी वैमानिक देवों और देवियों की स्थिति कह देनी चाहिये तथा देवभव से चव कर कहां उत्पन्न होते हैं - यह उद्वर्तना द्वार कहना चाहिये।

विवेचन - वैमानिक देवों की स्थिति और उद्वर्तना इस प्रकार है -

१. स्थिति - वैमानिक देवों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। अलग-अलग देवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार है -

१. सौधर्म देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम और उत्कृष्ट दो सागरोपम। परिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम और उत्कृष्ट सात पल्योपम की तथा अपरिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम उत्कृष्ट पचास पल्योपम की है।

२. ईशान देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम झाझेरी और उत्कृष्ट दो सागरोपम झाझेरी। परिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम झाझेरी और उत्कृष्ट नव पल्योपम की है। अपरिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम झाझेरी और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है।

३. सनत्कुमार देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य दो सागरोपम और उत्कृष्ट ७ सागरोपम

४. माहेन्द्रकुमार देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य दो सागरोपम झाझेरी उत्कृष्ट ७ सागरोपम झाझेरी

५. ब्रह्मलोक देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य सात सागरोपम और उत्कृष्ट दस सागरोपम

६. लान्तक देवलोक में देवों की जघन्य दस सागरोपम और उत्कृष्ट चौदह सागरोपम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७. महाशुक्र देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य चौदह सागरोपम और उत्कृष्ट सतरह सागरोपम
८. सहस्रार देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य सतरह सागरोपम और उत्कृष्ट अठारह सागरोपम।
९. आनत देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य अठारह सागरोपम और उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम
१०. प्राणत देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य उन्नीस सागरोपम और उत्कृष्ट बीस सागरोपम
११. आरण देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य बीस सागरोपम और उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम
१२. अच्युत देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य इक्कीस सागरोपम और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम
प्रथम ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २२ सागरोपम उत्कृष्ट २३ सागरोपम।
द्वितीय ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २३ सागरोपम उत्कृष्ट २४ सागरोपम।
तृतीय ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २४ सागरोपम उत्कृष्ट २५ सागरोपम।
चतुर्थ ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २५ सागरोपम उत्कृष्ट २६ सागरोपम।
पांचवें ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २६ सागरोपम उत्कृष्ट २७ सागरोपम।
छठे ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २७ सागरोपम उत्कृष्ट २८ सागरोपम।
सातवें ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २८ सागरोपम उत्कृष्ट २९ सागरोपम।
आठवें ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २९ सागरोपम उत्कृष्ट ३० सागरोपम।
नववें ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य ३० सागरोपम उत्कृष्ट ३१ सागरोपम।

चार अनुत्तर विमान (विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित) के देवों की स्थिति जघन्य ३१ सागरोपम और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की होती है। सर्वार्थ सिद्ध अनुत्तर विमान के देवों की स्थिति अजघन्य अनुत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की होती है।

उद्वर्तना – देवगति से चव कर देवों का दूसरी गति में उत्पन्न होना उद्वर्तना कहलाता है।

सौधर्म और ईशान देवलोक के देव बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में, संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं। सनत्कुमार से लेकर सहस्रारकल्प तक के देव संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त गर्भज तिर्यंच और मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं, ये एकेन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होते। आनत कल्प के देवों से लगाकर अनुत्तर विमान तक के देव तिर्यंच पंचेन्द्रियों में भी उत्पन्न नहीं होते, केवल संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु सव्वपाणा सव्वभूया जाव सत्ता पुढविकाइयत्ताए (जाव वणस्सइकाइयत्ताए) देवत्ताए देवित्ताए आसणसयण जाव भंडोवगरणत्ताए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उववण्णपुव्वा? हंता गोयमा! असइं अदुवा अणंतखुत्तो, सेसेसु कप्पेसु एवं चेव, णवरि णो चेव णं देवित्ताए जाव गेवेज्जगा, अणुत्तरोववाइएसुवि एवं, णो चेव णं देवत्ताए वा देवित्ताए वा। सेत्तं देवा॥ २२१॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! सौधर्म-ईशान कल्पों में सब प्राण, भूत, जीव और सत्त्व पृथ्वीकाय रूप में (यावत् वनस्पतिकाय के रूप में?) देव के रूप में, देवी के रूप में, आसन, शयन यावत् भण्डोपकरण के रूप में क्या पूर्व में उत्पन्न हो चुके हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं। शेष कल्पों में ऐसा ही कहना चाहिए किन्तु देवी के रूप में उत्पन्न होना नहीं कहना चाहिये। ग्रैवेयक विमानों तक ऐसा कह देना चाहिए। अनुत्तरोपपातिक विमानों में पूर्ववत् कह देना चाहिए किन्तु देव रूप और देवी रूप में नहीं कहना चाहिए। इस प्रकार देवों का वर्णन पूरा हुआ।

विवेचन - **शंका** - प्राण, भूत, जीव और सत्त्व से क्या आशय है?

समाधान - इसके लिए टीकाकार ने निम्न गाथा दी है -

प्राणा द्वि त्रि चतुः प्रोक्ताः भूताश्च तरवः स्मृताः।

जीवा पंचेन्द्रिया ज्ञेयाः शेषाः सत्त्वा उदीरिता॥

अर्थ - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय को 'प्राण', वनस्पति को 'भूत' पंचेन्द्रिय को 'जीव' तथा पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय को 'सत्त्व' कहा जाता है।

सौधर्म और ईशानकल्प में सब प्राण, भूत, जीव और सत्त्व पृथ्वी रूप में, देव, देवी और भण्डोपकरण के रूप में पहले अनेकबार अथवा अनंत बार उत्पन्न हो चुके हैं।

पहले और दूसरे देवलोक से आगे के विमानों में देवियाँ नहीं होने से देवी रूप में उत्पन्न होने का निषेध किया है। अनुत्तर विमानों में देवरूप में और देवी रूप में उत्पन्न होने का निषेध किया गया है क्योंकि देवियाँ तो वहाँ होती नहीं और देव भी विजय आदि चार विमानों में उत्कृष्ट दो बार तथा सर्वार्थसिद्ध विमान में केवल एक बार ही जा सकता है, अनन्तबार नहीं।

शंका - कुछ प्रतियों में **'पुढविकाइयत्ताए'** के स्थान पर **'पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए'** पाठ भी दिया गया है, इसका क्या कारण है?

समाधान - टीकाकार ने **'जाव वणस्सइकाइयत्ताए'** पाठ को कई प्रतियों में होने पर भी उसे उचित नहीं माना है इसका कारण उन्होंने वहाँ तेजस्काय नहीं होना बताया है। यदि सूक्ष्म पांच स्थावर जीवों की अपेक्षा समझा जावे तो **"जाव वणस्सइकाइयत्ताए"** पाठ उचित ही है। टीकाकार के अनुसार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ को मानने पर वह पाठ बादर जीवों की अपेक्षा माना जा सकता है। टीकाकार ने भी पाठ के आशय को सम्यक् प्रकार से नहीं समझपाना स्वीकार किया है अतः इस पाठ में 'जाव' शब्द मानने पर सभी स्थावरों का समावेश हो ही जाना जरूरी नहीं है। अन्यत्र भी आगमों में 'जाव' शब्द से यथा योग्य पाठों का ही ग्रहण हुआ है। अतः यहाँ पर भी 'जाव' शब्द से तेजस्काय का ग्रहण नहीं करने पर भी कोई बाधा नहीं आती है। अलग-अलग अपेक्षाओं से दोनों प्रकार के पाठों की संगति बिठाई जा सकती है। **'तत्त्व केवली गम्य'** इस प्रकार देवों का कथन यहाँ पूर्ण हुआ।

समुच्चय रूप में भवस्थिति आदि का वर्णन

णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, एवं सव्वेसिं पुच्छा, तिरिक्खजोणियाणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं, एवं मणुस्साणवि, देवाणं जहा णेरइयाणं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों की कितनी स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। इसी प्रकार सबके लिए प्रश्न कर लेना चाहिए। तिर्यंचों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है। मनुष्यों की भी इतनी ही स्थिति है। देवों की स्थिति भी नैरयिकों के समान समझनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देव की समुच्चय स्थिति का कथन किया गया है।

नैरयिकों की जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति प्रथम रत्नप्रभा नरक के प्रथम प्रस्तर की अपेक्षा से और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति सातवीं नरक की अपेक्षा समझनी चाहिए।

तिर्यंचों और मनुष्यों की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की कही है जो देवकुरु आदि की अपेक्षा से है।

देवों की जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति भवनपति और वाणव्यंतर देवों की अपेक्षा से और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति अनुत्तर विमान के देवों की अपेक्षा समझनी चाहिये।

देवणेरइयाणं जा चेव ठिई सच्चेव संचिट्ठणा, तिरिक्खजोणियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, मणुस्से णं भंते! मणुस्सेत्ति कालओ केवच्चिरं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडि-पुहुत्तमब्भहियाइं। णेरइयमणुस्सदेवाणं अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। तिरिक्खजोणियस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं॥ २२२॥

भावार्थ - देवों और नैरयिकों की जो भवस्थिति है वही उनकी संचिट्ठणा (कायस्थिति) है। तिर्यंच की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य, मनुष्य के रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य, मनुष्य के रूप में जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रह सकता है।

नैरयिक, मनुष्य और देवों का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। तिर्यंचों का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक (दो सौ से नौ सौ सागरोपम) शत पृथक्त्व सागरोपम का है।

विवेचन - उसी उसी भव में उत्पन्न होने के काल को संचिट्ठण काल या कायस्थिति कहते हैं। देव मरकर देव रूप में और नैरयिक मरकर नैरयिक रूप से उत्पन्न नहीं होता है इसीलिये देवों और नैरयिकों की जो भवस्थिति है वही उनकी कायस्थिति कहलाती है।

तिर्यंच मर कर मनुष्य आदि गति में उत्पन्न हो सकते हैं अतः तिर्यंच की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) की कही है। मनुष्य की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम की कही है। उत्कृष्ट कायस्थिति महाविदेह आदि में सात मनुष्य भव (पूर्व कोटि स्थिति के) और आठवां भव देवकुरु आदि में उत्पन्न होने की अपेक्षा समझनी चाहिये।

कोई जीव एक भव से मर कर फिर जितने काल बाद उसी भव में आता है, वह 'अंतर' कहलाता है। प्रस्तुत सूत्र में चारों गतियों का अन्तर बतलाया गया है।

एएसि णं भंते! णेरइयाणं जाव देवाण य कयरे० ? गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सा णेरइया असं० देवा असं० तिरिया अणंतगुणा, से तं चउव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता॥ २२३॥

॥ बीओ वेमाणिय देवुद्देसो समत्तो॥

॥ तच्चा चउव्विहपडिवत्ती समत्ता॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन नैरयिकों यावत् देवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े मनुष्य हैं, उनसे नैरयिक असंख्यातगुण हैं, उनसे देव असंख्यातगुण हैं और उनसे तिर्यंच अनन्तगुण हैं। इस प्रकार चार प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का वर्णन समाप्त हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चार गति के जीवों का अल्प बहुत्व कहा गया है जो इस प्रकार समझना चाहिये-सबसे थोड़े मनुष्य हैं क्योंकि वे श्रेणी के असंख्यातवें भागवर्ती आकाश प्रदेशों की राशि प्रमाण हैं। उनसे नैरयिक असंख्यात गुणा हैं क्योंकि वे अंगुल मात्र क्षेत्र की प्रदेश राशि के प्रथम वर्ग मूल को द्वितीय वर्ग मूल से गुणा करने पर जितनी प्रदेश राशि होती है उतने प्रमाण वाली श्रेणियों के जितने आकाश प्रदेश होते हैं उतने प्रमाण में नैरयिक हैं। उनसे देव असंख्यातगुणा हैं क्योंकि ९८ बोल में वाणव्यंतर देव और ज्योतिषी देव, नैरयिकों से असंख्यातगुणा कहे गये हैं। देवों से तिर्यंच अनंतगुणा हैं क्योंकि वनस्पतिकाय के जीव अनन्त कहे गये हैं। इस प्रकार चार तरह के संसारी जीवों की तीसरी प्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

॥ दूसरा वैमानिक देव उद्देशक समाप्त॥

॥ चतुर्विधाख्या नामक तृतीय प्रतिपत्ति समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउत्था पंचविहा पडिवत्ती

पंचविधाख्या चतुर्थ प्रतिपत्ति

तीसरी प्रतिपत्ति में चार प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का वर्णन करने के बाद सूत्रकार इस चतुर्थ प्रतिपत्ति में पांच प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का प्रतिपादन करते हैं, जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-पंचविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा-एगिंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया। से किं तं एगिंदिया? एगिंदिया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, एवं जाव पंचिंदिया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

एगिंदियस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं, बेइंदिय० जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस संवच्छराणि, एवं तेइंदियस्स एगूणपण्णं राइंदियाणं, चउरिंदियस्स छम्मासा, पंचेंदियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, अपज्जत्तएगिंदियस्स णं० केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं एवं सव्वेसिंपि अपज्जत्तगाणं जाव पंचेंदियाणं, पज्जत्तेगिंदियाणं जाव पंचिंदियाणं पुच्छा, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, एवं उक्कोसियावि ठिई अंतोमुहुत्तूणा सव्वेसिं पज्जत्ताणं कायव्वा॥

भावार्थ - जो इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं कि संसार समापन्नक जीव पांच प्रकार के कहे गये हैं वे पांच भेद इस प्रकार हैं - १. एकेन्द्रिय २. बेइन्द्रिय ३. तेइन्द्रिय ४. चउरिन्द्रिय और ५. पंचेन्द्रिय।

प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा-पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तक सभी के दो दो भेद कहे गये हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय जीवों की कितने काल की स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की है। बेइन्द्रिय की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट बारह वर्ष की, तेइन्द्रिय की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट ४९ उनपचास अहोरात्रि (रातदिन) की, चउरिन्द्रिय की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट छह मास तथा पंचेन्द्रिय की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक एकेन्द्रिय की स्थिति कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक एकेन्द्रिय की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त की है। इसी प्रकार सभी अपर्याप्तकों की स्थिति कह देनी चाहिए।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक एकेन्द्रिय यावत् पर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक एकेन्द्रिय की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त कम बावीस हजार वर्ष की है। इसी प्रकार शेष सभी पर्याप्तकों की उत्कृष्ट स्थिति उनकी कुल स्थिति से अंतर्मुहूर्त्त कम कह देनी चाहिये।

विवेचन - जो आचार्य ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि संसार समापन्नक जीव पांच प्रकार के हैं उनका इस संबंध में ऐसा कथन है कि एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के भेद से संसार समापन्नक जीव पांच प्रकार के हैं। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के दो-दो भेद होते हैं-१. पर्याप्तक और २. अपर्याप्तक। जिन जीवों के पर्याप्ति नाम कर्म का उदय होता है वे पर्याप्तक और जिनके अपर्याप्ति नाम कर्म का उदय होता है वे अपर्याप्तक कहलाते हैं। अपर्याप्तक एकेन्द्रिय जीव की स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त कही गई है किन्तु जघन्य स्थिति का जो अन्तर्मुहूर्त्त है वह उत्कृष्ट स्थिति के अंतर्मुहूर्त्त से भिन्न है। सभी अपर्याप्तकों की स्थिति इसी प्रकार समझनी चाहिये। पर्याप्तक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति उनकी कुल स्थिति से अंतर्मुहूर्त्त कम करके बतलाई गई है वह अपर्याप्त काल का अंतर्मुहूर्त्त समझना चाहिये।

कायस्थिति

एगिंदिए णं भंते! एगिंदिएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

बेइंदिए णं भंते! बेइंदिएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखेज्जं कालं जाव चउरिंदिए संखेज्जं कालं, पंचेंदिए णं भंते! पंचिंदिएत्ति कालओ केवच्चिरं होई? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसहस्सं साइरेगं॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय रूप में कितने काल तक रहता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल प्रमाण है।

प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय, बेइन्द्रिय रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यात काल की है। इसी प्रकार तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय की कायस्थिति भी समझनी चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार सागरोपम की कही गई है।

अपज्जत्तएगिंदिए णं भंते!० कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं जाव पंचिंदियअपज्जत्तए।

पज्जत्तगएगिंदिए णं भंते!० कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससहस्साइं। एवं बेइंदिएवि, णवरं संखेज्जाइं वासाइं। तेइंदिए णं भंते!० संखेज्जा राइंदिया। चउरिंदिए णं० संखेज्जा मासा। पज्जत्तपंचिंदिए० सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं॥

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! अपर्याप्तक एकेन्द्रिय जीवों की कायस्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक एकेन्द्रिय जीवों की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त की है। इसी प्रकार यावत् अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय तक की कायस्थिति का कथन कर देना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक एकेन्द्रिय की कायस्थिति कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक एकेन्द्रिय जीव की कायस्थिति का काल जघन्य अंतर्मुहूर्त्त का और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों का है। इसी प्रकार बेइन्द्रिय का कथन करना चाहिये विशेषता यह है कि यहाँ संख्यात वर्ष कहना चाहिये। तेइंदिय की कायस्थिति संख्यात रातदिन और चउरिन्द्रिय की संख्यात मास की है। पर्याप्त पंचेन्द्रिय की कायस्थिति उत्कृष्ट कुछ अधिक (सातिरेक) सागरोपम शत पृथक्त्व की कही गई है।

विवेचन - अपर्याप्तक एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त कही गई है क्योंकि अपर्याप्तक लब्धि का काल प्रमाण इतना ही होता है।

पर्याप्तक एकेन्द्रिय जीव की कायस्थिति उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों की इस प्रकार से है - एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक की उत्कृष्ट भवस्थिति बाईस हजार वर्ष की है, अप्कायिक की सात हजार वर्ष की है, तेजस्कायिक की तीन रात दिन की है, वायुकायिक की तीन हजार वर्ष की है और वनस्पतिकायिक की दस हजार वर्ष की है। इन जीवों के निरन्तर कतिपय पर्याप्त भवों को जोड़ने पर संख्यात हजार वर्षों का काल घटित होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्तक बेइन्द्रिय की कायस्थिति संख्यात वर्षों की कही गई है क्योंकि बेइन्द्रिय की उत्कृष्ट भव स्थिति बारह वर्ष की है। सब भवों में तो उत्कृष्ट स्थिति होती नहीं अतः कुछ निरन्तर पर्याप्त भवों को जोड़ने से संख्यात वर्ष ही होते हैं, सौ वर्ष या हजार वर्ष नहीं। पर्याप्त तेइन्द्रिय की कायस्थिति संख्यात अहोरात्रि की है क्योंकि उनकी भवस्थिति ४९ दिनरात की है और कतिपय निरन्तर पर्याप्त भवों को जोड़ने पर संख्यात अहोरात्रि ही होते हैं। पर्याप्त चउरिन्द्रिय की कायस्थिति संख्यात मास कही है क्योंकि उनकी भवस्थिति उत्कृष्ट छह मास है और कतिपय निरन्तर पर्याप्त भवों को मिलाने से संख्यात मास ही होते हैं। पर्याप्त पंचेन्द्रिय की कायस्थिति कुछ अधिक सागरोपम शत पृथक्त्व की है क्योंकि नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देव भवों में पर्याप्त पंचेन्द्रिय के रूप में जीव इतने काल तक ही रह सकता है।

अंतर

एगिंदियस्स णं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं।

बेइंदियस्स णं० अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, एवं तेइंदियस्स चउरिंदियस्स पंचेंदियस्स, अपज्जत्तगाणं एवं चेव, पज्जत्तगाणवि एवं चेव ॥ २२४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय का अंतर कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट दो हजार सागरोपम और संख्यात वर्ष अधिक का है।

प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय का अंतर कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तथा अपर्याप्तक और पर्याप्तक का भी अंतर कह देना चाहिये।

विवेचन - एकेन्द्रिय से निकल कर बेइन्द्रिय आदि में अंतर्मुहूर्त्त काल रह कर पुनः एकेन्द्रिय में उत्पन्न होने की अपेक्षा एकेन्द्रिय का जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त्त कहा गया है। एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट अंतर त्रस की कायस्थिति के बराबर अर्थात् संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है।

बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। जो बेइन्द्रिय आदि से निकल कर वनस्पति में रहने के बाद पुनः बेइन्द्रिय आदि में उत्पन्न होने की अपेक्षा समझना चाहिये। इसी प्रकार पर्याप्तक और अपर्याप्तक का अंतर भी होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अल्पबहुत्व

एएसि णं भंते! एगिंदियाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचिंदियाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा पंचेंदिया चउरिंदिया विसेसाहिया तेइंदिया विसेसाहिया बेइंदिया विसेसाहिया एगिंदिया अणंतगुणा। एवं अपज्जत्तगाणं सव्वत्थोवा पंचेंदिया अपज्जत्तगा चउरिंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया तेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया बेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया एगिंदिया अपज्जत्तगा अणंतगुणा सइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया॥ सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा पंचेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया, बेइंदियपज्जत्तगा विसेसाहिया, तेइंदियपज्जत्तगा विसेसाहिया, एगिंदियपज्जत्तगा अणंतगुणा, सइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय हैं उनसे चउरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं उनसे तेइन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे बेइन्द्रिय विशेषाधिक हैं और उनसे एकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं। इसी प्रकार अपर्याप्तकों में सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, उनसे चउरिन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे तेइन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक उनसे बेइन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे एकेन्द्रिय अपर्याप्तक अनंतगुणा हैं और उनसे सेन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं। इसी प्रकार पर्याप्तकों में सबसे थोड़े चउरिन्द्रिय पर्याप्तक, उनसे पंचेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे बेइन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे तेइन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे एकेन्द्रिय पर्याप्तक अनंतगुण हैं। उनसे सेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एकेन्द्रिय आदि का सामान्य अल्प बहुत्व, अपर्याप्तक एकेन्द्रिय आदि का अल्प बहुत्व और पर्याप्त एकेन्द्रिय आदि का अल्पबहुत्व कहा गया है जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है -

१. सामान्य अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय हैं क्योंकि ये संख्यात योजन कोटाकोटि प्रमाण विष्कंभ सूची से प्रमित प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्य श्रेणियों के आकाश प्रदेशों के बराबर हैं। उनसे चउरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं क्योंकि ये प्रभूत संख्यात योजन कोटाकोटि प्रमाण विष्कंभ सूची के प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई श्रेणियों के आकाश प्रदेशों के बराबर हैं। उनसे तेइन्द्रिय विशेषाधिक हैं क्योंकि ये प्रभूततर संख्यात कोटिकोटि प्रमाण विष्कंभसूची के प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई श्रेणियों के आकाश प्रदेश राशि प्रमाण है। उनसे बेइन्द्रिय विशेषाधिक हैं क्योंकि प्रभूततम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संख्यात कोटिकोटि प्रमाण विष्कंभ सूची के प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई श्रेणियों की आकाश राशि प्रमाण हैं। उनसे एकेन्द्रिय अनंतगुणा हैं क्योंकि वनस्पतिकाय अनन्तानन्त हैं।

२. अपर्याप्तकों का अल्प बहुत्व - सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं क्योंकि ये एक प्रतर में अंगुल के असंख्यातवें भाग में जितने खण्ड होते हैं उतने प्रमाण में हैं। उनसे चउरिन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं क्योंकि ये प्रभूत अंगुल के असंख्यातवें भाग खण्ड प्रमाण हैं। उनसे तेइन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं क्योंकि ये प्रभूततर प्रतर अंगुल के असंख्यातवें भाग खण्ड प्रमाण हैं। उनसे बेइन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं क्योंकि ये प्रभूततम प्रतर अंगुल के असंख्यातवें भाग खण्ड प्रमाण हैं। उनसे एकेन्द्रिय अपर्याप्तक अनंतगुणा हैं क्योंकि वनस्पतिकाय में अपर्याप्तक जीव सदा अनंतानंत होते हैं। उनसे सेन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक है।

३. पर्याप्तकों का अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक हैं क्योंकि चउरिन्द्रिय जीव अल्प आयु वाले होने से लम्बे काल तक नहीं रहते हैं अतः पृच्छा के समय वे थोड़े हैं और प्रतर अंगुल के असंख्यातवें भाग खण्ड प्रमाण हैं उनसे बेइन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं क्योंकि ये प्रभूततर अंगुल के असंख्यातवें भाग खण्ड प्रमाण हैं। उनसे तेइन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं क्योंकि वे स्वभाव से ही प्रभूततर अंगुल के असंख्यातवें भाग खण्ड प्रमाण हैं उनसे एकेन्द्रिय पर्याप्तक अनंतगुणा हैं क्योंकि वनस्पतिकायिक पर्याप्तक जीव अनंत हैं। उनसे सेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

एएसि णं भंते! सइंदियाणं पज्जत्तगअपज्जत्तगाणं कयरे कयरे हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा सइंदिया अपज्जत्तगा सइंदिया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा। एवं एगिंदियावि।

एएसि णं भंते! बेइंदियाणं पज्जत्तापज्जत्तगाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा बेइंदिया पज्जत्तगा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, एवं तेंदियचउरिंदियपंचेंदियावि॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन सेन्द्रिय पर्याप्तक अपर्याप्तक में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े सेन्द्रिय अपर्याप्तक उनसे सेन्द्रिय पर्याप्तक संख्यातगुणा है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय पर्याप्तक अपर्याप्तक का अल्प बहुत्व समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! इन बेइन्द्रिय पर्याप्तक अपर्याप्तक में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े बेइन्द्रिय पर्याप्तक, उनसे बेइन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं। इसी प्रकार तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियों का अल्प बहुत्व समझना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों का शामिल अल्प बहुत्व कहा गया है। सबसे थोड़े एकेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं उनसे एकेन्द्रिय पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं क्योंकि सूक्ष्म जीव सर्वलोक व्यापी हैं और सूक्ष्म जीवों में अपर्याप्तक थोड़े और पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं। बेइन्द्रियों में पर्याप्तक थोड़े हैं और अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं। इसी प्रकार तेइन्द्रियों, चउरिन्द्रियों और पंचेन्द्रियों में पर्याप्तक अपर्याप्तकों का अल्प बहुत्व समझ लेना चाहिये।

एएसि णं भंते! एगिंदियाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचेंदियाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाण य कयरे २....?

गोयमा! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा पंचेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया बेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया तेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया पंचेंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा चउरिंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया तेइंदियअपज्जत्तगा विसेसाहिया बेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया एगिंदियअपज्जत्ता अणंतगुणा सइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया एगिंदियपज्जत्तगा संखेज्जगुणा सइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया सइंदिया विसेसाहिया। सेत्तं पंचविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ॥ २२५॥

॥ चउत्था पंचविहा पडिवत्ती समत्ता॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तकों में कौन किससे अल्प, बहुत्व, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े चउरिन्द्रिय पर्याप्तक, उनसे पंचेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक उनसे बेइन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे तेइन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणा उनसे चउरिन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे तेइन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे बेइन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे एकेन्द्रिय अपर्याप्तक अनन्तगुणा, उनसे सेन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक उनसे एकेन्द्रिय पर्याप्तक संख्यातगुणा, उनसे सेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक और उनसे सेन्द्रिय विशेषाधिक हैं। इस प्रकार पांच प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का वर्णन हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एकेन्द्रिय आदि पांचों जीवों के पर्याप्तक अपर्याप्तकों का शामिल अल्प बहुत्व कहा गया है जिसका स्पष्टीकरण प्रथम के तीन अल्पबहुत्वों के अनुसार समझ लेना चाहिये।

॥ पंचविधाख्या नामक चतुर्थ प्रतिपत्ति समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचमा छव्विहा पडिवत्ती

षड् विधाख्या पंचम प्रतिपत्ति

चौथी प्रतिपत्ति में पांच प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का वर्णन करने के बाद अब सूत्रकार क्रम प्राप्त पांचवीं प्रतिपत्ति में छह प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का प्रतिपादन करते हैं, जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-छव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा-पुढविकाइया आउक्काइया तेउक्काइया वाउक्काइया वणस्सइक्काइया तसकाइया॥

से किं तं पुढविकाइया?

पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-सुहुमपुढविकाइया बायरपुढविकाइया, सुहुमपुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, एवं बायरपुढविकाइयावि, एवं चउक्कएणं भेएणं आउतेउवाउवणस्सइकाइया णेयव्वा। से किं तं तसकाइया? तसकाइया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य॥ २२६॥

भावार्थ - जो छह प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का प्रतिपादन करते हैं उनका कथन इस प्रकार हैं - १. पृथ्वीकायिक २. अपकायिक ३. तेजस्कायिक ४. वायुकायिक ५. वनस्पतिकायिक और ६. त्रसकायिक।

प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा-सूक्ष्म पृथ्वीकायिक और २. बादर पृथ्वीकायिक। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इसी प्रकार बादर पृथ्वीकायिक जीवों के भी दो भेद हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक के चार-चार भेद कह देने चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! त्रसकायिक के कितने भेद कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! त्रसकायिक दो प्रकार के हैं। यथा - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

विवेचन - जो आचार्य छह प्रकार के संसारी जीवों का प्रतिपादन करते हैं वे छह भेद इस प्रकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं-१. पृथ्वीकायिक २. अप्कायिक ३. तेउकायिक ४. वायुकायिक ५. वनस्पतिकायिक और ६. त्रसकायिक। सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से एकेन्द्रिय जीवों के चार-चार भेद होते हैं।

पुढविकाइयस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं, एवं सव्वेसिं ठिई णेयव्वा, तसकाइयस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, अपज्जत्तगाणं सव्वेसिं जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगाणं सव्वेसिं उक्कोसिया ठिई अंतोमुहुत्तूणा कायव्वा ॥ २२७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिकों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट बावीस सागरोपम की है। इसी प्रकार सब की स्थिति कह देनी चाहिये। त्रस कायिकों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। सभी अपर्याप्तक जीवों की स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त प्रमाण है। सभी पर्याप्तकों की उत्कृष्ट स्थिति कुल स्थिति में से अंतर्मुहूर्त्त कम करके कह देनी चाहिये।

पुढविकाइए णं भंते! पुढविकाइएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्ज कालं जाव असंखेज्जा लोया। एवं जाव आउ० तेउ० वाउक्काइयाणं। वणस्सइकाइयाणं अणंतं कालं जाव आवलियाए असंखेज्जइभागो॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकाय, पृथ्वीकाय रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकाय की काय स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल यावत् असंख्यात लोक प्रमाण है। इसी प्रकार यावत् अप्काय, तेउकाय, वायुकाय की कायस्थिति (संचिट्ठणा) कह देनी चाहिये। वनस्पतिकाय की कायस्थिति अनंतकाल यावत् आवलिका के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

विवेचन - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल की कही है। असंख्यात काल से आशय है - काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणियां और अवसर्पिणियाँ तथा क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात लोक अर्थात् असंख्यात लोक प्रमाण आकाश खंडों में से प्रति समय एक-एक प्रदेश का अपहार करने पर जितने काल में वे असंख्यात लोकाकाश के खण्ड उन प्रदेशों से खाली हो जावें इतने असंख्यात काल की उन जीवों की संचिट्ठणा (कायस्थिति) है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वनस्पतिकाय की उत्कृष्ट कायस्थिति अनंतकाल की कही है। यहाँ अनंतकाल अर्थात् काल की अपेक्षा अनंत उत्सर्पिणियां अवसर्पिणियाँ इसमें समाप्त हो जाती है और क्षेत्र की अपेक्षा अनंतानंत लोकाकाशों में से प्रतिसमय एक-एक प्रदेश का अपहार करने पर जितने काल में वे लोकाकाश खण्ड उन प्रदेशों से रहित हो जाते हैं इतने अनंतकाल की कायस्थिति वनस्पतिकाय की है। इस अनंत काल में असंख्यात पुद्गल परावर्त्तन हो जाते हैं। कितने पुद्गल परावर्तन होते हैं इसके लिए कहा है कि एक आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने समय होते हैं उतने पुद्गल परावर्तन समझने चाहिये।

तसकाइए णं भंते!० जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं। अपज्जत्तगाणं छण्हवि जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, *पज्जत्तगाणं-*

'वाससहस्सा संखा पुढविदगाणिलतरूण पज्जत्ता।

तेऊ राइंदिसंखा तससागरसयपुहुत्ताइं॥ १॥' पज्जत्तगाणवि सव्वेसिं एवं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! त्रसकाय, त्रसकाय के रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! त्रसकाय की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम की है। छहों अपर्याप्तकों की कायस्थिति जघन्य अंततर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त की है। पर्याप्तकों में पृथ्वीकाय की उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है। अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय पर्याप्तकों की कायस्थिति भी इतनी है। तेजस्काय पर्याप्तक की कायस्थिति दिनरात की है। त्रसकाय पर्याप्तक की कायस्थिति कुछ अधिक सागरोपम शत पृथक्त्व है।

पुढविकाइयस्स णं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणप्फइकालो, एवं आउतेउवाउकाइयाणं वणस्सइकालो, तसकाइयाणवि, वणस्सइकाइयस्स पुढविकालो, एवं अपज्जत्तगाणवि वणस्सइकालो, वणस्सईणं पुढविकालो, पज्जत्तगाणवि एवं चेव वणस्सइकालो, पज्जत्तवणस्सईणं पुढविकालो ॥ २२८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकाय का कितना अंतर कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकाय का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय का अंतर वनस्पतिकाल है। त्रसकाय का अन्तर भी वनस्पतिकाल है। वनस्पतिकाय का अंतर पृथ्वीकाय काल (असंख्यात काल) प्रमाण है। इसी प्रकार अपर्याप्तकों का अंतरकाल वनस्पतिकाल है। अपर्याप्तक वनस्पति का अंतर पृथ्वीकाल है पर्याप्तकों का अंतर वनस्पतिकाल है। पर्याप्तक वनस्पति का अन्तर पृथ्वीकाल है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में छह प्रकार के संसारी जीवों के अन्तर का निरूपण किया गया है। अंतर द्वार में बताये हुए वनस्पतिकाल से तात्पर्य है - अनंतकाल। अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण काल अनंतकाल है। पृथ्वीकाय काल (पृथ्वीकाल) से तात्पर्य है - असंख्यात काल। असंख्यात उत्सर्पिणी और असंख्यात अवसर्पिणी प्रमाण काल को असंख्यात काल कहते हैं।

अल्पबहुत्व

अप्पाबहुयं - सव्वत्थोवा तसकाइया तेउक्काइया असंखेज्जगुणा पुढविकाइया विसेसाहिया आउकाइया विसेसाहिया वाउक्काइया विसेसाहिया वणस्सइकाइया अणंतगुणा एवं अपजत्तगावि पजत्तगावि॥

भावार्थ - अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े त्रसकायिक, उनसे तेजस्कायिक असंख्यातगुणा, उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक, उनसे अप्कायिक विशेषाधिक, उनसे वायुकायिक विशेषाधिक, उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुणा। इसी प्रकार अपर्याप्तकों एवं पर्याप्तकों का अल्पबहुत्व कह देना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सामान्य रूप से छह काय जीवों के अल्पबहुत्व का कथन किया गया हैं जो इस प्रकार है - सबसे थोड़े त्रसकायिक हैं क्योंकि बेइन्द्रिय आदि त्रसकाय अन्य कायों की अपेक्षा सबसे कम हैं। उनसे तेजस्कायिक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं। उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं क्योंकि वे प्रभूत असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं, उनसे अप्कायिक विशेषाधिक हैं क्योंकि वे प्रभूततर असंख्यात भाग लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं। उनसे वायुकायिक विशेषाधिक हैं क्योंकि वे प्रभूततम असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण है। उनसे भी वनस्पतिकायिक अनंतगुण हैं क्योंकि वे अनन्त लोकाकाश प्रदेश राशि के बराबर हैं। अपर्याप्तकों और पर्याप्तकों का अल्पबहुत्व का क्रम भी उपरोक्तानुसार समझ लेना चाहिए।

एएसि णं भंते! पुढविकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाण य कयरे कयरे हिंतो अप्पा वा एवं जाव विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा पुढविकाइया अपज्जत्तगा पुढविकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा, एएसि णं भंते! आउकाइयाणं सव्वत्थोवा आउक्काइया अपज्जत्तगा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा जाव वणस्सइकाइया० सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा तसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किससे अल्प, बहुत्व, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक, उनसे पृथ्वीकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणा। इसी प्रकार सबसे थोड़े अपर्याप्तक, अपकायिक उनसे पर्याप्तक अप्कायिक संख्यात गुणा। इसी प्रकार वनस्पतिक कायिक तक कह देना चाहिये। त्रसकायिकों में सबसे थोड़े त्रसकायिक पर्याप्तक उनसे त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पृथ्वीकायिक आदि के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों का अलग-अलग अल्पबहुत्व कहा गया है। सबसे थोड़े पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक हैं उनसे पृथ्वीकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं क्योंकि पृथ्वीकायिकों में सूक्ष्म जीव बहुत हैं और सूक्ष्म जीवों में पर्याप्तक संख्यात गुणा है। इसी तरह अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों का अलग-अलग अल्पबहुत्व कह देना चाहिये। त्रसकायिक पर्याप्तक सबसे थोड़े हैं क्योंकि ये प्रतर के अंगुल के संख्यातवें भाग खण्ड प्रमाण है, उनसे त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा है।

एएसि णं भंते! पुढविकाइयाणं जाव तसकाइयाणं पज्जत्तगअपज्जत्तगाण य कयरे कयरे हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा, तसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, तेउक्काइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, पुढविक्काइया आउक्काइया वाउक्काइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, तेउक्काइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा, पुढवि-आउ-वाउ-पज्जत्तगा विसेसाहिया, वणस्सइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा, सकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, वणस्सइकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा, सकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया॥ २२१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन पृथ्वीकायिकों यावत् त्रसकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े त्रसकायिक पर्याप्तक, उनसे त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणा, उनसे पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनंतगुणा, उनसे सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणा उनसे सकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में छह कायिक जीवों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों का शामिल अल्पबहुत्व कहा गया है जो इस प्रकार है - सबसे थोड़े त्रसकायिक पर्याप्तक हैं क्योंकि ये प्रतर के अंगुल के संख्यातवें भाग खण्ड प्रमाण हैं उनसे त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं। उनसे तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे असंख्यातवें लोकाकाश प्रदेश प्रमाण है। उनसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्वीकायिक अपकायिक वायुकायिक के अपर्याप्तक क्रम से विशेषाधिक हैं क्योंकि वे प्रभूत, प्रभूततर प्रभूततम असंख्यात लोकाकाश प्रदेश राशि प्रमाण हैं। उनसे तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं क्योंकि सूक्ष्मों में अपर्याप्तकों से पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं। उनसे पृथ्वीकायिक अपकायिक वायुकायिक के पर्याप्तक क्रम से विशेषाधिक हैं। उनसे वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनंतगुणा हैं क्योंकि वे अनंत लोकाकाश प्रदेश राशि प्रमाण हैं। उनसे वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं क्योंकि सूक्ष्मों में अपर्याप्तकों से पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं। सूक्ष्म जीव सर्व बहु हैं उनकी अपेक्षा से यह अल्पबहुत्व है।

सूक्ष्म जीवों का स्वरूप

सुहुमस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं एवं जाव सुहुमणिओयस्स, एवं अपज्जत्तगाणवि पज्जत्तगाणवि जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं॥ २३०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सूक्ष्म जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की स्थिति हैं। इसी प्रकार यावत् सूक्ष्म निगोद तक कह देना चाहिए। इसी प्रकार सूक्ष्मों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति भी अंतर्मुहूर्त्त प्रमाण ही है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सूक्ष्म जीवों की स्थिति का कथन किया गया है। सूक्ष्म जीवों के दो भेद हैं - १. निगोद रूप सूक्ष्म जीव और २. अनिगोद रूप सूक्ष्म जीव। सभी सूक्ष्म जीवों की स्थिति जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त होती है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त होती है किन्तु जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त से उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त विशेषाधिक होता है।

सूक्ष्म निगोद के अलावा सूक्ष्म पृथ्वीकाय, सूक्ष्म अपकाय, सूक्ष्म तेउकाय, सूक्ष्म वायुकाय और सूक्ष्म वनस्पतिकाय का समावेश अनिगोद रूप सूक्ष्म जीवों में होता है। इस प्रकार सूक्ष्म जीवों के छह भेद होते हैं।

शंका - सूक्ष्म वनस्पति निगोद रूप ही है फिर सूक्ष्म निगोद का अलग भेद क्यों कहा गया है?

समाधान - सूक्ष्म वनस्पति तो जीव रूप है और सूक्ष्म निगोद अनंत जीवों का आधारभूत शरीर है अतः दोनों भेद अलग-अलग कहे हैं।

शंका - क्या सूक्ष्म निगोद पूरे लोक में है?

समाधान - काजल से भरी हुई डिब्बी की तरह यह सारा लोक सूक्ष्म निगोद से सब ओर से ठसाठस भरा हुआ है।

शंका - एक निगोद में कितने जीव कहे गये हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाधान - निगोद का अर्थ है - अनन्त जीवों का एक शरीर। वृताकार और वृहत्प्रमाण होने से इस लोक में निगोद के असंख्यात गोले कहे गये हैं। कहा भी है -

गोला य असंखेज्जा, असंखनिगोदो य गोलओ भणिओ।
एक्किक्कंमि निगोए अणंत जीवा मुणेयव्वा॥ १॥

एक एक गोले में असंख्यात निगोद है और एक-एक निगोद में अनन्त जीव हैं।

शंका - निगोद में जीवों का जन्म मरण चक्र किस प्रकार चलता है?

समाधान - टीका में कहा गया है -

एगो असंखभागो वट्टइ उव्वट्टणोववायम्मि।
एगणिगोदे णिच्चं एवं सेसेसु वि स एव॥ २॥
अंतोमुहुत्तमेत्तं ठिई निगोयाण जंति णिद्दिट्ठा।
पल्लटंति णिगोया तम्हा अंतोमुहुत्तेणं॥ ३॥

अर्थ - एक निगोद में जो अनंत जीव हैं उनका असंख्यातवां भाग प्रतिसमय उसमें से निकलता है और दूसरा असंख्यातवां भाग वहाँ उत्पन्न होता है। प्रत्येक समय यह उद्‌वर्तन और उत्पत्ति चलती रहती है। जैसे एक निगोद में यह उद्‌वर्तन और उत्पत्ति का क्रम चलता रहता है उसी प्रकार सर्वलोक में निगोदों में उद्‌वर्तन और उत्पत्ति का यह क्रिया प्रति समय चलती रहती है इसलिए सभी निगोदो और निगोद जीवों की स्थिति अंतर्मुहूर्त्त कही है। सभी निगोद अंतर्मुहूर्त्त मात्र समय में, प्रतिसमय होने वाले उद्‌वर्तन एवं उपपति के कारण परिवर्तित हो जाते हैं किन्तु वे जीवों से शून्य नहीं होते क्योंकि पुराने जीव निकलते रहते हैं और नये उत्पन्न होते रहते हैं।

उपर्युक्त टीकाकार के द्वारा उद्धृत गाथाओं में तथा उनके अर्थ में प्रत्येक निगोदवर्ती जीवों का एक असंख्यातवां भाग का उपपात और उद्‌वर्तन प्रति समय होना बताया है। परन्तु प्रज्ञापना आदि सूत्रों के पाठों को देखते हुए यह उचित नहीं लगता है। लोक में जितने निगोद हैं उन सभी निगोदों के एक असंख्यातवें भाग जितने निगोदशरीरों का प्रति समय उपपात और उद्‌वर्तन होना समझना चाहिए। एक निगोद वर्ती सभी जीवों का जन्म मरण एक साथ में ही होता है। ऐसा आगमों में बताया है। अतः टीकाकार का कथन आगम से बाधित होने से उपर्युक्त आगम पाठों के अनुसार मानना ही समीचीन है।

सुहुमे णं भंते! सुहुमेत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जकालं जाव असंखेज्जा लोया, सव्वेसिं पुढविकालो जाव सुहुमणिओयस्स पुढविक्कालो, अपज्जत्तगाणं सव्वेसिं जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, एवं पज्जत्तगाणवि सव्वेसिं जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं॥ २३१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सूक्ष्म, सूक्ष्म रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सूक्ष्म की काय स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असंख्यातकाल की है। यह असंख्यातकाल असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप है तथा असंख्यात लोकाकाश के प्रदेशों के अपहार काल के समान है इसी तरह सूक्ष्म पृथ्वीकाय यावत् सूक्ष्म निगोद की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पृथ्वीकाल (असंख्यात काल) है। सभी पर्याप्तक सूक्ष्मों और अपर्याप्तक सूक्ष्मों की जघन्य और उत्कृष्ट कायस्थिति अंतर्मुहूर्त्त प्रमाण ही है।

सुहुमस्स णं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं कालओ असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागो, एवं सुहुम-वणस्सइकाइयस्सवि सुहुमणिओयस्सवि जाव असंखेज्जा लोया असंखेज्जइभागो। पुढविकाइयाईणं वणस्सइकालो। एवं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणवि॥ २३२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सूक्ष्म का अंतर कितने काल का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सूक्ष्म का अंतर काल जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असंख्यातकाल है। यह असंख्यातकाल असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र में जितने आकाश प्रदेश हैं उन्हें प्रतिसमय एक एक कर निकालने में जितना समय लगता है उतना असंख्यातकाल समझना चाहिये। सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोद का अंतर असंख्यात काल - पृथ्वीकाल है। सूक्ष्म पृथ्वीकाय यावत् सूक्ष्म वायुकायिक का अंतर उत्कृष्ट वनस्पतिकाल अनंतकाल है। अपर्याप्तक सूक्ष्मों और पर्याप्तक सूक्ष्मों का अंतर सामान्य औघिक सूत्र के अनुसार समझना चाहिये।

अल्पबहुत्व

एवं अप्पाबहुयं, सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया सुहुमाउवाऊ विसेसाहिया सुहुमणिओया असंखेज्जगुणा सुहुमवणस्सइकाइया अणंतगुणा सुहुमा विसेसाहिया, एवं अपज्जत्तगाणं, पज्जत्तगाणवि एवं चेव॥

एएसि णं भंते! सुहुमाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं कयरे०?

गोयमा! सव्वत्थोवा सुहुमा अपज्जत्तगा सुहुमा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा, एवं जाव सुहुमणिओया॥

भावार्थ - अल्पबहुत्व इस प्रकार है - सबसे थोड़े सूक्ष्म तेजस्कायिक, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म अप्कायिक विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वायुकायिक विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म निगोद असंख्यातगुणा उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अनंतगुणा, उनसे भी सूक्ष्म विशेषाधिक हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म अपर्याप्तकों एवं सूक्ष्म पर्याप्तकों का अल्पबहुत्व भी समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! सूक्ष्म पर्याप्तकों और सूक्ष्म अपर्याप्तकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े सूक्ष्म अपर्याप्तक हैं उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं। इसी प्रकार यावत् सूक्ष्म निगोद तक कह देना चाहिये।

एएसि णं भंते! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाणं जाव सुहुमणिओयाण य पज्जत्तापज्जत्ता० कयरे कयरे हिंतो०?

गोयमा! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया सुहुमआउअपज्जत्ता विसेसाहिया सुहुमवाउअपज्जत्ता विसेसाहिया सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा सुहुमपुढवि-आउवाउपज्जत्तगा विसेसाहिया सुहुमणिओया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा सुहुमणिओया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा सुहुमअपज्जत्ता विसेसाहिया सुहुमवणस्सइपज्जत्तगा संखेज्जगुणा सुहुमा पज्जत्ता विसेसाहिया॥ २३३॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! इन सूक्ष्मों, सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों यावत् सूक्ष्म निगोदों में और पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक क्रमशः विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनंतगुणा, उनसे सूक्ष्म अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणा और उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सूक्ष्म जीवों का पहले सामान्य फिर अलग-अलग और अंत में शामिल अल्पबहुत्व कहा गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बादर जीवों का स्वरूप

बायरस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता, एवं बायरतसकाइयस्सवि, बायरपुढविकाइयस्स बावीसवाससहस्साइं, बायरआउस्स सत्तवाससहस्सं, बायरतेउस्स तिण्णि राइंदिया, बायरवाउस्स तिण्णि वाससहस्साइं, बायरवण० दसवाससहस्साइं, एवं पत्तेयसरीरबायरस्सवि, णिओयस्स जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, एवं बायरणिओयस्सवि, अपज्जत्तगाणं सव्वेसिं अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगाणं उक्कोसिया ठिई अंतोमुहुत्तूणा कायव्वा सव्वेसिं॥ २३४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बादर की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! बादर की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। यही स्थिति बादर त्रसकाय की भी है। बादर पृथ्वीकायिक की स्थिति बावीस हजार वर्ष की, बादर अप्कायिक की स्थिति सात हजार वर्ष की, बादर तेजस्काय की तीन अहोरात्रि की, बादर वायुकायिक की तीन हजार वर्ष की और बादर वनस्पतिकाय की दस हजार वर्ष की स्थिति है। इसी तरह प्रत्येक शरीर बादर की भी स्थिति है।

निगोद की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की है। बादर निगोद की स्थिति भी इतनी ही है। सभी अपर्याप्त बादरों की स्थिति अंतर्मुहूर्त्त है और सभी पर्याप्तों की उत्कृष्ट स्थिति कुल स्थिति में से अंतर्मुहूर्त्त कम करके कह देनी चाहिये।

कायस्थिति

बायरे णं भंते! बायरेत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागो, बायर-पुढविकाइयआउतेउवाउ० पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइयस्स बायरणिओयस्स एएसिं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ-

संखाईयाओ समाओ अंगुलभागो तहा असंखेज्जा।
ओहे य बायरतरुअणुबंधो सेसओ वोच्छं॥ १॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उस्सप्पिणि ओसिप्पिणि स्स अड्ढाइयपोग्गलाण परियट्टा।
बेउयहिसहस्सा खलु साहिया होंति तसकाए॥ २॥
अंतोमुहुत्तकालो होइ अपज्जत्तगाण सव्वेसिं॥
पजत्तबायरस्स य बायरतसकाइयस्साविं॥ ३॥
एएसिं ठिई सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं।
तेउस्स संख राई(दिया) दुविहणिओए मुहुत्तमद्धं तु।
सेसाणं संखेज्जा वाससहस्सा य सव्वेसिं॥ ४॥॥ २३५॥

भावार्थ - प्रश्न -हे भगवन्! बादर जीव, बादर के रूप में कितने काल तक रहता है।

उत्तर - हे गौतम! बादर जीव जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट से असंख्यातकाल तक बादर के रूप में रहता है। यह असंख्यातकाल काल से असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण तथा क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक, बादर वायुकायिक, प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक और बादर निगोद की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट सत्तर कोडाकोडी सागरोपम की है।

सामान्य बादर वनस्पतिकायिक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असंख्यातकाल की है। यह असंख्यातकाल काल से असंख्यात उत्सर्पिणी असंख्यात अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भाग में जितने प्रदेश हैं उन प्रदेशों को प्रतिसमय एक-एक आकाश प्रदेश के मान से वहाँ से खाली करने में जितना समय लगता है उसके बराबर है। प्रत्येक बादर वनस्पति की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट ७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है। सामान्य निगोद की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट अनंतकाल की है। इस अनंतकाल में अनंत उत्सर्पिणियां और अनंत अवसर्पिणियां व्यतीत हो जाती है। क्षेत्र से ढाई पुद्गल परावर्तन व्यतीत हो जाते हैं। बादर निगोद की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट ७० कोडाकोडी सागरोपम है। बादर त्रसकाय की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट से संख्यातवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम की है।

बादर अपर्याप्तक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है। बादर पर्याप्तक और बादर त्रसकायिक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक (कुछ अधिक) सागरोपम शत पृथक्त्व है। बादर तेजस्कायिक की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यात अहोरात्रि की है। निगोद (पर्याप्तक और अपर्याप्तक) की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है। शेष सभी (बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, प्रत्येक बादर वनस्पतिकायिक) की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष की होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतर

अंतरं बायरस्स बायरवणस्सइस्स णिओयस्स बायरणिओयस्स एएसिं चउण्हवि पुढविकालो जाव असंखेज्जा लोया, सेसाणं वणस्सइकालो। एवं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणवि अंतरं,

ओहे य बायरतरु ओघणिओए य बायरणिओए य।

कालमसंखेज्जंतरं सेसाण वणस्सइकालो॥ १॥ २३६॥

भावार्थ - बादर (औघिक-सामान्य), बादर वनस्पति, निगोद और बादर निगोद इन चारों का अन्तर पृथ्वीकाल यावत् असंख्यात लोक प्रमाण है। शेष सभी (बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक, बादर वायुकायिक प्रत्येक बादर वनस्पतिकायिक और बादर त्रसकायिक) का अन्तर वनस्पतिकाल का है। इसी प्रकार अपर्याप्तकों एवं पर्याप्तकों का अंतर भी समझ लेना चाहिये।

गाथा का अर्थ - औघिक बादर, बादर वनस्पति, औधिक निगोद और बादर निगोद का अंतर असंख्यात काल है और शेष सभी का अंतर वनस्पतिकाल का है।

अल्प बहुत्व

अप्पाबहुयं सव्वत्थोवा बायरतसकाइया बायरतेउकाइया असंखेज्जगुणा पत्तेयसरीरबायरवणस्सइ० असंखेज्जगुणा बायरणिओया असंखे० बायरपुढवि० असंखे० बायर आउवाउ० असंखेज्जगुणा बायरवणस्सइकाइया अणंतगुणा बायरा विसेसाहिया १॥

भावार्थ - अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े बादर त्रसकायिक, उनसे बादर तेजस्कायिक असंख्यातगुणा, उनसे प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणा, उनसे बादर निगोद असंख्यातगुणा, उनसे बादर पृथ्वीकायिक असंख्यातगुणा, बादर अप्कायिक, बादर वायुकायिक क्रमशः असंख्यातगुणा उनसे बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुणा और उनसे बादर विशेषाधिक हैं।

विवेचन - छह कायों का प्रथम सामान्य अल्प बहुत्व इस प्रकार है - सबसे थोड़े बादर त्रसकायिक हैं क्योंकि बेइन्द्रिय आदि त्रस शेष जीवों की अपेक्षा थोड़े हैं। उनसे बादर तेजस्कायिक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण है। उनसे प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि इनके स्थान असंख्यातगुणा हैं। बादर तेजस्कायिक तो मनुष्य क्षेत्र में ही है जबकि बादर वनस्पतिकायिक तीनों लोकों में हैं अतः तेजस्कायिकों से प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकायिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का क्षेत्र असंख्यातगुणा हैं। उन से बादर निगोद असंख्यातगुणा हैं क्योंकि अत्यंत सूक्ष्म अवगाहना होने से तथा प्रायः जल में सर्वत्र होने से इसका असंख्यातगुणापन घटित होता है। बादर निगोद से बादर पृथ्वीकायिक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे आठों पृथ्वियों, सब विमानों, सभी भवनों और पर्वत आदि में हैं। उनसे बादर अप्कायिक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि समुद्रों में जल की प्रचुरता है, उनसे बादर वायुकायिक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि पोलारों में भी वायु संभव है, उनसे बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुणा हैं क्योंकि प्रत्येक बादर निगोद में अनन्त जीव हैं। उनसे सामान्य बादर विशेषाधिक हैं क्योंकि बादर त्रसकायिक आदि भी उनमें सम्मिलित हैं।

एवं अपज्जत्तगाणवि २। पज्जत्तगाणं सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया बायरतसकाइया असंखेज्जगुणा पत्तेयसरीरबायरा असंखेज्जगुणा सेसा तहेव जाव बायरा विसेसाहिया ३।

एएसि णं भंते! बायराणं पज्जत्तापज्जत्ताणं कयरे कयरेहिंतो०?

गोयमा! सव्वत्थोवा बायरा पज्जत्ता बायरा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, एवं सव्वे जहा बायरतसकाइया ४।

भावार्थ - अपर्याप्तक बादरों का अल्पबहुत्व प्रथम अल्पबहुत्व के समान ही समझना चाहिए।

पर्याप्तक बादरों में-सबसे थोड़े बादर तेजस्कायिक, उनसे बादर त्रसकायिक असंख्यातगुणा, उनसे प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणा, शेष सामान्य अल्पबहुत्व के अनुसार यावत् बादर विशेषाधिक है।

प्रश्न - हे भगवन्! इन बादर पर्याप्तकों-अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प, बहुत्व, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े बादर पर्याप्तक, उनसे बादर अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं यावत् बादर त्रसकायिकों के समान कह देना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में क्रमशः छह काय के अपर्याप्तकों पर्याप्तकों एवं अपर्याप्तकों एवं पर्याप्तकों का शामिल अल्पबहुत्व कहा गया है। जो इस प्रकार है -

दूसरा अल्प बहुत्व - सबसे थोड़े बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक, उनसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं। शेष अल्पबहुत्व औधिक (सामान्य) सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

तीसरा अल्प बहुत्व - सबसे थोड़े बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं क्योंकि ये आवलिका के समयों के वर्ग को कुछ समय कम आवलिका समयों से गुणा करने पर जितने समय होते हैं उनके बराबर हैं। उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे प्रतर में अंगुल के संख्यातवें भाग मात्र जितने खण्ड होते हैं उनके बराबर हैं उनसे प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे प्रतर में अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र जितने खण्ड होते हैं उनके बराबर हैं। उनसे बादर निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे अत्यंत सूक्ष्म अवगाहना वाले तथा जलाशयों में सर्वत्र होते हैं। उनसे बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि अतिप्रभूत संख्येय प्रतर अंगुल के असंख्येयभाग खण्ड प्रमाण है। उनसे बादर अप्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे अतिप्रभूततर असंख्येय प्रतरांगुल असंख्येयभाग प्रमाण हैं। उनसे बादर वायुकायिक पर्याप्तक असंख्यात गुणा हैं क्योंकि घनीकृत लोक के असंख्येय प्रतरों के संख्यातवें भागवर्ती क्षेत्र के आकाश प्रदेशों के बराबर है। उनसे बादर वनस्पति पर्याप्तक अनंतगुणा हैं क्योंकि प्रति बादर निगोद में अनन्तजीव हैं। उनसे सामान्य बादर पर्याप्तक विशेषाधिक हैं क्योंकि बादर तेजस्कायिक आदि सब पर्याप्तकों का इनमें समावेश है।

चौथा अल्पबहुत्व - चौथा अल्पबहुत्व बादर के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों को लेकर कहा गया है। सब जगह पर्याप्तक बादर से बादर अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि एक बादर पर्याप्तक की निश्रा में असंख्यात बादर अपर्याप्तक पैदा होते हैं। कहा भी है -

"पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखेज्जा"

एएसि णं भंते! बायराणं बायरपुढविकाइयाणं जाव बायरतसकाइयाण य पज्जत्तापज्जत्ताणं कयरे कयरेहिंतो० ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया पज्जत्तगा बायरतसकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा बायरतसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा पत्तेयसरीरबायर-वणस्सइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा बायरणिओया पज्जत्तगा असंखेज्ज० पुढवि-आउवाउपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा बायरतेउअपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा पत्तेयसरीरबायर-वणस्सइ० अप० असंखेज्जगुणा बायरणिओया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा बायर-पुढविआउवाउ-अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा बायरवणस्स० पज्जत्तगा अणंतगुणा बायरपज्जत्तगा विसेसाहिया बायरवणस्सइ० अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा बायरा अपज्जत्तगा विसेसाहिया बायरा पज्जत्तगा विसेसाहिया ५।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बादरों में, बादर पृथ्वीकाय यावत् बादर त्रसकाय के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक, उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे प्रत्येक शरीर बादर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणा उनसे पृथ्वीकाय अप्काय-वायुकाय पर्याप्तक क्रमशः असंख्यातगुणा, उनसे बादर तेजस्काय अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे प्रत्येक शरीर बादर वनस्पति अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर पृथ्वीकाय-अप्काय-वायुकाय अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर वनस्पति पर्याप्तक अनंतगुणा, उनसे बादर पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे बादर वनस्पति अपर्याप्तक असंख्यगुणा, उनसे बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे बादर पर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

विवेचन - इस **पांचवें अल्पबहुत्व** में बादर छह कायों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों का शामिल अल्प बहुत्व कहा गया है। जो इस प्रकार है - सबसे थोड़े बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक, उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा,उनसे बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर अप्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर वायुकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा (स्पष्टीकरण पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये) उनसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि बादर वायुकायिक पर्याप्तक असंख्यात लोकाकाश प्रदेश के आकाश प्रदेशों के बराबर हैं किन्तु बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं। यह असंख्यात पूर्व के असंख्यात से असंख्यातगुणा समझना चाहिये। बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक से प्रत्येक बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक, बादर निगोद अपर्याप्तक, बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक, बादर अप्कायिक अपर्याप्तक, बादर वायुकायिक अपर्याप्तक क्रमशः असंख्यातगुणा हैं बादर वायुकायिक अपर्याप्तक से बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनंतगुणा हैं क्योंकि एक-एक बादर निगोद में अनंत जीव हैं। बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक से सामान्य बादर पर्याप्तक विशेषाधिक हैं क्योंकि बादर तेजस्कायिक आदि पर्याप्तक भी उनमें शामिल हैं। उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि एक-एक पर्याप्तक बादर वनस्पतिकायिक निगोद की नेश्राय में असंख्यात अपर्याप्तक बादर वनस्पतिकायिक निगोद उत्पन्न होते हैं। उनसे सामान्य बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं क्योंकि उनमें बादर तेजस्कायिक आदि अपर्याप्तकों का भी समावेश है। उनसे सामान्य बादर विशेषाधिक हैं क्योंकि इसमें सभी का समावेश हो जाता है।

इस प्रकार बादर के पांच अल्पबहुत्व कहे गये हैं।

सूक्ष्म बादरों का शामिल अल्पबहुत्व

एएसि णं भंते! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाणं जाव सुहुमणिओयाणं बायराणं बायरपुढविकाइयाणं जाव बायरतसकाइयाण य कयरे कयरेहिंतो० ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सव्वत्थोवा बायरतसकाइया बायरतेउकाइया असंखेज्जगुणा पत्तेयसरीर-बायरवण० असंखे० तहेव जाव बायरवाउकाइया असंखेज्जगुणा सुहुमतेउक्काइया असंखे० सुहुमपुढवि० विसेसाहिया सुहुमआउ० वि० सुहुमवाउ० विसेसा० सुहुमणिओया असंखेज्जगुणा बायरवणस्सइकाइया अणंतगुणा बायरा विसेसाहिया सुहुमवणस्सइ-काइया असंखे० सुहुमा विसेसा०, एवं अपज्जत्तगावि पज्जत्तगावि, णवरि सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया पज्जत्ता बायरतसकाइया पज्जत्ता असंखेज्जगुणा पत्तेयसरीर० सेसं तहेव जाव सुहुमपज्जत्ता विसेसाहिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन सूक्ष्मों में, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक यावत् सूक्ष्म निगोदों में, बादरों में, बादर पृथ्वीकायिक यावत् बादर त्रसकायिकों में कौन किससे अल्प, बहुत्व, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े बादर त्रसकायिक हैं, उनसे बादर तेजस्कायिक असंख्यातगुणा हैं उनसे प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणा हैं इसी प्रकार यावत् बादर वायुकायिक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म तेउकायिक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म अप्कायिक विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वायुकायिक विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म निगोद असंख्यातगुणा उनसे बादर वनस्पतिकायिक अनंतगुणा, उनसे बादर विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म विशेषाधिक हैं। इसी प्रकार अपर्याप्तकों एवं पर्याप्तकों का अल्प बहुत्व भी समझ लेना चाहिये किन्तु विशेषता यह है कि सबसे थोड़े बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं, उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं, उनसे प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं। शेष पूर्ववत् कह देना चाहिये यावत् सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सूक्ष्म और बादर षट्काय जीवों के तीन अल्पबहुत्व का वर्णन किया गया है। प्रथम अल्पबहुत्व सूक्ष्म और बादर जीवों का औघिक (सामान्य) अल्पबहुत्व है। दूसरे अल्पबहुत्व में इनके अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व दिया है और तीसरा अल्पबहुत्व इन जीवों के पर्याप्तकों का है।

शंका - उपर्युक्त मूल पाठ में एवं प्रज्ञापना सूत्र के कायस्थिति पद में सूक्ष्म बादर निगोद के अपर्याप्तों पर्याप्तों की काय स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त बताई है। महादण्डक में सूक्ष्म वनस्पति के अपर्याप्त जीवों से पर्याप्त जीव संख्यात गुणा बताए हैं। भगवती सूत्र के चौबीसवें शतक के सोलहवें उद्देशक में वनस्पति जीव के वनस्पति घर में पांचवें (जघन्य जघन्य) गमक में अनन्त भव बताए हैं। इन सभी पाठों की परस्पर संगति कैसे समझनी चाहिये?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाधान - उपर्युक्त सभी पाठों के सम्बन्ध में पूज्य बहुश्रुत गुरुदेव निम्नोक्त प्रकार से फरमाया करते थे- यहाँ (जीवाभिगम सूत्र) के एवं प्रज्ञापना सूत्र के १८ वें कायस्थिति पद में वर्णित अपर्याप्त की काय स्थिति 'करण अपर्याप्त' की अपेक्षा से होती है। करण अपर्याप्त कोई भी जीव नहीं मरता है। अतः अपर्याप्त की काय स्थिति एक भव की अपेक्षा से ही समझी जाती है। गमा शतक में वनस्पति जीव के वनस्पति घर में पांचवें गमक में जो अनन्त भव बताए हैं वे लब्धि अपर्याप्त की अपेक्षा से हैं। अतः गमा शतक और काय स्थिति पद में परस्पर विरोध नहीं समझना चाहिये।

शंका - सूक्ष्म वनस्पति के अपर्याप्तों से पर्याप्त जीवों को संख्यात गुणा बताया है। इसका क्या कारण है?

समाधान - गमा शतक में पांचवें गमक में जो अनन्त भव बताए हैं वह उत्कृष्ट काय संवेध की अपेक्षा बताए हैं। जघन्य काय संवेध तो दो भव का ही होता है। उत्कृष्ट काय संवेध वाले जीव स्वल्प-मात्र संख्यात भाग जितने ही होते हैं। शेष संख्यात गुण जीव मध्यम काय संवेध वाले होते हैं। वे जीव लब्धि अपर्याप्त भवों की अपेक्षा लब्धि पर्याप्त भवों में संख्यात गुण अधिक काल तक रहने वाले होते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त सभी में मिलाकर जीव अनन्तकाल तक वनस्पति में रह जाता है। उत्कृष्ट काय संवेध वाले जीव स्वल्प मात्रा में समझने पर अट्ठाणु बोल की अल्प बहुत्व के साथ भी कोई विरोध नहीं आएगा। सूक्ष्म बादर निगोद की उत्कृष्ट भव स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त ही है। पर्याप्त का लगातार आठ भवों का कालमान भी अन्तर्मुहूर्त्त होने से कायस्थिति पद में सूक्ष्म बादर निगोद के पर्यासकों की कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त बताई है।

एएसि णं भंते! सुहुमाणं बायराण य पज्जत्ताणं अपज्जत्ताण य कयरे २......?

गोयमा! सव्वत्थोवा बायरा पज्जत्ता बायरा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा सुहुमा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा सुहुमपज्जत्ता संखेज्जगुणा, एवं सुहुमपुढविबायरपुढवि जाव सुहुमणिओया बायरणिओया णवरं पत्तेयसरीरबायरवण० सव्वत्थोवा पज्जत्ता अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा, एवं बायर तसकाइयावि॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! इन सूक्ष्मों और बादरों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किससे अल्प, बहुत्व, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े बादर पर्याप्तक हैं (क्योंकि ये परिमित क्षेत्रवर्ती हैं) उनसे बादर अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं (क्योंकि प्रत्येक बादर पर्याप्तक की नेश्राय में असंख्यात बादर अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं) उनसे सूक्ष्म अपर्याप्तक, उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक संख्यातगुणा है (क्योंकि चिरकाल स्थायी होने से ये सदैव संख्यातगुणा होते हैं) इसी प्रकार सूक्ष्म पृथ्वीकाय, बादर पृथ्वीकाय यावत् सूक्ष्म निगोद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बादर निगोद के विषय में समझ लेना चाहिये। विशेषता है कि प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक सबसे थोड़े अपर्याप्तक असंख्यातगुणा। इसी प्रकार बादर त्रसकायिकों के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत चौथे अल्पबहुत्व में छहकाय जीवों के प्रत्येक के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व कहा गया है। सूक्ष्म जीवों में अपर्याप्तक जीव थोड़े और पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं और *बादरों में पर्याप्तक थोड़े और अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं।*

सव्वेसिं भंते! पज्जत्तअपज्जत्तगाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया पज्जत्ता बायरतसकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ते चेव अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा पत्तेयसरीरबायर-वणस्सइअपज्जत्तगा असंखे० बायरणिओया पज्जत्ता असंखे० बायरपुढवि० पज्जत्ता असं० आउवाउपज्जत्ता असंखे० बायरतेउकाइयअपज्जत्ता असंखे० पत्तेय० अपज्जत्ता असंखे० बायरणिओय-अपज्जत्ता असं० बायरपुढवि० आउवाउकाइ० अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा सुहुम-तेउकाइया अपज्जत्तगा असं० सुहुमपुढविआऊवाउअपज्जत्ता विसेसा० सुहुमतेउकाइय-पज्जत्तगा संखेज्जगुणा सुहुमपुढविआउवाउपज्जत्तगा विसेसाहिया सुहुमणिओया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा सुहुमणिओया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा बायरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा बायरा पज्जत्तगा विसेसाहिया बायरवणस्सइ० अपज्जत्ता असंखे० बायरा अपज्जत्ता विसे० बायरा विसेसाहिया सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा सुहुमा अपज्जत्ता विसेसाहिया सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्ता संखेज्जगुणा सुहुमा पज्जत्तगा विसेसाहिया सुहुमा विसेसाहिया॥ २३७॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! सभी पर्याप्तकों एवं अपर्याप्तकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक, उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर अप्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर वायुकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनसे बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक संख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक उनसे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणा, उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनंतगुणा उनसे सामान्य बादर पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सामान्य बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे सामान्य बादर विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सामान्य सूक्ष्म अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणा, उनसे सामान्य सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक उनसे सामान्य सूक्ष्म विशेषाधिक हैं।

विवेचन - प्रस्तुत पांचवें अल्पबहुत्व में शभी षट्कायिक पर्याप्तकों अपर्याप्तकों का शामिल अल्पबहुत्व कहा गया है।

निगोद वर्णन

कइविहा णं भंते! णिओया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा णिओया पण्णत्ता, तंजहा-णिओया य णिओयजीवा य॥

णिओया णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-सुहुमणिओया य बायरणिओया य॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! निगोद कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! निगोद दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - निगोद और निगोद जीव।

प्रश्न - हे भगवन्! निगोद कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर-हे गौतम! निगोद दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - सूक्ष्म निगोद और बादर निगोद।

विवेचन - निगोद का अर्थ है-अनंतजीवों का पिण्ड (आश्रय स्थान)। यहाँ निगोद के दो भेद कहे गये हैं-निगोद और निगोद जीव। निगोद और निगोद जीव की व्याख्यात करते हुए टीकाकार कहते हैं -

'तत्र निगोदा जीवाश्रय विशेषा, निगोद जीवा विभिन्न तेजसकार्मणा जीवा एव।'

अर्थात् - अनंत जीवों का आधार भूत शरीर निगोद है और निगोद जीव एक ही औदारिक शरीर में रहे हुए भिन्न-भिन्न तैजस कार्मण शरीर वाले अनंत जीवात्मक है। सूक्ष्म और बादर के भेद से निगोद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के दो भेद कहे गये हैं। सूक्ष्म निगोद सारे लोक में ठसाठस भरे हुए हैं और बादर निगोद मूल, कंद आदि रूप हैं।

सुहुमणिओया णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य॥

बायरणिओयावि दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य॥

णिओयजीवा णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्मत्ता, तंजहा-सुहुमणिओयजीवा य बायरणिओयजीवा य। सुहुमणिओयजीवा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। बायरणिओयजीवा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य॥ २३८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सूक्ष्म निगोद कितने प्रकार के हैं?

उत्तर - हे गौतम! सूक्ष्म निगोद दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक और अपर्याप्तक। बादर निगोद के भी दो भेद कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

प्रश्न - हे भगवन्! निगोद जीव कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! निगोद जीव दो प्रकार के हैं-१. सूक्ष्म निगोद जीव और २. बादर निगोद जीव।

सूक्ष्म निगोद जीव दो प्रकार के कहे गये हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक। बादर निगोद जीव भी दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

विवेचन - निगोद और निगोद जीव के दो दो भेद कहे गये हैं - सूक्ष्म और बादर तथा प्रत्येक के दो दो भेद कहे गये हैं - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

णिओया णं भंते! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता?

गोयमा! णो संखेज्जा असंखेज्जा णो अणंता, एवं पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि॥

सुहुमणिओया णं भंते! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता?

गोयमा! णो संखेज्जा असंखेज्जा णो अणंता, एवं पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि, एवं बायरावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि णो संखेज्जा असंखेज्जा णो अणंता॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! निगोद द्रव्य की अपेक्षा क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! निगोद द्रव्य की अपेक्षा संख्यात नहीं हैं, असंख्यात हैं, अनन्त नहीं हैं। इसी प्रकार इनके पर्याप्तक और अपर्याप्तक भी कह देने चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! सूक्ष्म निगोद द्रव्य की अपेक्षा क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सूक्ष्म निगोद द्रव्य की अपेक्षा संख्यात नहीं, असंख्यात हैं, अनंत नहीं। इसी तरह पर्याप्तक और अपर्याप्तक के विषय में भी कह देना चाहिए। इसी प्रकार बादर निगोद के विषय में भी समझना चाहिये। पर्याप्तक और अपर्याप्तक के विषय में इसी तरह कह देना चाहिये वे संख्यात नहीं, असंख्यात हैं, अनंत नहीं है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में निगोद की संख्या विषयक वर्णन है। द्रव्य की अपेक्षा से निगोद संख्यात नहीं हैं क्योंकि अंगुल के असंख्यातवें भाग अवगाहना वाले निगोद सारे लोक में व्याप्त है। वे असंख्यात हैं क्योंकि असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं। वे अनंत नहीं हैं क्योंकि केवल ज्ञानियों ने उन्हें अनन्त नहीं जाना है। इसी प्रकार सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्त निगोद के विषय में समझ लेना चाहिये।

णिओयजीवा णं भंते! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता? गोयमा! णो संखेज्जा णो असंखेज्जा अणंता, एवं पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि एवं सुहुमणिओयजीवावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि, बायरणिओयजीवावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि॥

णिओया णं भंते! पएसट्ठयाए किं संखेज्जा० पुच्छा, गोयमा! णो संखेज्जा णो असंखेज्जा अणंता, एवं पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि। एवं सुहुमणिओयावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि, पएसट्ठयाए सव्वे अणंता, एवं बायरणिओयावि पज्जत्तयावि अप्पज्जत्तयावि, पएसट्ठयाए सव्वे अणंता, एवं णिओयजीवा णवविहावि पएसट्ठयाए सव्वे अणंता॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! निगोद जीव द्रव्य की अपेक्षा क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! निगोद जीव द्रव्य की अपेक्षा संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, अनंत हैं। इसी प्रकार इनके पर्याप्तक और अपर्याप्तक के विषय में भी समझना चाहिये। इसी प्रकार सूक्ष्म निगोद जीवों, इनके पर्याप्तकों अपर्याप्तकों, बादर निगोद जीवों, इनके अपर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के विषय में भी कह देना चाहिए।

प्रश्न - हे भगवन्! प्रदेश की अपेक्षा निगोद असंख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! प्रदेश की अपेक्षा निगोद संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं किन्तु अनन्त हैं। इसी प्रकार पर्याप्तक और अपर्याप्तक के विषय में भी कहना चाहिये। इसी प्रकार सूक्ष्म निगोद और उनके पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक के विषय में भी समझना चाहिए। ये सब प्रदेश की अपेक्षा अनन्त हैं। इसी प्रकार बादर निगोद के और उनके पर्याप्तक और अपर्याप्तक के विषय में भी समझ लेना चाहिए। ये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सब प्रदेश की अपेक्षा अनन्त हैं। इसी प्रकार निगोद जीवों के भी प्रदेश की अपेक्षा नौ ही सूत्रों में अनंत कह देना चाहिये।

विवेचन - प्रदेशों की अपेक्षा से निगोद के ९ सूत्रों एवं निगोद जीवों के ९ सूत्रों, इस तरह कुल १८ ही सूत्रों में अनन्त कह देना चाहिये। क्योंकि प्रत्येक निगोद में अनन्त प्रदेश होते हैं।

निगोद के नौ सूत्र - निगोद सामान्य, निगोद अपर्याप्तक, निगोद पर्याप्तक, सूक्ष्म निगोद सामान्य, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक, सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक, बादर निगोद सामान्य, बादर निगोद अपर्याप्तक, बादर निगोद पर्याप्तक।

निगोद जीव के नौ सूत्र - निगोद जीव सामान्य, निगोद जीव अपर्याप्तक, निगोद जीव पर्याप्तक, सूक्ष्म निगोदजीव सामान्य, सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्तक, सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्तक, बादर निगोद जीव सामान्य, बादर निगोद जीव अपर्याप्तक, बादर निगोद जीव पर्याप्तक।

ये अठारह ही सूत्र प्रदेश की अपेक्षा अनंत हैं।

अल्पबहुत्व

एएसि णं भंते! णिओयाणं सुहुमाणं बायराणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा बायरणिओयपज्जत्तगा दव्वट्ठयाए बायरणिओया अपज्जत्तगा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा सुहुमणिओया अपज्जत्तगा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा सुहुमणिओया पज्जत्तगा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, एवं पएसट्ठयाए वि॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन सूक्ष्म बादर पर्याप्तक और अपर्याप्तक निगोदों में द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेश की अपेक्षा तथा द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा से कौन किससे कम, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! द्रव्य की अपेक्षा सबसे थोड़े बादर निगोद पर्याप्तक हैं, उनसे बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं, उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं, उनसे सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं। इसी प्रकार प्रदेश की अपेक्षा से भी अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा निगोद का अल्पबहुत्व कहा गया है। जो इस प्रकार है -

१. द्रव्य की अपेक्षा - सबसे थोड़े बादर निगोद (मूल कंद आदि गत) पर्याप्तक हैं क्योंकि ये प्रतिनियत क्षेत्रवर्ती है, उनसे बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं, क्योंकि प्रत्येक बादर निगोद की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निश्रा में असंख्यात अपर्याप्तक बादर निगोद उत्पन्न होते हैं। उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि लोक व्यापी होने से असंख्यातगुणा क्षेत्र है। उनसे सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं क्योंकि सूक्ष्मों में अपर्याप्तकों से पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं।

२. प्रदेश की अपेक्षा - सबसे थोड़े बादर निगोद पर्याप्तक, उनसे बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा और उनसे सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं।

दव्वट्ठपएसट्ठयाए सव्वत्थोवा बायरणिओया य पज्जत्ता दव्वट्ठयाए जाव सुहुमणिणिओया पज्जत्ता य दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, सुहुमणिओएहिंतो पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिओया पज्जत्ता पएसट्ठयाए अणंतगुणा, बायरणिओया अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखे० जाव सुहुमणिओया पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा। एवं णिओयजीवावि, णवरि संकमए जाव सुहुमणिओयजीवेहिंतो पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिओयजीवा पज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सेसं तहेव जाव सुहुमणिओयजीवा पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा॥

भावार्थ - द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा से-सबसे थोड़े बादर निगोद पर्याप्तक द्रव्य की अपेक्षा से, उनसे बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा द्रव्य की अपेक्षा, उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा द्रव्य की अपेक्षा उनसे सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणा द्रव्य की अपेक्षा से, उनसे बादर निगोद पर्याप्तक अनंतगुणा प्रदेश की अपेक्षा से, उनसे बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा प्रदेश की अपेक्षा से, उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा प्रदेश की अपेक्षा से, उनसे सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणा प्रदेश की अपेक्षा से।

इसी प्रकार निगोद जीवों का अल्पबहुत्व भी समझ लेना चाहिये विशेषता यह है कि सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्तक संख्यातगुणा द्रव्य की अपेक्षा से बादर निगोद जीव पर्याप्तक असंख्यातगुणा प्रदेश की अपेक्षा से कह देना चाहिये। इसी प्रकार यावत् सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्तक संख्यातगुणा प्रदेश की अपेक्षा समझना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में निगोदों का अल्पबहुत्व द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा सम्मिलित रूप से कहा गया है। निगोदों के समान ही **निगोद जीवों का अल्पबहुत्व** इस प्रकार है -

द्रव्य की अपेक्षा से - सबसे थोड़े बादर निगोद जीव पर्याप्तक, उनसे बादर निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्तक संख्यातगुणा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेश की अपेक्षा से - सबसे थोड़े बादर निगोद जीव पर्याप्तक, उनसे बादर निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्तक संख्यातगुणा।

द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा से - सबसे थोड़े बादर निगोद जीव पर्याप्तक द्रव्य की अपेक्षा, उनसे बादर निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणा द्रव्य की अपेक्षा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणा द्रव्य की अपेक्षा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्तक संख्यातगुणा द्रव्य की अपेक्षा, उनसे बादर निगोदजीव पर्याप्तक असंख्यातगुणा प्रदेश की अपेक्षा, उनसे बादर निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणा प्रदेश की अपेक्षा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणा प्रदेश की अपेक्षा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्तक संख्यातगुणा प्रदेश की अपेक्षा।

निगोद जीवों की उपर्युक्त अल्प बहुत्व में - "**णवरिं संकमए जाव सुहुम णिओय जीवेहिंतो पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बायर णिओय जीवा पज्जत्ता पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा**" बताया है। इससे आगमकार (अठाणु बोल में से) चौरासीवें बोल के जीव द्रव्यों से सत्तहतरवें बोल के जीव प्रदेश असंख्यातगुणा हैं, यह बता रहे हैं। (७७वें बोल के जीव × लोकाकाश प्रदेश=७७ वें बोल के जीवों के आत्म-प्रदेश) इस पाठ से यह ध्वनित होता है कि - '७७ वें बोल के जीवों से ८४ वें बोल के जीव - जो असंख्यातगुणा बताए गये हैं वह असंख्यगुणाकार राशि-लोकाकाश-प्रदेशों के असंख्यातवें भाग जितना ही समझना चाहिये।' इस प्रकार मानने से ही ८४ वें बोल के जीव द्रव्यों से ७७ वें बोल के जीव प्रदेश असंख्यगुण हो सकते हैं। अत: यह फलित हुआ कि - '७७ वें बोल से ७९ वां बोल लोकाकाश के अत्यल्प असंख्यातवें भाग के असंख्य प्रदेशों जितना असंख्यातगुणा होगा। इससे ८२ वां बोल भी वैसा ही असंख्यातगुणा समझना चाहिए। इससे ८४ वाँ बोल संख्यातगुणा हैं। इस प्रकार दो बार असंख्यातगुण वृद्धि, चार बार विशेषाधिक वृद्धि एवं एक बार, संख्यातगुणा की वृद्धि की जाने पर भी ७७ वें बोल से ८४ वां बोल लोकाकाश प्रदेशों के असंख्यातवें भाग जितना ही गुण वृद्धि वाला हुआ है।

यहाँ पर 'संक्रमण' का अर्थ - 'द्रव्यार्थ की अल्प बहुत्व से प्रदेशार्थ की अल्प बहुतत्व में संक्रामित होना' उचित लगता है। ऊपर निगोदों की अल्प बहुत्व में - प्रदेशार्थ में संक्रमण करते हुए अनन्तगुणा कहा था, किन्तु यहाँ शरीर प्रदेश नहीं होकर जीव प्रदेश होने से असंख्यातगुणा ही कहना चाहिए। यह इसका आशय प्रतीत होता है। इसी अल्प बहुत्व में - पर्याप्त सूक्ष्म निगोद के जीव प्रदेशों से पर्याप्त बादर निगोद के प्रदेश अनन्तगुणा बताये हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि - "आगमकार यहाँ पर पर्याप्तक निगोद शब्द से मात्र औदारिक शरीर का ग्रहण नहीं करके तैजस कार्मण शरीर का एवं उन्हीं में समाविष्ट योग, लेश्या आदि का भी ग्रहण करते हैं।" क्योंकि मात्र औदारिक शरीर के प्रदेश लेने पर अनन्तगुणा संभव नहीं है। एक औदारिक शरीर में सिद्धों के अनंतवें भाग जितने प्रदेश ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संभव हैं। एक निगोद में सिद्धों से अनन्तगुण जीव हैं। इससे असंख्यातगुण इनके प्रदेश हैं। ७७ वें बोल से ८४ वां बोल असंख्यातगुणा हैं। ८४ वें बोल के जीव प्रदेशों से मात्र औदारिक शरीर के प्रदेश ही अनन्तगुण हीन होते हैं। आगम में अनन्तगुण अधिक बताएं हैं, इससे यही प्रतीत होता है कि - आगमकारों ने यहाँ पर तीनों शरीरों के प्रदेशों एवं उसी के अन्तर्गत योग, लेश्या आदि के पुद्गल प्रदेशों की भी शरीर प्रदेशों में सम्मिलित विवक्षा की है। इस प्रकार संभावना लगती है। तत्त्व केवली गम्य है।

एएसि णं भंते! णिओयाणं सुहुमाणं बायराणं पज्जत्ताणं अपज्जत्ताणं णिओयजीवाणं सुहुमाणं बायराणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो० ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बायरणिओया पज्जत्ता दव्वट्ठयाए बायरणिओया अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा सुहुमणिओया अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा सुहुमणिओया पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा सुहुमणिओएहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिओयजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए अणंतगुणा बायरणिओयजीवा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा सुहुमणिओयजीवा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा सुहुमणिओयजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, पएसट्ठयाए सव्वत्थोवा बायरणिओयजीवा पज्जत्ता पएसट्ठयाए बायरणिओया अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा सुहुमणिओयजीवा अपज्जत्तगा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा सुहुमणिओयजीवा पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा सुहुमणिओयजीवेहिंतो पएसट्ठयाए बायरणिओया पज्जत्ता पएसट्ठयाए अणंतगुणा बायरणिओया अपज्जत्तगा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा जाव सुहुमणिओया पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा, दव्वट्ठपएसट्ठयाए सव्वत्थोवा बायरणिओया पज्जत्ता दव्वट्ठयाए बायरणिओया अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा जाव सुहुमणिओया पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा सुहुमणिओयाहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिओयजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए अणंतगुणा सेसा तहेव जाव सुहुमणिओयजीवा पज्जत्तगा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा सुहुमणिओयजीवेहिंतों पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिओयजीव पज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा सेसा तहेव जाव सुहुमणिओया पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा॥ सेत्तं छव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता॥ २३९॥

॥ पंचमा छव्विहा पडिवत्ती समत्ता॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक निगोदों में और सूक्ष्म बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक निगोद जीवों में द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेश की अपेक्षा से और द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! **द्रव्य की अपेक्षा से** - सबसे थोड़े बादर निगोद पर्याप्तक, उनसे बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा उनसे सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणा, उनसे बादर निगोद जीव पर्याप्तक अनंतगुणा, उनसे बादर निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्तक संख्यातगुणा।

प्रदेश की अपेक्षा से - सबसे थोड़े बादर निगोदजीव पर्याप्तक, उनसे बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्तक संख्यातगुणा, उनसे बादर निगोद पर्याप्तक अनंतगुणा, उनसे बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा, उसने सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणा।

द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा से - सबसे थोड़े बादर निगोद पर्याप्तक द्रव्य की अपेक्षा, उनसे बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा द्रव्य की अपेक्षा, उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा द्रव्य की अपेक्षा, उनसे सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणा द्रव्य की अपेक्षा, उनसे बादर निगोद जीव पर्याप्तक अनन्तगुणा द्रव्य की अपेक्षा, उनसे बादर निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणा द्रव्य की अपेक्षा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणा द्रव्य की अपेक्षा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्तक संख्यातगुणा द्रव्य की अपेक्षा, उनसे बादर निगोद जीव पर्याप्तक असंख्यातगुणा प्रदेश की अपेक्षा, उनसे बादर निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणा प्रदेश की अपेक्षा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणा प्रदेश की अपेक्षा, उनसे सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्तक संख्यातगुणा प्रदेश की अपेक्षा, उनसे बादर निगोद पर्याप्तक अनंतगुणा प्रदेश की अपेक्षा, उनसे बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यात गुणा प्रदेश की अपेक्षा, उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणा प्रदेश की अपेक्षा, उनसे सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणा प्रदेश की अपेक्षा।

इसी प्रकार निगोद और निगोद जीवों का सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेश की अपेक्षा और द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा समझ लेना चाहिये।

इस प्रकार छह प्रकार के संसार समापन्नक जीवों की यह पांचवीं प्रतिपत्ति समाप्त हुई।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में निगोदों और निगोद जीवों के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक का द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा अल्प बहुत्व का कथन किया गया है जो भावार्थ से स्पष्ट है। इस प्रकार यह छह प्रकार के संसारी जीवों की पांचवीं प्रतिपत्ति पूर्ण हुई है।

॥ षट् विधाख्या नामक पांचवीं प्रतिपत्ति समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठी सत्तविहा पडिवत्ती

सप्तविधाख्या षष्ठ प्रतिपत्ति

पांचवीं प्रतिपत्ति में छह प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का वर्णन करने के पश्चात् सूत्रकार इस छठी प्रतिपत्ति में सात प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का वर्णन करते हैं, जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-सत्तविहा संसारसमावण्णगा जीवा प० ते एवमाहंसु, तंजहा-णेरइया तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणिणीओ मणुस्सा मणुस्सीओ देवा देवीओ॥

भावार्थ - जो आचार्य ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि संसार समापन्नक जीव सात प्रकार के हैं, वे सात प्रकार इस प्रकार हैं - नैरयिक, तिर्यंच योनिक, तिर्यंच स्त्री, मनुष्य, मनुष्यिणी (मनुष्य स्त्री), देव और देवी।

विवेचन - इस छठी प्रतिपत्ति में संसारी जीवों के सात भेद इस प्रकार बताये हैं - १. नैरयिक २. तिर्यंच ३. तिर्यंच स्त्री ४. मनुष्य ५. मनुष्य स्त्री ६. देव और ७. देवी।

णेरइयस्स ठिई जहण्णेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, तिरिक्खजोणियस्स ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं, एवं तिरिक्खजोणिणीएवि, मणुस्साणवि मणुस्सीणवि, देवाणं ठिई जहा णेरइयाणं, देवीणं० जहण्णेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं पणपण्णपलिओवमाइं॥

भावार्थ - नैरयिक की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। तिर्यंच योनिक की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है। इसी प्रकार तिर्यंच स्त्री, मनुष्य और मनुष्य स्त्री की भी स्थिति समझनी चाहिये। देवों की स्थिति नैरयिक की स्थिति के समान है। देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सातों जीवों की स्थिति का प्रतिपादन है जो इस प्रकार है - नैरयिकों और देवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। तिर्यंच, तिर्यंच स्त्री, मनुष्य और मनुष्य स्त्री की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम है। देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की (दूसरे ईशान देवलोक की अपरिगृहीता देवियों की अपेक्षा) कही गयी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेरइयदेवदेवीणं जच्चेव ठिई सच्चेव संचिट्ठणा। तिरिक्खजोणिए णं भंते! तिरिक्खजोणिएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, तिरिक्खजोणिणीणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं। एवं मणुस्सस्स मणुस्सीएवि॥

भावार्थ - नैरयिक और देवों की तथा देवियों की जो भवस्थिति है वही उनकी संचिट्ठणा (कायस्थिति) है।

प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंच कितने काल तक तिर्यंच रूप में रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंच की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल (अनंत काल) है। तिर्यंच स्त्री की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्ण कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम है। इसी प्रकार मनुष्यों और मनुष्य स्त्रियों की कायस्थिति (संचिट्ठणा) भी समझनी चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सात प्रकार के जीवों की संचिट्ठणा (कायस्थिति) का कथन किया गया है।

नैरयिकों, देवों और देवियों की जितनी भवस्थिति है उतनी ही उनकी कायस्थिति (संचिट्ठणा) है क्योंकि देव, नैरयिक मरकर अनन्तर भव में देव या नैरयिक नहीं होते। तिर्यंचों की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल (अनन्तकाल) है। यह अनन्तकाल, काल से अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण है। क्षेत्र से असंख्यात लोकाकाश प्रदेशों को प्रतिसमय एक एक निकालने पर जितने समय में वे खाली हो उतने काल प्रमाण हैं तथा आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने समय है उतने पुद्गल परावर्त और असंख्यात पुद्गल परावर्त प्रमाण वह अनंतकाल है। तिर्यंच स्त्रियों की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम की है। पूर्व कोटि आयुष्य वाले निरन्तर सात भव करे और आठवें भव में देवकुरु आदि में उत्पन्न हो उस अपेक्षा से उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम का काल होता है। मनुष्य और मनुष्य स्त्री की कायस्थिति भी इतनी ही समझनी चाहिये।

यहाँ पर 'पूर्वकोटि पृथक्त्व' शब्द से सात करोड़ पूर्व वर्षों को समझना चाहिये।

णेरइयस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। एवं सव्वाणं तिरिक्खजोणियवज्जाणं, तिरिक्खजोणियाणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं॥

भावार्थ - नैरयिकों का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यंच योनिकों को छोड़ कर सभी का अंतर कह देना चाहिये। तिर्यंचों का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक (साधिक) सागरोपम शत पृथक्त्व है।

विवेचन - नरक से निकल कर तिर्यंच या मनुष्य गर्भ में अशुभ अध्यवसाय से मर कर नरक में उत्पन्न होने की अपेक्षा से नैरयिक का जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त्त का कहा है। उत्कृष्ट अंतर वनस्पतिकाल (अनंत काल) का है। यह नरक से निकल कर अनंत काल तक वनस्पति में रह कर पुनः नरक में उत्पन्न होने की अपेक्षा से है। तिर्यंच का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम शत पृथक्त्व (दो सौ से लेकर नौ सौ सागरोपम) है। शेष सभी (तिर्यंच स्त्री, मनुष्य, मनुष्य स्त्री, देव और देवी) का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है।

अप्पाबहुयं-सव्वत्थोवाओ मणुस्सीओ मणुस्सा असंखेज्जगुणा णेरइया असंखेज्जगुणा तिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ देवा असंखेज्जगुणा देवीओ संखेज्जगुणाओ तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा। सेत्तं सत्तविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता॥ २४०॥

॥ छट्ठी सत्तविहा पडिवत्ती समत्ता॥

भावार्थ - अल्पबहुत्व-सबसे थोड़ी मनुष्य स्त्रियाँ, उनसे मनुष्य असंख्यातगुणा, उनसे नैरयिक असंख्यातगुणा, उनसे तिर्यंच स्त्रियां असंख्यातगुणी, उनसे देव असंख्यातगुणा, उनसे देवियाँ संख्यातगुणी और उनसे तिर्यंच अनन्तगुणा हैं। इस प्रकार सात तरह के संसार समापन्नक जीव कहे गये हैं। यह सप्तविधाख्या छठी प्रतिपत्ति समाप्त हुई।

विवेचन - सबसे थोड़ी मनुष्य स्त्रियाँ हैं क्योंकि वे कतिपय कोटिकोटि प्रमाण हैं। उनसे मनुष्य असंख्यातगुणा हैं क्योंकि मनुष्य श्रेणी के असंख्यात प्रदेश राशि प्रमाण हैं। उनसे तिर्यंच स्त्रियाँ असंख्यातगुणी हैं क्योंकि वे प्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती असंख्य श्रेणियों के आकाश प्रदेशों की राशि के प्रमाण होती है। उनसे देव असंख्यातगुणा हैं। क्योंकि जलचर तिर्यंचस्त्रियों से वाणव्यंतर, ज्योतिषी देव असंख्यातगुणा कहे गये हैं। उनसे देवियां असंख्यातगुणी हैं क्योंकि देवियां देवों से बत्तीसगुणी और बत्तीस अधिक हैं। उनसे तिर्यंच अनंतगुणा हैं क्योंकि वनस्पतिकायिक जीव अनंत हैं। इस प्रकार यह सप्तविध संसार समापन्नक जीवों की छठी प्रतिपत्ति हुई।

॥ सप्तविधाख्या नामक छठी प्रतिपत्ति समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्तमा अट्ठविहपडिवत्ती

अष्टविधाख्या सप्तम प्रतिपत्ति

छठी प्रतिपत्ति में सात प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का कथन करने के बाद सूत्रकार इस सातवीं प्रतिपत्ति में आठ प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का कथन करते हैं, जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-अट्ठविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा-पढमसमयणेरइया अपढमसमयणेरइया पढमसमयतिरिक्खजोणिया अपढमसमयतिरिक्खजोणिया पढमसमयमणुस्सा अपढमसमयमणुस्सा पढमसमयदेवा अपढमसमयदेवा॥

भावार्थ - जो ऐसा कहते हैं कि संसार समापन्नक जीव आठ प्रकार के हैं उनके अनुसार ये आठ भेद इस प्रकार हैं - १. प्रथम समय नैरयिक २. अप्रथम समय नैरयिक ३. प्रथम समय तिर्यंचयोनिक ४. अप्रथम समय तिर्यंचयोनिक ५. प्रथम समय मनुष्य ६. अप्रथम समय मनुष्य ७. प्रथम समय देव और ८. अप्रथम समय देव।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आठ प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का कथन किया गया है। नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देव, इन चार के प्रथम समय और अप्रथम समय इस प्रकार दो-दो भेद किये गये हैं। इस प्रकार संसारी जीवों के ४×२=८ आठ भेद हुए।

जो अपने जन्म के प्रथम समय में वर्तमान हैं ऐसे नैरयिक आदि, प्रथम समय नैरयिक आदि कहलाते हैं। प्रथम समय को छोड़ कर शेष सब समयों में वर्तमान जीव अप्रथम समय नैरयिक आदि कहलाते हैं।

पढमसमयणेरइयस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! पढमसमय-णेरइयस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं एक्कं समयं, अपढमसमयणेरइयस्स जहण्णेणं दसवाससहस्साइं समऊणाइं उक्कोसेणं तेत्तीस सागरोवमाइं समऊणाइं। पढमसमय-तिरिक्खजोणियस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं एक्कं समयं, अपढमसमय-तिरिक्खजोणियस्स जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समऊणं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं समऊणाइं, एवं मणुस्साणवि जहा तिरिक्खजोणियाणं, देवाणं जहा णेरइयाणं ठिई॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय नैरयिक की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! प्रथम समय नैरयिक की स्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट भी एक समय की है। अप्रथम समय नैरयिक की स्थिति जघन्य एक समय कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम की है। प्रथम समय तिर्यंच योनिक की स्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट भी एक समय की है। अप्रथम समय तिर्यंच योनिक की स्थिति जघन्य एक समय कम क्षुल्लक भव ग्रहण और उत्कृष्ट एक समय कम तीन पल्योपम की है। इस प्रकार मनुष्यों की स्थिति तिर्यंचों के समान और देवों की स्थिति नैरयिकों के समान कह देनी चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आठ प्रकार के संसारी जीवों की स्थिति का कथन किया गया है। प्रथम समय नैरयिक की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति एक समय की है क्योंकि द्वितीय आदि समयों में वह प्रथम समय वाला नहीं रहता। अप्रथम समय नैरयिक की स्थिति जघन्य एक समय कम दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम की है। नैरयिकों की तरह ही देवों की स्थिति भी समझ लेनी चाहिये। प्रथम समय तिर्यंच की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति एक समय की तथा अप्रथम समय तिर्यंच की स्थिति जघन्य एक समय कम क्षुल्लक भव ग्रहण (२५६ आवलिकाओं का एक क्षुल्लक भव होता है) और उत्कृष्ट एक समय कम तीन पल्योपम की है। तिर्यंचों के समान ही मनुष्यों की स्थिति भी समझनी चाहिये।

णेरइयदेवाणं जच्चेव ठिई सच्चेव संचिट्ठणा दुविहाणवि। पढमसमय-तिरिक्खजोणिए णं भंते! पढ० कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं एक्कं समयं, अपढम० तिरिक्खजोणियस्स जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। पढमसमयमणुस्साणं जहण्णेणं उक्कोसेणं एक्कं समयं, अपढम० मणुस्साणं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं समयऊणाइं॥

भावार्थ - नैरयिकों और देवों की जो भवस्थिति है वही उन दोनों की संचिट्ठणा (कायस्थिति) है।

प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय तिर्यंच की संचिट्ठणा कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! प्रथम समय तिर्यंच का संचिट्ठणा काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट भी एक समय का है। अप्रथम समय तिर्यंच की संचिट्ठणा जघन्य एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्कृष्ट वनस्पतिकाल (अनन्तकाल) है। प्रथम समय मनुष्य की संचिट्ठणा जघन्य एक समय उत्कृष्ट एक समय तथा अप्रथम समय मनुष्य की संचिट्ठणा जघन्य एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण और उत्कृष्ट एक समय कम पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम की है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आठ प्रकार के संसारी जीवों की संचिट्ठणा (कायस्थिति) कही गई है। देवों और नैरयिकों की जो भवस्थिति है वही उनकी कायस्थिति है क्योंकि देव और नैरयिक मर कर पुनः देव और नैरयिक नहीं होते।

प्रथम समय तिर्यंच की कायस्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय की है। अप्रथम समय तिर्यंच की कायस्थिति जघन्य एक समय कम क्षुल्लक भव की है यहाँ एक समय कम करने का कारण वह प्रथम समय में 'अप्रथम समय' विशेषण वाला नहीं रहता। उत्कृष्ट कायस्थिति वनस्पतिकाल (अनंत काल) की है। प्रथम समय मनुष्य की जघन्य कायस्थिति एक समय की और उत्कृष्ट कायस्थिति भी एक समय की है। अप्रथम समय मनुष्य की कायस्थिति जघन्य एक समय कम क्षुल्लकभव ग्रहण और उत्कृष्ट एक समय कम पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम की है। यह उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि आयुष्य वाले लगातार सात भव और आठवें भव में देवकुरु आदि में उत्पन्न होने की अपेक्षा कही गई है।

अंतरं-पढमसमयणेरइयस्स जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, अपढमसमय० जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। पढमसमय-तिरिक्खजोणियस्स जहण्णेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समऊणाइं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं। पढमसमय-मणुस्सस्स जहण्णेणं दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं समऊणाइं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, अपढमसमयमणुस्सस्स जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

देवाणं जहा णेरइयाणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, अपढमसमय० जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो॥

भावार्थ - अंतर-प्रथम समय नैरयिक का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। अप्रथम समय नैरयिक का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। प्रथम समय तिर्यंच का जघन्य अंतर एक समय कम दो क्षुल्लक भव ग्रहण और उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल है। अप्रथम समय तिर्यंच का अन्तर जघन्य समय अधिक (समयाधिक) एक क्षुल्लक भव ग्रहण और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शत पृथक्त्व है।

प्रथम समय मनुष्य का जघन्य अंतर एक समय कम दो क्षुल्लक भव ग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। अप्रथम समय मनुष्य का अन्तर जघन्य समयाधिक क्षुल्लकभव ग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

देवों का अंतर नैरयिकों के समान कहना चाहिये। वह इस प्रकार हैं - प्रथम समय देव का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तथा अप्रथम समय देव का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आठ प्रकार के संसारी जीवों का अन्तर कहा गया है जो इस प्रकार समझना चाहिये -

प्रथम समय नैरयिक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष कहा है यह दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिक के नरक से निकल कर अंतर्मुहूर्त्त काल पर्यन्त अन्यत्र रह कर पुनः नरक में उत्पन्न होने की अपेक्षा है। उत्कृष्ट अंतर वनस्पतिकाल (अनन्तकाल) है यह नरक से निकल कर अनन्तकाल तक वनस्पति में रहने के बाद पुनः नरक में उत्पन्न होने की अपेक्षा समझना चाहिये। अप्रथम समय नैरयिक का जघन्य अंतर समयाधिक अंतर्मुहूर्त्त है। यह नरक से निकल कर तिर्यंच गर्भ में या मनुष्य गर्भ में अंतर्मुहूर्त्त रह कर पुनः नरक में उत्पन्न होने की अपेक्षा है। प्रथम समय अधिक होने से समयाधिक कहा है। उत्कृष्ट अंतर वनस्पतिकाल है।

प्रथम समय तिर्यंच का जघन्य अंतर एक समय कम दो क्षुल्लक भव ग्रहण है। यह तिर्यंच के मनुष्य का भव कर पुनः तिर्यंच में उत्पन्न होने की अपेक्षा है। एक भव तो प्रथम समय कम तिर्यंच क्षुल्लक भव का और दूसरा संपूर्ण मनुष्य का क्षुल्लक भव है। उत्कृष्ट अंतर वनस्पतिकाल का है। अप्रथम समय तिर्यंच का जघन्य अंतर समयाधिक क्षुल्लक भवग्रहण है। यह तिर्यंच क्षुल्लक भव ग्रहण के चरम समय को अधिकृत अप्रथम समय मान कर उसमें मरने के बाद मनुष्य का क्षुल्लक भवग्रहण और पुनः तिर्यंच में उत्पन्न होने के प्रथम समय व्यतीत हो जाने की अपेक्षा समझना चाहिये। उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक सागरोपम शत पृथक्त्व कहा है, यह देवादि भवों में उत्कृष्ट इतने काल तक भ्रमण के पश्चात् पुनः तिर्यंच में उत्पन्न होने की अपेक्षा से है। मनुष्यों का अन्तर तिर्यंचों के समान और देवों का अन्तर नैरयिकों के समान उपरोक्तानुसार समझ लेना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्पाबहुयं-एएसि णं भंते! पढमसमयणेरइयाणं जाव पढमसमयदेवाण य कयरे कयरेहिंतो० ?

गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयमणुस्सा पढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा ॥

भावार्थ - **प्रश्न** - अल्प बहुत्व - हे भगवन्! इन प्रथम समय नैरयिकों यावत् प्रथम समय देवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े प्रथम समय मनुष्य, उनसे प्रथम समय नैरयिक असंख्यात गुणा, उनसे प्रथम समय देव असंख्यातगुणा और उनसे प्रथम समय तिर्यंच असंख्यातगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत **प्रथम अल्पबहुत्व** में सबसे थोड़े प्रथम समय मनुष्य हैं क्योंकि ये श्रेणी के असंख्यातवें भाग में रहे हुए आकाश प्रदेश तुल्य हैं उनसे प्रथमसमय नैरयिक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि ये एक समय में अतिप्रभूत उत्पन्न हो सकते हैं। उनसे प्रथम समय देव असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वाणव्यंतर ज्योतिषी एक समय में अति प्रभूततर उत्पन्न हो सकते हैं। उनसे प्रथम समय तिर्यंच असंख्यातगुणा हैं क्योंकि नरक आदि तीन गतियों से आकर तिर्यंच के प्रथम समय में वर्तमान जीव असंख्यातगुणा हैं।

अपढमसमयणेरइयाणं जाव अपढमसमयदेवाणं एवं चेव अप्पबहु० णवरि अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ॥

भावार्थ - अप्रथमसमय नैरयिकों यावत् अप्रथम समय देवों का अल्पबहुत्व भी इसी प्रकार है किन्तु अप्रथम समय तिर्यंच अनंतगुणा कहना चाहिये।

विवेचन - **दूसरा अल्पबहुत्व** इस प्रकार समझना चाहिये -

सबसे थोड़े अप्रथम समय मनुष्य हैं क्योंकि ये श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। उनसे अप्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि ये अंगुल मात्र क्षेत्र की प्रदेश राशि के प्रथम वर्ग मूल में द्वितीय वर्गमूल का गुणा करने पर जितनी प्रदेश राशि होती है उतनी श्रेणियों में जितने आकाश प्रदेश हैं उनके बराबर हैं। उनसे अप्रथम समय देव असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वाणव्यंतर ज्योतिषी देव अतिप्रभूत हैं। उनसे अप्रथम समय तिर्यंच अनंतगुणा हैं क्योंकि वनस्पतिकायिक जीव अनंत हैं।

एएसि णं भंते! पढमसमयणेरइयाणं अपढम० णेरइयाणं कयरे २..... ?

गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयणेरइया अपढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा, एवं सव्वे णवरि अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन प्रथम समय नैरयिकों और अप्रथम समय नैरयिकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े प्रथम समय नैरयिक, उनसे अप्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा हैं। इसी प्रकार सभी (तिर्यंच, मनुष्य और देवों के प्रथम समय और प्रथम समयों) का अल्पबहुत्व कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि अप्रथम समय तिर्यंच अनंतगुणा कहना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कथित **तीसरा अल्पबहुत्व** इस प्रकार समझना चाहिये - सबसे थोड़े प्रथम समय नैरयिक हैं क्योंकि एक समय में संख्यातीत उत्पन्न होने पर भी थोड़े ही हैं। उनसे अप्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि यह चिरकाल स्थायी होने से अन्य अन्य बहुत समयों में अति प्रभूत उत्पन्न होते हैं। इसी तरह तिर्यंच, मनुष्य और देवों में भी कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि तिर्यंचों में अप्रथम समय तिर्यंच अनंतगुणा कह देने चाहिये क्योंकि वनस्पतिकायिक जीव अनन्त हैं।

एएसि णं भंते! पढमसमयणेरइयाणं जाव अपढमसमयदेवाण य कयरे २.....?

गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयमणुस्सा अपढमसमयमणुस्सा असंखेज्जगुणा पढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा पढमसमय तिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा अपढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा अपढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा। सेत्तं अट्ठविहा संसार-समावण्णगा जीवा पण्णत्ता॥ २४१॥

॥ सत्तमा अट्ठविहपडिवत्ती समत्ता॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय नैरयिकों यावत् अप्रथम समय देवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े प्रथम समय मनुष्य, उनसे अप्रथमसमय मनुष्य असंख्यातगुणा, उनसे प्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा, उनसे प्रथम समय देव असंख्यातगुणा, उनसे प्रथम समय तिर्यंच असंख्यातगुणा, उनसे अप्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा, उनसे अप्रथम समय देव असंख्यातगुणा, उनसे अप्रथम समय तिर्यंच अनन्तगुणा। इस प्रकार आठ प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का वर्णन हुआ। अष्टविधाख्या नामक सातवीं प्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

विवेचन - प्रस्तुत **चौथे अल्पबहुत्व** में प्रथम समय और अप्रथम समय नैरयिक आदि का शामिल अल्पबहुत्व कहा गया है जो इस प्रकार है -

सबसे थोड़े प्रथम समय मनुष्य हैं क्योंकि एक समय में संख्यातीत उत्पन्न होने पर भी थोड़े हैं। उनसे अप्रथम समय मनुष्य असंख्यातगुणा हैं क्योंकि चिरकाल स्थायी होने से अति प्रभूत उत्पन्न होते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। उनसे प्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि एक समय में अतिप्रभूत उत्पन्न होते हैं। उनसे प्रथम समयदेव असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वाणव्यंतर ज्योतिषी देव प्रभूत उत्पन्न होते हैं। उनसे प्रथम समय तिर्यंच असंख्यातगुणा हैं क्योंकि नैरयिक आदि तीनों गतियों से आकर जीव उत्पन्न होते रहते हैं। उनसे अप्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे अंगुल मात्र क्षेत्र प्रदेश राशि के प्रथम वर्गमूल में द्वितीय वर्गमूल का गुणा करने पर जो प्रदेश राशि होती है उतनी श्रेणियों में जितने आकाश प्रदेश हैं उसके बराबर हैं। उनसे अप्रथमसमय तिर्यंच अनंतगुणा हैं क्योंकि वनस्पतिकायिक जीव अनंत हैं।

प्रथम समय के मनुष्य से अप्रथम समय के मनुष्य असंख्यातगुणे असंख्यात अन्तर्मुहूर्त्त रूप गुणक राशि जितना समझना चाहिये (सम्मूर्च्छिम की स्थिति अंतर्मुहूर्त्त प्रमाण है अर्थात् सम्पूर्ण मनुष्य की राशि को अन्तर्मुहूर्त्त के समय से भाग दें तो सारे मनुष्य खाली हो जायेंगे यह चौबीसवां बोल तक तो आ ही गया) उनसे प्रथम समय के नैरयिक असंख्यात गुणा-यह जीव (जिनको नरकायु वेदन का प्रथम समय है वे चाहे ऋजु गति वाले हों या विग्रह गति के हों उन सभी का ग्रहण करना) दूसरी से सातवीं नरक के सभी जीवों से भी असंख्यात गुणा और भवनपति देवों में भी असंख्यातगुणा होते हैं क्योंकि सम्पूर्ण भवनवासी तो प्रथम वर्ग मूल के संख्यातवें भाग प्रमाण ही हैं तो प्रथम समय के नैरयिक=प्रथम वर्गमूल×द्वितीय वर्गमूल = सम्पूर्ण नैरयिक — पल्योपम के असंख्यातवें भाग। अर्थात् सम्पूर्ण नैरयिक जीवों के एक संख्यातवें भाग प्रमाण जीव प्रति समय उत्पन्न होने वाले मिलते हैं। क्योंकि आवलिका के असंख्यातवें भाग (वर्द्धमान की स्थिति प्रमाण) जितने समयों तक निरन्तर उपपात हुआ फिर नियमा विरह पड़ता ही है। यदि आवलिका के असंख्यातवें भाग में एक-एक नैरयिक को भी उत्पन्न करावें तो पल्योपम जितने काल में उनकी संख्या-पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हो जाती है। उत्पद्यमान नैरयिकों को पल्योपम के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर पूर्वोत्पन्न (अप्रथम समय के) नैरयिकों का परिमाण आ जाता है। उनसे प्रथम समय के देव असंख्यातगुणा। उनसे प्रथम समय के तिर्यंच असंख्यात गुणा। तिर्यंच की अपेक्षा भी देव असंख्यातवें भाग और उनसे नैरयिक असंख्यातवें भाग हैं। अर्थात् तिर्यंच की पूर्ति करने में नारक की अपेक्षा असंख्यातगुणे देव तिर्यंचपने अधिक उत्पन्न होते हैं। इससे यह फलित हुआ कि - उत्पन्न होने वाले देवों की अपेक्षा भी च्यवन होने वाले उत्कृष्ट पद में देव अधिक मिलते हैं। प्रथम समय के तिर्यंचों में उत्पन्न होने वाले नैरयिक मनुष्य व देव होते हैं उनमें से नैरयिक व मनुष्य तो थोड़े ही होते हैं अधिक संख्या की पूर्ति उत्पन्न होने वाले देवों से ही होती है। अल्पबहुत्व में आए हुए छट्ठे से आठवें तक के बोलों का कारण तो पूर्व में आई हुई अल्पबहुत्वों से समझ लेना चाहिए।

इस प्रकार आठ तरह के संसारी जीवों का वर्णन करने वाली यह सातवीं प्रतिपत्ति समाप्त हुई।

॥ अष्ट विधाख्या नामक सप्तम प्रतिपत्ति समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमा णवविहपडिवत्ती

नवविधाख्या अष्टम प्रतिपत्ति

सातवीं प्रतिपत्ति में आठ प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का वर्णन करने के पश्चात् सूत्रकार इस आठवीं प्रतिपत्ति में नव प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का प्रतिपादन करते हैं, जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-णवविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा-पुढविक्काइया आउक्काइया तेउक्काइया वाउक्काइया वणस्सइकाइया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचेंदिया॥ ठिई सव्वेसिं भाणियव्वा॥

भावार्थ - जो आचार्य आदि नौ प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का प्रतिपादन करते हैं। वे नौ भेद इस प्रकार कहते हैं - १. पृथ्वीकायिक २ अप्कायिक ३. तेजस्कायिक ४. वायुकायिक ५. वनस्पतिकायिक ६. बेइन्द्रिय ७. तेइन्द्रिय ८. चउरिन्द्रिय और ९. पंचेन्द्रिय। सबकी स्थिति कह देनी चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में संसारी जीवों के नौ भेद कहे गये हैं। इन नौ भेदों की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार कही गई है - पृथ्वीकायिक की बाईस हजार वर्ष, अप्कायिक की सात हजार वर्ष, तेजस्कायिक की तीन अहोरात्रि, वायुकायिक की तीन हजार वर्ष, वनस्पतिकायिक की दस हजार वर्ष, बेइन्द्रिय की बारह वर्ष, तेइन्द्रिय की उनपचास (४९) दिन, चउरिन्द्रिय की छह मास और पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है।

पुढविक्काइयाणं संचिट्ठणा पुढविकालो जाव वाउक्काइयाणं, वणस्सईणं वणस्सइकालो, बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया संखेज्जं कालं, पंचेंदियाणं सागरोवमसहस्सं साइरेगं॥ अंतरं सव्वेसिं अणंतं कालं, वणस्सइकाइयाणं असंखेज्जं कालं॥

भावार्थ - पृथ्वीकायिकों का संचिट्ठणकाल पृथ्वीकाल है इसी तरह यावत् वायुकायिक तक कह देना चाहिये। वनस्पतिकाय का संचिट्ठणकाल वनस्पतिकाल (अनन्तकाल) है। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय की संचिट्ठणा संख्यातकाल की और पंचेन्द्रियों की संचिट्ठणा साधिक हजार सागरोपम की कही गई है। सभी का अंतर अनन्तकाल है और वनस्पतिकायिक जीवों का अंतरकाल असंख्यातकाल समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नौ प्रकार के संसारी जीवों की कायस्थिति और अंतर का कथन किया गया है। जिसका स्पष्टीकरण पूर्व प्रतिपत्तियों के अनुसार समझ लेना चाहिये।

अप्पाबहुयं, सव्वत्थोवा पंचिंदिया चउरिंदिया विसेसाहिया तेइंदिया विसेसाहिया बेइंदिया विसेसाहिया तेउक्काइया असंखेपुढविका० आउ० वाउ० विसेसाहिया वणस्सइकाइया अणंतगुणा। सेत्तं णवविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता॥ २४२॥

॥ अट्ठमा णवविहपडिवत्ति समत्ता॥

भावार्थ - अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय हैं, उनसे चउरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे तेइन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे बेइन्द्रिय विशेषाधिक हैं उनसे तेजस्कायिक असंख्यातगुणा हैं, उनसे पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वायुकायिक क्रमशः विशेषाधिक हैं और उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुणा हैं। इस तरह नौ प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का वर्णन हुआ। नवविधाख्या नामक आठवीं प्रतिपत्ति समाप्त।

विवेचन - नौ प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का अल्पबहुत्व इस प्रकार कहा गया है -

सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय हैं क्योंकि ये संख्यात योजन कोटाकोटि प्रमाण विष्कंभ सूची से प्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती असंख्यात श्रेणी गत आकाश प्रदेश राशि के बराबर हैं। उनसे चउरिन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं क्योंकि इनकी विष्कंभसूची प्रभूत संख्यात योजन कोटाकोटि प्रमाण हैं उनसे तेइन्द्रिय विशेषाधिक हैं क्योंकि इनकी विष्कंभसूची प्रभूततर संख्यात योजन कोटाकोटि प्रमाण है। उनसे बेइन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं क्योंकि इनकी विष्कंभसूची प्रभूततम संख्यात योजन कोटाकोटि प्रमाण है। उनसे तेजस्कायिक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि ये असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं। उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं क्योंकि ये प्रभूत असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण है। उनसे अप्कायिक विशेषाधिक हैं क्योंकि ये प्रभूततर असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं। उनसे वायुकायिक विशेषाधिक हैं क्योंकि ये प्रभूततम असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं। उनसे वनस्पतिकायिक अनंतगुणा हैं क्योंकि ये अनन्त लोकाकाशप्रदेश प्रमाण हैं।

॥ नवविधाख्या नामक अष्टम प्रतिपत्ति समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णवमा दसविहा पडिवत्ती

दशविधाख्या नवम प्रतिपत्ति

आठवीं प्रतिपत्ति में नौ प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का वर्णन करने के पश्चात् सूत्रकार क्रम प्राप्त इस नौवीं प्रतिपत्ति में दस प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का प्रतिपादन करते हैं, जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-दसविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा-पढमसमयएगिंदिया अपढमसमयएगिंदिया पढमसमयबेइंदिया अपढमसमय-बेइंदिया जाव पढमसमयपंचिंदिया अपढमसमयपंचिंदिया।

पढमसमयएगिंदियस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं एक्कं०, अपढमसमयएगिंदियस्स जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समऊणाइं, एवं सव्वेसिं पढमसमइयकालं जहण्णेणं एक्को समओ उक्कोसेणं एक्को समओ, अपढम० जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्कोसेणं जाव जस्स ठिई सा समऊणा जाव पंचिंदियाणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समऊणाइं॥

भावार्थ - जो आचार्य आदि दस प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का कथन करते हैं। वे दस भेद इस प्रकार कहते हैं - १. प्रथम समय एकेन्द्रिय २. अप्रथम समय एकेन्द्रिय ३. प्रथम समय बेइन्द्रिय ४. अप्रथम समय बेइन्द्रिय ५. प्रथम समय तेइन्द्रिय ६. अप्रथम समय तेइन्द्रिय ७. प्रथम समय चउरिन्द्रिय ८. अप्रथम समय चउरिन्द्रिय ९. प्रथम समय पंचेन्द्रिय और १०. अप्रथम समय पंचेन्द्रिय।

प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय एकेन्द्रिय की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! प्रथम समय एकेन्द्रिय की स्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट भी एक समय की है।

अप्रथम समय एकेन्द्रिय की स्थिति जघन्य एक समय कम क्षुल्लक भव ग्रहण और उत्कृष्ट एक समय कम बावीस हजार वर्ष की है। इस प्रकार सभी प्रथम समय वालों की स्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट भी एक समय कह देनी चाहिये। अप्रथम समय वालों की स्थिति जघन्य एक समय कम क्षुल्लक भव और उत्कृष्ट जिसकी जो स्थिति है उसमें से एक समय कम करके कह देना चाहिये यावत् पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम तेतीस सागरोपम की है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में दस प्रकार के संसार समापन्नक जीव कहे गये हैं। जो एकेन्द्रिय से लगा कर पंचेन्द्रिय तक के जीवों के प्रथम समय और अप्रथम समय रूप दो-दो भेद करने से प्राप्त होते हैं। जो जीव एकेन्द्रियत्व के प्रथम समय में वर्तमान हैं वे प्रथम समय एकेन्द्रिय कहलाते हैं शेष सभी एकेन्द्रिय अप्रथम समय एकेन्द्रिय है। इसी प्रकार शेष भेदों के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

प्रथम समय एकेन्द्रिय आदि की स्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय की है क्योंकि दूसरे समय में वे प्रथम समय वाले नहीं रहते हैं। अप्रथम समय एकेन्द्रिय आदि की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार है -

	जघन्य स्थिति	**उत्कृष्ट स्थिति**
अप्रथम समय एकेन्द्रिय	एक समय कम क्षुल्लकभव	एक समय कम बावीस हजार वर्ष
अप्रथम समय बेइन्द्रिय	एक समय कम क्षुल्लकभव	एक समय कम बारह वर्ष
अप्रथम समय तेइन्द्रिय	एक समय कम क्षुल्लकभव	एक समय कम ४९ अहोरात्रि
अप्रथम समय चउरिन्द्रिय	एक समय कम क्षुल्लकभव	एक समय कम छह मास
अप्रथम समय पंचेन्द्रिय	एक समय कम क्षुल्लकभव	एक समय कम तेतीस सागरोपम

यहाँ क्षुल्लक भव से आशय २५६ आवलिका प्रमाण है। प्रथम समय से हीन ही अप्रथम समय कहलाता है अतः सर्वत्र एक समय कम कहा है।

संचिट्ठणा पढमसमइयस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं एक्कं समयं, अपढमसमयगाणं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्कोसेणं एगिंदियाणं वणस्सइकालो, बेइंदियतेइंदियचउरिंदियाणं संखेज्जं कालं पंचेंदियाणं सागरोवमसहस्सं साइरेगं॥

भावार्थ - प्रथम समय वाले एकेन्द्रिय आदि की संचिट्ठणा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट भी एक समय है। अप्रथम समय वालों की संचिट्ठणा जघन्य एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण और उत्कृष्ट एकेन्द्रियों की वनस्पतिकाल बेइन्द्रिय-तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रियों की संख्यातकाल तथा पंचेन्द्रियों की साधिक (कुछ अधिक) हजार सागरोपम की संचिट्ठणा है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में दस प्रकार के संसारी जीवों की संचिट्ठणा (कायस्थिति) का कथन किया गया है। प्रथम समय एकेन्द्रिय आदि की कायस्थिति जघन्य उत्कृष्ट एक समय की है क्योंकि प्रथम समय एकेन्द्रिय आदि एक समय तक उसी रूप में रहते हैं। इसके बाद वे प्रथम समय वाले नहीं रहते। अप्रथम समय एकेन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य एक समय कम क्षुल्लक भव है इतने समय पश्चात् वह अन्यत्र उत्पन्न हो सकता है उत्कृष्ट अनंतकाल की कायस्थिति है। अप्रथम समय बेइन्द्रिय, अप्रथमसमय तेइन्द्रिय और अप्रथमसमय चउरिन्द्रिय की संचिट्ठणा जघन्य एक समय कम क्षुल्लक भव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और उत्कृष्ट संख्यातकाल है। संख्यात काल के पश्चात् अन्यत्र उत्पन्न होते ही हैं। अप्रथम समय पंचेन्द्रिय की जघन्य कायस्थिति एक समय कम क्षुल्लक भव और उत्कृष्ट साधिक हजार सागरोपम की है क्योंकि उत्कृष्ट इतने काल तक ही देवादि भवों में लगातार पंचेन्द्रिय के रूप में रह सकता है।

पढमसमयएगिंदियाणं भंते! कालओ केवइयं अंतरं होई? गोयमा! जहण्णेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समऊणाइं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, अपढम० एगिंदिय० अंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्ज-वासमब्भहियाइं, सेसाणं सव्वेसिं पढम समइयाणं अंतरं जहण्णेणं दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं समऊणाइं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, अपढमसमइयाणं सेसाणं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं उक्कोसेणं वणस्सइकालो॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय एकेन्द्रियों का अन्तर कितने काल का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! प्रथम समय एकेन्द्रियों का अन्तर जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लक भवग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। अप्रथम समय एकेन्द्रियों का अन्तर जघन्य एक समय अधिक एक क्षुल्लक भव और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है। शेष सभी प्रथम समय वालों का अन्तर जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लक भव ग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। शेष सभी अप्रथम समय वालों का अन्तर जघन्य समय अधिक एक क्षुल्लक भव ग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में दस प्रकार के संसारी जीवों का अंतर बताया गया है जो इस प्रकार है-

प्रथम समय एकेन्द्रिय का अन्तर जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लक भव है। यह बेइन्द्रिय आदि में क्षुल्लक भव के रूप में रह कर पुनः एकेन्द्रिय में उत्पन्न होने की अपेक्षा है। एक भव तो प्रथम समय कम एकेन्द्रिय का क्षुल्लक भव और दूसरा भव बेइन्द्रिय आदि का संपूर्ण क्षुल्लक भव इस तरह एक समय कम दो क्षुल्लक भव समझने चाहिये। उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल (अनंतकाल) का है। प्रथम समय बेइन्द्रिय का अन्तर जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लक भव उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। यहाँ दो भव में एक तो प्रथम समय कम बेइन्द्रिय का क्षुल्लक भव और दूसरा संपूर्ण एकेन्द्रिय तेइन्द्रिय आदि का कोई भी क्षुल्लक भव है इसी प्रकार प्रथम समय तेइन्द्रिय, प्रथभ समय चउरिन्द्रिय और प्रथम समय पंचेन्द्रिय का अंतर भी जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लक भव और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल-अनन्तकाल का है।

अप्रथम समय एकेन्द्रिय का अन्तर जघन्य एक समय अधिक क्षुल्लक भव ग्रहण कहा है। यह अंतर एकेन्द्रिय भव गत चरम समय को अधिक अप्रथम समय मानकर उसमें मर कर बेइन्द्रिय आदि का क्षुल्लक भव करके एकेन्द्रिय में उत्पन्न होने का प्रथम समय बीत जाने पर होता है। उत्कृष्ट अंतर संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम का है क्योंकि बेइन्द्रिय आदि में लगातार इतना ही भवभ्रमण हो सकता है। अप्रथम समय बेइन्द्रिय का जघन्य अन्तर एक समय अधिक क्षुल्लक भव ग्रहण है। यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जघन्य अन्तर क्षुल्लक भव पर्यन्त अन्यत्र रह कर पुनः बेइन्द्रिय में उत्पन्न होने का प्रथम समय व्यतीत हो जाने पर होता है। उत्कृष्ट अंतर वनस्पतिकाल-अनन्तकाल का है। यह उत्कृष्ट अन्तर बेइन्द्रिय से निकल कर इतने काल तक वनस्पति में रह कर पुनः बेइन्द्रिय रूप में उत्पन्न होने के प्रथम समय व्यतीत हो जाने पर होता है। इसी तरह अप्रथम समय तेइन्द्रिय, अप्रथमसमय चउरिन्द्रिय और अप्रथम समय पंचेन्द्रिय का अंतर जघन्य समय अधिक क्षुल्लक भव और उत्कृष्ट अनंतकाल का समझ लेना चाहिए।

पढमसमइयाणं सव्वेसिं सव्वत्थोवा पढमसमयपंचेंदिया पढमसमय चउरिंदिया विसेसाहिया पढमसमय तेइंदिया विसेसाहिया पढमसमय बेइंदिया विसेसाहिया पढमसमय एगिंदिया विसेसाहिया॥

एवं अपढमसमइयावि णवरि अपढमसमयएगिंदिया अणंतगुणा दोण्हं अप्पबहू, सव्वत्थोवा पढमसमयएगिंदिया अपढमसमयएगिंदिया अणंतगुणा सेसाणं सव्वत्थोवा पढमसमइया अपढमसमइया असंखेज्जगुणा॥

भावार्थ - प्रथम समय वालों में सबसे थोड़े प्रथम समय पंचेन्द्रिय हैं, उनसे प्रथम समय चउरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं उनसे प्रथम समय तेइन्द्रिय विशेषाधिक हैं उनसे प्रथम समय बेइन्द्रिय विशेषाधिक हैं और उनसे प्रथम समय एकेन्द्रिय विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार अप्रथम समय वालों का अल्पबहुत्व भी समझ लेना चाहिये। विशेषता यह है कि अप्रथम समय एकेन्द्रिय अनन्तगुणा हैं। दोनों का अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े प्रथम समय एकेन्द्रिय, उनसे अप्रथम समय एकेन्द्रिय अनन्तगुणा हैं। शेष में सबसे थोड़े प्रथम समय वाले हैं और अप्रथम समय वाले असंख्यातगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पहला अल्पबहुत्व प्रथम समय वालों का, दूसरा अल्पबहुत्व अप्रथम समय वालों और तीसरा अल्प बहुत्व इन दोनों के शामिल का कहा गया है जो इस प्रकार है -

१. प्रथम अल्पबहुत्व - प्रथम समय वालों में-सबसे थोड़े प्रथम समय पंचेन्द्रिय हैं क्योंकि वे एक समय में थोड़े ही उत्पन्न होते हैं, उनसे प्रथम समय चउरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं क्योंकि वे एक समय में प्रभूत उत्पन्न होते हैं। उनसे प्रथम समय तेइन्द्रिय विशेषाधिक हैं क्योंकि वे एक समय में प्रभूततर उत्पन्न होते हैं। उनसे प्रथम समय बेइन्द्रिय विशेषाधिक हैं क्योंकि वे एक समय में प्रभूततम उत्पन्न होते हैं। उनसे प्रथम समय एकेन्द्रिय विशेषाधिक हैं।

२. द्वितीय अल्पबहुत्व - अप्रथम समय वालों में-सबसे थोड़े अप्रथम समय पंचेन्द्रिय, उनसे अप्रथम समय चउरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथम समय तेइन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमय बेइन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथम समय एकेन्द्रिय अनंतगुणा हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. तृतीय अल्पबहुत्व - प्रथम समय और अप्रथम समय वालों का शामिल अल्प बहुत्व - सबसे थोड़े प्रथम समय एकेन्द्रिय हैं क्योंकि बेइन्द्रिय आदि से आकर एक समय में थोड़े ही उत्पन्न होते हैं उनसे अप्रथम समय एकेन्द्रिय अनन्तगुणा हैं क्योंकि वनस्पतिकाल अनन्त हैं। बेइन्द्रियों में सबसे थोड़े प्रथम समय बेइन्द्रिय हैं उनसे अप्रथम समय बेइन्द्रिय असंख्यातगुणा हैं क्योंकि बेइन्द्रिय सब संख्या से भी असंख्यात ही हैं। इसी प्रकार तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियों में भी प्रथम समय वाले कम हैं और अप्रथम समय वाले असंख्यातगुणा हैं।

एएसि णं भंते! पढमसमय-एगिंदियाणं अपढमसमयएगिंदियाणं जाव अपढमसमयपंचिंदियाणं य कयरे २...?

गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयपंचेंदिया पढमसमयचउरिंदिया विसेसाहिया पढमसमयतेइंदिया विसेसाहिया एवं हेट्ठामुहा जाव पढमसमयएगिंदिया विसेसाहिया अपढमसमयपंचेंदिया असंखेज्जगुणा अपढमसमयचउरिंदिया विसेसाहिया जाव अपढमसमयएगिंदिया अणंतगुणा॥ २४३॥

सेत्तं दसविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, सेत्तं संसार-समावण्णगजीवाभिगमे॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन प्रथम समय एकेन्द्रिय, अप्रथम समय एकेन्द्रिय यावत् अप्रथम समय पंचेन्द्रियों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े प्रथम समय पंचेन्द्रिय, उनसे प्रथम समय चउरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे प्रथम समय तेइन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे प्रथम समय बेइन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे प्रथम समय एकेन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथम समय पंचेन्द्रिय असंख्यातगुणा, उनसे अप्रथम समय चउरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथम समय तेइन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथम समय बेइन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथम समय एकेन्द्रिय अनन्तगुणा हैं।

इस प्रकार दसविध संसार समापन्नक जीवों का वर्णन पूर्ण हुआ। इस प्रकार संसार समापन्नक जीवाभिगम का वर्णन पूर्ण हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में दस प्रकार के संसारी जीवों की अपेक्षा चौथा अल्पबहुत्व कहा गया है। जिसका स्पष्टीकरण पूर्वानुसार समझ लेना चाहिए। इस प्रकार दसविधाख्या नौवीं प्रतिपत्ति पूर्ण हुई। दस प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का कथन करने के साथ ही संसार समापन्नक जीवाभिगम समाप्त हुआ।

॥ णवमा दसविहा पडिवत्ती समत्ता॥

॥ दशविधाख्या नामक नवमी प्रतिपत्ति समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सव्व जीव णव पडिवत्तिओ
सर्व जीवाभिगम

नौवीं प्रतिपत्ति में दस प्रकार के संसार समापन्नक जीवों का वर्णन करने के पश्चात् सूत्रकार अब सर्व जीवाभिगम का कथन करते हैं। इसमें संसार समापन्नक और असंसार समापन्नक जीवों का प्रतिपादन किया गया है जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार हैं -

से किं तं सव्वजीवाभिगमे? सव्वजीवेसु णं इमाओ णव पडिवत्तीओ एवमाहिज्जंति एगे एवमाहंसु-दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता जाव दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता॥

सर्व जीव - द्विविध वक्तव्यता

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा-सिद्धा चेव असिद्धा चेव इति॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सर्व जीवाभिगम का क्या स्वरूप है?

उत्तर - हे गौतम! सर्व जीवाभिगम में नौ प्रतिपत्तियाँ कही गई हैं। उनसे कोई ऐसा कहते हैं कि सब जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यावत् दस प्रकार के कहे गये हैं।

जो दो प्रकार के सर्व जीव कहते हैं वे ऐसा प्रतिपादन करते हैं यथा-सिद्ध और असिद्ध।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में संसार समापन्नक जीवों की नौ प्रतिप्रत्तियों की तरह सर्व जीव के विषय में भी नौ प्रतिपत्तियां कही गयी हैं। वे इस प्रकार है -

१. कोई कहते हैं कि सर्व जीव दो प्रकार के हैं - सिद्ध और असिद्ध।

२. कोई कहते हैं कि सर्व जीव तीन प्रकार के हैं - सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग् मिथ्यादृष्टि।

३. कोई कहते हैं कि सर्व जीव चार प्रकार के हैं- मनयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी।

४. कोई कहते हैं कि सर्व जीव पांच प्रकार के हैं - नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्ध।

५. कोई कहते हैं कि सर्व जीव छह प्रकार के हैं - औदारिक शरीरी, वैक्रियशरीरी, आहारक शरीरी, तैजस शरीरी, कार्मणशरीरी और अशरीरी।

६. कोई कहते हैं कि सर्व जीव सात प्रकार के हैं - पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और अकायिक।

७. कोई कहते हैं कि सर्व जीव आठ प्रकार के हैं - मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी, मनअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभंगज्ञानी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८. कोई कहते हैं कि सर्व जीव नौ प्रकार के हैं - एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्ध।

९. कोई कहते हैं कि सर्व जीव दस प्रकार के हैं - पृथ्वीकायिक, अपकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनीन्द्रिय।

जो ऐसा कहते हैं कि सर्व जीव दो प्रकार के हैं। यथा - सिद्ध और असिद्ध। उनका मानना है कि इन दो भेदों में सभी जीवों का समावेश हो जाता है।

सिद्ध - ''सित्तं बद्धमष्टप्रकारं कर्म ध्मातं-भस्मीकृतं यैस्ते सिद्धाः'' -

जिन्होंने आठ प्रकार के बंधे हुए कर्मों को भस्मीभूत कर दिया है वे सिद्ध कहलाते हैं यानी जो कर्म बंधनों से सर्वथा मुक्त हो चुके हैं वे सिद्ध हैं।

असिद्ध - जो संसार के एवं कर्म बंधनों से मुक्त नहीं हुए हैं वे असिद्ध कहलाते हैं।

सिद्धे णं भंते! सिद्धेत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! साइए अपज्जवसिए॥ असिद्धे णं भंते! असिद्धेत्ति० ?

गोयमा! असिद्धे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सिद्ध, सिद्ध के रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! सिद्ध सादि अपर्यवसित है। अतः सदाकाल सिद्ध रूप में रहता है।

प्रश्न - हे भगवन्! असिद्ध, असिद्ध के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! असिद्ध दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - अनादि अपर्यवसित और अनादि सपर्यवसित।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सिद्ध और असिद्ध की कायस्थिति कही गई है। सिद्ध सदाकाल निज स्वरूप में रमण करते रहते हैं अतः उनकी काल मर्यादा रूप भवस्थिति नहीं कही गई है। सिद्धों की कायस्थिति अर्थात् सिद्धत्व के रूप में उनकी स्थिति सदाकाल रहती है। सिद्ध सादि अपर्यवसित है अर्थात् संसार से मुक्ति के समय सिद्धत्व की आदि है और सिद्धत्व से कभी च्युत नहीं होने के कारण अपर्यवसित है।

असिद्ध दो प्रकार के कहे गये हैं - १. अनादि अपर्यवसित और २. अनादि सपर्यवसित। जो अभव्य होने से अथवा तथाविध सामग्री के अभाव से कभी सिद्ध नहीं होगा, वह अनादि अपर्यवसित असिद्ध है। जो सिद्धि को प्राप्त करेगा वह अनादि सपर्यवसित है अर्थात् अनादि संसार का अन्त करने वाला है। जब तक वह मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता तब तक असिद्ध, असिद्ध के रूप में रहता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धस्स णं भंते! केवइकालं अंतरं होइ?

गोयमा! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं॥

असिद्धस्स णं भंते! केवइयं अंतरं होइ?

गोयमा! अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, अणाइयस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं॥

एएसि णं भंते! सिद्धाणं असिद्धाण य कयरे २....?

गोयमा! सव्वत्थोवा सिद्धा असिद्धा अणंतगुणा॥ २४४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सिद्ध का अन्तर कितने काल का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सादि अपर्यवसित का अंतर नहीं होता है।

प्रश्न - हे भगवन्! असिद्ध का कितना अन्तर होता है?

उत्तर - हे गौतम! अनादि अपर्यवसित का अन्तर नहीं है, अनादि सपर्यवसित का अन्तर नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! इन सिद्धों और असिद्धों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े सिद्ध हैं और उनसे असिद्ध अनन्तगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सिद्धों और असिद्धों का अन्तर और अल्पबहुत्व कहा गया है। जो इस प्रकार हैं - सिद्ध सादि अपर्यवसित है, सिद्ध सिद्धत्व से च्युत होकर पुनः सिद्ध नहीं बनते अतएव उनमें अन्तर नहीं है। असिद्धों में जो अनादि अपर्यवसित है उनका असिद्धत्व कभी छूटेगा नहीं अतः उनका अन्तर नहीं है। जो अनादि सपर्यवसित है उनका भी मुक्ति से पुनः आना नहीं होता अतः उनका भी अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व - सिद्धों से असिद्ध अनंतगुणा हैं क्योंकि निगोद जीव अनन्त हैं।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-सइंदिया चेव अणिंदिया चेव।

सइंदिए णं भंते!० कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! सइंदिए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा - अणाइए वा अपज्जवसिए अणाइए वा सपज्जवसिए, अणिंदिए साइए वा अपज्जवसिए, दोण्हवि अंतरं णत्थि। सव्वत्थोवा अणिंदिया सइंदिया अणंतगुणा।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-सकाइया चेव अकाइया चेव एवं चेव, एवं सजोगी चेव अजोगी चेव तहेव, (एवं सलेस्सा चेव अलेस्सा चेव, ससरीरा चेव असरीरा चेव) संचिट्ठणं अंतरं अप्पाबहुयं जहा सइंदियाणं॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - अथवा सर्व जीव दो प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - सइन्द्रिय (सेइन्द्रिय) और अनिन्द्रिय।

प्रश्न - हे भगवन्! सेन्द्रिय, सेन्द्रिय के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सेन्द्रिय जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - अनादि अपर्यवसित और अनादि सपर्यवसित। अनिन्द्रिय में सादि अपर्यवसित। दोनों में अन्तर नहीं है। सबसे थोड़े अनिन्द्रिय और उनसे सेन्द्रिय अनंतगुणा हैं।

अथवा सर्व जीव दो प्रकार के कहे गये हैं - १. सकायिक और २. अकायिक। इसी तरह सयोगी और अयोगी, सलेशी और अलेशी, सशरीरी और अशरीरी। इनकी कायस्थिति (संचिट्ठणा) अन्तर और अल्पबहुत्व सेन्द्रिय की तरह समझना चाहिये।

विवेचन - पूर्व सूत्र में सर्वजीव के सिद्ध और असिद्ध, ये दो भेद करने के बाद सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र में सेन्द्रिय-अनिन्द्रिय, सकायिक-अकायिक, सयोगी-ओगी, सलेशी अलेशी, सशरीरी अशरीरी रूप दो-दो भेद किये हैं। सेन्द्रिय, सकायिक, सयोगी, सलेशी और सशरीरी की कायस्थिति और अन्तर असिद्ध के अनुसार तथा अनिन्द्रिय अकायिक, अयोगी, अलेशी और अशरीरी की कायस्थिति और अन्तर सिद्ध के अनुसार कह देने चाहिये। अल्पबहुत्व में अनिन्द्रिय थोड़े और सेन्द्रिय अनंतगुणा हैं क्योंकि सेन्द्रिय वनस्पति जीव अनन्त हैं। इसी तरह सकायिक अकायिक आदि का भी अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिये।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-सवेयगा चेव अवेयगा चेव॥ सवेयए णं भंते! सवे० ?

गोयमा! सवेयए तिविहे पण्णत्ते, तंजहा-अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए, साइए सपज्जवसिए, तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं॥

अवेयए णं भंते! अवेयएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! अवेयए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-साइए वा अपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए, तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं॥

भावार्थ - प्रश्न - अथवा सर्व जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - सवेदक और अवेदक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! सवेदक कितने काल तक सवेदक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सवेदक तीन प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १. अनादि अपर्यवसित २. अनादि सपर्यवसित और ३. सादि सपर्यवसित। इनमें से जो सादि सपर्यवसित हैं वह जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंतकाल यावत् क्षेत्र से देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त तक रहता है।

प्रश्न - हे भगवन्! अवेदक, अवेदक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अवेदक दो प्रकार के कहे गये हैं - सादि अपर्यवसित और सादि सपर्यवसित। इनमें जो सादि सपर्यवसित है, वह जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक रहता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सवेदक-अवेदक की कायस्थिति का कथन किया गया है। सवेदक तीन प्रकार के कहे गये हैं - १. अनादि अपर्यवसित २. अनादि सपर्यवसित और ३. सादि सपर्यवसित। उनमें अनादि अपर्यवसित सवेदक तो अभव्य जीव हैं। अनादि सपर्यवसित सवेदक वह भव्य जीव है जो मुक्तिगामी है यानी मुक्ति गमन की योग्यता वाला है और जिसने पहले उपशम श्रेणी प्राप्त नहीं की है। सादि सपर्यवसित सवेदक वह जीव है जो भव्य-मुक्तिगामी है और जिसने पहले उपशम श्रेणी प्राप्त की है। इनमें उपशम श्रेणी को प्राप्त कर वेदोपशम के उत्तरकाल में अवेदकत्व का अनुभव कर श्रेणी समाप्ति पर भव क्षय से अपान्तराल में मरण होने से अथवा उपशम श्रेणी से गिरने पर पुनः वेदोदय हो जाने से सवेदक हो गया ऐसा जीव सादि सपर्यवसित सवेदक है। इस सादि सपर्यवसित सवेदक की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त है क्योंकि श्रेणी की समाप्ति पर सवेदक हो जाने के अन्तर्मुहूर्त्त बाद पुनः श्रेणी चढ़ कर अवेदक हो सकता है।

शंका - क्या एक जन्म में दो बार उपशम श्रेणी पर चढ़ा जा सकता है?

समाधान - **"नैकस्मिन जन्मनि उपशम श्रेणिः क्षपक श्रेणिश्च जायते, उपशमश्रेणिद्वयं तु भवत्येव"** - दो बार उपशम श्रेणी हो सकती है किन्तु एक जन्म में उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी ये दो श्रेणियां नहीं हो सकती।

सादि सपर्यवसित सवेदक की उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्तकाल है। यह अनन्तकाल काल की अपेक्षा अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप तथा क्षेत्र की अपेक्षा देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्त है। इतने काल के पश्चात् पूर्व प्रतिपन्न उपशम श्रेणी वाला जीव आसन्नमुक्ति वाला होकर श्रेणी प्राप्त कर अवेदक हो सकता है।

अनादि अपर्यवसित और अनादि सपर्यवसित की संचिट्ठणा (कायस्थिति) नहीं है।

अवेदक दो प्रकार के कहे गये हैं - १. सादि अपर्यवसित - समयानन्तर क्षीण वेद वाले और २. सादि सपर्यवसित-उपशांत वेद वाले। जो सादि सपर्यवसित अवेदक हैं उनकी कायस्थिति जघन्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक समय उपशम श्रेणी को प्राप्त कर वेदोपशमन के एक समय बाद मरण होने पर पुनः सवेदक होने की अपेक्षा से। उत्कृष्ट कायस्थिति अंतर्मुहूर्त्त की क्योंकि उपशम श्रेणी का काल इतना ही है। इसके बाद नियम से पतन होने से सवेदक होता है।

सवेयगस्स णं भंते! केवइकालं अंतरं होइ?

गोयमा! अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, अणाइयस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं॥

अवेयगस्स णं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ?

गोयमा! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। अप्पाबहुयं, सव्वत्थोवा अवेयगा सवेयगा अणंतगुणा। एवं सकसाई चेव अकसाई चेव २ जहा सवेयगे तहेव भाणियव्वे॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सवेदक का अन्तर कितने काल का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अनादि अपर्यवसित का अन्तर नहीं होता। अनादि सपर्यवसित का भी अन्तर नहीं होता। सादि सपर्यवसित का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त का है।

प्रश्न - हे भगवन्! अवेदक का अन्तर कितने काल का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सादि अपर्यवसित का अन्तर नहीं होता। सादि सपर्यवसित का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंतकाल यावत् देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त है।

अल्प बहुत्व - सबसे थोड़े अवेदक हैं, उनसे सवेदक अनन्तगुणा हैं। जैसा सवेदक के विषय में कहा है इसी प्रकार सकषायी के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सवेदक-अवेदक का अन्तर और अल्पबहुत्व का कथन किया गया है जो इस प्रकार समझना चाहिये-

अन्तर - अनादि अपर्यवसित सवेदक का अन्तर नहीं है क्योंकि अपर्यवसित होने से उस भाव का कभी त्याग नहीं होता। अनादि सपर्यवसित सवेदक का भी अन्तर नहीं होता क्योंकि अनादि सपर्यवसित अपान्तराल में उपशम श्रेणी न करके भविष्य में क्षीण वेदी होता है। क्षीण वेदी के पुनः सवेदक होने की संभावना नहीं है क्योंकि वह गिरता नहीं है। सादि सपर्यवसित सवेदक का अन्तर जघन्य एक समय है क्योंकि दूसरी बार उपशम श्रेणी प्रतिपन्न का वेदोपशमन के अनन्तर समय में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किसी का मरण संभव है। उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त्त है क्योंकि दूसरी बार उपशम श्रेणी प्रतिपन्न का वेदोपशमन होने पर श्रेणी का अन्तर्मुहूर्त्त काल समाप्त होने पर पुनः सवेदकत्व संभव है।

सादि अपर्यवसित अवेदक का अन्तर नहीं है क्योंकि क्षीण वेद वाला जीव पुनः सवेदक नहीं होता। सादि सपर्यवसित अवेदक का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है क्योंकि उपशम श्रेणी समाप्ति पर सवेदक होने पर पुनः अंतर्मुहूर्त्त में दूसरी बार उपशम श्रेणी पर चढ़ कर अवेदकत्व की स्थिति हो सकती है। उत्कृष्ट अंतर अनंतकाल का है। यह अनंत काल, अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप है और क्षेत्र से अपार्द्ध पुद्गल परावर्त है क्योंकि एक बार उपशम श्रेणी प्राप्त कर वहाँ अवेदक होकर श्रेणी समाप्ति पर पुनः सवेदक होने की स्थिति में इतने काल के अनन्तर पुनः श्रेणी को प्राप्त कर अवेदक हो सकता है।

अल्पबहुत्व - अवेदक थोड़े हैं उनसे सवेदक अनंतगुणा हैं क्योंकि वनस्पतिकायिक जीव अनन्त हैं।

सकषायी और अकषायी जीवों का कथन भी सवेदक और अवेदक की तरह कर देना चाहिये।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-सलेसा य अलेसा य जहा असिद्धा सिद्धा, सव्वत्थोवा अलेसा सलेसा अणंतगुणा॥ २४५॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - सलेशी और अलेशी। जिस प्रकार असिद्धों और सिद्धों का कथन किया है उसी प्रकार इनका भी कथन कर देना चाहिये। सबसे थोड़े अलेशी हैं उनसे सलेशी अनंतगुणा हैं।

अहवा० णाणी चेव अण्णाणी चेव॥ णाणी णं भंते! णाणित्ति कालओ०? गोयमा! णाणी दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-साइए वा अपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए, तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छावट्ठिसागरोवमाइं साइरेगाइं अण्णाणी जहा सवेयगा।

भावार्थ - अथवा सब जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - ज्ञानी और अज्ञानी

प्रश्न - हे भगवन्! ज्ञानी, ज्ञानीरूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! ज्ञानी दो प्रकार के कहे गये हैं - सादि अपर्यवसित और सादि सपर्यवसित। इनमें जो सादि सपर्यवसित हैं वे जघन्य से अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम तक रह सकते हैं। अज्ञानी का कथन सवेदक की तरह समझना चाहिये।

विवेचन - ज्ञानी अर्थात् सम्यग्ज्ञानी दो प्रकार के कहे गये हैं - १. सादि अपर्यवसित और २ सादि अपर्यवसित। केवली सादि अपर्यवसित हैं क्योंकि केवलज्ञानी सादि अनन्त हैं। मतिज्ञानी आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सादि सपर्यवसित हैं क्योंकि मतिज्ञान आदि छाद्मस्थिक होने से सादि सान्त हैं। इनमें जो सादि सपर्यवित ज्ञानी हैं वह जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट साधिक छासठ सागरोपम तक रहता है। यह काल मर्यादा सम्यक्त्व की अपेक्षा समझनी चाहिये क्योंकि सम्यक्त्व की जघन्य स्थिति अंतर्मुहुर्त्त और उत्कृष्ट छासठ सागरोपम से कुछ अधिक है। यह स्थिति सम्यक्त्व से गिरे बिना विजय आदि में जाने की अपेक्षा है। भाष्य में कहा है -

दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्निऽअच्चुए अहव ताइं।
अइरेगं नरभवियं नाणा जीवाण सव्वद्धा॥

- दो बार विजयादि विमान में अथवा तीन बार अच्युत देवलोक में जाने से छियासठ सागरोपम काल और मनुष्य के भवों का काल साधिक गिनने यह उत्कृष्ट स्थिति बनती है।

अज्ञानी तीन प्रकार के हैं - १. अनादि अपर्यवसित २. अनादि सपर्यवसित और ३. सादि सपर्यवसित। अनादि अपर्यवसित अज्ञानी वह है जो कभी मोक्ष में नहीं जायेगा। अनादि सपर्यवसित अज्ञानी वह है जो अनादि मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्व पाकर और उससे अप्रतिपातित होकर क्षपक श्रेणी को प्राप्त करेगा। सादि सपर्यवसित अज्ञानी वह है जो सम्यग्दृष्टि बन कर मिथ्यादृष्टि बन गया हो। ऐसा अज्ञानी जघन्य अंतर्मुहूर्त्त काल उसमें रह कर फिर सम्यग्दृष्टि बन सकता है इस अपेक्षा से उसकी कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और अनन्तकाल है। यह अनन्तकाल काल से उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप तथा क्षेत्र से देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त है।

णाणिस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। अण्णाणिस्स दोण्हवि आइल्लाणं णत्थि अंतरं, साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाणं। अप्पाबहुयं-सव्वत्थोवा णाणी अण्णाणी अणंतगुणा॥ अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-सागरोवउत्ता य अणागारोवउत्ता य, संचिट्ठणा अंतरं च जहण्णेणं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, अप्पाबहु० सागरो० संखे०॥ २४६॥

भावार्थ - ज्ञानी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंतकाल, जो देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त रूप है। आदि (शुरु) के दो अज्ञानी (अनादि अपर्यवसित और अनादि सपर्यवसित) का अन्तर नहीं है। सादि सपर्यवसित अज्ञानी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम है।

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े ज्ञानी, उनसे अज्ञानी अनन्तगुणा हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथवा सर्वजीव दो प्रकार के कहे हैं - साकार उपयोग वाले और अनाकार उपयोग वाले। इनकी संचिट्ठणा (कायस्थिति) और अन्तर जघन्य और उत्कृष्ट से अंतर्मुहूर्त्त है। अल्पबहुत्व-अनाकार उपयोग वाले थोड़े हैं उनसे साकार उपयोग वाले संख्यातगुणा हैं।

विवेचन - सादि सपर्यवसित ज्ञानी का जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त्त है इतने काल तक अज्ञानी रह कर वह फिर ज्ञानी हो सकता है। उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल का (काल से अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप और क्षेत्र से देशोन अपार्द्ध पुद्‌गल परावर्त रूप) है क्योंकि सम्यग्‌दृष्टि सम्यक्त्व से गिर कर इतने काल तक मिथ्यात्व में रह कर फिर अवश्य सम्यक्त्व पाता हैं। सादि अपर्यवसित ज्ञानी का अन्तर नहीं होता, क्योंकि अपर्यवसित होने से वह उस रूप का त्याग नहीं करता है।

प्रारंभ के दो अज्ञानी - अनादि अपर्यवसित और अनादि सपर्यवसित का अन्तर नहीं है क्योंकि अनादि अपर्यवसित उस भाव का त्याग नहीं करता और अनादि सपर्यवसित अज्ञानी में भी केवलज्ञान प्राप्त होने पर वह नहीं जाता है। सादि सपर्यवसित अज्ञानी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त (क्योंकि सम्यक्त्व का जघन्य काल इतना ही है) और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम का है क्योंकि सम्यक्त्व से गिरने के बाद जीव इतने काल तक अज्ञानी रह सकता है।

अल्पबहुत्व में ज्ञानी से अज्ञानी अनंतगुण हैं क्योंकि वनस्पतिकायिक जीव अनंत हैं।

साकार उपयोग और अनाकार उपयोग के भेद से सर्व जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। साकार उपयोग वाले अनाकार उपयोग वाले जीवों की कायस्थिति और अंतर जघन्य और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त ही कहा गया है। टीकाकार के अनुसार यहाँ सर्वजीवों से छद्मस्थ ही लेना चाहिये, केवली नहीं क्योंकि केवलियों का साकार उपयोग और अनाकार उपयोग एक समय होता है अतः कायस्थिति और अन्तर एक समय का ही होना चाहिए जबकि यहाँ अंतर्मुहूर्त्त कहा है जो छद्मस्थों में होता है अतः सर्व जीव से छद्मस्थ ही समझना चाहिये।

अल्प बहुत्व से सबसे थोड़े अनाकार उपयोग वाले हैं क्योंकि अनाकार उपयोग का काल अल्प होने से वे पृच्छा के समय अल्प ही होते हैं। उनसे साकार उपयोग वाले असंख्यात गुणा हैं क्योंकि अनाकार उपयोग के काल से साकार उपयोग का काल संख्यातगुणा है।

यहाँ पर साकारोपयुक्त एवं अनाकारोपयुक्त सर्व जीवों की कायस्थिति जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की ही बताई गई है। एक समय की नहीं बताई है। सर्व जीवों की प्रतिपत्ति में इनका वर्णन होने से केवलज्ञानी, केवलदर्शनी मनुष्यों व सिद्धों का भी इनमें समावेश होता ही है। अतः उपर्युक्त आगम पाठ से सभी केवलियों (मनुष्यों और सिद्धों) के भी साकारोपयोग (केवलज्ञान) अनाकारोपयोग (केवलदर्शन) की कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की होना ही स्पष्ट होता है। इस आगम पाठ के साथ अन्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगमों में इस सम्बन्ध में आए हुए पाठों का कहीं पर भी विरोध नहीं आता है। प्रज्ञापना आदि सूत्रों में आये हुए पाठ **'जं समयं जाणइ ण तं समयं पासइ'** आदि की तो अन्य उचित अपेक्षा एवं विवक्षा से संगति बिठाई जा सकती है। अतः सर्वत्र सब जीवों के दोनों प्रकार के उपयोगों का काल (जघन्य और उत्कृष्ट) अन्तर्मुहूर्त्त होना उचित ही ध्यान में आता है।

इस सम्बन्ध में ग्रन्थों में प्राचीन परम्परा 'केवलियों के दोनों उपयोगों की स्थिति एक-एक समय की होती है।' ऐसी ही मिलती है। आगम पाठों को देखते हुए तो अन्तर्मुहूर्त्त का ही उपयोग काल होना उचित ध्यान में आता है।

प्राचीन ग्रन्थों के अन्वेषण करने से यदि अन्तर्मुहूर्त का उपयोग काल कहीं पर बताया हो तो ऐसा मानना उचित ही रहता है। जब तक अन्य आधार नहीं मिलते हैं तब तक तो प्राचीन परम्परा के अनुसार केवलियों के उपयोग का काल एक समय का ही मानना चाहिये।' आधार मिलने पर पुनर्विचारणा करके इस सम्बन्ध में परिवर्तन भी किया जा सकता है।

॥ तत्व केवली गम्यम्॥

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-आहारगा चेव अणाहारगा चेव॥ आहारए णं भंते! जाव केवच्चिरं होइ? गोयमा! आहारए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-छउमत्थआहारए य केवलिआहारए य, छउमत्थआहारए णं जाव केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं दुसमऊणं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं जाव कालओ, खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागं। केवलिआहारए णं जाव केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - आहारक और अनाहारक।

प्रश्न - हे भगवन्! आहारक, आहारक के रूप में कितने समय तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! आहारक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - छद्मस्थ आहारक और केवलि आहारक।

प्रश्न - हे भगवन्! छद्मस्थ आहारक, आहारक के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य दो समय कम क्षुल्लक भव और उत्कृष्ट असंख्यात काल यावत् क्षेत्र से अंगुल का असंख्यातवां भाग।

प्रश्न - हे भगवन्! केवलि आहारक, आहारक के रूप में कितने समय तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य से अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट से देशोन पूर्वकोटि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सर्वजीवों के दो भेद कहे गये हैं - १. आहारक और २. अनाहारक। कौन से जीव आहारक, अनाहारक होते हैं इसके लिए टीका में कहा है -

विग्गहगइमावण्णा केवलिणो समुहया अजोगी या।

सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारगा जीवा॥

अर्थात् - विग्रहमति समापन्न, केवलि समुद्घात वाले केवली, अयोगी केवली और सिद्ध ये जीव अनाहारक होते हैं, शेष सभी जीव आहारक हैं।

आहारक जीव दो प्रकार के हैं - १. छद्मस्थ आहारक और २. केवली आहारक। छद्मस्थ आहारक की जघन्य कायस्थिति दो समय कम क्षुल्लक भव है, यह विग्रह गति से आकर क्षुल्लक भव में उत्पन्न होने की अपेक्षा कही गयी है। तीन समय की विग्रह गति में से दो समय अनाहारकत्व के हैं। उन दो समयों को छोड़ कर शेष क्षुल्लकभव तक जीव जघन्य रूप से आहारक रह सकता है। उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात काल की है। यह असंख्यात काल, काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण और क्षेत्र की अपेक्षा अंगुल के असंख्यात भाग में जितने आकाश प्रदेश हैं उनमें से प्रति समय एक एक निकालने पर जितने समय में वे खाली होते हैं उतने उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप हैं। इतने काल तक जीव अविग्रह रूप से उत्पन्न हो सकता है।

केवली आहारक की जघन्य कायस्थिति अंतर्मुहूर्त्त है यह अन्तकृत केवली की अपेक्षा से है। उत्कृष्ट कायस्थिति देशोन पूर्वकोटि है। यह पूर्वकोटि आयुष्य वाले को नौ वर्ष की उम्र में केवलज्ञान होने की अपेक्षा समझना चाहिये।

अणाहारए णं भंते! कइविहे०! गोयमा! अणाहारए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा- छउमत्थअणाहारए य केवलिअणाहारए य, छउमत्थअणाहारए णं जाव केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं दो समया। केवलिअणाहारए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-सिद्धकेवलिअणाहारए य भवत्थकेवलिअणाहारए य॥

सिद्धकेवलिअणाहारए णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ? गोयम! साइए अपज्जवसिए॥ भवत्थकेवलिअणाहारए णं भंते! कइविहे पण्णत्ते? गोयमा! भवत्थकेवलिअणाहारए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए य अजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए य। सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए णं भंते! कालओ केवच्चिरं०? गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसेणं तिण्णि समया। अजोगिभवत्थकेवलि० जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनाहारक यावत् काल से कितने समय तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अनाहारक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - छद्मस्थ-अनाहारक और केवलि - अनाहारक।

प्रश्न - हे भगवन्! छद्मस्थ-अनाहारक उसी रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य एक समय उत्कृष्ट दो समय तक। केवलि-अनाहारक दो प्रकार के हैं - सिद्धकेवलि-अनाहारक और भवस्थकेवलि-अनाहारक।

प्रश्न - हे भगवन्! सिद्ध केवलि-अनाहारक उसी रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! वह सादि अपर्यवसित है।

प्रश्न - हे भगवन्! भवस्थ केवलि-अनाहारक कितने प्रकार के हैं?

उत्तर - हे गौतम! दो प्रकार के हैं - १. सयोगि भवस्थ केवलि अनाहारक और २. अयोगी भवस्थ केवलि अनाहारक।

प्रश्न - हे भगवन्! सयोगि भवस्थ केवलि अनाहारक उसी रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य उत्कृष्ट रहित तीन समय तक। अयोगि भवस्थ केवलि अनाहारक जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त तक रहता है।

विवेचन - अनाहारक के दो भेद हैं - १. छद्मस्थ-अनाहारक और २. केवली-अनाहारक। छद्मस्थ अनाहारक जघन्य एक समय तक अनाहारक रह सकता है, यह दो समय की विग्रहगति की अपेक्षा से है और उत्कृष्ट दो समय तक अनाहारक रह सकता है यह तीन समय की विग्रहगति की अपेक्षा से है। केवली अनाहारक के दो भेद हैं - १. भवस्थ केवली अनाहारक और २. सिद्ध केवली अनाहारक। सिद्धकेवली अनाहारक सादि अपर्यवसित हैं। भवस्थ केवली अनाहारक दो प्रकार के कहे गये हैं - १. सयोगि भवस्थ केवली अनाहारक और २. अयोगी भवस्थ केवली अनाहारक। सयोगी भवस्थ केवली अनाहारक अजघन्य अनुत्कृष्ट तीन समय तक रहता है। केवली समुद्घात के समय जीव तीसरे, चौथे और पांचवें समय में अनाहारक रहता है उस अपेक्षा से कहा है।

अयोगी भवस्थ केवली अनाहारक जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त तक रहता है। अयोगित्व शैलेशी अवस्था में होता है और शैलेशी अवस्था में वह नियम से अनाहारक ही होता है क्योंकि औदारिक काययोग उस समय नहीं रहता। शैलेशी अवस्था का जघन्य और उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त्त ही है। किन्तु जघन्य से उत्कृष्ट का अंतर्मुहूर्त्त अधिक होता है।

छउमत्थआहारगस्स० केवइयं कालं अंतरं०? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं दो समया। केवलिआहारगस्स अंतरं अजहण्णमणुक्कोसेणं तिण्णि समया॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छउमत्थअणाहारगस्स अंतरं जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं दुसमऊणं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं जाव अंगुलस्स असंखेज्जइभागं। सिद्धकेवलिअणाहारगस्स साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं॥ सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि, अजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगस्स णत्थि अंतरं॥

एएसि णं भंते! आहारगाणं अणाहारगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहु० ? गोयमा! सव्वत्थोवा अणाहारगा आहारगा असंखेज्जगुणा॥ २४७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! छद्मस्थ आहारक का अन्तर कितने काल का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! छद्मस्थ आहारक का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो समय का है। केवलि-आहारक का अन्तर अजघन्य अनुत्कृष्ट तीन समय। अनाहारक का अंतर जघन्य दो समय कम क्षुल्लक भव ग्रहण और उत्कृष्ट असंख्यातकाल यावत् अंगुल का असंख्यातवां भाग।

सिद्ध केवली अनाहारक सादि अपर्यवसित है अतः अन्तर नहीं है। सयोगि भवस्थ केवलि अनाहारक का जघन्य अन्तर अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त है। अयोगि भवस्थ केवलि अनाहारक का अन्तर नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! इन आहारकों एवं अनाहारकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े अनाहारक हैं उनसे आहारक असंख्यातगुणा हैं।

विवेचन - जितना काल छद्मस्थ अनाहारक का है उतना ही काल छद्मस्थ आहारक का अन्तर है। इसी प्रकार जितना छद्मस्थ का आहारक काल है उतना ही छद्मस्थ अनाहारक का अन्तर भी है।

केवली आहारक का अन्तर अजघन्योत्कृष्ट तीन समय का है।

केवली आहारक सयोगी भवस्थ केवलि होता है और उसका अनाहारकत्व तीन समय का ही है। केवलि आहारक का अन्तर यही तीन समय का है।

छद्मस्थ अनाहारक का अन्तर जघन्य दो समय कम क्षुल्लक भव है और उत्कृष्ट असंख्यातकाल यावत् अंगुल का असंख्यातवां भाग है सिद्ध केवलि अनाहारक सादि अपर्यवसित होने से उनका अंतर नहीं है। सयोगी भवस्थ केवलि अनाहारक का अंतर जघन्य भी अंतर्मुहूर्त्त है और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त है क्योंकि केवलि समुद्घात के बाद अंतर्मुहूर्त्त में ही शैलेशी अवस्था हो जाती है। अयोगी भवस्थ केवली अनाहारक का अन्तर नहीं है क्योंकि अयोगी अवस्था में सब अनाहारक ही होते हैं। सिद्धों में भी सादि अपर्यवसित होने से अन्तर नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सबसे थोड़े अनाहारक हैं उनसे आहारक असंख्यातगुणा हैं।

शंका - सिद्धों से वनस्पति जीव अनंतगुणा हैं वे प्राय: आहारक ही होते हैं फिर यहाँ अनन्तगुणा क्यों नहीं कहा है?

समाधान - समुच्चय निगोद राशि के एक असंख्यातवें भाग जितने निगोद प्रति समय विग्रह गति में होते हैं और विग्रह गति में जीव अनाहारक ही होते हैं अत: आहारक असंख्यातगुणा ही घटित होते हैं, अनन्तगुणा नहीं।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-सभासगा य अभासगा य॥ सभासए णं भंते! सभासएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं॥ अभासए णं भंते! गोयमा! अभासए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-साइए वा अपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए, तत्थ णं जे से साइ सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं काल अणंताओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ वणस्सइकालो॥

भावार्थ - अथवा सर्वजीव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - सभाषक और अभाषक।

प्रश्न - हे भगवन्! सभाषक, सभाषक के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त।

प्रश्न - हे भगवन्! अभाषक, अभाषक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अभाषक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - सादि अपर्यवसित और सादि सपर्यवसित। इनमें जो सादि सपर्यवसित अभाषक हैं वह जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनंतकाल अर्थात् अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल-वनस्पतिकाल तक रहता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सर्व जीवों के दो भेद कहे हैं - १. सभाषक और २. अभाषक। **'भाषमाणा भाषका इतरेऽभाषका:'** - जो बोल रहा है वह सभाषक कहलाता है शेष अभाषक हैं।

सभाषक, सभाषक रूप में जघन्य एक समय रहता है। भाषा द्रव्य के ग्रहण समय में ही मृत्यु हो जाने या अन्य किसी कारण से भाषा व्यापार से उपरत हो जाने से जघन्य काल एक समय कहा है। उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की स्थिति कही है। इतने काल तक भाषा द्रव्य का निरन्तर ग्रहण और निसर्ग होता है तत्पश्चात् तथाविध स्वभाव से सभाषक अवश्य अभाषक हो जाता है।

अभाषक के दो भेद हैं - सादि अपर्यवसित और सादि सपर्यवसित। सादि अपर्यवसित सिद्ध हैं और सादि सपर्यवसित पृथ्वीकाय आदि हैं। इनमें जो सादि सपर्यवसित है वह जघन्य अंतर्मुहूर्त तक अभाषक रहता है इसके बाद पुन: सभाषक हो जाता है। अथवा पृथ्वी आदि भव की जघन्य स्थिति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतर्मुहूर्त्त ही है। उत्कृष्ट अभाषक का काल वनस्पति काल कहा है। वनस्पतिकाल अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप है। क्षेत्र से अनंत लोकाकाश के प्रदेशों को प्रति समय एक एक निकालने पर जितना काल उसे खाली होने में लगता है उतना काल है। यह असंख्यात पुद्गल परावर्त रूप है। ये पुद्गल परावर्त आवलिका के असंख्यातवें भागवर्ती समयों के बराबर है। जीव वनस्पतिकाय में इतने काल तक अभाषक रूप में रह सकता है।

भासगस्स णं भंते! केवइकालं अंतरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं वणस्सइकालो। अभासग० साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, साइयसपज्जवसियस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। अप्पाबहुयं-सव्वत्थोवा भासगा अभासगा अणंतगुणा॥ अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ते, तंजहा-ससरीरी य असरीरी य० असरीरी जहा सिद्धा, सव्वत्थोवा असरीरी, ससरीरी अणंतगुणा॥ २४८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भाषक का अन्तर कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंतकाल यानी वनस्पतिकाल।

सादि अपर्यवसित अभाषक का अंतर नहीं है। सादि सपर्यवसित अभाषक का अंतर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त है।

अल्प बहुत्व में सबसे थोड़े भाषक हैं, अभाषक उनसे अनंतगुणा हैं। अथवा सर्व जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - सशरीरी और अशरीरी। अशरीरी की कायस्थिति आदि सिद्धों के समान और सशरीरी की कायस्थिति आदि असिद्धों के समान कहना चाहिये यावत् अशरीरी थोड़े हैं, उनसे सशरीरी अनंतगुणा हैं।

विवेचन - अभाषक का जो रहने का काल है वही भाषक का अंतर है अर्थात् भाषक का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल-वनस्पतिकाल है। सादि अपर्यवसित अभाषक का अन्तर नहीं है। सादि सपर्यवसित अभाषक का अंतर जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त है क्योंकि भाषक का यही काल है।

सशरीरी और अशरीरी की वक्तव्यता क्रमशः असिद्धों एवं सिद्धों के समान समझनी चाहिये।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-चरिमा चेव अचरिमा चेव॥ चरिमे णं भंते! चरिमेत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! चरिमे अणाइए सपज्जवसिए, अचरिमे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुविहे पण्णत्ते, तंजहा- अणाइए वा अपज्जवसिए साइए वा अपज्जवसिए, दोण्हंपि णत्थि अंतरं, अप्पाबहुयं-सव्वत्थोवा अचरिमा चरिमा अणंतगुणा ॥ २४९ ॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - चरम और अचरम।

प्रश्न - हे भगवन्! चरम, चरम रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! चरम अनादि सपर्यवसित है। अचरम दो प्रकार के कहे गये हैं--अनादि अपर्यवसित और सादि अपर्यवसित। दोनों का अन्तर नहीं है। अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े अचरम हैं उनसे चरम अनंतगुणा हैं। इस प्रकार सर्व जीव दो प्रकार के कहे गये हैं।

विवेचन - चरम भव वाले भव्य विशेष वे जीव जो सिद्ध होंगे, चरम कहलाते हैं। इनसे विपरीत अचरम कहलाते हैं। ये अचरम हैं - अभव्य और सिद्ध। चरम अनादि सपर्यवसित है अन्यथा वह चरम नहीं कहा जा सकता। अचरम दो प्रकार के कहे हैं - अनादि अपर्यवसित और सादि अपर्यवसित। अनादि अपर्यवसित अचरम अभव्य जीव हैं और सादि अपर्यवसित अचरम सिद्ध हैं।

अन्तर - अनादि सपर्यवसित चरम का अन्तर नहीं है क्योंकि चरमत्व के जाने पर पुनः चरमत्व संभव नहीं है। दोनों अचरम का अन्तर नहीं है क्योंकि इनका चरमत्व होता ही नहीं।

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े अचरम हैं क्योंकि अभव्य और सिद्ध ही अचरम हैं। उनसे चरम अनन्तगुणा हैं। यह कथन सभी भव्यों की अपेक्षा से समझना चाहिये अर्थात् - चरम अनन्तगुणा हैं यह सभी भव्यों की अपेक्षा से ही समझना चाहिये।

इस प्रकार सर्व जीव की यह द्विविध प्रतिपत्ति संपूर्ण हुई। इसकी द्विविध वक्तव्यता को संगृहीत करने वाली गाथा इस प्रकार है -

सिद्ध सइंदिय काए जोए वेए कसायलेसा य।
णाणुवओगाहारा भाससरीरी य चरमो य॥

सर्व जीव-त्रिविध वक्तव्यता

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा- सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी॥

सम्मदिट्ठी णं भंते!० कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! सम्मदिट्ठी दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-साइए वा अपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए, तत्थ जे ते साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं० मिच्छादिट्ठी तिविहे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणाइए वा अपज्जवसिए अणाइए वा सपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए, तत्थ जे ते साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं सम्मामिच्छादिट्ठी जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं॥

भावार्थ - जो आचार्य आदि ऐसा प्रतिपादित करते हैं कि सर्व जीव तीन प्रकार के हैं। वे तीन प्रकार इस प्रकार कहे हैं - सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि।

प्रश्न - हे भगवन्! सम्यग्दृष्टि, सम्यग्दृष्टि रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सम्यग्दृष्टि दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - सादि अपर्यवसित और सादि सपर्यवसित। जो सादि सर्यवसित सम्यग्दृष्टि हैं वे जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम तक रह सकते हैं।

मिथ्यादृष्टि तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. अनादि अपर्यवसित २. अनादि सपर्यवसित और ३. सादि सपर्यवसित। इनमें जो सादि सपर्यवसित हैं वे जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंतकाल यावत् देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्तन तक रह सकते हैं।

सम्यग् मिथ्यादृष्टि जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त तक रह सकता है।

विवेचन - सर्व जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं - १. सम्यग्दृष्टि २. मिथ्यादृष्टि और ३. सम्यग् मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि)। तीनों की कायस्थिति इस प्रकार है। सम्यग्दृष्टि के दो भेद हैं - १. सादि अपर्यवसित (क्षायिक सम्यग्दृष्टि) और सादि सपर्यवसित (क्षायोपशमिक आदि सम्यक्त्वी) इनमें से जो सादि सपर्यवसित सम्यग्दृष्टि हैं उनकी कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है क्योंकि विचित्र कर्मपरिणाम होने से इतने काल के पश्चात् कोई जीव मिथ्यादृष्टि बन सकता है। उत्कृष्ट छियासठ सागरोपम तक वह सम्यग्दृष्टि रह सकता है इसके बाद नियम से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व नहीं रहता।

मिथ्यादृष्टि तीन प्रकार के कहे गये हैं - १. अनादि अपर्यवसित २. अनादि सपर्यवसित और ३. सादि सपर्यवसित। इनमें जो सादि सपर्यवसित है वह जघन्य अंतर्मुहूर्त्त तक रहता है। इतने काल बाद जीव पुनः सम्यग्दर्शन पा सकता है उत्कृष्ट अनन्तकाल तक मिथ्यादृष्टि रहता है। अनंतकाल अर्थात् काल से अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप, क्षेत्र से देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त है। जिसने पूर्व में एक बार भी सम्यक्त्व पा लिया है वह इतने काल बाद पुनः सम्यग्दर्शन पा लेता है।

सम्यग् मिथ्यादृष्टि जघन्य से अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट से भी अंतर्मुहूर्त्त तक रहता है क्योंकि स्वभाव से ही मिश्रदृष्टि का काल इतना ही है किन्तु जघन्य से उत्कृष्ट का अंतर्मुहूर्त्त अधिक होता है।

सम्मदिट्ठिस्स अंतरं साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देसूणं, मिच्छादिट्ठिस्स अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, अणाइयस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं, सम्मामिच्छादिट्ठिस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। अप्पाबहुयं-सव्वत्थोवा सम्मामिच्छादिट्ठी सम्मदिट्ठी अणंतगुणा मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा॥ २५०॥

भावार्थ - सम्यग्दृष्टि के अन्तर में सादि अपर्यवसित का अन्तर नहीं है। सादि सपर्यवसित का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है यावत् देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त है। मिथ्यादृष्टि में अनादि अपर्यवसित और अनादि सपर्यवसित का अन्तर नहीं है। सादि सपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम है। सम्यग् मिथ्यादृष्टि का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है जो देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त रूप है।

अल्प बहुत्व में सबसे थोड़े सम्यग् मिथ्यादृष्टि हैं, उनसे सम्यग्दृष्टि अनन्तगुणा हैं और उनसे मिथ्यादृष्टि अनंतगुणा हैं।

विवेचन - अंतरद्वार में सादि अपर्यवसित सम्यग्दृष्टि का अन्तर नहीं है। सादि सपर्यवसित सम्यग्दृष्टि का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है क्योंकि सम्यग्दर्शन से गिर कर कोई जीव अंतर्मुहूर्त्त में पुनः सम्यग्दर्शन पा लेता है उत्कृष्ट अंतर अनंतकाल अर्थात् देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त है अनादि अपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का अन्तर नहीं हैं क्योंकि उसका मिथ्यात्व छूटता ही नहीं है। अनादि सपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का भी अन्तर नहीं है। क्योंकि छूट कर पुनः होने में अनादित्व नहीं रहता। सादि सपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम है क्योंकि सम्यक्त्व का जघन्य उत्कृष्ट काल इतना ही है। जितना सम्यक्त्व का काल है उतना मिथ्यात्व का अन्तर है। सम्यग्-मिथ्यादृष्टि का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि से गिर कर कोई अंतर्मुहूर्त्त में पुनः सम्यग्-मिथ्यादृष्टि बन जाता है। उत्कृष्ट देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त का अन्तर है क्योंकि यदि सम्यग्-मिथ्यादृष्टि से गिर कर पुनः सम्यग्-मिथ्यादृष्टि का लाभ हो तो नियमा उत्कृष्ट इतने काल के बाद ही होता है, अन्यथा मोक्ष हो जाता है।

अल्प बहुत्व में सबसे थोड़े मिश्रदृष्टि (सम्यग्-मिथ्यादृष्टि) हैं क्योंकि तद्योग्य परिणाम थोड़े काल तक ही रहता है और पृच्छा के समय वे थोड़े ही होते हैं। उनसे सम्यग्दृष्टि अनंतगुणा हैं क्योंकि सिद्ध जीव अनंत हैं। उनसे मिथ्यादृष्टि अनंतगुणा हैं क्योंकि सिद्धों से भी वनस्पतिकाय के जीव अनंतगुणा हैं और वे मिथ्यादृष्टि हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-परित्ता अपरित्ता णोपरित्ताणोअपरित्ता। परित्ते णं भंते!० कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! परित्ते दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-कायपरित्ते य संसारपरित्ते य। कायपरित्ते णं भंते!०? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं जाव असंखेज्जालोगा। संसारपरित्ते णं भंते! संसारपरित्तेत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। अपरित्ते णं भंते!०? गोयमा! अपरित्ते दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-कायअपरित्ते य संसारअपरित्ते य कायअपरित्ते णं० जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अड्ढाइज्जा पोग्गल परियट्टा, संसारापरित्ते दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-अणाइए वा अपज्जवसिए अणाइए वा सपज्जवसिए, णोपरित्तेणोअपरित्ते साइए अपज्जवसिए। कायपरित्तस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं जाव अड्ढाइज्जा पोग्गल परियट्टा, संसार परित्तस्स णत्थि अंतरं, कायापरित्तस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं पुढविकालो। संसारापरित्तस्स अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, अणाइयस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, णोपरित्तणोअपरित्तस्सवि णत्थि अंतरं। अप्पाबहु० सव्वत्थोवा परित्ता णोपरित्ताणोअपरित्ता अणंतगुणा अपरित्ता अणंतगुणा॥ २५१॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं - परित्त, अपरित्त और नोपरित्त-नोअपरित्त।

प्रश्न - हे भगवन्! परित्त, परित्त के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! परित्त दो प्रकार के कहे हैं - कायपरित्त और संसारपरित्त।

प्रश्न - हे भगवन्! कायपरित्त, कायपरित्त रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असंख्यातकाल यावत् असंख्यात लोक।

प्रश्न - हे भगवन्! संसारपरित्त, संसारपरित्त रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंतकाल यावत् देशोन अपार्द्धपुद्गल परावर्तन तक संसार परित्त संसार परित्त रूप में रहता है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपरित्त, अपरित्त रूप में कितने काल तक रहता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अपरित्त दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - काय अपरित्त और संसार अपरित्त।

प्रश्न - हे भगवन्! काय अपरित्त, काय अपरित्त के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनंतकाल यावत् अढ़ाई पुद्गल परावर्तन।

संसार अपरित्त दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - अनादि अपर्यवसित और अनादि सपर्यवसित। नोपरित्त-नो अपरित्त सादि अपर्यवसित है। कायपरित्त का जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अंतर अनंतकाल यावत् अढ़ाई पुद्गल परावर्तन है। संसारपरित्त का अन्तर नहीं है। काय-अपरित्त का जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अंतर असंख्यातकाल-पृथ्वीकाल है अनादि अपर्यवसित संसार अपरित्त का अंतर नहीं है। अनादि सपर्यवसित संसार अपरित्त का भी अंतर नहीं है। नोपरित्त-नो अपरित्त का भी अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े परित्त हैं, नोपरित्त-नोअपरित्त अनंत गुणा हैं और उनसे अपरित्त अनन्तगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सर्व जीव तीन प्रकार के कहे हैं - १. परित्त २. अपरित्त और ३. नोपरित्त-नो अपरित्त। जिन्होंने संसार तथा साधारण वनस्पतिकाय को सीमित कर दिया है, वे जीव परित्त कहलाते हैं। इससे विपरीत अपरित्त हैं तथा सिद्ध जीव नोपरित्त-नोअपरित्त है।

परित्त के दो भेद हैं - १. काय परित्त और २ संसार परित्त। काय परित्त अर्थात् प्रत्येक शरीरी। संसार परित्त अर्थात् जिसका संसार परिभ्रमण काल देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त है।

कायपरित्त की जघन्य कायस्थिति अंतर्मुहूर्त है। वह साधारण वनस्पति से परित्तों में अंतर्मुहूर्त काल तक रह कर पुनः साधारण में चले जाने की अपेक्षा से है। उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यातकाल अर्थात् पृथ्वीकाल है यानी पृथ्वीकाय आदि प्रत्येक शरीरी का जितना संचिट्ठणकाल है उतना असंख्यातकाल है। इसके पश्चात् नियम से साधारण रूप में पैदा होता है। संसार परित्त की कायस्थिति जघन्य-अंतर्मुहूर्त है। इसके बाद कोई अन्तकृत केवली होकर मोक्ष में जा सकता है। उत्कृष्ट कायस्थिति अनंतकाल यावत् देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त है। इसके पश्चात् वह नियमा मोक्ष में जाता है।

अपरित्त दो प्रकार के कहे गये हैं-काय अपरित्त और संसार अपरित्त। काय अपरित्त साधारण वनस्पति जीव हैं और संसार अपरित्त कृष्ण पाक्षिक जीव हैं। काय अपरित्त की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त है अंतर्मुहूर्त के पश्चात् वह किसी भी प्रत्येक शरीरी में जा सकता है। उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्तकाल अर्थात् अढ़ाई पुद्गल परावर्तन है। संसार अपरित्त के दो भेद हैं - अनादि अपर्यवसित, जो कभी मोक्ष में नहीं जावेगा और अनादि सपर्यवसित-भव्य विशेष। नोपरित्त-नोअपरित्त (सिद्ध जीव) सादि अपर्यवसित है क्योंकि वहाँ से जीव प्रतिपात नहीं होता (गिरता नहीं)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कायपरित्त का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है अर्थात् अंतर्मुहूर्त्त तक साधारणों में रह कर पुनः प्रत्येक शरीरी में आया जा सकता है उत्कृष्ट अंतर अनंतकाल अढ़ाई पुद्गल परावर्तन का है। अर्थात् अनंत काल तक जीव साधारण रूप में रह सकता है। संसार परित्त का अन्तर नहीं है क्योंकि संसार परित्त से छूटने पर पुनः संसार परित्त नहीं होता तथा सिद्ध जीवों का प्रतिपात नहीं होता।

काय-अपरित्त का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है। यानी अंतर्मुहूर्त्त तक प्रत्येक शरीरी रह कर जीव पुनः साधारण वनस्पति में आ सकता है। उत्कृष्ट अन्तर असंख्यातकाल (पृथ्वीकाल)। अर्थात् काल से असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप और क्षेत्र से असंख्यात लोक के आकाश प्रदेशों को प्रतिसमय एक एक निकालने पर जितने समय में वे खाली हो उतने समय का है।

अनादि अपर्यवसित संसार अपरित्त का अन्तर नहीं, अनादि सपर्यवसित संसार अपरित्त का भी अंतर नहीं क्योंकि संसार-अपरित्त के जाने पर पुनः संसार-अपरित्त नहीं होता। सादि अपर्यवसित होने से नोपरित्त-नोअपरित्त का अंतर नहीं है।

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े परित्त हैं क्योंकि काय-परित्त और संसार-परित्त जीव थोड़े हैं। उनसे नो परित्तनो-अपरित्त जीव अनन्तगुणा हैं क्योंकि सिद्ध जीव अनंत हैं। उनसे अपरित्त अनन्तगुणा है क्योंकि कृष्णपाक्षिक जीव अनंत हैं।

अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-पज्जत्तगा अपज्जत्तगा णोपज्जत्तगाणो-अपज्जत्तगा, पज्जत्तगे णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं। अपज्जत्तगे णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं, णोपज्जत्तणोअपज्जत्तए साइए अपज्जवसिए। पज्जत्तगस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं, अपज्जत्तगस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं, तइयस्स णत्थि अंतरं। अप्पाबहु० सव्वत्थोवा णोपज्जत्तगणोअपज्जत्तगा अपज्जत्तगा अणंतगुणा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा॥ २५२॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक, पर्याप्तक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शत पृथक्त्व।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक, अपर्याप्तक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नोपर्याप्तक नो अपर्याप्तक सादि अपर्यवसित है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक का अंतर कितने काल का है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त। अपर्याप्तक का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शत पृथक्त्व है। नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक का अन्तर नहीं है। अल्प बहुत्व में सबसे थोड़े नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक हैं, उनसे अपर्याप्तक अनंतगुणा हैं, उनसे पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सर्व जीव के तीन भेद कहे गये हैं। यथा - पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक। पर्याप्तक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है। यह अपर्याप्तक से पर्याप्तक में उत्पन्न होकर अंतर्मुहूर्त्त तक रहने के बाद पुनः अपर्याप्तक होने की अपेक्षा से है। उत्कृष्ट कायस्थिति साधिक सागरोपम शत पृथक्त्व (दो सौ से लेकर नौ सौ सागरोपम) है इतने काल के बाद नियमा जीव अपर्याप्तक होता है। यह कथन लब्धि अपर्याप्तक की अपेक्षा है। अपर्याप्तक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त है किन्तु जघन्य से उत्कृष्ट पद अधिक है। नोपर्याप्तक-नो अपर्याप्तक सादि अपर्यवसित होने से सदा काल उसी रूप में रहते हैं।

पर्याप्तकाल, अपर्याप्तक का अंतर है और अपर्याप्तकाल पर्याप्तक का अन्तर है। नोपर्याप्तक नो अपर्याप्तक का अंतर नहीं है क्योंकि वे सिद्ध हैं और वे अपर्यवसित हैं।

सबसे थोड़े नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक हैं क्योंकि सिद्ध शेष जीवों की अपेक्षा थोड़े हैं उनसे अपर्याप्तक अनंतगुणा हैं क्योंकि निगोद जीवों में अपर्याप्तक सदैव अनंत मिलते हैं उनसे पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं क्योंकि सूक्ष्म जीवों में अपर्याप्तकों से पर्याप्तक संख्यातगुणा हैं।

अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-सुहुमा बायरा णोसुहुमणोबायरा, सुहुमे णं भंते! सुहुमेत्ति कालओ केवच्चिरं० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं पुढविकालो, बायरा जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागो, णोसुहुमणोबायरे साइए अपज्जवसिए, सुहुमस्स अंतरं बायरकालो, बायरस्स अंतरं सुहुमकालो, तइयस्स णोसुहुमणोबायरस्स अंतरं णत्थि। अप्पाबहु० सव्वत्थोवा णोसुहुमणोबायरा बायरा अणंतगुणा सुहुमा असंखेज्जगुणा॥ २५३॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. सूक्ष्म २. बादर और ३. नोसूक्ष्म-नोबादर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! सूक्ष्म, सूक्ष्म रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट असंख्यातकाल अर्थात् पृथ्वीकाल।

प्रश्न - हे भगवन्! बादर, बादर रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक रहता है।

यह असंख्यातकाल असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप है। क्षेत्र से अंगुल का असंख्यातवां भाग है। नोसूक्ष्म-नोबादर सादि अपर्यवसित है।

सूक्ष्म का अंतर बादर काल है और बादर का अंतर सूक्ष्मकाल है। नोसूक्ष्म-नोबादर का अन्तर नहीं है। अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े नोसूक्ष्म-नोबादर हैं उनसे बादर अनन्तगुणा हैं और उनसे सूक्ष्म असंख्यातगुणा हैं।

विवेचन - सूक्ष्म, बादर और नोसूक्ष्म-नोबादर के भेद से सर्व जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं।

कायस्थिति - सूक्ष्म की कायस्थिति जघन्य से अंतर्मुहूर्त्त है। अंतर्मुहूर्त्त के बाद पुनः बादरों में उत्पत्ति हो सकती है। उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यातकाल है। यह असंख्यातकाल काल से असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप और क्षेत्र से असंख्यात लोकाकाश प्रदेशों को प्रतिसमय एक-एक निकालने पर संपूर्ण खाली होने में जितना समय लगता है उस काल के बराबर है। यही पृथ्वीकाल कहलाता है। बादर की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है। अंतर्मुहूर्त्त के बाद जीव पुनः सूक्ष्म में उत्पन्न हो जाता है। उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यातकाल की है। यह असंख्यातकाल काल से असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप और क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भाग यानी अंगुल के असंख्यातवें भाग के आकाश प्रदेशों को प्रति समय एक-एक निकालने पर संपूर्ण खाली होने में जितना समय लगता है उस समय के बराबर है। इतने उत्कृष्ट कालमान के बाद बादर जीव नियमा सूक्ष्म में उत्पन्न होते हैं। नोसूक्ष्म-नोबादर सिद्ध जीव हैं। सादि अपर्यवसित होने से वे सदा काल उसी रूप में रहते हैं।

अंतर - सूक्ष्म का अंतर बादर काल अर्थात् जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट असंख्यात काल यानी अंगुल के असंख्यातवें भाग है। बादर का अंतर सूक्ष्मकाल अर्थात् जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असंख्यातकाल (पृथ्वीकाल) है। नोसूक्ष्म-नोबादर का अन्तर नहीं है क्योंकि वह सादि अपर्यवसित है।

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े नोसूक्ष्म-नोबादर हैं क्योंकि सिद्ध जीव अन्य जीवों की अपेक्षा थोड़े हैं। उनसे बादर अनन्तगुणा हैं क्योंकि बादर निगोद के जीव सिद्धों से अनन्तगुणा हैं उनसे भी सूक्ष्म असंख्यातगुणा हैं क्योंकि बादर निगोद से सूक्ष्म निगोद असंख्यातगुणा हैं।

अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-सण्णी असण्णी णोसण्णीणोअसण्णी,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सण्णी णं भंते!० कालओ० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं, असण्णी जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, णोसण्णीणोअसण्णी साइए अपज्जवसिए। सण्णिस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, असण्णिस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं, तइयस्स णत्थि अंतरं। अप्पाबहु० सव्वत्थोवा सण्णी णोसण्णीणोअसण्णी अणंतगुणा असण्णी अणंतगुणा॥ २५४॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - संज्ञी (सन्नी), असंज्ञी और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी।

प्रश्न - हे भगवन्! संज्ञी, संज्ञी रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! संज्ञी, संज्ञी रूप में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शत पृथक्त्व तक रहता है। असंज्ञी, असंज्ञी रूप में जघन्य से अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक रहता है। नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी सादि अपर्यवसित है।

संज्ञी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। असंज्ञी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शत पृथक्त्व है। नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े संज्ञी हैं उनसे नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी अनंत गुणा हैं और उनसे असंज्ञी अनन्तगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तीन प्रकार के सर्व जीवों-संज्ञी, असंज्ञी और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी की कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व का कथन किया गया है। कायस्थिति और अन्तर भावार्थ से ही स्पष्ट है। अल्पबहुत्व इस प्रकार समझना चाहिये - सबसे थोड़े संज्ञी हैं क्योंकि देव, नैरयिक, गर्भज तिर्यंच और मनुष्य ही संज्ञी हैं। उनसे नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी अनन्तगुणा हैं क्योंकि वनस्पति को छोड़ कर शेष जीवों से सिद्ध अनन्तगुणा हैं उनसे असंज्ञी अनन्तगुणा हैं क्योंकि सिद्धों से वनस्पतिजीव अनन्तगुणा हैं।

अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-भवसिद्धिया अभवसिद्धिया णोभवसिद्धियाणोअभवसिद्धिया, अणाइया सपज्जवसिया भवसिद्धिया, अणाइया अपज्जवसिया अभवसिद्धिया, साइया अपज्जवसिया णोभवसिद्धिया णोअभवसिद्धिया। तिण्हंपि णत्थि अंतरं। अप्पाबहु० सव्वत्थोवा अभवसिद्धिया णोभवसिद्धियाणो-अभवसिद्धिया अणंतगुणा भवसिद्धिया अणंतगुणा॥ २५५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - अथवा सर्वजीव तीन प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक। भवसिद्धिक जीव अनादि सपर्यवसित हैं। अभवसिद्धिक अनादि अपर्यवसित हैं और नो भवसिद्धिक-नो अभवसिद्धिक सादि-अपर्यवसित हैं। तीनों का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े अभवसिद्धिक हैं, उनसे नोभवसिद्धिक-नोअभव सिद्धिक अनंतगुणा हैं और उनसे भी भवसिद्धिक जीव अणंतगुणा हैं।

विवेचन - अपेक्षा से सर्व जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा - भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक। भवसिद्धिक अनादि सपर्यवसित, अभवसिद्धिक अनादि अपर्यवसित और नोभवसिद्धिक नो अभवसिद्धिक सादि अपर्यवसित होने से इनकी कायस्थिति और अंतर घटित नहीं होता।

अल्पबहुत्व द्वार में - सबसे थोड़े अभवसिद्धिक हैं क्योंकि वे जघन्य युक्तानन्तक के तुल्य हैं, उनसे नो भवसिद्धिक-नो अभवसिद्धिक अनन्तगुणा हैं क्योंकि अभव्यों से सिद्ध अनंतगुणा हैं उनसे भी भवसिद्धिक अनंतगुणा हैं क्योंकि सिद्धों से भी भव्य अनन्तगुणा हैं।

अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-तसा थावरा णोतसाणोथावरा, तसस्स णं भंते कालओ!० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं साइरेगाइं, थावरस्स संचिट्ठणा वणस्सइकालो, णोतसाणोथावरा साइया अपज्जवसिया। तसस्स अंतरं वणस्सइकालो, थावरस्स अंतरं दो सागरोवमसहस्साइं साइरेगाइं, णोतसणो-थावरस्स णत्थि अंतरं। अप्पाबहु० सव्वत्थोवा तसा णोतसाणोथावरा अणंतगुणा थावरा अणंतगुणा। से तं तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता॥ २५६ ॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. त्रस २. स्थावर और ३. नोत्रस-नोस्थावर।

प्रश्न - हे भगवन्! त्रस, त्रस रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! त्रस त्रस, रूप में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक दो हजार सागरोपम तक रह सकता है। स्थावर का संचिट्ठणा काल वनस्पतिकाल है। नोत्रस-नोस्थावर सादि अपर्यवसित हैं। त्रस का अन्तर वनस्पतिकाल है। स्थावर का अन्तर साधिक दो हजार सागरोपम का है। नोत्रस-नोस्थावर का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व में - सबसे थोड़े त्रस हैं, उनसे नोत्रस-नोस्थावर अनंतगुणा हैं, उनसे स्थावर अनंतगुणा हैं। इस प्रकार सर्व जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में त्रस, स्थावर और नोत्रस-नोस्थावर के भेद से सर्व जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं। इन तीन प्रकार के सर्व जीवों की कायस्थिति, अंतर और अल्पबहुत्व का कथन किया गया है। इस प्रकार सर्व जीवों की यह त्रिविध प्रतिपत्ति समाप्त हुई है।

सर्व जीव चतुर्विध वक्तव्यता

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा- मणजोगी वइजोगी कायजोगी अजोगी। मणजोगी णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं, एवं वइजोगीवि, कायजोगी जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, अजोगी साइए अपज्जवसिए। मणजोगिस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, एवं वइजोगिस्सवि, कायजोगिस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं, अजोगिस्स णत्थि अंतरं। अप्पाबहु० सव्वत्थोवा मणजोगी वइजोगी असंखेज्जगुणा अजोगी अणंतगुणा कायजोगी अणंतगुणा॥ २५७॥

भावार्थ - जो ऐसा प्रतिपादित करते हैं कि सर्व जीव चार प्रकार के हैं, वे चार प्रकार इस प्रकार हैं - मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी। हे भगवन्! मनोयोगी, मनोयोगी रूप में कितने काल तक रहता है? हे गौतम! मनोयोगी मनोयोगी रूप में जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त तक रहता है। वचन योगी के विषय में भी इसी प्रकार समझना। काययोगी जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक रहता है। अयोगी सादि अपर्यवसित है।

मनोयोगी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। वचनयोगी का भी अंतर इतना ही है। काययोगी का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त का है। अयोगी का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व में - सबसे थोड़े मनोयोगी, उनसे वचनयोगी असंख्यातगुणा, उनसे अयोगी अनन्तगुणा और उनसे काययोगी अनंतगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी के भेद से सर्व जीवों के चार प्रकार कहे गये हैं और उनकी कायस्थिति (संचिट्ठणा), अंतर तथा अल्पबहुत्व का कथन किया गया है जो इस प्रकार समझना चाहिये -

कायस्थिति - मनोयोगी जघन्य एक समय तक मनोयोगी के रूप में रह सकता है उसके बाद दूसरे समय में मरण हो जाने से या मनन से रहित हो जाने के कारण तथा विशिष्ट मनोयोग्य पुद्गल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहण की अपेक्षा से एक समय कहा गया है। उत्कृष्ट कायस्थिति (संचिट्ठणा) अंतर्मुहूर्त्त की है। अंतर्मुहूर्त्त के बाद तथारूप जीव स्वभाव से वह नियमा मनोयोग से रहित हो जाता है। इसी प्रकार वचन योगी की संचिट्ठणा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त समझना चाहिये। काययोगी अर्थात् मनोयोगी वचन योगी से रहित एकेन्द्रिय आदि की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की है। बेइन्द्रिय आदि से निकल कर पृथ्वी आदि में अंतर्मुहूर्त्त रह कर पुनः बेइन्द्रिय आदि में गमन की अपेक्षा यह कथन समझना चाहिये, उत्कृष्ट कायस्थिति वनस्पतिकाल की है अर्थात् काययोगी उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक उसी रूप में रह सकता है। अयोगी अर्थात् सिद्ध सादि अपर्यवसित हैं अतः वे सदा उसी रूप में रहते हैं।

अंतर - मनोयोगी और वचन योगी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। काय योगी का अंतर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त है। इसका कारण इस प्रकार समझना- जिस समय मन, वचन योग का व्यापार होता है, उस समय काय योग का व्यापार होते हुए भी आगमकारों ने नहीं माना है। इसीलिए काययोग का अन्तर एक समय माना गया है अथवा एक समय में मनयोग की निवृत्ति हो जाने से या काल कर जाने की अपेक्षा से भी एक समय की स्थिति बताई है।

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े मनोयोगी हैं क्योंकि देव, नैरयिक, गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य ही मनोयोगी हैं। उनसे वचनयोगी असंख्यातगुणा हैं क्योंकि बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय वचन योग वाले हैं उनसे अयोगी अनंतगुणा हैं क्योंकि सिद्ध अनन्त हैं। उनसे काययोगी अनंत गुणा हैं क्योंकि सिद्धों से वनस्पति जीव अनंतगुणा हैं।

अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-इत्थिवेयगा पुरिसवेयगा णपुंसगवेयगा अवेयगा, इत्थिवेयए णं भंते! इत्थिवेयएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! (एगेण आएसेण०) पलियसयं दसुत्तरं अट्ठारस चोद्दस पलियपुहुत्तं, समओ जहण्णेणं, पुरिसवेयस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं, णपुंसगवेयस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अणंतं कालं वणस्सइकालो। अवेयए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-साइए वा अपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए से जहण्णेणं एक्कं स० उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। इत्थिवेयस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, पुरिसवेयस्स० जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, णपुंसगवेयस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं, अवेयगो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जहा हेट्ठा। अप्पाबहु० सव्वत्थोवा पुरिसवेयगा इत्थिवेयगा संखेज्जगुणा अवेयगा अणंतगुणा णपुंसगवेयगा अणंतगुणा॥ २५८॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव चार प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदक और अवेदक।

प्रश्न - हे भगवन्! स्त्रीवेदक, स्त्रीवेदक रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! स्त्रीवेदक, स्त्रीवेदक रूप में जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अलग-अलग अपेक्षाओं से क्रमशः एक सौ दस, एक सौ, अठारह, चौदह पल्योपम तथा पल्योपम पृथक्त्व तक रह सकता है।

पुरुषवेदक, पुरुषवेदक रूप में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शत पृथक्त्व तक रह सकता है। नपुंसकवेदक जघन्य एक समय उत्कृष्ट अनंतकाल-वनस्पतिकाल तक रह सकता है।

अवेदक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - सादि अपर्यवसित और सादि सपर्यवसित। सादि सपर्यवसित अवेदक जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त तक रह सकता है।

स्त्रीवेदक का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। पुरुषवेदक का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। नपुंसकवेद का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शतपृथक्त्व है। अवेदक का जैसा पहले कहा है, अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े पुरुषवेदक, उनसे स्त्रीवेदक संख्यातगुणा, उनसे अवेदक अनंतगुणा और उनसे नपुंसकवेदक अनंतगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सर्व जीवों के चार भेद इस प्रकार बताये हैं - १. स्त्रीवेदक २. पुरुषवेदक ३. नपुंसकवेदक और ४. अवेदक। इनकी कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व इस प्रकार हैं-

कायस्थिति - स्त्रीवेदक की कायस्थिति पांच अपेक्षाओं से कही गई है -

१. पहली अपेक्षा से स्त्रीवेदक की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक ११० पल्योपम।

२. दूसरी अपेक्षा से स्त्रीवेदक की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक १०० पल्योपम।

३. तीसरी अपेक्षा से स्त्रीवेदक की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक १८ पल्योपम।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. चौथी अपेक्षा से स्त्रीवेदक की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक १४ पल्योपम।

५. पांचवी अपेक्षा से स्त्रीवेदक की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक एक पल्योपम की है।

इन पांचों अपेक्षाओं का विस्तृत विवेचन तीसरी (त्रिविध) प्रतिपत्ति में दिया जा चुका है। पुरुषवेद की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की है। यह स्त्रीवेद आदि से निकलकर अंतर्मुहूर्त्त तक पुरुषवेद में रह कर पुनः स्त्रीवेद प्राप्त करने की अपेक्षा से है। उत्कृष्ट कायस्थिति साधिक सागरोपम शत पृथक्त्व की है। यह उत्कृष्टकाल देव, मनुष्य और तिर्यंच भवों में भ्रमण करने की अपेक्षा है। नपुंसक वेद की जघन्य कायस्थिति एक समय की और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल-अनंतकाल की है।

शंका - स्त्रीवेदक और नपुंसकवेदक की तरह पुरुषवेदक की जघन्य कायस्थिति एक समय की क्यों नहीं कही गई है?

समाधान - उपशम श्रेणी में वेदोपशमन के पश्चात् एक समय तक स्त्रीवेद या नपुंसक वेद का अनुभव होता है जबकि उपशम श्रेणी में जो मरता है वह पांच अनुत्तर विमानवासी देवों में ही जाता है। उनमें मात्र पुरुषवेद ही होने से वह पुरुषवेद में ही उत्पन्न होता है अन्य वेद में नहीं। अतः जन्मान्तर में भी निरन्तर रूप से गमन की अपेक्षा एक समय की कायस्थिति घटित नहीं होती है।

अवेदक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. सादि अपर्यवसित (क्षीण वेद वाले) और २. सादि सपर्यवसित (उपशांत वेद वाले)। सादि सपर्यवसित की कायस्थिति जघन्य एक समय है क्योंकि द्वितीय समय में मर कर देव गति में पुरुषवेद संभव है। उत्कृष्ट कायस्थिति अंतर्मुहूर्त्त की है तत्पश्चात् मर कर वह पुरुषवेद वाला हो जाता है या श्रेणी से गिरता हुआ जिस वेद से श्रेणी पर चढ़ा उस वेद का उदय हो जाने से वह सवेदक हो जाता है।

अन्तर - स्त्रीवेद का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है क्योंकि वेद का उपशम होने पर पुनः अंतर्मुहूर्त्त में वेद का उदय हो सकता है अथवा स्त्रीपर्याय से निकल कर पुरुषवेद या नपुंसकवेद में अंतर्मुहूर्त्त रह कर पुनः स्त्री पर्याय में आया जा सकता है। उत्कृष्ट अंतर वनस्पतिकाल (अनंतकाल) का है। पुरुषवेद का अन्तर जघन्य एक समय है क्योंकि उपशम श्रेणी में पुरुषवेद का उपशम होने पर एक समय के अनन्तर पुरुषत्व रूप में उत्पन्न होना संभव है। उत्कृष्ट अंतर वनस्पतिकाल का है। स्त्रीवेद की तरह नपुंसकवेद का जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त्त है उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शत पृथक्त्व का अंतर है। इसके बाद जीव अवश्य नपुंसक वेद में उत्पन्न होता है। अवेदक सादि अपर्यवसित का अन्तर नहीं। सादि सपर्यवसित अवेदक का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है क्योंकि अंतर्मुहूर्त्त बाद पुनः श्रेणी का आरंभ संभव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। उत्कृष्ट अनन्तकाल का अंतर है। अनंतकाल अर्थात् काल से अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप तथा क्षेत्र से देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त है। इस काल के पश्चात् जिसने पहले श्रेणी की है वह पुनः श्रेणी आरंभ करता ही है।

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े पुरुषवेदक हैं क्योंकि देवगति, मनुष्यगति और तिर्यंचगति में वे थोड़े ही हैं, उनसे स्त्रीवेदक संख्यातगुणा हैं क्योंकि तिर्यंचगति में स्त्रियां पुरुषों से तिगुनी, मनुष्यगति में सत्ताईस गुणी और देवगति में बत्तीसगुणी हैं। उनसे अवेदक अनंतगुणा हैं क्योंकि सिद्ध अनंत हैं। उनसे नपुंसकवेद अनंतगुणा हैं क्योंकि सिद्धों से वनस्पतिजीव अनंतगुणा हैं।

अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी॥

चक्खुदंसणी णं भंते!०? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसहस्स साइरेगं, अचक्खुदंसणी दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-अणाइए वा अपज्जवसिए अणाइए वा सपज्जवसिए। ओहिदंसणिस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं दो छावट्ठी सागरोवमाणं साइरेगाओ, केवलदंसणी साइए अपज्जवसिए॥ चक्खुदंसणिस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। अचक्खुदंसणिस्स दुविहस्स णत्थि अंतरं। ओहिदंसणिस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। केवलदंसणिस्स णत्थि अंतरं। अप्पाबहुयं सव्वत्थोवा ओहिदंसणी चक्खुदंसणी असंखेज्जगुणा केवलदंसणी अणंतगुणा अचक्खुदंसणी अणंतगुणा॥ २५९॥

भावार्थ - अथवा सर्वजीव चार प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी।

प्रश्न - हे भगवन्! चक्षुदर्शनी, चक्षुदर्शनी रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! चक्षुदर्शनी, चक्षुदर्शनी रूप में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक एक हजार सागरोपम तक रह सकता है।

अचक्षुदर्शनी दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - अनादि अपर्यवसित और अनादि सपर्यवसित। अवधिदर्शनी, अवधिदर्शनी रूप में जघन्य एक समय और उत्कृष्ट साधिक दो छियासठ सागरोपम तक रह सकता है केवलदर्शनी सादि अपर्यवसित है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुदर्शनी का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। अचक्षुदर्शनी का अन्तर नहीं। अवधिदर्शनी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। केवलदर्शनी का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व में-सबसे थोड़े अवधिदर्शनी, उनसे चक्षुदर्शनी असंख्यातगुणा हैं, उनसे केवलदर्शनी अनंतगुणा हैं और उनसे अचक्षुदर्शनी अनंतगुणा हैं।

विवेचन - चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी के भेद से सर्व जीव चार प्रकार के कहे गये हैं। इनकी कायस्थिति, अंतर और अल्पबहुत्व इस प्रकार है -

कायस्थिति - चक्षुदर्शनी की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की कही है। यह अचक्षुदर्शनी से निकल कर चक्षुदर्शनी में अंतर्मुहूर्त्त काल रह कर पुनः अचक्षुदर्शनी में उत्पन्न होने की अपेक्षा से है। उत्कृष्ट साधिक एक हजार सागरोपम तक चक्षुदर्शनी चक्षुदर्शनी रूप में रह सकता है। अचक्षुदर्शनी दो प्रकार के कहे हैं - अनादि अपर्यवसित-जो कभी सिद्धि प्राप्त नहीं करेगा और अनादि सपर्यवसित, भव्य जीव जो सिद्धि प्राप्त करेगा दोनों की काल मर्यादा नहीं है। अवधिदर्शनी की जघन्य कायस्थिति एक समय की है। अवधिदर्शन प्राप्त करने के पश्चात् कोई एक समय में ही काल कर जाय अथवा मिथ्यात्व में जाने से या दुष्ट अध्यवसाय के कारण अवधि से गिर सकता है। उत्कृष्ट साधिक दो छियासठ सागरोपम की कायस्थिति इस प्रकार समझनी चाहिये -

बारहवें देवलोक में तथा ग्रैवेयक में जो मनुष्य विभंगज्ञान लेकर जावे वहां से अवधि लेकर वापिस मनुष्य में आवे, ऐसे तीन भव बारहवें स्वर्ग के तथा प्रथम ग्रैवेयक के करने से ६६ सागर झाझेरे विभंग के साथ अवधिदर्शन के हुए। फिर अनुत्तर विमान के ३३ सागर के दो भव करे, या ग्रैवेयकादि के तीन भव करने से अवधिज्ञान के साथ ६६ सागर झाझेरे हुए। इस प्रकार दो ६६ सागर तथा मनुष्य भव की स्थिति गिनने से झाझेरे हो जाते हैं। इस प्रकार आगम पाठ की उचित संगति बहुश्रुत गुरु भगवंत फरमाते हैं। जिसका खुलासा समर्थ समाधान भाग १ के पृष्ठ १४७ के प्रश्न नं. ३३२ में किया गया है। इस प्रकार अवधिदर्शनी दो छियासठ सागरोपम तक उत्कृष्ट अवधिदर्शनी के रूप में रह सकता है। सादि अपर्यवसित होने से केवलदर्शनी की कायस्थिति नहीं होती है।

अंतर - चक्षुदर्शनी का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल, इतने काल में अचक्षुदर्शन का व्यवधान होकर पुनः चक्षुदर्शनी हो सकता है। अनादि अपर्यवसित और अनादि सपर्यवसित अचक्षुदर्शनी का अंतर नहीं है क्योंकि एक बार अचक्षुदर्शन जाने के बाद पुनः अचक्षुदर्शन नहीं होता, जिसके घातीकर्म नष्ट हो गये उसका प्रतिपात नहीं होता। अवधिदर्शनी का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है। केवलदर्शनी का अंतर नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े अवधिदर्शनी हैं क्योंकि वह देव, नारक और कुछ गर्भज तिर्यंचों व मनुष्यों को होता है, उससे चक्षुदर्शनी असंख्यातगुणा हैं क्योंकि चउरिन्द्रियों और असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रियों को भी होता है, उनसे केवलदर्शनी अनंतगुणा हैं क्योंकि सिद्ध अनंत हैं उनसे अचक्षुदर्शनी अनंतगुणा हैं क्योंकि एकेन्द्रियों को भी अचक्षुदर्शन होता है।

अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-संजया असंजया संजयासंजया णोसंजयाणोअसंजयाणोसंजयासंजया। संजए णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्को० देसूणा पुव्वकोडी, असंजया जहा अण्णाणी, संजयासंजए जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी, णोसंजयणो असंजय णोसंजयासंजए साइए अपज्जवसिए, संजयस्स संजयासंजयस्स दोण्हवि अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं, असंजयस्स आइदुवे णत्थि अंतरं, साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी, चउत्थगस्स णत्थि अंतरं॥

अप्पाबहुयं सव्वत्थोवा संजया संजयासंजया असंखेज्जगुणा णो संजयणो-असंजयणोसंजयासंजया अणंतगुणा, असंजया अणंतगुणा॥ सेत्तं चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता॥ २६०॥

॥ तच्चा सव्वजीवच० पडिवत्ती समत्ता॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव चार प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. संयत २. असंयत ३. संयतासंयत और ४. नोसंयत-नोअसंयत-नो संयतासंयत।

प्रश्न - हे भगवन्! संयत, संयत रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! संयत, संयत रूप में जघन्य, एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि तक रहता है। असंयत के विषय में अज्ञानी की तरह समझना चाहिये। संयतासंयत, संयतासंयत रूप में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक रहता है। नोसंयत-नो असंयत-नोसंयतासंयत सादि अपर्यवसित है।

संयत और संयतासंयत का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त है। असंयत के आदि के दो भेदों का अन्तर नहीं है, सादि सपर्यवसित का अंतर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि है। नोसंयत-नोअसंयत, नो संयतासंयत का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व में-सबसे थोड़े संयत हैं, उनसे संयतासंयत असंख्यातगुणा हैं, उनसे नोसंयत नो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंयत नोसंयतासंयत अनंतगुणा हैं और उनसे असंयत अनंतगुणा हैं। इस प्रकार सर्व जीवों की चतुर्विध प्रतिपत्ति समाप्त हुई।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में संयत आदि की अपेक्षा सर्व जीव के चार भेद कहे हैं। इन चार भेदों की कायस्थिति, अंतर और अल्पबहुत्व इस प्रकार है -

कायस्थिति - संयत की कायस्थिति जघन्य एक समय की है क्योंकि सर्वविरति परिणाम के दूसरे समय में किसी की मृत्यु भी हो सकती है। उत्कृष्ट कायस्थिति देशोन पूर्वकोटि की है। असंयत के तीन भेद हैं - १. अनादि अपर्यवसित असंयत - जो कभी भी संयम नहीं लेगा २. अनादि सपर्यवसित असंयत-जो संयम लेगा और उसी संयम से सिद्धि प्राप्त करेगा ३. सादि सपर्यवसित असंयत-सर्वविरति या देशविरति से भ्रष्ट। प्रथम दो असंयत अनादि है अतः उनकी कायस्थिति नहीं है। सादि सपर्यवसित असंयत की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट अनंतकाल, अनंतकाल अर्थात् काल से अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप और क्षेत्र से देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त रूप है। संयतासंयत की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट से देशोन पूर्वकोटि है। बाल्यकाल में संयतासंयतपन नहीं होने के कारण देशोन समझना चाहिये। नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत सिद्ध हैं। सिद्ध सादि अपर्यवसित होने से सदाकाल उसी रूप में रहते हैं।

अन्तर - संयत का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंतकाल-देशोन पुद्गल परावर्त रूप है। इतने काल के बाद जीव नियमा संयत होता है। अनादि अपर्यवसित और अनादि सपर्यवसित असंयत का अन्तर नहीं है। सादि सपर्यवसित असंयत का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है। असंयतपन का बाधक रूप संयतकाल और संयतासंयत काल उत्कृष्ट इतना ही है। संयतासंयत का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है क्योंकि इतने काल में कोई गिर कर पुनः संयतासंयत हो सकता है। उत्कृष्ट अंतर देशोन पुद्गल परावर्त है। नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े संयत हैं क्योंकि वे संख्यात कोटिकोटि प्रमाण हैं, उनसे संयतासंयत असंख्यातगुणा हैं क्योंकि असंख्यात तिर्यंच देशविरति वाले हैं उनसे नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत (सिद्ध) अनंतगुणा हैं, उनसे असंयत अनंतगुणा हैं क्योंकि सिद्धों से वनस्पति जीव अनंतगुणा हैं।

सर्व जीव पंचविध वक्तव्यता

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा-कोहकसाई माणकसाई मायाकसाई लोहकसाई अकसाई॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोहकसाई माणकसाई-मायाकसाई णं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं, लोहकसाइस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं, अकसाई दुविहे जहा हेट्ठा॥

कोहकसाई माणकसाई मायाकसाई णं अंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं, लोहकसाइस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं, अकसाई तहा जहा हेट्ठा॥ अप्पाबहुयं-अकसाइणो सव्वत्थोवा माणकसाई तहा अणंतगुणा। कोहे माया लोहे विसेसमहिया मुणेयव्वा॥ १॥ २६१॥

भावार्थ - जो ऐसा प्रतिपादित करते हैं कि सर्व जीव पांच प्रकार के हैं, वे पांच भेद इस प्रकार हैं- १. क्रोध कषायी २. मान कषायी ३. माया कषायी ४. लोभ कषायी और ५. अकषायी।

क्रोध कषायी, मान कषायी, माया कषायी की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त है। लोभ कषायी की कायस्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त है। अकषायी दो प्रकार के हैं जैसा कि पहले कहा गया है।

क्रोध कषायी, मान कषायी, माया कषायी का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त है। लोभ कषायी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त है। अकषायी के विषय में जैसा पहले कहा गया है वैसा ही समझना चाहिये।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े अकषायी, उनसे मान कषायी अनंतगुणा, उनसे क्रोध कषायी, माया कषायी और लोभ कषायी क्रमशः विशेषाधिक हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सर्व जीवों के पांच भेद कहे हैं - क्रोध कषायी, मान कषायी, माया कषायी, लोभ कषायी और अकषायी। इन भेदों की कायस्थिति, अंतर और अल्पबहुत्व इस प्रकार हैं -

कायस्थिति - क्रोध कषायी, मान कषायी, माया कषायी की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त की कही गयी है क्योंकि क्रोध आदि का उपयोग काल अंतर्मुहूर्त्त ही कहा है। लोभ कषायी की जघन्य कायस्थिति एक समय की है। यह कथन उपशम श्रेणी से गिरते समय लोभ कषाय के उदय होने के प्रथम समय के बाद के समय में मृत्यु हो जाने की अपेक्षा से है। मृत्यु के समय किसी के क्रोध आदि का उदय संभव है। लोभकषायी की उत्कृष्ट कायस्थिति अंतर्मुहूर्त्त की है।

अकषायी के दो भेद हैं - सादि अपर्यवसित (केवली) और सादि सपर्यवसित (उपशांत कषायी) सादि सपर्यवसित अकषायी की कायस्थिति जघन्य एक समय की है यह द्वितीय आदि समय में मृत्यु हो जाने एवं क्रोधादि के उदय होने की अपेक्षा समझनी चाहिये। उत्कृष्ट कायस्थिति अंतर्मुहूर्त्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की है क्योंकि उपशांत मोह गुणस्थान का काल इतना ही है। अन्य आचार्य जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की कायस्थिति भी कहते हैं। क्योंकि लोभोपशम के लिए प्रवृत्त जीव का अंतर्मुहूर्त्त पहले मरण नहीं होता।

अन्तर - क्रोध कषायी, मान कषायी और माया कषायी का अन्तर जघन्य एक समय है क्योंकि उपशम समय के बाद मरण होने से पुनः क्रोध आदि का उदय संभव है। उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त्त का है। लोभ कषायी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त है किन्तु जघन्य से उत्कृष्ट का अंतर्मुहूर्त्त बड़ा है। सादि अपर्यवसित अकषायी का अंतर नहीं, सादि सपर्यवसित अकषायी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है इसके बाद पुनः श्रेणी लाभ हो सकता है। उत्कृष्ट अन्तर अनंतकाल का है अनंतकाल यानी क्षेत्र से देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त जितना है। इतने काल के पश्चात् नियमा अकषायी होता है।

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े अकषायी हैं क्योंकि सिद्ध भगवान् एवं ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थान वाले मनुष्य ही अकषायी हैं, उनसे मान कषायी अनंतगुणा हैं क्योंकि सिद्धों से भी निगोद जीव अनंत हैं। उनसे क्रोध कषायी विशेषाधिक हैं क्योंकि क्रोध कषाय का उदय चिरकाल स्थायी है, उनसे माया कषायी विशेषाधिक हैं और उनसे लोभ कषायी विशेषाधिक हैं क्योंकि क्रोध से माया और लोभ का उदय चिरतरकाल स्थायी है।

अहवा पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-णेरइया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा देवा सिद्धा। सचिट्ठणांतराणि जह हेट्ठा भाणियाणि। अप्पाबहुयं सव्वत्थोवा मणुस्सा णेरइया असंखेज्जगुणा देवा असंखेज्जगुणा सिद्धा अणंतगुणा तिरिया अणंतगुणा। सेत्तं पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता॥ २६२॥

॥ चउत्था स० प० समत्ता॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव पांच प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - नैरयिक, तिर्यंच-योनिक, मनुष्य, देव और सिद्ध। संचिट्ठणा और अंतर पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये। अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े मनुष्य, उनसे नैरयिक असंख्यातगुणा, उनसे देव असंख्यातगुणा, उनसे सिद्ध अनंतगुणा और उनसे तिर्यंच अनंतगुणा हैं। इस प्रकार पंचविध सर्वजीव प्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सर्व जीवों के पांच भेद कहे गये हैं - १. नैरयिक २. तिर्यंच ३. मनुष्य ४. देव और ५. सिद्ध। इन पांच भेदों की कायस्थिति, अन्तर और अल्प बहुत्व का कथन पूर्व में जैसा कहा गया है तदनुसार समझ लेना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्वजीव षड्विध वक्तव्यता

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा-आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी अण्णाणी।

आभिणिबोहियणाणी णं भंते! आभिणिबोहियणाणित्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं, एवं सुयणाणीवि, ओहिणाणी णं भंते!०? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं, मणपज्जवणाणी णं भंते!०? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी, केवलणाणी णं भंते!०? गोयमा! साइए अपज्जवसिए, अण्णाणिणो तिविहा पण्णत्ता, तंजहा-अणाइए वा अपज्जवसिए अणाइए वा सपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए, तत्थ० साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं अवड्ढं पुग्गलपरियट्टं देसूणं।

अंतरं आभिणिबोहियणाणिस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं अवड्ढं पुग्गलपरियट्टं देसूणं, एवं सुय० अंतरं० मणपज्जव०, केवलणाणिणो णत्थि अंतरं, अण्णाणि० साइयसपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं।

अप्पाबहुयं सव्वत्थोवा मणपज्जवणाणिणो ओहिणाणिणो असंखेज्जगुणा आभिणिबोहियणाणिणो सुयणाणिणो विसेसाहिया सट्ठाणे दोवि तुल्ला केवलणाणिणो अणंतगुणा अण्णाणी अणंतगुणा॥

भावार्थ - जो ऐसा प्रतिपादित करते हैं कि सर्व जीव छह प्रकार के कहे गये हैं। उनके अनुसार छह भेद इस प्रकार हैं - १. आभिनिबोधिकज्ञानी २. श्रुतज्ञानी ३. अवधिज्ञानी ४. मनःपर्यवज्ञानी ५. केवलज्ञानी और ६. अज्ञानी।

प्रश्न - हे भगवन्! आभिनिबोधिक ज्ञानी, आभिनिबोधिक ज्ञानी रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! आभिनिबोधिक ज्ञानी आभिनिबोधिक ज्ञानी रूप में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम तक रह सकता है। इसी प्रकार श्रुतज्ञानी के विषय में भी समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! अवधिज्ञानी, अवधिज्ञानी रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम तक रह सकता है।

प्रश्न - हे भगवन्! मनःपर्यवज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक रह सकता है।

प्रश्न - हे भगवन्! केवलीज्ञानी, केवलज्ञानी रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! केवलज्ञानी सादि अपर्यवसित है।

अज्ञानी तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. अनादि अपर्यवसित २. अनादि सपर्यवसित ३. सादि सपर्यवसित। इनमें से जो सादि सपर्यवसित है वह जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंतकाल-देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त तक रहता है।

आभिनिबोधिक ज्ञानी का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंतकाल-देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त है। इसी प्रकार श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्यवज्ञानी का अन्तर कह देना चाहिये। केवलज्ञानी का अन्तर नहीं है। सादि सपर्यवसित अज्ञानी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम है।

अल्पबहुत्व में सबसे थोड़े मनःपर्यवज्ञानी हैं, उनसे अवधिज्ञानी असंख्यातगुणा हैं, उनसे आभिनिबोधिक ज्ञानी और श्रुतज्ञानी विशेषाधिक हैं और दोनों स्वस्थान तुल्य हैं। उनसे केवलज्ञानी अनंतगुणा हैं और उनसे अज्ञानी अनन्तगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सर्व जीवों के छह भेद कहे गये हैं - १. आभिनिबोधिक ज्ञानी २. श्रुतज्ञानी ३. अवधिज्ञानी ४. मनःपर्यवज्ञानी और ५. केवलज्ञानी ६. अज्ञानी। इनकी कायस्थिति, अंतर और अल्पबहुत्व इस प्रकार है -

कायस्थिति - आभिनिबोधिकज्ञानी (मतिज्ञानी) की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की है। क्योंकि सम्यक्त्व का जघन्य काल इतना ही है। उत्कृष्ट कायस्थिति साधिक छियासठ सागरोपम की है जो दो बार विजय आदि में जाने की अपेक्षा समझनी चाहिये। श्रुतज्ञानी की कायस्थिति मतिज्ञानी के समान है क्योंकि कहा है -

'जत्थ अभिणिबोहिय णाणं तत्थ सुयणाणं, जत्थ सुयणाणं तत्थ आभिणिबोहियणाणं, दो वि एयाइं अण्णोण्णमणुगयाइं'

- जहाँ आभिनिबोधिक ज्ञान (मतिज्ञान) है वहाँ श्रुतज्ञान है और जहाँ श्रुतज्ञान है वहाँ आभिनिबोधिक ज्ञान है। ये दोनों अन्योन्य-अनुगत हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवधिज्ञानी की कायस्थिति जघन्य एक समय है। यह अवधिज्ञान होने के अनन्तर समय में मरण हो जाने से अथवा प्रतिपात से मिथ्यात्व में जाने से (विभंगज्ञान होने से) समझना चाहिये। उत्कृष्ट कायस्थिति साधिक छियासठ सागरोपम की है जो मतिज्ञानी की तरह समझनी चाहिये। मनः पर्यवज्ञानी की कायस्थिति जघन्य एक समय की है क्योंकि द्वितीय समय में मरण होने से प्रतिपात हो सकता है। उत्कृष्ट कायस्थिति देशोन पूर्वकोटि की है। क्योंकि उत्कृष्ट चारित्रकाल इतना ही है। केवलज्ञानी सादि अपर्यवसित होने से कायस्थिति नहीं है।

अज्ञानी तीन प्रकार के कहे गये हैं - १. अनादि अपर्यवसित २. अनादि सपर्यवसित और ३. सादि सपर्यवसित। इनमें सादि सपर्यवसित अज्ञानी की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की है क्योंकि इसके बाद कोई सम्यक्त्व पाकर पुनः ज्ञानी हो सकता है। उत्कृष्ट कायस्थिति अनंतकाल-देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त रूप है। इतने काल पश्चात् अवश्य ज्ञानी बनता ही है।

अन्तर - आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यव ज्ञानी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त का है। इतने काल पश्चात् वह पुनः आभिनिबोधिक ज्ञानी आदि हो सकता है। केवलज्ञानी का अन्तर नहीं है।

अपर्यवसित और अनादि होने से प्रारम्भ के दो अज्ञानी का अंतर नहीं है। सादि सपर्यवसित अज्ञानी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम का है। इतने काल में वह पुनः ज्ञानी से अज्ञानी हो सकता है।

अल्पबहुत्व - मनःपर्यवज्ञान केवल विशिष्ट चारित्र वालों को ही होता है अतः सबसे थोड़े मनःपर्यव ज्ञानी है उनसे अवधिज्ञानी असंख्यातगुणा हैं क्योंकि देवों और नैरयिकों को भी अवधिज्ञान होता है उनसे अभिनिबोधिक ज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनों विशेषाधिक और परस्पर तुल्य हैं उनसे केवलज्ञानी अनंतगुणा हैं क्योंकि केवलज्ञानी सिद्ध अनंत हैं, उनसे अज्ञानी अनंतगुणा हैं क्योंकि वनस्पतिकायिक सिद्धों से अनंतगुणा हैं।

अहवा छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-एगिंदिया बेंदिया तेंदिया चउरिंदिया पंचेंदिया अणिंदिया। संचिट्ठणंतरा जहा हेट्ठा। अप्पाबहुयं-सव्वत्थोवा पंचेंदिया चउरिंदिया विसेसाहिया तेइंदिया विसेसाहिया बेंदिया विसेसाहिया अणिंदिया अणंतगुणा एगिंदिया अणंतगुणा॥ २६३॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव छह प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १. एकेन्द्रिय २. बेइन्द्रिय ३. तेइन्द्रिय ४. चउरिन्द्रिय ५. पंचेन्द्रिय और ६. अनिन्द्रिय। इनकी कायस्थिति और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर पूर्वानुसार कह देना चाहिये। अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय, उनसे चउरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे तेइन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे बेइन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अनिन्द्रिय अनंतगुणा और उनसे एकेन्द्रिय अनंतगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वर्णित छह प्रकार के सर्व जीवों (एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय) की कायस्थिति, अन्तर पूर्व कथनानुसार समझ लेना चाहिए। अल्पबहुत्व भावार्थ से स्पष्ट है।

अहवा छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-ओरालियसरीरी वेउव्वियसरीरी-आहारगसरीरी तेयगसरीरी कम्मगसरीरी असरीरी॥

ओरालियसरीरी णं भंते!० कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं दुसमऊणं, उक्कोसेणं असंखेज्जं काल जाव अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, वेउव्वियसरीरी जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, आहारगसरीरी जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं, तेयगसरीरी दुविहे पण्णेत्ते, तंजहा-अणाइए वा अपज्जवसिए अणाइए वा सपज्जवसिए, एवं कम्मगसरीरीवि, असरीरी साइए अपज्जवसिए॥ अंतरं ओरालियसरीरस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, वेउव्वियसरीरस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं वणस्सइकालो, आहारगसरीरस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं, तेयगसरीरस्स कम्मगसरीरस्स य दुण्हवि णत्थि अंतरं॥ अप्पाबहुयं सव्वत्थोवा आहारगसरीरी वेउव्वियसरीरी असंखेज्जगुणा ओरालियसरीरी असंखेज्जगुणा असरीरी अणंतगुणा तेयाकम्मगसरीरी दोवि तुल्ला अणंतगुणा॥ सेत्तं छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता॥ २६४॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव छह प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - औदारिक शरीरी, वैक्रिय शरीरी, आहारक शरीरी, तैजस शरीरी, कार्मण शरीरी और अशरीरी।

प्रश्न - हे भगवन्! औदारिक शरीरी, औदारिक शरीरी रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! औदारिक शरीरी लगातार जघन्य से दो समय कम क्षुल्लक भव ग्रहण और उत्कृष्ट से असंख्यातकाल तक रहता है। असंख्यातकाल अर्थात् अंगुल के असंख्यातवें भाग। वैक्रिय शरीरी जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागरोपम तक रहता है। आहारक शरीरी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जघन्य से अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त तक रह सकता है। तैजस शरीरी दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - अनादि अपर्यवसित और अनादि सपर्यवसित। इसी तरह कार्मण शरीरी के विषय में भी समझना चाहिये। अशरीरी सादि अपर्यवसित है।

औदारिक शरीर का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागरोपम का है। वैक्रिय शरीर का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंतकाल वनस्पतिकाल है आहारक शरीर का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंतकाल, देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त रूप है। तैजस कार्मण शरीरी का अंतर नहीं है।

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े आहारक शरीरी, उनसे वैक्रिय शरीरी असंख्यातगुणा, उनसे औदारिक शरीरी असंख्यातगुणा, उनसे अशरीरी अनंतगुणा और उनसे तैजस कार्मण शरीरी अनंतगुणा और स्वस्थान में दोनों परस्पर तुल्य हैं।

इस प्रकार सर्व जीव की षड्विध प्रतिपत्ति समाप्त हुई।

विवेचन - सर्व जीव छह प्रकार के कहे गये हैं - औदारिक शरीरी, वैक्रिय शरीरी, आहारक शरीरी, तैजस शरीरी, कार्मण शरीरी और अशरीरी। इनकी कायस्थिति, अंतर, अल्पबहुत्व इस प्रकार है-

कायस्थिति - औदारिक शरीरी की कायस्थिति जघन्य दो समय कम क्षुल्लक भव ग्रहण की है। विग्रहगति में शुरू के दो समय में कार्मण शरीरी होने से दो समय कम कहा है। उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यातकाल की अर्थात् अंगुल के असंख्यातवें भाग में रहे हुए आकाश प्रदेशों को प्रति समय एक-एक करके निकालने पर जितने समय में वह खाली हो जाये उतने काल की है। वैक्रिय शरीरी की कायस्थिति जघन्य एक समय की है। क्योंकि विकुर्वणा के अनन्तर समय में किसी का मरण संभव है। उत्कृष्ट कायस्थिति अंतर्मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागरोपम की कही है। वैक्रिय शरीर बनाया हुआ तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य (जिन्होंने अपने भव के अन्तर्मुहूर्त्त पहले ही वैक्रिय शरीर बनाया है) काल करके सातवीं नरक में तेतीस सागरोपम की स्थिति में उत्पन्न होता है उसकी अपेक्षा समझना चाहिए। वैक्रिय करने वाला प्रमत्त जीव ही होता है वह मरकर अनुत्तर विमान में नहीं जाता है। अतः यह स्थिति नैरयिकों की अपेक्षा ही समझनी चाहिये।

आहारक शरीरी की जघन्य और उत्कृष्ट कायस्थिति अंतर्मुहूर्त्त की है। तैजस शरीरी और कार्मण शरीरी दो प्रकार के कहे हैं यथा - अनादि अपर्यवसित - जो कभी मुक्ति प्राप्त नहीं करेंगे और अनादि सपर्यवसित (मोक्ष में जाने वाले) ये दोनों अनादि और अपर्यवसित होने से इनकी काल मर्यादा नहीं है। अशरीरी सादि अपर्यवसित होने से सदा उसी रूप में रहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर - औदारिक शरीरी का अन्तर जघन्य एक समय है। प्रथम समय में कार्मण शरीरी होने से वह दो समय वाली अपान्तराल गति में होता है। उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागरोपम का है। अन्तर्मुहूर्त शेष रहते वैक्रिय शरीर बनाए हुए तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य काल करके नरक में तेतीस सागरोपम की स्थिति में उत्पन्न होते हैं उनकी अपेक्षा यह अन्तर समझना चाहिये। वैक्रिय शरीरी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है। इतने काल बाद वह पुनः वैक्रिय शरीरी हो जाता है। जघन्य अंतर मनुष्य और देवों के वैक्रिय की अपेक्षा से कहा है। आहारक शरीरी का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट अनंतकाल-देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त का है। तैजस शरीरी कार्मण शरीरी का अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े आहारक शरीरी हैं क्योंकि ये अधिक से अधिक दो हजार से नौ हजार तक ही होते हैं। उनसे वैक्रिय शरीरी असंख्यातगुणा हैं क्योंकि नैरयिक, देव, गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य और वायुकाय वैक्रिय शरीरी हैं। उनसे औदारिक शरीरी असंख्यातगुणा हैं क्योंकि निगोद में अनंत जीवों का एक ही औदारिक शरीर होने से असंख्यातगुणा हैं। औदारिक शरीरी से अशरीरी अनंतगुणा हैं क्योंकि सिद्ध अनंत हैं। उनसे तैजस कार्मण शरीरी अनंतगुणा और स्वस्थान परस्पर तुल्य हैं। क्योंकि निगोदों में तैजस कार्मण शरीर प्रत्येक जीव के अलग-अलग हैं और वे अनंतगुणा हैं।

इस प्रकार षड्विध सर्व जीव प्रतिपत्ति समाप्त हुई।

सर्वजीव सप्तविध वक्तव्यता

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा- पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सइकाइया तसकाइया अकाइया। संचिट्ठणंतरा जहा हेट्ठा। अप्पाबहुयं- सव्वत्थोवा तसकाइया तेउकाइया असंखेज्जगुणा पुढविकाइया विसेसाहिया आउकाइया विसेसाहिया वाउकाइया विसेसाहिया सिद्धा अणंतगुणा वणस्सइकाइया अणंतगुणा ॥ २६५ ॥

भावार्थ - जो ऐसा प्रतिपादित करते हैं कि सर्व जीव सात प्रकार के हैं, वे सात भेद इस प्रकार कहे गये हैं - १. पृथ्वीकायिक २. अप्कायिक ३. तेजस्कायिक ४. वायुकायिक ५. वनस्पतिकायिक ६. त्रसकायिक और ७. अकायिक। इनके संचिट्ठणा और अंतर का कथन पहले किया जा चुका है। अल्प बहुत्व में - सबसे थोड़े त्रसकायिक, उनसे तेजस्कायिक असंख्यातगुणा, उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक, उनसे अप्कायिक विशेषाधिक, उनसे वायुकायिक विशेषाधिक, उनसे अकायिक अनंतगुणा और उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुणा हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - सकायिक अकायिक को लेकर सर्व जीव सात प्रकार के कहे गये हैं - पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और अकायिक। इन भेदों की कायस्थिति, अंतर और अल्पबहुत्व पूर्व में कहे अनुसार समझ लेना चाहिये।

अहवा सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-कण्हलेस्सा णीललेस्सा काउलेस्सा तेउलेस्सा पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सा अलेस्सा॥

कण्हले से णं भंते! कण्हलेस्सेत्ते कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, णीललेस्से णं० जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइ-भागमब्भहियाइं, काउलेस्से णं भंते!०? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं, तेउलेस्से णं भंते!०? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दोण्णि सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं, पम्हलेसे णं भंते!०? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, सुक्कलेसे णं भंते!०? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, अलेस्से णं भंते!० साइए अपज्जवसिए॥

कण्हलेसस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तम०, एवं णीललेस्सस्सवि, काउलेस्सस्सवि, तेउलेसस्स णं भंते! अंतरं कालओ०? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, एवं पम्हलेसस्सवि सुक्कलेसस्सवि दोण्हवि, एवमंतरं, अलेसस्स णं भंते! अंतरं कालओ०? गोयमा! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं॥

एएसि णं भंते! जीवाणं कण्हलेसाणं णीललेसाणं काउलेसाणं तेउलेसाणं पम्हलेसाणं सुक्कलेसाणं अलेसाण य कयरे २......? गोयमा! सव्वत्थोवा सुक्कलेस्सा पम्हलेस्सा संखेज्जगुणा तेउलेस्सा संखेज्जगुणा अलेस्सा अणंतगुणा काउलेस्सा अणंतगुणा णीललेस्सा विसेसाहिया कण्हलेस्सा विसेसाहिया। सेत्तं सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता॥ २६६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - अथवा सर्व जीव सात प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. कृष्णलेशी २. नीललेशी ३. कापोतलेशी ४. तेजोलेशी ५. पद्मलेशी ६. शुक्ललेशी और ७. अलेशी।

प्रश्न - हे भगवन्! कृष्णलेशी, कृष्णलेशी रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! कृष्णलेशी, कृष्णलेशी रूप में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागरोपम तक रह सकता है। नीललेश्या वाला जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवां भाग अधिक दस सागरोपम तक रह सकता है। कापोत लेश्या वाला जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवां भाग अधिक तीन सागरोपम रह सकता है। तेजोलेशी जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यात भाग अधिक तीन सागरोपम तक रह सकता है। पद्मलेशी जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यात भाग अधिक दस सागरोपम तक रहता है। शुक्ललेश्या वाला जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागरोपम तक रह सकता है। अलेशी सादि अपर्यवसित है अतः सदा काल उसी रूप में रहते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! कृष्णलेश्या का अंतर कितने काल का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागरोपम का अंतर है। इसी प्रकार नीललेश्या और कापोत लेश्या का भी अन्तर समझना चाहिये। तेजोलेश्या का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या का अंतर भी इतना ही है।

प्रश्न - हे भगवन्! अलेशी का अन्तर कितने काल का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अलेशी सादि अपर्यवसित होने से उसका अन्तर नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी, तेजोलेशी, पद्मलेशी, शुक्ललेशी और अलेशी ज़ीवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े शुक्ल लेश्या वाले, उनसे पद्मलेश्या वाले संख्यातगुणा, उनसे तेजोलेश्या वाले संख्यातगुणा, उनसे अलेशी अनंतगुणा, उनसे कापोत लेश्या वाले अनंतगुणा, उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक, उनसे कृष्ण लेश्या वाले विशेषाधिक हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सर्वजीव के सात भेद बताये हैं। यथा - १. कृष्ण लेश्या वाले २. नील लेश्या वाले ३. कापोत लेश्या वाले ४. तेजोलेश्या वाले ५. पद्मलेश्या वाले ६. शुक्ललेश्या वाले और ७. अलेश्य-लेश्या रहित। इन सात भेदों की कायस्थिति, अंतर और अल्पबहुत्व इस प्रकार है -

कायस्थिति - कृष्ण लेश्या की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त है क्योंकि तिर्यंच मनुष्यों में कृष्ण लेश्या अंतर्मुहूर्त्त तक रहती है उत्कृष्ट कायस्थिति अंतर्मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागरोपम की कही है। देव और नैरयिक पूर्वभवगत अंतर्मुहूर्त्त से लेकर आगे के प्रथम अंतर्मुहूर्त्त तक अवस्थित लेश्या वाले होते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। अध:सप्तम पृथ्वी के नैरयिक पीछे के भव के अंतिम अंतर्मुहूर्त्त तक और आगे के भव के प्रथम अंतर्मुहूर्त्त तक कृष्ण लेश्या वाले होते हैं। ये दोनों अंतर्मुहूर्त्त एक ही अंतर्मुहूर्त्त में गिने गये हैं। क्योंकि अंतर्मुहूर्त्त के असंख्यात भेद होते हैं इस तरह कृष्णलेश्या वाले की उत्कृष्ट कायस्थिति एक अंतर्मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागरोपम की घटित होती है। नील लेश्या की जघन्य कायस्थिति कृष्ण लेश्या की तरह अंतर्मुहूर्त्त की होती है। उत्कृष्ट कायस्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम की कही है यह धूमप्रभा के प्रथम प्रस्तर के नैरयिक जीवों की इतनी स्थिति होने के कारण कही गई है पिछले भव का अंतिम अंतर्मुहूर्त्त और आगे के भव का अंतर्मुहूर्त्त पल्योपम के असंख्यातवें भाग में ही समाविष्ट हो जाता है, अतएव अलग नहीं कहा है। कापोत लेश्या की जघन्य कायस्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम की कही गई है। यह उत्कृष्ट कायस्थिति बालुका प्रभा के प्रथम प्रस्तर के नैरयिक जीवों की अपेक्षा कही गई है। वहाँ कापोतलेश्या वाले इतनी ही उत्कृष्ट स्थिति के होते हैं। तेजोलेश्या की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम की है। यह ईशान देवलोक के देवों की अपेक्षा से है। पद्मलेश्या की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त अधिक दस सागरोपम की है। यह ब्रह्मलोक कल्प के देवों की अपेक्षा से है। शुक्ललेश्या की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागरोपम की है। यह अनुत्तरविमानवासी देवों की अपेक्षा है।

अन्तर - कृष्णलेशा का अन्तर अंतर्मुहूर्त्त का कहा है क्योंकि तिर्यंचों और मनुष्यों की लेश्या का अंतर्मुहूर्त्त में परिवर्तन हो जाता है। उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागरोपम का है क्योंकि यही शुक्ललेश्या का उत्कृष्ट काल है। इसी प्रकार नीललेश्या और कापोत लेश्या का भी अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागरोपम का है। तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्या का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है। अलेशी का अन्तर नहीं है क्योंकि वे सादि अपर्यवसित है।

अनुत्तरविमान में शुक्ल लेश्या में तेतीस सागरोपम रहकर मनुष्य में उत्पन्न होने के अन्तर्मुहूर्त्त तक शुक्ल लेश्या रहती है उसके बाद कृष्ण, नील या कापोत इन तीनों अशुभ लेश्याओं में से कोई भी लेश्या आने पर ही उपर्युक्त अन्तर घटित होता है अथवा जिनके तीन अशुभ लेश्याओं का आत्यंतिक विच्छेद हो गया हो उन्हें तो कृष्ण आदि तीन लेश्या आती ही नहीं है। आने वाले की अपेक्षा यह अन्तर समझना चाहिये।

अल्पबहुत्व - सबेस थोड़े शुक्ललेशी हैं क्योंकि लान्तक आदि देवों, कतिपय पर्याप्तक गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों एवं मनुष्यों में ही शुक्ललेश्या होती है, उनसे पद्मलेश्या वाले संख्यातगुणा हैं क्योंकि सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक में सब देव और प्रभूत पर्याप्त गर्भज तिर्यंच और मनुष्यों में पद्मलेश्या होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शंका - लान्तक आदि देवों से सनत्कुमार आदि देवलोकों के देव असंख्यातगुणा हैं तो शुक्ललेश्या से पद्मलेश्या वाले असंख्यातगुणा होने चाहिये, संख्यात गुणा ही क्यों?

समाधान - जघन्य पद में भी असंख्यात सनत्कुमार आदि तीनों देवलोकों के देवों की अपेक्षा असंख्यातगुणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में शुक्ल लेश्या होती है अतः पद्म लेश्या वाले शुक्ल लेश्या वालों से संख्यातगुणा ही होते हैं।

उनसे तेजोलेश्या वाले संख्यातगुणा हैं क्योंकि उनसे संख्यातगुणा तिर्यंच पंचेन्द्रियों, मनुष्यों, भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषियों तथा सौधर्म-ईशान देवलोक के देवों में तेजोलेश्या पायी जाती है। उनसे अलेशी अनंतगुणा हैं क्योंकि सिद्ध अनंत हैं। उनसे कापोत लेश्या वाले अनंतगुणा हैं क्योंकि सिद्धों से भी वनस्पतिकायिक अनंत हैं और उनमें कापोत लेश्या है। उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं उनसे भी कृष्ण लेश्या वाले विशेषाधिक हैं क्योंकि क्लिष्टतर अध्यवसाय वाले बहुत होते हैं यह सप्तविध सर्वजीव प्रतिपति समाप्त हुई।

सर्व जीव अष्टविध वक्तव्यता

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-अट्ठविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा- आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी मइअण्णाणी सुयअण्णाणी विभंगणाणी॥

आभिणिबोहियणाणी णं भंते! आभिणिबोहियणाणित्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छावट्ठिसागरोवमाइं साइरेगाइं, एवं सुयणाणीवि। ओहिणाणी णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छावट्ठिसागरोवमाइं साइरेगाइं, मणपज्जवणाणी णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी, केवलणाणी णं भंते!० ? गोयमा! साइए अपज्जवसिए, मइअण्णाणी णं भंते!० ? गोयमा! मइअण्णाणी तिविहे पण्णत्ते, तंजहा- अणाइए वा अपज्जवसिए अणाइए वा सपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए, तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं, सुयअण्णाणी एवं चेव, विभंगणाणी णं भंते! विभंग० ? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियाइं॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभिणिबोहियणाणिस्स णं भंते! अंतरं कालओ० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं, एवं सुयणाणिस्सवि, ओहिणाणिस्सवि, मणपज्जवणाणिस्सवि, केवलणाणिस्स णं भंते! अंतरं० ? गोयमा! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। मइअण्णाणिस्स णं भंते! अंतरं० ? गोयमा! अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, अणाइयस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं, एवं सुयअण्णाणिस्सवि, विभंगणाणिस्स णं भंते! अंतरं० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो ॥

एएसि णं भंते! आभिणिबोहियणाणीणं सुयणाणीणं ओहि० मण० केवल० मइअण्णाणीणं सुयअण्णाणीणं विभंगणाणीणं य कयरे० ? गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवणाणी, ओहिणाणी असंखेज्जगुणा, आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी एए दोवि तुल्ला विसेसाहिया, विभंगणाणी असंखेज्जगुणा, केवलणाणी अणंतगुणा, मइ अण्णाणी सुयअण्णाणी य दोवि तुल्ला अणंतगुणा ॥ २६७ ॥

भावार्थ - जो ऐसा प्रतिपादित करते हैं कि सर्व जीव आठ प्रकार के हैं। उनके अनुसार आठ भेद इस प्रकार कहे गये हैं - आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभंगज्ञानी।

प्रश्न - हे भगवन्! आभिनिबोधिक ज्ञानी, आभिनिबोधिक ज्ञानी रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! आभिनिबोधिक ज्ञानी आभिनिबोधिक ज्ञानी रूप में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट से साधिक छियासठ सागरोपम तक रहता है। श्रुतज्ञानी की कायस्थिति भी इतनी है। अवधिज्ञानी, अवधिज्ञानी रूप में जघन्य एक समय और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम तक रहता है। मनःपर्यवज्ञानी जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि तक रहता है। केवलज्ञानी सादि अपर्यवसित होने से सदाकाल उसी रूप में रहता है। मतिअज्ञानी तीन प्रकार के कहे गये हैं - १. अनादि अपर्यवसित २. अनादि सपर्यवसित और ३. सादि सपर्यवसित। सादि सपर्यवसित मतिअज्ञानी की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंतकाल-देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन रूप है। श्रुतअज्ञानी की कायस्थिति इतनी है। विभंगज्ञानी की कायस्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम की है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभिनिबोधिक ज्ञानी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंतकाल-देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन रूप है। इसी प्रकार श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी का अंतर भी समझना चाहिये। केवलज्ञानी का अन्तर नहीं है। क्योंकि वह सादि अपर्यवसित है। अनादि अपर्यवसित और अनादि सपर्यवसित इन दोनों प्रकार के मतिअज्ञानी का अन्तर नहीं है। जो सादि सपर्यवसित मतिअज्ञानी है उनका अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम है। इसी प्रकार श्रुतअज्ञानी का अन्तर भी समझना चाहिये। विभंगज्ञानी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

प्रश्न - हे भगवन्! आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्याय ज्ञानी, केवलज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभंगज्ञानी में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े मनःपर्यवज्ञानी हैं। उनसे अवधिज्ञानी असंख्यातगुणा हैं, उनसे मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी विशेषाधिक और स्वस्थान तुल्य है उनसे विभंगज्ञानी असंख्यातगुणा हैं उनसे केवलज्ञानी अनंतगुणा हैं और उनसे मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी अनंतगुणा हैं और स्वस्थान तुल्य हैं।

विवेचन - उपरोक्त आठ भेदों का विवेचन सर्व जीवों की सप्तविध छठी प्रतिपत्ति में किया जा चुका है।

अहवा अट्ठविहा सव्व जीवा पण्णत्ता, तंजहा-णेरइया तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणिणीओ मणुस्सा मणुस्सीओ देवा देवीओ सिद्धा॥

णेरइए णं भंते! णेरइएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, तिरिक्खजोणिए णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, तिरिक्खजोणिणी णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, एवं मणूसे मणूसी, देवे जहा णेरइए, देवी णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं, सिद्धे णं भंते! सिद्धेत्ति०! गोयमा! साइए अपज्जवसिए।

णेरइयस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, तिरिक्खजोणियस्स णं भंते! अंतरं कालओ० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं, तिरिक्खजोणिणी णं भंते! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वणस्सइकालो, एवं मणुस्सस्सवि मणुस्सीएवि, देवस्सवि देवीएवि, सिद्धस्स णं भंते! अंतरं० साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं॥

एएसि णं भंते! णेरइयाणं तिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीणं मणूसाणं मणूसीणं देवाणं देवीणं सिद्धाण य कयरे० ? गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सीओ मणुस्सा असंखेज्जगुणा णेरइया असंखेज्जगुणा तिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ देवा असंखेज्जगुणा देवीओ संखेज्जगुणाओ सिद्धा अणंतगुणा तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा। सेत्तं अट्ठविहा सव्वजीवा पण्णत्ता॥ २६८॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव आठ प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, तिर्यंचिनी, मनुष्य, मनुष्यनी, देव, देवी और सिद्ध।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक, नैरयिक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम तक रहता है। तिर्यंचयोनिक जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंतकाल तक रहता है। तिर्यंचिनी जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रहती है। इसी तरह मनुष्य और मनुष्य स्त्री के विषय में भी समझना चाहिये। देवों का वर्णन नैरयिक के समान हैं। देवी जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम तक रहती है। सिद्ध सादि अपर्यवसित होने से सदाकाल उसी रूप में रहते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक का अन्तर कितना है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है। तिर्यंच का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शत पृथक्त्व है। तिर्यंचिनी का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार मनुष्य, मनुष्य स्त्री, देव और देवी का भी अन्तर समझ लेना चाहिये। सिद्ध सादि अपर्यवसित होने से अन्तर नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों, तिर्यंचों, तिर्यंचनियों, मनुष्यों, मनुष्य स्त्रियों, देवों, देवियों और सिद्धों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़ी मनुष्य स्त्रियां, उनसे मनुष्य असंख्यातगुणा, उनसे नैरयिक असंख्यातगुणा, उनसे तिर्यंच स्त्रियां असंख्यातगुणी, उनसे देव असंख्यातगुणा, उनसे देवियां संख्यातगुणी, उनसे सिद्ध अनंतगुणा और उनसे तिर्यंच अनंतगुणा हैं।

विवेचन - इनका विवेचन सर्वजीव की छठी प्रतिपत्ति में किया जा चुका है। यह अष्टविध प्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्व जीव नवविध वक्तव्यता

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-णवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा-एगिंदिया बेंदिया तेंदिया चउरिंदिया णेरइया पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा देवा सिद्धा॥

एगिंदिए णं भंते! एगिंदिएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, बेंदिए णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखेज्जं कालं, एवं तेइंदिएवि, चउरिंदिएवि, णेरइया णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, पंचेंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, एवं मणूसेवि, देवा जहा णेरइया, सिद्धे णं भंते!० ? गोयमा! साइए अपज्जवसिए॥

एगिंदियस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं, बेंदियस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, एवं तेंदियस्सवि चउरिंदियस्सवि णेरइयस्सवि पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्सवि मणूसस्सवि देवस्सवि सव्वेसिमेवं अंतरं भाणियव्वं, सिद्धस्स णं भंते! अंतरं कालओ० ? गोयमा! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं॥

एएसि णं भंते! एगिंदियाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं णेरइयाणं पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं मणूसाणं देवाणं सिद्धाणं य कयरे २....? गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सा णेरइया असंखेज्जगुणा देवा असंखेज्जगुणा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा चउरिंदिया विसेसाहिया तेइंदिया विसेसाहिया बेइंदिया विसेसाहिया सिद्धा अणंतगुणा एगिंदिया अणंतगुणा॥ २६९॥

भावार्थ - जो ऐसा प्रतिपादित करते हैं कि सर्वजीव नौ प्रकार के हैं। वे नौ भेद इस प्रकार हैं - एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, नैरयिक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्ध।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय रूप में कितने काल तक रहता है ?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक रहता है। बेइन्द्रिय जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यातकाल तक रहता है। तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक नैरयिक रूप में कितने काल तक रहता है।

उत्तर - हे गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम तक रहता है।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रहता है। इसी प्रकार मनुष्य के विषय में भी समझना चाहिये। देवों का कथन नैरयिक के समान समझना चाहिये। सिद्ध सादि अपर्यवसित होने से सदा काल उसी रूप में रहते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय का अन्तर कितने काल का कहा गया है ?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम का अन्तर है। बेइन्द्रिय का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, नैरयिक, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य और देव का अन्तर समझना चाहिये। सिद्ध सादि अपर्यवसित हैं अतः उनका अन्तर नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! इन एकेन्द्रियों, बेइन्द्रियों, तेइन्द्रियों, चउरिन्द्रियों, नैरयिकों, तिर्यंचों, मनुष्यों, देवों और सिद्धों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े मनुष्य हैं, उनसे नैरयिक असंख्यातगुणा हैं, उनसे देव असंख्यातगुणा हैं, उनसे तिर्यंच पंचेन्द्रिय असंख्यातगुणा हैं, उनसे चउरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे तेइन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे बेइन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे सिद्ध अनंतगुणा हैं और उनसे भी एकेन्द्रिय अनंतगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सर्व जीवों के नौ भेदों का कथन किया गया है। इनकी कायस्थिति, अंतर और अल्पबहुत्व पूर्व के सूत्रों से स्पष्ट है।

अहवा णवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-पढमसमयणेरइया अपढमसमयणेरइया पढमसमयतिरिक्खजोणिया अपढमसमयतिरिक्खजोणिया पढमसमयमणूसा अपढमसमयणूसा पढमसमयदेवा अपढमसमयदेवा सिद्धा य॥

पढमसमयणेरइया णं भंते!० ? गोयमा! एक्कं समयं, अपढमसमयणेरइयस्स णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं समऊणाइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समऊणाइं, पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते!० ? गोयमा! एक्कं समयं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, पढमसमयमणूसे णं भंते!० ? गोयमा! एक्कं समयं, अपढमसमयमणुस्से णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, देवे जहा णेरइए, सिद्धे णं भंते! सिद्धेत्ति कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा!साइए अपज्जवसिए ॥

पढमसमयणेरइयस्स णं भंते! अंतरं कालओ० ? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, अपढमसमयणेरइयस्स णं भंते! अंतरं० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते! अंतरं कालओ० ? गोयमा! जहण्णेणं दो खुड्डागाइं भवग्गहणाइं समऊणाइं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते! अंतरं कालओ० ? गोयमा! जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं, पढमसमयमणूसस्स जहा पढमसमयतिरिक्खजोणिस्स, अपढमसमयमणूस्स णं भंते! अंतरं कालओ० ? गोयमा! जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, पढमसमयदेवस्स जहा पढमसमयणेरइयस्स अपढमसमयदेवस्स जहा अपढमसमयणेरइयस्स, सिद्धस्स णं भंते!० ? गोयमा! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं ॥

एएसि णं भंते! पढमसमयणेरइयाणं पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं पढमसमयमणूसाणं पढमसमयदेवाण य कयरे० ? गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयमणूसा पढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा। एएसि णं भंते! अपढमसमयणेरइयाणं अपढमसमयतिरिक्खजोणियाणं अपढमसमयमणूसाणं अपढमसमयदेवाण य कयरे० ? गोयमा! सव्वत्थोवा अपढमसमयमणूसा अपढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा अपढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा। एएसि णं भंते! पढमसमयणेरइयाणं अपढमसमयणेरइयाण य कयरे २..... ? गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयणेरइया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा, एएसि णं भंते! पढमसमयतिरिक्खजो० अपढमसमयतिरिक्खजोणियाणं कयरे०? गोयमा! सव्व० पढमसमयतिरि० अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा, मणुयदेवअप्पाबहुयं जहा णेरइयाणं।

एएसि णं भंते! पढमसमयणेरइयाणं पढमसमय तिरिक्खजोणियाणं पढमसमय मणूसाणं पढमसमयदेवाणं अपढमसमयणेरइयाणं अपढमसमयतिरिक्खजोणियाणं अपढमसमयमणूसाणं अपढमसमयदेवाणं सिद्धाण य कयरे०? गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमय मणूसा अपढमसमय मणुस्सा असंखेज्जगुणा पढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं असंखेज्जगुणा अपढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा अपढमसमय देवा असंखेज्जगुणा सिद्धा अणंतगुणा अपढमसमय तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा। सेत्तं णवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ॥ २७० ॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव नौ प्रकार के कहे गये हैं। यथा - प्रथम समय नैरयिक, अप्रथम समय नैरयिक, प्रथम समय तिर्यंच, अप्रथम समय तिर्यंच, प्रथम समय मनुष्य, अप्रथम समय मनुष्य, प्रथम समय देव, अप्रथम समय देव और सिद्ध।

प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय नैरयिक, प्रथम समय नैरयिक के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! प्रथम समय नैरयिक, प्रथम समय नैरयिक के रूप में एक समय रहता है। अप्रथम समय नैरयिक जघन्य एक समय कम दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट से एक समय कम तेतीस सागरोपम तक रहता है। प्रथम समय तिर्यंच एक समय तक और अप्रथम समय तिर्यंच जघन्य एक समय कम क्षुल्लक भव ग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक रहता है। प्रथम समय मनुष्य एक समय और अप्रथम समय मनुष्य जघन्य एक समय कम क्षुल्लकभव ग्रहण और उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रहता है। देव का कथन नैरयिक के समान समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! सिद्ध, सिद्ध रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! सिद्ध सादि अपर्यवसित है। सदा काल उसी रूप में रहता है।

प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय नैरयिक का अन्तर कितने काल का है?

उत्तर - हे गौतम! प्रथम समय नैरयिक का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है। अप्रथम समय नैरयिक का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम समय तिर्यंच का अन्तर जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लक भव ग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। अप्रथम समय तिर्यंच का अन्तर जघन्य एक समय अधिक क्षुल्लक भवग्रहण और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शत पृथक्त्व का है।

प्रथम समय मनुष्य का अन्तर प्रथम समय तिर्यंच के समान है। अप्रथम समय मनुष्य का अन्तर एक समय अधिक क्षुल्लक भव ग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

प्रथम समय देव का अन्तर प्रथम समय नैरयिक के समान है। अप्रथम समय देव का अन्तर अप्रथम समय नैरयिक के समान है। सिद्ध सादि अपर्यवसित होने से उनका अन्तर नहीं है।

प्रश्न -हे भगवन्! इन प्रथम समय नैरयिक, प्रथम समय तिर्यंच, प्रथम समय मनुष्य और प्रथम समय देवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े प्रथम समय मनुष्य हैं, उनसे प्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा, उनसे प्रथम समय देव असंख्यातगुणा, उनसे प्रथम समय तिर्यंच असंख्यातगुणा हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! इन अप्रथम समय नैरयिक, अप्रथम समय तिर्यंच, अप्रथम समय मनुष्य और अप्रथम समय देवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े अप्रथम समय मनुष्य हैं, उनसे अप्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा हैं; उनसे अप्रथम समय देव असंख्यातगुणा हैं और उनसे अप्रथम समय तिर्यंच अनंतगुणा हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! इन प्रथम समय नैरयिकों और अप्रथम समय नैरयिकों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े प्रथम समय नैरयिक हैं उनसे अप्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! इन प्रथम समय तिर्यंचों और अप्रथम समय तिर्यंचों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े प्रथम समय तिर्यंच हैं उनसे अप्रथम समय तिर्यंच अनंतगुणा हैं।

मनुष्यों और देवों का अल्पबहुत्व नैरयिकों के समान कह देना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! इन प्रथम समय नैरयिक, प्रथम समय तिर्यंच, प्रथम समय मनुष्य, प्रथम समय देव, अप्रथम समय नैरयिक, अप्रथम समय तिर्यंच, अप्रथम समय मनुष्य, अप्रथम समय देव और सिद्धों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े प्रथम समय मनुष्य, उनसे अप्रथम समय मनुष्य असंख्यातगुणा, उनसे प्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा, उनसे अप्रथम समय देव असंख्यातगुणा, उनसे प्रथम समय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यंच असंख्यातगुणा, उनसे अप्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा, उनसे अप्रथम समय देव असंख्यातगुणा, उनसे सिद्ध अनंतगुणा और उनसे अप्रथम समय तिर्यंच अनंतगुणा हैं।

इस प्रकार सर्वजीवों की नवविध प्रतिप्रत्ति समाप्त हुई।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अपेक्षा भेद से सर्व जीवों के प्रथम समय नैरयिक आदि नौ भेद कहे गये हैं। इन भेदों की कायस्थिति, अंतर और अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण पूर्व प्रतिपत्तियों के अनुसार स्पष्ट है।

सर्व जीव दसविध वक्तव्यता

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा-पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सइकाइया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचेंदिया अणिंदिया॥

पुढविकाइए णं भंते! पुढविकाइएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोया, एवं आउतेउवाउकाइए, वणस्सइकाइए णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, बेंदिए णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखेज्जं काल, एवं तेइंदिएवि चउरिंदिएवि; पंचिंदिए णं भंते!० ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसहस्सं साइरेगं, अणिंदिए णं भंते!० ? गोयमा! साइए अपज्जवसिए॥

पुढविकाइयस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, एवं आउकाइयस्स तेउकाइयस्स वाउकाइयस्स, वणस्सइकाइयस्स णं भंते! अंतरं कालओ० ? जा चेव पुढविकाइयस्स संचिट्ठणा, बियतियचउरिंदियपंचेंदियाणं एएसिं चउण्हंपि अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, अणिंदियस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं॥

एएसि णं भंते! पुढविकाइयाणं आउकाइयाणं तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं वणस्सइकाइयाणं बेंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचेंदियाणं अणिंदियाण य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कयरे २.....? गोयमा! सव्वत्थोवा पंचेंदिया चउरिंदिया विसेसाहिया तेइंदिया विसेसाहिया बेंदिया विसेसाहिया तेउकाइया असंखेज्जगुणा पुढविकाइया विसेसाहिया आउकाइया विसेसाहिया वाउकाइया विसेसाहिया अणिंदिया अणंतगुणा वणस्सइकाइया अणंतगुणा॥ २७१ ॥

भावार्थ - जो ऐसा प्रतिपादित करते हैं कि सर्व जीव दस प्रकार के हैं उनके अनुसार दस भेद इस प्रकार हैं - पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय।

प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिक रूप में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असंख्यातकाल-असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप, क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात लोक। इसी प्रकार अप्कायिक तेजस्कायिक, वायुकायिक की कायस्थिति समझ लेनी चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! वनस्पतिकायिक, वनस्पतिकायिक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! वनस्पतिकायिक की संचिट्ठणा जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय, बेइन्द्रिय रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय, बेइन्द्रिय रूप में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यात काल तक रहता है। इसी प्रकार तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय की कायस्थिति भी समझ लेनी चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट साधिक एक हजार सागरोपम तक रह सकता है।

प्रश्न - हे भगवन्! अनिन्द्रिय, अनिन्द्रिय रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अनिन्द्रिय-सादि अपर्यवसित होने से वह सदाकाल उसी रूप में रहता है।

प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक का अन्तर कितने काल का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक का भी अन्तर समझना चाहिये। वनस्पतिकायिक का अन्तर पृथ्वीकाय की कायस्थिति के समान अर्थात् जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असंख्यातकाल का है। इसी प्रकार बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय इन चारों का अन्तर जघन्य अतंर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! अनिन्द्रिय का अंतर कितने काल का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सादि अपर्यवसित होने से अनिन्द्रिय का अन्तर नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! इन पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रियों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय हैं, उनसे चउरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे तेइन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे बेइन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे तेजस्कायिक असंख्यातगुणा हैं, उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, उनसे अप्कायिक विशेषाधिक हैं, उनसे वायुकायिक विशेषाधिक हैं, उनसे अनिन्द्रिय अनंतगुणा हैं और उनसे वनस्पतिकायिक अनंतगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वर्णित सर्व जीवों के पृथ्वीकायिक यावत् अनिन्द्रिय तक के दस भेदों की कायस्थिति, अंतर और अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण पूर्व के सूत्रों में दिया जा चुका है। जिज्ञासुओं को वहां से देख लेना चाहिये।

अहवा दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा-पढमसमयणेरइया अपढमसमयणेरइया पढमसमयतिरिक्खजोणिया अपढमसमयतिरिक्खजोणिया पढमसमयमणूसा अपढम-समयमणूसा पढमसमयदेवा अपढमसमयदेवा पढमसमयसिद्धा अपढमसमयसिद्धा॥

पढमसमयणेरइए णं भंते! पढमसमयणेरइएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! एक्कं समयं, अपढमसमयणेरइए णं भंते!०? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं समऊणाइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समऊणाइं, पढमसमयतिरिक्खजोणिए णं भंते!०? गोयमा! एक्कं समयं, अपढमसमयतिरिक्खजोणिए० जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, पढमसमयमणूसे णं भंते!०? गोयमा! एक्कं समयं, अपढमसमय मणूसे णं भंते!०? गोयमा! जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, देवे जहा णेरइए। पढमसमयसिद्धे णं भंते!०? गोयमा! एक्कं समयं, अपढमसमयसिद्धे णं भंते!०? गोयमा! साइए अपज्जवसिए। पढमसमयणेर० भंते! अंतरं कालओ०? गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, अपढमसमयणेर० अंतरं कालओ केव०? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स० अंतरं० केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहण्णेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समऊणाइं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, अपढमसमय-तिरिक्खजोणियस्स णं भंते!०? गोयमा! जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं समयाहियं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं, पढमसमयमणूसस्स णं भंते! अंतरं कालओ०? गोयमा! जहण्णेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समऊणाइं उक्कोसेणं वणस्सइकालो, अपढमसमयमणूसस्स णं भंते! अंतरं०? गोयमा! जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं उक्कोसेणं वणस्सइकालो देवस्स अंतरं जहा णेरइयस्स, पढमसमयसिद्धस्स णं भंते! अंतरं०? गोयमा! णत्थि, अपढमसमयसिद्धस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं॥

एएसि णं भंते! पढमसमय णेरइयाणं पढमसमय तिरिक्खजोणियाणं पढमसमयमणूसाणं पढमसमयदेवाणं पढमसमयसिद्धाण य कयरे २....? गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयसिद्धा पढमसमयमणूसा असंखेज्जगुणा पढमसमय णेरइया असंखेज्जगुणा पढमसमय देवा असंखेज्जगुणा पढमसमय तिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा। एएसि णं भंते! अपढमसमयणेरइयाणं जाव अपढमसमयसिद्धाण य कयरे०? गोयमा! सव्वत्थोवा अपढमसमय मणूसा अपढमसमय णेरइया असंखेज्जगुणा अपढमसमय देवा असंखेज्जगुणा अपढमसमय सिद्धा अणंतगुणा अपढमसमय तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा। एएसि णं भंते! पढमसमय णेरइयाणं अपढमसमय णेरइयाण य कयरे २.......? गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमय णेरइया अपढमसमय णेरइया असंखेज्जगुणा, एएसि णं भंते! पढमसमय तिरिक्खजोणियाणं अपढम-समयतिरिक्खजोणियाण य कयरे..............? गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमय-तिरिक्खजोणिया अपढमसमय तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा, एएसि णं भंते! पढमसमय मणूसाणं अपढमसमयमणूसाण य कयरे २......? गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयमणूसा अपढमसमय मणूसा असंखेज्जगुणा, जहा मणूसा तहा देवावि, एएसि णं भंते! पढमसमयसिद्धाणं अपढमसमयसिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तुल्ला वा विसेसाहिया वा? गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयसिद्धा अपढमसमयसिद्धा अणंतगुणा। एएसि णं भंते! पढमसमयणेरइयाणं अपढमसमयणेरइयाणं पढमसमय तिरिक्खजोणियाणं अपढमसमय तिरिक्खजोणियाणं पढम समयमणूसाणं अपढमसमय मणूसाणं पढमसमय देवाणं अपढम समय देवाणं पढम समयसिद्धाणं अपढम-समयसिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया? गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमय सिद्धा पढमसमय मणूसा असंखेज्जगुणा अपढम समय मणूसा असंखेज्जगुणा पढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा पढमसमय देवा असंखेज्जगुणा पढमसमय तिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा अपढमसमय णेरइया असंखेज्जगुणा अपढमसमय देवा असंखेज्जगुणा अपढमसमय सिद्धा अणंतगुणा अपढमसमय तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा। सेत्तं दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता॥ सेत्तं सव्वजीवाभिगमे॥ २७२॥

॥ णवमा सव्वजीवदसविहपडिवत्ती समत्ता॥

॥ जीवाजीवाभिगमसुत्तं समत्तं॥

भावार्थ - अथवा सर्व जीव दस प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - १. प्रथम समय नैरयिक २. अप्रथम समय नैरयिक ३. प्रथम समय तिर्यंच ४. अप्रथम समय तिर्यंच ५. प्रथम समय मनुष्य ६. अप्रथम समय मनुष्य ७. प्रथम समय देव ८. अप्रथम समय देव ९. प्रथम समय सिद्ध और १०. अप्रथम समय सिद्ध।

प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय नैरयिक, प्रथम समय नैरयिक के रूप में कितने काल तक रह सकता है?

उत्तर - हे गौतम! प्रथम समय नैरयिक, प्रथम समय नैरयिक के रूप में एक समय तक रह सकता है।

प्रश्न - हे भगवन्! अप्रथम समय नैरयिक, अप्रथम समय नैरयिक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य एक समय कम दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम तक रहता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय तिर्यंच, प्रथम समय तिर्यंच रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! प्रथम समय तिर्यंच उसी रूप में एक समय तक रहता है।

प्रश्न - हे भगवन्! अप्रथम समय तिर्यंच उसी रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अप्रथम समय तिर्यंच उसी रूप में जघन्य एक समय कम क्षुल्लक भव ग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक रहता है।

प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय मनुष्य, प्रथम समय मनुष्य रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! एक समय तक प्रथम समय मनुष्य उसी रूप में रहता है।

प्रश्न - हे भगवन्! अप्रथम समय मनुष्य, अप्रथम समय मनुष्य रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अप्रथम समय मनुष्य जघन्य एक समय कम क्षुल्लकभव ग्रहण और उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रहता है।

देव का कथन नैरयिकों के समान समझ लेना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय सिद्ध उसी रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! एक समय तक रहता है।

अप्रथम समय सिद्ध सादि अपर्यवसित होने से सदाकाल उसी रूप में रहता है।

प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय नैरयिक का अंतर कितने काल का है?

उत्तर - हे गौतम! प्रथम समय नैरयिक का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। अप्रथम समय नैरयिक का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय तिर्यंच का अन्तर कितने काल का है?

उत्तर - हे गौतम! प्रथम समय तिर्यंच का अन्तर जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लक भव ग्रहण उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है। अप्रथम समय तिर्यंच का अन्तर जघन्य एक समय अधिक क्षुल्लक भवग्रहण और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शत पृथक्त्व का है।

प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय मनुष्य का अन्तर कितने काल का है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लक भव ग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है। अप्रथम समय मनुष्य का अन्तर जघन्य एक समय अधिक क्षुल्लकभव ग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

देव का अन्तर नैरयिक के समान समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय सिद्ध का अन्तर कितने काल का है?

उत्तर - हे गौतम! प्रथम समय सिद्ध का अन्तर नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! अप्रथम समय सिद्ध का अन्तर कितने काल का है?

उत्तर - हे गौतम! अप्रथम समय सिद्ध सादि अपर्यवसित होने से अन्तर नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय नैरयिक, प्रथम समय तिर्यंच, प्रथम समय मनुष्य, प्रथम समय देव और प्रथम समय सिद्धों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े प्रथम समय सिद्ध, उनसे प्रथम समय मनुष्य असंख्यातगुणा, उनसे प्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा, उनसे प्रथम समय देव असंख्यातगुणा और उनसे प्रथम समय तिर्यंच असंख्यात गुणा हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! अप्रथम समय नैरयिकों यावत् अप्रथम समय सिद्धों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े अप्रथम समय मनुष्य, उनसे अप्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा, उनसे अप्रथम समय देव असंख्यातगुणा, उनसे अप्रथम समय सिद्ध अनंतगुणा और उनसे अप्रथम समय तिर्यंच अनंतगुणा हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! इन प्रथम समय नैरयिकों और अप्रथम समय नैरयिकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े प्रथम समय नैरयिक हैं उनसे अप्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! प्रथम समय तिर्यंचों और अप्रथम समय तिर्यंचों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े प्रथम समय तिर्यंच हैं उनसे अप्रथम समय तिर्यंच अनंतगुणा हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! इन प्रथम समय मनुष्यों और अप्रथम समय मनुष्यों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े प्रथम समय मनुष्य हैं उनसे अप्रथम समय मनुष्य असंख्यातगुणा हैं। जिस प्रकार मनुष्यों के लिए कहा है उसी प्रकार देवों के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! इन प्रथम समय सिद्धों और अप्रथम समय सिद्धों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े प्रथम समय सिद्ध हैं उनसे अप्रथम समय सिद्ध अनन्तगुणा हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! इन प्रथम समय नैरयिक, अप्रथम समय नैरयिक प्रथम समय तिर्यंच, अप्रथमसमय तिर्यंच, प्रथम समय मनुष्य, अप्रथम समय मनुष्य, प्रथम समय देव, अप्रथम समय देव, प्रथम समय सिद्ध और अप्रथम समय सिद्ध इनमें कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े प्रथम समय सिद्ध हैं, उनसे प्रथम समय मनुष्य असंख्यातगुणा हैं उनसे अप्रथम समय मनुष्य असंख्यातगुणा हैं, उनसे प्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा हैं, उनसे प्रथम समय देव असंख्यातगुणा हैं, उनसे प्रथम समय तिर्यंच असंख्यातगुणा हैं, उनसे अप्रथम समय नैरयिक असंख्यातगुणा हैं, उनसे अप्रथमसमयदेव असंख्यातगुणा हैं, उनसे अप्रथम समय सिद्ध अनंतगुणा हैं, उनसे अप्रथम समय तिर्यंच अनंतगुणा हैं।

इस प्रकार दस विध सर्व जीव प्रतिपत्ति समाप्त हुई।

॥ सर्व जीवाभिगम पूर्ण ॥

॥ जीवाजीवाभिगम समाप्त ॥

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सर्व जीवों के दस भेदों का निरूपण किया गया है। इनकी कायस्थिति, अंतर और अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण पूर्व प्रतिपत्तियों में दिया जा चुका है। जिज्ञासुओं को वहाँ देख लेना चाहिये। दसविध सर्वजीव प्रतिपत्ति समाप्त।

॥ जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग-२ समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संघ के प्रकाशन

क्रं. नाम	मूल्य
१. अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	१४-००
२. अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
३. अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग ३	३०-००
४. अंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
५. अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	३५-००
६. अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
७. अनंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
८. अंतगडदसा सूत्र	१०-००
९. अनुत्तरोववाइय सूत्र	३-५०
१०. आयारांग सूत्र भाग १	२५-००
११. आयारांग सूत्र भाग २	२०-००
१२. आयारो	८-००
१३. आवश्यक सूत्र (सार्थ)	१०-००
१४. उत्तरज्झयणाणि(गुटका)	६-००
१५. उत्तराध्ययन सूत्र	४५-००
१६. उपासकदशांग सूत्र	अप्राप्य
१७. उववाइय सूत्र	२५-००
१८. दसवेयालिय सुत्तं(गुटका)	५-००
१९. दशवैकालिक सूत्र	१०-००
२०. नंदी सुत्तं	३-००
२१. नन्दी सूत्र	अप्राप्य
२२. प्रश्नव्याकरण सूत्र	३५-००
२३-२९. भगवती सूत्र भाग १-७	३००-००
३०-३१. स्थानांग सूत्र भाग १-२	६०-००
३२. समवायांग सूत्र	२५-००
३३. सुखविपाक सूत्र	२-००
३४. सूयगडो	६-००
३५. सूयगडांग सूत्र भाग १	२०-००
३६. सूयगडांग सूत्र भाग २	२५-००
३७. मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग १	३५-००
३८. मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग २	३०-००
३९-४१. तीर्थंकर चरित्र भाग १,२,३	१३५-००
४२. तीर्थंकर पद प्राप्ति के उपाय	५-००
४३. सम्यक्त्व विमर्श	१५-००
४४. आत्म साधना संग्रह	२०-००
४५. आत्म शुद्धि का मूल तत्त्वत्रयी	२०-००
४६. नवतत्त्वों का स्वरूप	१३-००
४७. सामण्ण सड्ढिधम्मो	अप्राप्य
४८. अगार-धर्म	१०-००
४९-५१. समर्थ समाधान भाग १,२,३	५७-००
५२. तत्त्व-पृच्छा	१०-००
५३. तेतली-पुत्र	५०-००
५४. शिविर व्याख्यान	१२-००
५५. जैन स्वाध्याय माला	१८-००
५६. स्वाध्याय सुधा	७-००
५७. आनुपूर्वी	१-००
५८. भक्तामर स्तोत्र	२-००
५९. जैन स्तुति	६-००
६०. मंगल प्रभातिका	अप्राप्य
६१. सिद्ध स्तुति	३-००
६२. संसार तरणिका	७-००
६३. आलोचना पंचक	२-००
६४. विनयचन्द चौबीसी	१-००
६५. भवनाशिनी भावना	२-००
६६. स्तवन तरंगिणी	५-००
६७. सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १	२२-००
६८. सुधर्म स्तवन संग्रह भाग २	१५-००
६९. सुधर्म चरित्र संग्रह	१०-००
७०. सामायिक सूत्र	१-००
७१. सार्थ सामायिक सूत्र	४-००
७२. प्रतिक्रमण सूत्र	३-००
७३. जैन सिद्धांत परिचय	३-००
७४. जैन सिद्धांत प्रवेशिका	४-००
७५. जैन सिद्धांत प्रथमा	४-००
७६. जैन सिद्धांत कोविद	३-००
७७. जैन सिद्धांत प्रवीण	४-००
७८. १०२ बोल का बासठिया	०-५०
७९. तीर्थंकरों का लेखा	१-००
८०. जीव-धड़ा	२-००
८१. लघुदण्डक	२-००
८२. महादण्डक	१-००
८३. तेतीस बोल	२-००
८४. गुणस्थान स्वरूप	२-००
८५. गति-आगति	१-००
८६. कर्म-प्रकृति	१-००
८७. समिति-गुप्ति	२-००
८८. समकित के ६७ बोल	२-००
८९. पच्चीस बोल	३-००
९०. नव-तत्त्व	७-००
९१. जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग १	१०-००
९२. जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग २	१०-००
९३. जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ३	१०-००
९४. जैन सिद्धांत थोक संग्रह संयुक्त	१५-००
९५. पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग १	८-००
९६. पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग २	१०-००
९७. पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग ३	६-००
९८. Saarth Saamaayik Sootra	१०-००
९९. सामायिक संस्कार बोध	८-००
१००. प्रज्ञापना सूत्र भाग १	४०-००
१०१. प्रज्ञापना सूत्र भाग २	४०-००
१०२. प्रज्ञापना सूत्र भाग ३	४०-००
१०३. प्रज्ञापना सूत्र भाग ४	४०-००
१०४. [illegible]सुत्ताइं	१५-००
१०५. जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग १	३५-००
१०६. जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग २	४५-००
१०७. लौंकाशाह मत समर्थन	१०-००
१०८. जिनागम विरुद्ध मूर्ति पूजा	१५-००
१०९. मुखवस्त्रिका सिद्धि	३-००
११०. विद्युत् सचित्त तेउकाय है	३-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

ब्यावर (राज.)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org